चिक्क वीरराजेन्द्र

मूल

मास्ति वेंकटेश अय्यंगार 'श्रीनिवास'

हिन्दी रूपान्तर

बी० आर० नारायण

अपनी ओर से

मास्तिजी ने कन्नड़ कहानी के जनक के रूप में विशेष ख्याति पायी है। जब कि कन्नड के प्राय. सभी प्रमुख कहानीकार उपन्यास की ओर उन्मुख होते गये, मास्तिजी की सृजनात्मकता कहानी से ही जुडी रही। लेकिन उपन्यास को वे बिल्कुल अनदेखा नहीं कर सके। इस विधा में भी उन्होंने साहित्य को तीन कृतियाँ प्रदान की हैं—सुब्बण्णा, चेन्नबसव नायक और चिक्क वीरराजेन्द्र।

सुब्बण्णा वास्तव में एक लघु उपन्यास है जिसमें कहानी की एकाग्रता और प्रवाह है। अन्य दोनों वृहद् ऐतिहासिक उपन्यास हैं। 'चेन्नबसव नायक' अठारहवीं शताब्दी में बिदनूर के पतन की गाथा है और 'चिक्क वीरराजेन्द्र' कुर्ग के अन्तिम शासक की कहानी। कुलीन एवं बुद्धिमती रानी और दो योग्य मन्त्रियों के होते हुए भी चिक्क वीरराजेन्द्र अपना विनाश नहीं रोक पाया। संघर्ष में अंग्रेजों से पराजित होकर उसे निर्वासन का तिरस्कार भी सहना पड़ा।

आखिर ऐसा क्यों हुआ ? क्या इसलिए कि वीरराजेन्द्र की जन्म-कुण्डली में उसका विनाश इंगित था ? कहते हैं, उसके नक्षत्रों की भी वही स्थिति थी जो कंस की जन्म-कुण्डली में थी। अतएव अपनी बहिन के पुत्र को मारना उसके लिए अनिवार्य-सा हो गया। वीरराजेन्द्र अपनी बहिन को बन्दी बना लेता है परन्तु उसकी अपनी पुत्री कुआ को उसके पति से मिलाने का प्रबन्ध करती है, यद्यपि उसका पुत्र राजा के चंगुल से बच नहीं पाता। यहीं से राजा के निरंकुश शासन का आरम्भ होता है और वह विनाश के पथ पर एक के बाद एक कदम उठाता जाता है। विडम्बना यह है कि वीरराजेन्द्र यह सब एक ऐसे व्यक्ति के प्रभाव से करता है जिसको तिरस्कार और घृणा के वातावरण से उबारकर स्वयं उसने ही स्नेह और सत्ता से निहाल किया था; बसव वीरराजेन्द्र के प्रति पूरी तरह समर्पित है परन्तु विनाश-पथ पर भी उसे वही ले जाता है। फिर वही होता है जो होना था। जनता का रुष्ट होना स्वाभाविक है। लक्ष्मीनारायणैया और बोपण्णा, दो योग्य मन्त्री, राजा को पदच्युत करके रानी गौरम्मा को सिंहासनारूढ करना चाहते हैं। किन्तु वे सोचते ही हैं, करते कुछ भी नहीं। वीरराजेन्द्र को सिंहासन से हटाने का कार्य तब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्नल फ्रेजर को करना पड़ता है। उस समय भी गौरम्मा या बोपण्णा उस उद्वेलित समाज में शान्ति

स्थापित कर सकते थे पर अपने-अपने कारणों से दोनों में से किसी ने अवसर का लाभ नहीं लिया। कुर्ग अंग्रेजों के आधिपत्य में चला गया। मानो सभी पात्र किसी अदृश्य शक्ति से संचालित हो रहे थे। यह नहीं कि उनका अपना व्यक्तित्व ही न हो। वीरराजेन्द्र, बसव, बोपण्णा, गौरम्मा, भगवती आदि सभी का आचरण अपने-अपने चरित्र पर आधारित है; लेकिन सब अपनी सीमाओं से बँधे हुए हैं। धार्मिकता और गरिमा गौरम्मा के व्यक्तित्व के अभिन्न अंग हैं। वह अपने पति के आचरण से खिन्न है; अतएव संघर्ष भी करती है पर वह भारतीय नारी की मर्यादा से बाहर जाने को तैयार नहीं है। गहरे संकट के समय में भी वह अपनी कुलीनता नहीं छोड़ सकती। इसी प्रकार बोपण्णा योग्य और बुद्धिमान मन्त्री है। भला-बुरा समझता है। पर जब उससे निर्णयात्मक कर्म की अपेक्षा हुई तभी उसके चरित्र और संभवतः भाग्य-परिधि ने उसे आगे बढ़ने से रोक लिया।

'चिक्क वीरराजेन्द्र' एक राजा के विनाश की ही कथा नहीं है, एक समाज की निरीहता की कहानी भी है यह। कन्नड़ के ऐतिहासिक उपन्यासों में किसी समाज का और उसके विभिन्न अंगों के पारस्परिक सम्बन्धों का ऐसा सजीव चित्र अन्यत्र कम ही मिलता है। मास्ति के उपन्यासों में राजा या राजकुमार शीर्षस्थ भले ही हों, पूरे समाज की संरचना उनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। दोनों के सन्तुलित सम्बन्धों से ही समाज का कल्याण हो सकता है।

एक अनुत्तरदायी शासन किस प्रकार किसी समाज को बुरी तरह जकड़ कर बेसहारा कर देता है, इसका मार्मिक चित्र इस उपन्यास में खूब उभरा है। लक्ष्मी नारायणैया और बोपण्णा बार-बार राजा को समझाते हैं कि गुरुजनों ने व्यवस्था में हर मनुष्य का स्थान निर्धारित कर दिया है। यदि उसमें कुछ परिवर्तन करना है तो जनता से भी परामर्श करना आवश्यक है। राजा का दरबार व उसका व्यक्तिगत आवास अलग-अलग चीजें हैं। यही है उस समाज में निरंकुशता रोकने का शाश्वत मन्त्र। इसे स्वीकार न करना ही वीरराजेन्द्र की मूलभूत पराजय है। उसने केवल कुर्ग की राजकुमारी को ही बन्दी नहीं बनाया; धीरे-धीरे पूरा कुर्ग ही एक बन्दीगृह हो गया और अन्त में उसे आभास होता है कि उसने अपने लिए ही एक बन्दीगृह बना लिया है। यही है वीरराजेन्द्र की व्यक्तिगत त्रासदी। पर समाज के अन्य गुरुजन भी सफल कहाँ हुए? सब कुछ जानते-बूझते समय आने पर वे विद्वज्जन भी पूर्णतया असफल हो जाते हैं। यही है इस उपन्यास का अन्तर्द्वन्द्व; मानवीय स्वभाव की उथल-पुथल से उत्पन्न विनाशकारी मोह की त्रासदी।

मास्ति ने इतिहास को प्रेरणा लेने का माध्यम नहीं बनाया है। अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में मास्ति का मूल उद्देश्य समाज के उत्थान-पतन का अध्ययन करने का रहा है। उनके अनुसार इस पतन का मुख्य कारण मनुष्यों में ही निहित है। समाज के ह्रास के पीछे मानवीय मनोवृत्तियों की प्रबल भूमिका होती है।

हाँ, नियति का अदृश्य हाथ भी सक्रिय रहता है। यह अदृश्य शक्ति मानव को परखती है और उत्थान का शिखर या पतन का गर्त नियत करती है।

कला की दृष्टि से यह उपन्यास मास्ति की कहानियों से भिन्न है। महत्त्वाकांक्षाओं, पीड़ा व औदात्य का इतना जटिल ताना-बाना उनकी कहानियों में नहीं मिलता। इस सरचना की पृष्ठभूमि में चरित्र-चित्रण में मास्ति ने विशेष कुशलता दिखायी है, तभी तो राजघरानों व राजदरबारों की गतिविधियों और षड्यन्त्रों के बीच भी वह छोटे-छोटे चरित्रों को नहीं भूलते। उदाहरणार्थ, 'चिक्क वीरराजेन्द्र' में भगवती एक साधारण-सी पात्र है पर अबोधता और प्रतिशोध के सम्मिश्रण से निर्मित यह चरित्र सबको अपनी ओर आकर्षित करता है। साथ-ही साथ, किसी गहन अनुभव को कम से कम शब्दों में सम्पूर्णता देने की अद्भुत क्षमता ने मास्ति के लेखन को सराहनीय परिपक्वता प्रदान की है।

'चिक्क वीरराजेन्द्र' का हिन्दी रूपान्तर इसके पहले नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नयी दिल्ली से प्रकाशित हुआ था। दूसरे संस्करण के प्रकाशन का अधिकार हमें लेखक व नेशनल बुक ट्रस्ट से मिला। ज्ञानपीठ इसके लिए उनका और अनुवादक का आभारी है। श्री एल. एस. शेषगिरि राव के प्रति हम भूमिका-लेखन के लिए कृतज्ञ हैं।

—बिशन टंडन

निदेशक, भारतीय ज्ञानपीठ

भूमिका

कन्नड़ का उपन्यास साहित्य लगभग एक सौ वर्ष तय कर चुका है। केंपुनारायण के उपन्यास 'मुद्रामंजूष' से इसका प्रारम्भ माना जा सकता है, पर वह आज के उपन्यास की कोटि में शायद ही माना जाये। वास्तव में प्रारम्भ तो गुलवाड़ी वेंकटराय के 'इंदिराबायी' अथवा 'सद्धर्म विजय' (1899) उपन्यासों से हुआ। इस लेखक ने भूमिका में लिखा है कि इन उपन्यासों की रचना का उद्देश्य सत्य तथा स्त्री की पवित्रता को व्यक्त करना है। यहां कला गौण है, कथावस्तु सामाजिक है और समाज सुधार की ओर लेखक का विशेष झुकाव है।

यों इस समय तक कन्नड़ जनता को उपन्यास के स्वरूप का परिचय अनुवादों द्वारा हो चुका था। वी० वेंकटाचार्य ने बंकिमचन्द्र की 'दुर्गेशनन्दिनी' का कन्नड़ में अनुवाद किया था। वेंकटाचार्य (1885) की भाषा संस्कृत गर्भित और शैली क्लिष्ट थी। मराठी भाषा से हरिनारायण आप्टे के उपन्यासों का अनुवाद भी गलगनाथ ने सरल शैली में किया था किन्तु उसमें विविधता न थी। देश के प्राचीन वैभव तथा वीरों के साहस को व्यक्त करना और देश प्रेम की भावना को जाग्रत करना बंकिमचन्द्र तथा आप्टे का उद्देश्य था। हाल ही में ऐतिहासिक उपन्यासों के लेखक अ. न. कृष्णराव तथा त. रा. सु. (त. रा. सुब्बाराव) आदि भी इसी उद्देश्य से प्रभावित हैं।

सन् 1915 में प्रकाशित एन. एस. पुटण्णा का 'माडिद्दुण्णो महाराया' उपन्यास सही अर्थों में आधुनिक कन्नड़ उपन्यास का प्रारम्भ माना जा सकता है। इसमें आदर्श तथा उपदेश की अधिकता के साथ-साथ कई घटनाओं का जाल भी है। इसमें राजदरबार से लेकर चोर-उचक्कों, गुण्डों और लफंगों तक के समाज का चित्रण है। यह एक आश्चर्य की बात है कि आधुनिक काल के कन्नड़ उपन्यास साहित्य का आरम्भ ग्रामीण जीवन के चित्रण से हुआ। 1915 से 1947 तक की अवधि में लगभग सौ मौलिक उपन्यास लिखे गये।

'नवोदय काल' (1918-1945) के उपन्यासकार आमतौर पर मध्यवर्ग के नगरवासी विद्वान थे। पाठक भी अधिकांश ऐसे ही थे। पत्रिकाएँ बहुत कम थीं अतः उनमें धारावाहिक रूप से उपन्यास नहीं छपते थे। इस अवधि के उपन्यासकार अंग्रेजी, संस्कृत भाषाओं के अलंकार शास्त्र से परिचित व्यक्ति थे। यह देश

में गांधीजी के प्रभाव का समय था। इस युग में लेखकों तथा पाठकों ने एक ही प्रकार की सामाजिक भूमिका अपनायी। इससे लेखक का काम सरल हो गया। इस अवधि के उपन्यासों में मानव-जीवन की सार्थकता तथा अपना विकास करते हुए व्यक्ति का सामाजिक दायित्व आदि प्रश्नों पर विचार किया गया। भारत के परम्परागत मूल्यों को स्वीकार करते हुए उसकी सांस्कृतिक सत्ता में समाज तथा व्यक्ति के सम्बन्धों का चित्रण इन उपन्यासों की विशेषता है। इनमें उद्वेग भी नहीं है, कोई भाव-क्रान्ति भी नहीं। शिल्प के लिए तो उन्हें विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। वस्तुतः नवोदय काल के उपन्यासकारों को भाषा-शैली के लिए किसी पूर्व प्रभाव से बचने की समस्या न थी।

नवोदय काल के उपन्यासों की विविधता और उच्चता को देखकर आश्चर्य होता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि श्रीनिवास (डा. मास्ति वेंकटेश अय्यंगार) ने बोलचाल की सरल भाषा तथा अपनी विशिष्ट गरिमापूर्ण शैली में उपन्यासों का निर्माण किया। शिवराम कारन्त के उपन्यासों में कलाकार की कला विशेष रूप से व्यक्त होती है। जीवन हमारे लिए स्वीकार्य है, जीवन में अर्थ है, जीवन को हम उन्नत कर सकते हैं—इसी सिद्धान्त को लेकर नवोदय युग के उपन्यासकार श्री कारन्त ने अपने उपन्यासों की रचना की। 'देवडु' ने लिखा तो कम है, परन्तु उनकी प्रत्येक कृति कौतूहलपूर्ण है। 'मयूर' कन्नड़ के प्रारम्भिक ऐतिहासिक उपन्यासों में एक है। 'अन्तरंग' मानसिक विश्लेषण के साथ भविष्य के उपन्यास-कारों का पथ प्रदर्शन भी करता है। 'महाब्राह्मण', 'महाक्षत्रिय', 'महादर्शन' आदि उपन्यासों में 'देवडु' की अगाध विद्वत्ता स्पष्ट रूप में दिख जाती है। उन्होंने इन उपन्यासों द्वारा उपनिषद्, पुराण और महाभारत की पुनः सृष्टि की। 'कारन्त' 'देवडु' तथा 'श्रीरंग' में बौद्धिक तत्त्व पृथक् रूप से दिखाई पड़ते हैं। इनमें से 'श्रीरंग' में वैचारिकता की प्रधानता है। 'कुवेंपु' (के. वी. पुट्टप्पा) एक अन्य लेखक हैं जिनके उपन्यासों में भी कौतूहल की प्रधानता है। 'हेग्गडिति' (1936) में यथार्थ और आदर्श का सम्पूर्ण समन्वय नहीं हो पाया। उनके नायक 'हूवय्या' का मुख्य पात्र बहुत आदर्शवादी लगता है। 'मलेगलल्ली मदुमगल' उपन्यास (1966) यथार्थ के अधिक समीप है तथा उसमें जीवन के सभी प्रकार के अनुभव समान रूप से व्यक्त किये गये हैं। रावबहादुर ने अपने उपन्यास 'ग्रामायण' में एक गाँव को नायक बनाकर उसके उत्थान और पतन का वर्णन किया है। नवोदय काल के उपन्यासकारों की शैली को ही अपनाकर उपन्यास लिखनेवाले कुछ और हुए हैं। कडनगोड्लु शंकर भट्ट, कृष्णमूर्ति पुराणिक, एम. आर. श्रीनिवासमूर्ति, आनन्दकन्द, श्री मुगलि, एम. वी. सीतारामय्या, नाडगेरे कृष्णराव, मिरजी अण्णाराव, भारतीसुत (नारायणराव) आदि इनमें प्रसिद्ध हैं। वी. एम. इनामदार की रचनाओं में बौद्धिकता के साथ-साथ भावुकता भी है।

स्वर्गीय अ. न. कृष्णराव ने भी 1934 में 'जीवनयात्रे' और 'उदयराग' नाम के दो उपन्यासों की रचना की। उन्होंने 37 वर्ष की अवधि में 112 उपन्यास लिखे। वे प्रगतिशील आन्दोलन के जन्मदाता थे। 1940 के बाद अंग्रेजी से प्रभावित होकर कन्नड़ के उपन्यासकारों ने अनेक रचनाएँ कीं। फ्लाबेयर, मोपासां, इब्सन आदि यूरोप के लेखकों के साथ, साम्यवादी रूस के मैक्सिम गोर्की और मायकोवस्की का प्रभाव भी इन लेखकों पर पड़ा। अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना भी इसी अवधि में हुई। ज्यों-ज्यों स्वतन्त्रता की लहर बलवती होती गयी त्यों-त्यों उच्चकोटि के लेखकों की दृष्टि सामाजिक स्थिति की ओर गयी। साहित्य-सृजन के क्षेत्र में ग्राम्य जीवन को ही अपनानेवाले लेखकों को भी इस आन्दोलन ने अपनी ओर आकर्षित किया। कौटुम्बिक जीवन का वातावरण भी बदला। इस परिवर्तन के कारण लेखकों तथा पाठकों के बीच की दूरी भी बढ़ी। भारतीय जीवन के दृष्टिकोण के लिए अधिकांश लेखकों ने गांधीजी जैसे महान व्यक्तियों के दृष्टिकोण को आधार बनाया। इससे पाठकों की संख्या में वृद्धि हुई। इन सभी बातों का प्रभाव प्रगतिशील लेखकों पर भी पड़ा। प्रगतिशील लेखक वर्ग का विचार था कि साहित्य जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति होना चाहिए, सौन्दर्य-सृष्टि तथा रसानुभूति के नाम पर जीवन में गन्दगी तथा दकियानूसीपन फैलाने का साधन नहीं। लम्बी-लम्बी भूमिकाओं के साथ और अधिक-से-अधिक उपन्यास लिखने की प्रथा अ. न. कृष्णराव ने आरम्भ की। कई बार प्रगतिशील रचनाओं में कला गौण हो जाती है और प्रतिपाद्य वस्तु प्रधान, पात्र प्रतिनिधि हो जाते हैं और उपन्यासकार उनका वकील बन जाता है, परन्तु इसी काल के लेखकों—अ. न. कृष्णराव ने 'संध्याराग', त. रा. सु. ने 'नन्दवल्लिय तोट' एवं 'बिडुगडेय बेडी', बसवराज कट्टिमनी ने 'ज्वालामुखीय मेले', चदुरंग ने 'सर्वमंगल' आदि महत्वपूर्ण उपन्यासों की रचना की।

प्रगतिशील आन्दोलन के बारे में आरम्भ में उसके उद्देश्य को लेकर जो चर्चा चल पड़ी उसने उसकी वास्तविकता समझने में कठिनाई हुई। प्रगतिशील लेखकों ने अपनी पिछली पीढ़ी के लेखकों को सम्प्रदायवादी तथा आदर्शवादी कहा। वास्तव में पिछली पीढ़ी के लेखकों तथा इनमें इतना भारी अन्तर न था। प्रगतिशील लेखक इस बात पर बल देते थे कि साहित्य का उद्देश्य समाज पर सीधा प्रभाव डालना है। नवोदय काल के उपन्यासकार तथा प्रगतिशील उपन्यासकारों को किन्हीं विशिष्ट मूल्यों के अन्वेषण की आवश्यकता न थी। जीवन स्वीकार्य है, अर्थपूर्ण है, सामाजिक जीवन को उन्नत किया जा सकता है—इन मूल तत्वों पर किसी को सन्देह न था। लेखक तथा पाठकों के बीच कोई खाई भी न थी। इन दोनों काल के कुछ लेखकों ने भारतीय इतिहास की गरिमा तथा महान् व्यक्तियों के जीवन का चित्रण मात्र किया।

सन 1952-53 तक आते-आते कन्नड़ में 'नव्यपन्थ' का आरम्भ हुआ। स्वतंत्रता-प्राप्ति के कुछ समय बाद ही गांधीजी का निधन हो गया। देश में नैतिक अवनति देखकर चिन्तनशील व्यक्ति दिग्भ्रांत हो उठे। इसी अवधि में औद्योगिक नगरों का विकास हुआ और औद्योगीकरण की समस्याएँ भी उठ खड़ी हुईं। शिक्षा तथा उद्योगों के विकास ने परिवारों का विघटन आरम्भ हुआ। विज्ञान, तकनीकी ज्ञान तथा मनोविज्ञान का प्रभाव बढ़ा। यह समय टी. एस. इलियट के अतिरिक्त सेम्युअल बेकेट सैलिंगर कामू आदि पाश्चात्य लेखकों के प्रभाव का था। परम्परागत मूल्यों को स्वीकार करके चलने वाले व्यक्तियों को इससे कठिनाई हुई और उन्हें अपने जीवन मूल्यों का पुनर्मूल्यांकन करना आवश्यक हो गया। इधर उपन्यासों में पुराने उपन्यासों के आदर्श दिखाई नहीं देते। मनुष्य के स्वभाव में काम एक प्रधानवृत्ति है। नये लेखकों ने बार-बार इसका विश्लेषण किया। साहित्य उनके लिए कामवृत्ति का अनुभव समझने और व्यक्त करने का साधन बना। अपने अनुभव को व्यक्त करने के लिए नया लेखक भाषा में संकेतों का प्रयोग करता है, इसलिए इन उपन्यासकारों में कथावस्तु की ओर आसक्ति कम होती है और उसकी तकनीक की ओर अधिक। नवयुग में आधुनिक कन्नड़ साहित्य में यह भावना परिलक्षित हुई कि जीवन एक समस्या है। यह भी बात सुनने में आयी कि साहित्य का अध्ययन एक कष्टकर कार्य है। आज की कृतियाँ समझ से बाहर हैं।

शान्तिनाथ देसाई का 'मुक्ति', यशवन्त चित्ताल का 'भूरु धारिगलु' स्यालिंग के 'केचरस इन द स्काई' की याद दिलाते हैं। लंकेश का 'बिरुक' (हाल ही में अत्यन्त विवादास्पद) और अनन्तमूर्ति का 'संस्कार' नवीन उपन्यासों में मुख्य हैं।

इस युग को 'नवयुग' कहने पर भी इस युग के कुछ श्रेष्ठ उपन्यासकार ऐसे भी हैं जिन्होंने इस युग के होते हुए भी इस सिद्धान्त से अलग होकर उपन्यासों की रचना की। बल्लाल और भीराशी किसी भी दल से सम्बन्धित नहीं रहे। हाल ही के उपन्यासकारों में अत्यन्त सशक्त उपन्यास भैरप्पा के 'वंशवृक्ष', 'नयि नेरलु' तथा 'गृह भम' आदि हैं, उनका तथा कारन्त का अनुभव अत्यन्त निलिप्ततापूर्ण तथा प्रामाणिक है। दिवंगत त्रिवेणी ने कुछ अच्छे मनोवैज्ञानिक उपन्यास लिखकर एक नवीन मार्ग प्रदर्शित किया। एम. के. इन्दिरा, अनुपमा निरंजन आदि लेखिकाओं ने भी कुछ अच्छे उपन्यासों की रचना की।

मास्तिजी ने अब चौरानबेवें वर्ष में अपने कदम रखे हैं। वे सम्पूर्ण अर्थों में प्रथम श्रेणी के लेखक हैं। वे कन्नड़ साहित्य के जनक हैं। उन्होंने सुन्दर कविताओं की भी रचना की है। नीतिपरक कविताओं को उन्होंने रगले शैली में लिखने का सर्वप्रथम प्रयास किया। 'यशोधरा' तथा 'काकन कोटे' जैसे सुन्दर नाटकों की रचना उन्होंने की। उन्होंने महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक ग्रन्थों का निर्माण भी किया। वे

भूमि

कन्नड़ साहित्य-सम्मेलन तथा कन्नड़ साहित्य परिषद् के भी अध्यक्ष रह चुके हैं। उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला है। और अब भारत के सर्वमान्य श्रेष्ठ साहित्य पुरस्कार 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' (1983) से सम्मानित हुए हैं।

जीवन के विस्तृत रूप का चित्रण करने के लिए श्रीनिवास ने कहानी के साथ-साथ उपन्यास के विस्तृत क्षेत्र को चुना। उनके तीन उपन्यास हैं: सुब्बण्णा (1926, लघु उपन्यास), चेन्नबसवनायक (1949) और चिक्कवीर राजेन्द्र (1956)।

सुब्बण्णा की कथावस्तु उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध के पुराने मैसूर राज्य से सम्बद्ध है। सुब्बण्णा ने संगीत में जीवन का अर्थ खोजकर स्थिर प्रज्ञता प्राप्त की है। कृति के पूर्वार्द्ध में सुब्बण्णा तथा उसकी पत्नी ललितम्मा के जीवन की एकरूपता को लेकर कथा विकसित होती है। पुत्र की एकमात्र अभिरुचि संगीत में पाकर संस्कृत का विद्वान पिता उसका तिरस्कार करता है। इससे पिता और पुत्र के बीच दूरी बढ़ जाती है। सुब्बण्णा की माँ बुरी नहीं, पर उसमें मिथ्या स्वाभिमान है और सास होने की झूठी प्रतिष्ठा। फूल-जैसी बच्ची सुकुमारी ललितम्मा के घर में पाँव धरते ही माँ और बेटे के बीच उदासीनता बढ़ने लगती है। पुत्र के पिता का घर छोड़ने तक यह बात मानसिक और बाह्य रूप से बढ़ती जाती है। बाह्य घटनाओं द्वारा उपन्यास में उत्सुकता बनी रहती है। इस प्रकार प्रत्यक्ष में संघर्ष न रहकर भी कहानी आगे बढ़ती है। सुब्बण्णा के पारिवारिक सम्बन्ध स्वत: टूटते जाते हैं। पुत्र की मृत्यु, पुत्री की मृत्यु, पत्नी का देहावसान और माता-पिता दोनों की मृत्यु के समाचार आदि घटनाओं के कारण बन्धन-मुक्त होने का जब अनुभव होता है तो नये बन्धन पैदा हो जाते हैं। धीरे-धीरे उनका मन बदल जाता है। यह कथा उत्तरार्द्ध में दिखायी गयी है। संघर्ष के स्थान पर उन दोनों के सम्बन्ध सुधरते जाते हैं। साथ-ही-साथ, सुब्बण्णा तथा ललितम्मा दोनों की सिद्धियों का अन्तर भी स्पष्ट किया गया है। 'सुब्बण्णा' उपन्यास से कन्नड़ साहित्य में पात्रों के बाह्य और आन्तरिक वर्णनों का आरम्भ होता है। कहानी के विकास के साथ पात्रों का उत्थान और पतन का पता चलता है। साथ ही, कन्नड़ गद्य को यहाँ से एक सरल तथा आडम्बरहीन शैली प्राप्त होती है।

'चेन्नबसवनायक' की कल्पना श्रीनिवास के मन में 1920 और 1921 के बीच आयी। दक्षिण भारत के मैसूर राज्य के समीपवर्ती एक छोटे से राज्य बिदनूर के उत्तराधिकारी तरुण चेन्नबसव नायक, इस उपन्यास के केन्द्र बिन्दु हैं, जोकि अठारहवीं शती के मध्य में विद्यमान था। बिदनूर के बड़े नायक का स्वर्गवास हो जाता है। चेन्नबसवनायक की माँ वीरम्माजी राजमहल के एक अधिकारी नंबय्या नामक व्यक्ति को अपनाती है। इस पर लोग जितने मुँह उतनी बातें करते हैं। देश के सेना [illegible] के भाई की बेटी शान्तव्वा को नायक के लिए पत्नी रूप में चुनते हैं। राज्य की समस्याएँ वैयक्तिक जीवन के साथ मिल जाने से विकट रूप

धारण कर लेती हैं। यह सुनकर कि 'गर्भवती को भैरव की बलि दे देने से सब ठीक हो जायेगा' शान्तव्वा स्वयं बलि हो जाती है। नायक भी चल बसता है। बिदनूर मैसूर के सर्वाधिकारी हैदर के हाथ लग जाता है। उपन्यास इस विश्वास से समाप्त होता है कि जनता के मन में अब भी यह विश्वास है कि नायक पुनः आयेगा। वे इसी आशय का गीत भी गाते हैं।

इस उपन्यास में वीरम्मा, चेन्नबसव, हैदर, मुम्माडि कृष्णराज, नंबय्या आदि ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। नेमय्या, शान्तव्वा आदि काल्पनिक पात्र हैं। बिदनूर और मैसूर राज्यों के उत्थान और पतन का वर्णन इतिहास से मेल खाता है।

'चिक्कवीरराजेन्द्र' दक्षिण भारत में मैसूर राज्य के समीपस्थ एक छोटे से भू-प्रदेश कोडग के इतिहास से सम्बन्ध रखता है। 1956 में कोडग मैसूर राज्य का एक भाग बना। अंग्रेजों ने इसे चिक्क वीरराजेन्द्र के समय अपने अधिकार में लिया था। इसमें श्रीनिवास ने उससे पहले की घटनाओं को भी लिया है। रानी गौरम्माजी, राजा की बहिन देवम्माजी, राजा की बेटी, मन्त्री बोपण्णा, दामाद चेन्नबसव, मित्र लंगड़ा बसव (कुंटबसव) ये सब ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। राजा के स्वभाव के बारे में इतिहासकारों में मतभेद है। राजा की बहिन तथा दामाद का कम्पनी सरकार से सहायता माँगना, राजा की इच्छानुसार उनको उसके पास न भेजकर बैंगलोर भेजना, वीरराज की क्रूरता तथा अन्याय की शिकायतों से भरे पत्रों को मद्रास के गवर्नर तक भेजना, कम्पनी के प्रतिनिधि करुणाकर मेनन को बन्दी बनाये रखना, कम्पनी की सेना के आक्रमण करने पर मन्त्री बोपण्णा का कर्नल फ्रेसर से मिलना, राजा का बन्दी बनाया जाना, उसका इंग्लैण्ड जाना, उसकी पुत्री का ईसाई मत ग्रहण करना ऐतिहासिक तथ्य हैं। इतिहास में नाममात्र को आनेवाले लक्ष्मीनारायण तथा वीरम्माजी का इसमें विकसित रूप देखने को मिलता है। श्रीनिवास ने यहाँ जिन पात्रों का सृजन अपनी कल्पना से किया है वे हैं भगवती और दीक्षित।

कन्नड के उपन्यासकारों ने देश की भव्यता तथा श्रेष्ठता को व्यक्त करने के लिए श्रेष्ठ व्यक्तियों को चुना है परन्तु ध्यान देने योग्य बात यह है कि श्रीनिवास ने देश के 'पतनोन्मुख' राज्य की कहानी को लिया है। 'चेन्नबसव नायक' में नैराश्यपूर्ण वातावरण का ही चित्रण है। बड़े नायक के देहावसान का सारे राज्य पर प्रभाव पड़ता है। बिदनूर, समीपवर्ती बस्नारे, मैसूर इन तीनों प्रदेशों के राज्य-कुलों पर निष्क्रियता छायी है। चेन्नबसव नाम बदलकर तथा वेश-परिवर्तन करके ही क्रियाशील होता है। तभी जाकर कहीं प्रकाश की किरण झाँकती है और हर्ष तथा उल्लास दिखायी देता है। शान्तव्वा तथा नायक जब मैसूर घूमने जाते हैं तो हर्ष की किरण तनिक झाँकती-सी लगती है। इस उपन्यास में मल्लिगे नामक सेविका बिजली की तरह चमक जाती है। जहाँ वह जाती है हँसी और उल्लास

छा जाता है। 'चिक्कवीरराजेन्द्र' में इतना हर्षोल्लास का वातावरण नहीं। उपन्यास का आरम्भ ही कारागार से होता है। सारे उपन्यास में सभी बन्दी हैं। सारा कोडग बन्दी है। राजमहल तथा राज्य भर को कारागार के समान बनानेवाले राजा के चारों ओर उनके पाप कर्म ही कारागार का निर्माण करते हैं। यही इस उपन्यास में दिखाया गया है।

अभिप्राय यह है कि ऐतिहासिक उपन्यास लिखने में श्रीनिवास का झुकाव राज्य के आरोहण-अवरोहण में रहा है। किसी भी काल की घटना क्यों न हो, व्यक्ति से घटनाएँ प्रधान हैं। व्यक्तियों के सम्बन्ध में कौतुहल अधिक है। श्रीनिवास को मनुष्य के स्वभाव के निरूपण में विशेष अभिरुचि रही है, इसीलिए उनके पात्र केवल छाया नहीं अपितु सजीव व्यक्ति हैं। साथ ही, वे ऐतिहासिक घटनाओं को अपने साथ लेकर चलते हैं। अतः उपन्यास में गहराई है। उदाहरण के लिए यह ऐतिहासिक तथ्य है कि नाई का बेटा लंगड़ा वीरराजेन्द्र का अभिन्न मित्र है। यह कैसे सम्भव हुआ और वीरराज के पिता ने उसे ऐसा मौक़ा क्यों दिया—यह वे बताते नहीं। इस उपन्यास में लंगड़ा बसव राजघराने के मूर्तिमान पाप की भांति उनका पीछा करता है। लिंगराज भगवती को यह विश्वास दिलाता है कि उसके बाद भगवती का पुत्र ही गद्दी पर बैठेगा। बाद में धोखा देकर बच्चे का पांव मरोड़ डालता है। यहीं विष के बीज का आरोपण हो जाता है। राजमहल के पाप की बलि बनकर भगवती मटकेरी में रहती है। पाप का फल बसव वीरराज को पाप के मार्ग पर ले जाता है।

श्रीनिवास एक घटना और उससे सम्बन्धित पात्रों का आरम्भ में ही चयन कर लेते हैं। घटना से उन पात्रों की प्रतिक्रियाएँ ऐसी रहती हैं जैसे तट पर बहता पानी। घटना पात्रों से और पात्र घटना से प्रभावित होते हैं।

श्रीनिवास के उपन्यासों में ऐसे महत्वपूर्ण दृश्य कम होते हैं जो मन पर गहरा प्रभाव डालते हों। परन्तु प्रत्येक वार्तालाप में पात्रों की मनःस्थिति, उन स्थितियों को निरूपित करनेवाले शब्दों का दूसरों पर पड़नेवाला प्रभाव, इन सबसे हम कृति के पात्रों को आन्तरिक और बाह्य दोनों रूप में तौल सकते हैं। इस जगत् में मानव की दुर्बलताएँ और उन दुर्बलताओं का निरीक्षण स्वयं उनके पात्र ही कर लेते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ये पात्र अपने जीवन से राज्यों को बिगाड़ सकते हैं। इन पात्रों के कार्य तथा क्रियाकलाप अमरबेल के समान स्वयं उन्हीं को जकड़ लेते हैं। चेन्नबसव में नेमय्या, चिक्कवीरराजेन्द्र में लक्ष्मीनारायणय्या, राज्य के कार्यों में अपनत्व का सम्पूर्ण त्याग करके जुट जाते हैं। यह अति मानव नहीं, परन्तु इन पर स्वार्थ की भी छाप नहीं। परन्तु उनकी दूरदर्शिता से उन्हें यद्यपि यह पता चल जाता है कि भविष्य क्या हो सकता है। उपन्यासकार ने इनके साथ-साथ गौरम्माजी, नंजय्या, वीरराजेन्द्र, लंगड़े बसव को एक मुख्य घटना के साथ

जोड़ दिया है। इसमे यह भी व्यक्त हो जाता है कि घटनाचक्र और पात्रों से भी बढ़कर एक परम शक्ति है। सुख-दुख के बीच खड़े होकर उद्वेग रहित होकर चलनेवाले पात्रों के प्रतिनिधि हैं; 'चेन्नबसवनायक' मे अव्वा और 'चिक्कवीर-राजेन्द्र' में दीक्षित। लेखक ने इस परमशक्ति को इतने सूक्ष्म और कलात्मक रूप में व्यक्त किया है कि हम इस बात का अनुभव करने पर विवश हो उठते हैं कि यह पात्रों का स्वयं अपना विश्वास है। श्रीनिवास ने ऐसे परिपक्व स्त्री-पात्रों का भी निर्माण किया है जो संसार में खड़े हो अपने पति तथा पुत्र की भलाई में अपने को समर्पित कर डालते हैं। मुद्दण्णा की पत्नी ललिता, नायक की पत्नी शान्तव्वा, वीरराज की पत्नी गौरम्मा इसकी प्रतिमूर्ति हैं। राज्यों के उत्थान-पतन, उन्नति-अवनति के साथ जीवन की इस विशाल यात्रा मे अनेक-अनेक स्तरों को छूनेवाले पात्रों के चित्रण से इन कृतियों में एक भव्यता आ गयी है। श्रीनिवास पात्र से दूर खड़े होकर उसकी साधना को पहचान सकते हैं और उसके साथ तादात्म्य अनुभव कर सकते हैं। वीरम्माजी, वीरराजेन्द्र भी इससे परे नहीं। ऐतिहासिक उपन्यासों में श्रीनिवास की विशिष्ट देन यह है कि पात्र अपने युग की रीतियों और मूल्यों से दूर नहीं हटते। वे अपने युग के प्रतिनिधि होते हैं, इनके पात्र कठपुतलियाँ नहीं जोकि संग्रहालय की शोभा बन सकें; वे जीवन की अच्छी-बुरी सभी बातों को साथ लेकर चलते हैं। उनके पात्र जिस भाषा और शैली का प्रयोग करते हैं उससे उनके मानसिक स्तर का पता चलता है। वीरराजेन्द्र एक बार क्रोधित होकर लक्ष्मी-नारायण से कहता है 'आप चाहें तो प्राण दे देंगे पर स्वाभिमान नहीं छोड़ेंगे?' इसका आशय यह है कि यह केवल स्वाभिमान का प्रश्न नहीं, मूल्यों और मानव के सम्बन्धों का प्रश्न है। श्रीनिवास के उपन्यासों में अनेक स्तर पर अनेक उद्देश्यों को एक साथ व्यक्त करनेवाली भाषा का प्रयोग है, जो उपन्यास की सफलता में एक बड़ी बात है।

—एल. एस. शेषगिरि राव
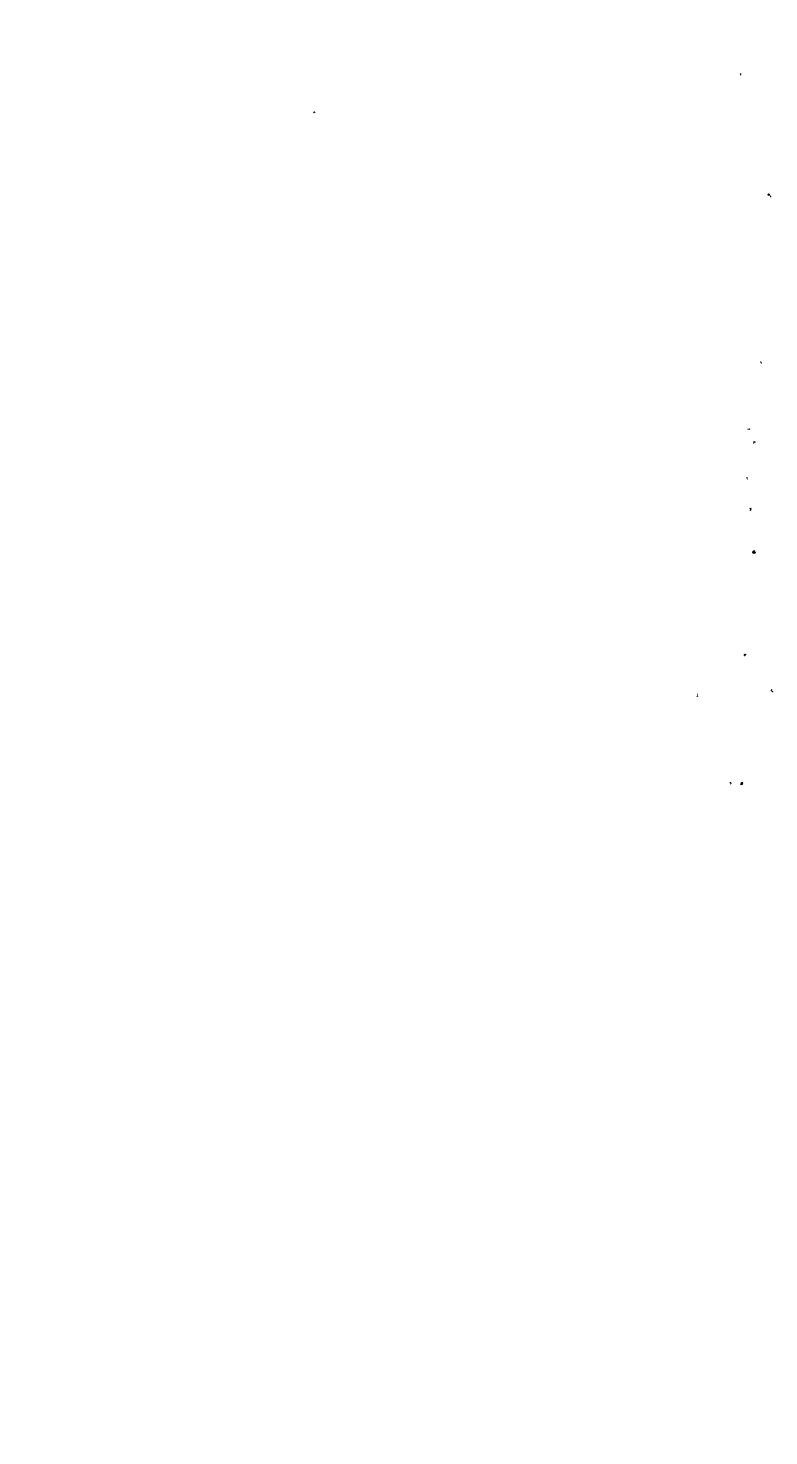
प्राक्कथन

भारतवर्ष की एक बड़ी विशेषता यह है कि एक देश होने के साथ-साथ उसमें एक विस्तृत भूखण्ड की सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं। "गंगे च यमुने चैव गोदावरि, सरस्वति नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधि कुरु"। हमारे पूर्वज स्नान के समय इस श्लोक के द्वारा अपनी पवित्र सात नदियों का कम-से-कम दिन में एक बार स्मरण कर लिया करते थे। इन स्मरण करनेवाले हज़ारों में से शायद ही कोई ऐसा होगा जिसने गंगा के भी दर्शन किये हों और कावेरी को भी देखा हो या जिसने कावेरी के भी दर्शन किये हों और उसी ने गंगा को भी देखा हो। इतनी विशाल यह धरती अपने धर्म, नीति और संस्कृति के सूत्रों के कारण सैकड़ों वर्षों से एक रही है, पर फिर भी राजनीतिक एकता अभी हाल की ही चीज़ है। हर प्रान्त का जीवन अपने-अपने ढंग का था। हर प्रान्त में अनेक राजघराने थे। इसीलिए प्रत्येक प्रान्त का इतिहास भी किसी देश के इतिहास के समान विस्तृत था। इस बात का सबसे अच्छा उदाहरण है राजस्थान। राजपूतों की यह भूमि भारत का एक छोटा-सा हिस्सा है पर इसके भी बीसियों भाग हैं। प्रत्येक का इतिहास एक राष्ट्र के इतिहास के समान विस्तृत भी है और यशोमय भी। शौर्य, धर्म, निष्ठा, तेज, वीरता और श्रद्धा का उस भूमि में कितने सहज स्वाभाविक ढंग से विकास हुआ है। साथ ही कुरीतियों, अविवेक, स्वार्थपरता और लोभ का शिकंजा भी कितना विकट रहा है। यों 'बहुरत्ना वसुन्धरा' वाली कहावत सत्य है ही परन्तु भारत-भूमि के सन्दर्भ में यह अक्षरशः ठीक है। किसी भी प्रान्त के इतिहास को उठाकर देखा जाये तो वह मनोहारी और यशोज्वल भी है और साथ ही मार्गदर्शन भी करता है।

छोटे-से कोडग प्रान्त के इतिहास में भी ये तीनों बातें विशेष रूप से परिलक्षित होती हैं। सह्याद्रि पर्वत श्रेणी बम्बई से शुरू होकर दक्षिण की ओर चलती है। रास्ते में पश्चिम समुद्र की ओर देखते हुए वह निरन्तर ऊँची होती चली जाती है और नीलगिरि में जा मिलती है। नीलगिरि में जा मिलने से पहले कोडग प्रदेश

में वह पश्चिमोत्तर दिशा में पुष्पगिरि और तावलगेरि, गुरुनाड के ब्रह्मगिरि तक पांच योजन की धरती घेरती है। इसकी लम्बाई इतनी है और चौड़ाई में यह तीन-चार योजन में कहीं ऊंचाई और निचाई में फैला है। इसमें कई प्रसिद्ध पहाड़ियां हैं। पुष्पगिरि में ही दो शिखर हैं—मडकेरी के पास कोटेबेट्टा : सबसे ऊंचाई पर तडियंडमोलो है। ब्रह्मगिरि के कूले पर देवसिमले है। अन्त में सोमनमले है। यह सब ऊंचे-ऊंचे शिखर हैं। लगता है मानो ये चोटियां एक-दूसरे से स्पर्धा कर रही हों।

कोडग कावेरी का मायका है। यह नदी ब्रह्मगिरि में जन्म लेकर आग्नेय दिशा में सिद्दापुर की ओर बहती है। वहां से ईशान दिशा में सिरियंगल तक कोडग-भूमि पर प्रवाहित होती है। बीच में तडियंडमोलु से बहनेवाली 'वकवे' नदी, सोमनमले से बहनेवाली 'करड' नदी, हेग्गल से आनेवाली 'कदमूर' नदी, 'बेप्पुनाड' में 'भगल' की ओर से आनेवाली 'कुम्मे' नदी, 'एडनालकुनाड' में 'कग्गोडुनाडु' से बहनेवाली 'मुत्तारमुडि' नदी, होरूरु नूरोक्कल की चिकली नदी, कक्के चोर की नदी भी मिलती है और मादापुर की हट्टे नदियां भी इसमें मिलकर कुशाल नगर के उत्तर की ओर बहती हैं।

इस प्रकार दसों दिशाओं से दसियों छोटी-छोटी नदियां इसमें समाहित होकर इसकी समृद्धि करती हैं। हेमावती नदी इसी देश में जन्म लेकर उत्तर की सीमा बनकर बहती है। इसी की पहाड़ियों में लक्ष्मण-तीर्थ का भी जन्म होता है और वह ईशान में बहते हुए इस प्रदेश से निकलकर कावेरी में जा मिलती है।

पांच योजन लम्बा और तीन योजन चौड़ा यह पार्वत्य प्रदेश एक विशिष्ट जन-समुदाय की वासभूमि है। ये ही लोग कोडगी कहलाते हैं। इस जन-समुदाय ने एक साथ जो विशिष्ट जीवन विताया वह इस प्रदेश की विशेषता बन गयी। देश के विशिष्ट लोग कोडगी होने पर भी इस प्रदेश पर इन लोगों का कभी राज्य नहीं रहा। कोडगियों के अतिरिक्त अनेक राजवंशों ने यहां राज्य किया। कदम्ब, गंग, चोल, चालुक्य, होय्सल आदि राजाओं का यहां प्रभुत्व रहा। अन्त में इक्केरी राजवंश का उद्दिनी यहां आया और पिछले राजवंश को निर्मूल करके जनता की इच्छा से स्वयं राजा बना। इसका वंश दो सौ वर्ष से अधिक चला।

एक ओर मैसूर राज्य का, दूसरी ओर केरल और तीसरी ओर मंगलूर का प्रभुत्व था। इनके बीच में कोडग के राजा को अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए सदा संघर्ष करना पड़ता था। पहाड़ी प्रदेश होने के कारण बाहर के लोगों के लिए इसे जीतना सम्भव नहीं हुआ। इस वंश के दोड्डवीर राजेन्द्र ने बड़े कौशल से राज्य संचालन करके अपने समकालीन राजाओं का सम्मान पाया था।

दोड्डवीरराज की इच्छा थी कि उनके बाद उनकी पुत्री देवम्माजी रानी बने। देवम्माजी गद्दी पर बैठी। पर उसके छोटे भाई लिंगराज ने इसका विरोध किया।

कुछ दिन यह दीवान बना रहा पर बाद में देवम्माजी को गद्दी से उतारकर स्वयं राजा बन बैठा। नौ वर्ष तक राज्य करने के बाद उसका स्वर्गवास हो गया, तब उसका बीस वर्षीय पुत्र चिक्कवीरराज सिंहासन पर बैठा।

यह कोडग के इस राजवंश का अन्तिम राजा था। इसके राज्यकाल के चौदह वर्ष में कोडग अंग्रेजों के अधीन हुआ। चिक्कवीरराज से उसकी वंश-कीर्ति की श्रीवृद्धि नहीं हुई। उसके शासन-काल के अन्तिम आठ वर्ष ही हमारे उपन्यास की कथाभूमि हैं।

कथामुख

1

शक संवत् 1755 की घटना है। मडकेरी राजभवन के भीतरी भाग के एक कोने वाले कमरे का दरवाज़ा बन्द था और उस पर ताला लगा था। दोपहर का वक्त था। तभी रसोई से खाने की थाली लिये एक नौकर उस द्वार के पास आकर रुका। ठीक उसी समय एक लंगड़ा भी चाबी का गुच्छा लिये वहां पहुंचा और उसने गुच्छे से एक चाबी निकालकर ताला खोल दिया।

कमरे में जाकर उसने दरवाज़े पर खड़े नौकर को इशारे से अन्दर बुलाया। नौकर थाली लेकर भीतर गया। लंगड़े ने तनिक कठोर स्वर में कहा, "खाना लाया हूँ, मालकिन। लीजिए।"

कोने में बैठी हुई युवती बोली, "तू और तेरा खाना—दोनों जायें भाड़ में, दफ़ा हो यहां से, तू इधर मत आया कर।"

"तो आप आज खाना नहीं खायेंगी क्या ?"

"मैं खाऊँ या न खाऊँ, तुझे क्या ? तू अपना काम देख।"

"दुबारा खाना मांगेंगी तो शायद न रहे।"

"अहः हा। तू जा यहां से। ज्यादा बात न कर। मैं खाना मांगूंगी इस हराम-जादे से···?"

तभी करीब चौदह वर्ष की एक लड़की दरवाजे के पास आयी। इन लोगों की बातें सुनकर उसका मुंह उतर गया और वह अन्दर घुस आयी।

लंगड़े के ध्यान में यह बात नहीं थी कि यह यहां आ पहुँचेगी। "अरे बिटिया, आपको यहां किसने आने दिया ? चलिए···चलिए। पिताजी ने देख लिया तो हम सबको चीर ही डालेंगे।"

लड़की बोली, "भले चीर डालें, मैं तो बुआजी के पास ही रहूँगी।"

लंगड़े ने नौकर को झिड़का, "अबे, मैंने कहा था ना कि आते हुए दरवाज़ा बन्द करके आना। तू खुला ही छोड़ आया ना, मेरी जान लेने को। उल्लू कहीं का।" फिर लड़की से बोला, "मैं आपके आगे हाथ जोड़ता हूँ, आप अब चलिए।

चाहे तो पिताजी से बात कर लीजिए। और देर मत करिए, अगर पिताजी ने देख लिया तो मुसीबत आ जायेगी।"

लंगड़े की बातचीत में बन्दी के प्रति सम्मान तथा बालिका के प्रति वात्सल्य और नौकर के प्रति अहंकार, क्रूरता आदि के भाव स्पष्ट दिखाई दे रहे थे।

लड़की ने कहा, "पिताजी यहाँ आयें इसीलिए तो मैं यहाँ आयी हूँ। उन्हें आने दो। मैं बुआजी को छोड़कर नहीं जाऊँगी।"

लंगड़े को गुस्से का भूत सवार हो गया। उसने नौकर को फिर झिड़का और उसके गाल पर तमाचा जड़ते हुए कहा, "उल्लू कहीं का, दरवाजा बन्द करके आने को कहा था, करके आया था, गधे? ठहर जा, तुझे ठीक करूँगा," फिर लड़की को ज़रा डराते हुए कहा, "तो बुलाऊँ पिताजी को?"

तब नौकर ने कहा, "मालकिन, देखिए आपने क्या किया। मेरे मना करने पर भी आपने दरवाज़ा बन्द करने से रोक दिया। आपकी बात मानने से मेरी यह गत बन रही है।"

लड़की ने कहा, "ख़ैर, जो हुआ सो हुआ। तुम बाहर जाओ, फिर इस लंगड़े के हाथ मत आना। तुम्हें यह दुबारा हाथ लगायेगा तो मैं इसे देख लूँगी।" फिर उसने लंगड़े से कहा, "जा। तू जाकर पिताजी को बुला ला।"

लंगड़े को इस बात पर बड़ा गुस्सा आ रहा था कि उसे बातचीत में लगड़ा कहा जा रहा है। उसने उसकी ओर गुस्से से घूरकर देखा। वह कुछ देर इधर-उधर ताकता खड़ा रहा, फिर कुछ सोचकर अनमना-सा बाहर की ओर चल दिया।

बाहर एक और स्त्री-मूर्ति उसे सामने दिखाई पड़ी। उसे देखते ही लंगड़े ने सिर झुकाकर हाथ जोड़े और बोला, "मालिक का हुक्म है कि यहाँ किसी को न आने दिया जाये। छोटी मालकिन आ गयीं, यही एक मुसीबत की बात थी और अब आप स्वयं भी अन्दर गयीं तो न जाने क्या होगा!"

उन्होंने सौम्य मुख से गम्भीर स्वर में कहा, "क्यों बसवय्या, महल में हमें कहाँ जाना चाहिए और कहाँ नहीं जाना चाहिए, यह बतानेवाले तुम्हीं हो क्या?"

वह दुर्ग की रानी गौरम्मा थी। उनके गम्भीर व्यक्तित्व और आवाज़ के सामने लंगड़ा हतप्रभ हो गया।

"मैंने तो जो मालिक का हुक्म है बस वही कहा है न मालकिन, वे गुस्सा हो गये तो उन्हें कौन रोक पायेगा?"

"ठीक है, उन्हें रोकना होगा तो मैं समझा दूँगी। आखिर इसे भी तो देखना है।"

"जो हुक्म, मालकिन।"

गोरम्मा क़दम बढ़ाकर कमरे में चली गयी। बसव उसके पीछे-पीछे चला और दरवाज़े पर ही खड़ा हो गया। रानी के भीतर जाते ही कुमारी दौड़ी आयी और उनका हाथ पकड़कर बोली, "अम्माजी, बुआजी कहती हैं, मुझे खाना नहीं खाना। आप ही समझाइये न।"

कोने में बैठी युवती आँसू पोंछकर चुप हो गयी। रानी उनके पास जाकर बोली, "क्यों बहिन, आज क्या बात है? बसवय्या ने कुछ कहा है क्या?"

युवती सिसकते हुए बोली, "देखो भाभी, रात भैया ने कहनी-अनकहनी सब कह दी। कहने लगे, 'यह पेट किसका है? बता, नहीं तो इस लंगड़े की गोद में तुझे डाल दूंगा।' अब मेरे जीने की क्या ज़रूरत है जब मेरे मरने से सबको तसल्ली हो रही है। फिर खाने की भी क्या ज़रूरत है?"

राजकुमारी बोली, "न खाने से गर्भ के शिशु का क्या होगा?"

तब रानी ने भी कहा, "यह सब तो ठीक है पर हज़ार बातों के बाद भी जिस घर में पैदा हुई हो उसे तो बचाना ही होगा। कोई उपाय निकालना पड़ेगा। बदले की भावना रखी तो बेटी के मारने का पाप इस घर के सिर होगा।"

युवती : "बेटी को खा जाना इस घर के लिए कोई नयी बात नहीं है। दस बेटियों का यही हाल हो चुका है। मैं तो ग्यारहवीं हूँ।"

राजकुमारी माँ से बोली, "अम्मा, आज ही बुआजी को उनके गाँव भिजवा दो, नहीं तो मैं खाना छोड़ दूंगी।"

बसव ने अब तक सेवक को मालिक के पास यह कहकर दौड़ा दिया था कि, "बहन के बन्दी-गृह में रानी तथा राजकुमारी बातचीत कर रही हैं, आप तुरन्त चलें।" समाचार पाते ही वीरराज बड़े क्रोध से थरथराता, लम्बे-लम्बे डग भरता वहाँ आ पहुँचा।

2

वीरराज अभी युवक ही था। उसने अभी पैंतीस वर्ष भी पूरे नहीं किये थे परन्तु उसने जैसा जीवन बिताया था उसके फलस्वरूप उसके मुख पर रुग्णता और कान्तिहीनता थी। बुढ़ापे के लक्षण दिखने लगे थे। युवा शरीर में बूढ़ी आँखें थीं जिनमें क्रूरता अधिक थी।

दूर से पिताजी को आते देख राजकुमारी यह जानते हुए भी कि वह क्रोध में हैं, गुस्से की परवाह न कर उसकी ओर दौड़ी और उसका हाथ पकड़कर बोली, "पिताजी, पता नहीं बसवय्या ने क्या कह दिया जो बुआजी खाना ही नहीं खाती। उन्हें अपने घर भिजवा दीजिए।"

वीरराज ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया। उसे इसी बात पर गुस्सा था

कि ये उसकी आज्ञा के बिना यहाँ कैसे आयी ?

"तू यहाँ क्यों आयी ? तुझे यहाँ आने को किसने कहा था ?" कहकर झिड़कता हुआ वह आगे बढ गया। कमरे के अन्दर जाकर "तुम्हें यहाँ किसने बुलाया ? जहाँ रखा जाता है वहीं मान से रहो। हमारी आज्ञा के बिना यहाँ कोई क़दम न रखे—" कहकर वह रानी पर गरज पडा।

गौरम्माजी ने कोई जवाब नही दिया और सेवक तथा बसव से कहा, "तुम दरवाज़े के बाहर ही ठहरो।"

वीरराज : "ऐ, तुम यही रहो।" यह कहकर वह रानी से बोला, "बाहर आप लोगों को जाना है।"

"मेरे स्वामी मुझे क्या कहेंगे, वह सब सुनने के लिए क्या नौकरों का रहना ठीक है?"

"हाँ, रहना चाहिए। जो मेरी आज्ञा न माने वह मेरी पत्नी कैसी ?"

"हाथ पकड़कर लायी गयी औरत तो पराई सही, पर पेट से पैदा हुई लडकी को क्या कहेंगे ? उसे भी नौकरो के सामने दण्ड देंगे क्या ?"

"हम क्या करते हैं यह सब पूछनेवाली तुम कौन हो ? चलो बाहर।"

रानी ने दर्पपूर्ण दृष्टि बसव और सेवक पर डाली तब तक नौकर दरवाज़े तक खिसक गया था। उस दृष्टि से सहमकर बसव भी धीरे से दरवाज़े तक सरका और दूसरी ओर मुँह करके खड़ा हो गया।

रानी : "ज्योतिषी ने कहा था ग्रह दशा ठीक नही; योग मे देवकी वाली दशा है। इसीलिए मैं यहाँ आयी, नही तो मेरा यहाँ क्या काम था ? आप दोनों भाई-बहन हैं, मुझे क्या लेना-देना है ?"

"बड़ा जानकार है तुम्हारा ज्योतिषी ! उस बूढ़े ने कह दिया और तुमने मान लिया। मेरी आज्ञा बिना तुमने यह खेल खेला।"

"मेरा आना गलत सही ! फिर भी महाराज और बिटिया का भला हो इसी-लिए यहाँ आयी। मेरा अपराध क्षमा करें और अपनी बहन को उनके घर भिजवा दें।"

गौरम्माजी ने पति से कई बार गालियाँ सुनी थी। कई बार होश में या शराब पीकर नशे में पति ने उस पर हाथ भी छोड़ दिया था परन्तु वह कभी भी रानी होने के नाते अपनी मर्यादा नही भूली थी। आज भी अपने सहज स्वभाव से उसने पति का सामना किया था।

वीरराज ने दाँत पीसते हुए कहा, "इतनी जबान क्यों चलाती हो ? क्या करना है क्या नही, यह हम जानते हैं। एक साल तक यहाँ बन्दी रहने पर भी तुम्हारी ननद को किसका गर्भ रह गया, साफ-साफ कहो। ननद को किसी से गर्भवती कराके अब पति के घर भेज रही हो।"

इतनी देर में कोने में रोती हुई देवम्माजी उठकर खड़ी हो गयी। अंगारे बरसाती हुई नज़रों से भाई की ओर देखकर बोली, "मुझे बुरी बातें कहने-वाली जबान में कीड़े पड़ेंगे। मैं तुम्हारे जैसी नहीं जो मनमाने ढंग से जीवन बिताऊँ।"

"ऐ छिनाल, कुतिया, भाई का नाम न ले। किसका गर्भ है बता, नहीं तो भंगियों के पास भिजवा दूंगा।"

रानी पति से बोली, "गन्दी बातें मत कीजिए। बेटी और बहिन में क्या फर्क है। घर की बेटी की इज्जत अपनी इज्जत होती है। महीनों अकेली रोती रहीं तो एक दिन हमीने ननदोईजी को बुलवा भेजा था। इसमें क्या गलती हो गयी? बड़ों ने इसी घर में क्या इनका ब्याह नहीं रचाया था? तब के उनके आशीर्वाद का फल आज निकला। इसे बन्दी-गृह क्यों कहें, यह तो सुहाग का कमरा है। अच्छी-अच्छी बातें करिए। अपनी बेटी जैसी बहन को उनके पति के घर भेज दीजिए।"

उसकी आज्ञा का इतनी दूर तक उल्लंघन हुआ देखकर वीरराज का गुस्सा ऐड़ी से लेकर चोटी तक फैल गया। वह गुस्से से बोल उठा, "ओह! हरामजादी! तूने मेरे बिना बताये ही उस उल्लू के पट्ठे को यहाँ आने दिया। अब मैं तुम्हें ठीक करूंगा।" रानी की ओर मारने को हाथ उठाकर वह आगे बढ़ा।

यदि बीच में बाधा न आती तो पता नहीं वह रानी का क्या कर डालता? वह उसकी जान भी ले लेता तो कोई बड़ी बात नहीं थी। भाग्य से राजकुमारी घुटनों के बल बैठकर उसकी टांगों से लिपट गयी और गोद में मुंह छिपाकर चिल्लायी, "ना ना पिताजी, मैंने ही फूफाजी को भीतर आने दिया था।"

राजा ने यह नहीं सोचा था कि बेटी यों उसकी टांगों से लिपट जायेगी। वह गिरने को हुआ तो रानी ने आगे बढ़कर संभाल लिया। उसके संभलते ही वह अलग खड़ी हो गयी।

वीरराज को बेटी पर बड़ा गुस्सा आया पर उसने उसे कुछ न कहा। यों वह बहुत कठोर, क्रूर, बेलिहाज आदमी था पर उसके जीवन का कोमल तन्तु थी उसकी बेटी। उसने घुटने के बल बैठी बेटी को बांह पकड़कर खड़ा कर दिया और बोला, "तू जाकर खेल-कूद। अपना काम छोड़कर इन बातों में क्यों आ पड़ी है?"

राजकुमारी: "बुआजी को जब तक उनके अपने घर न भेजोगे तब तक मैं खाना नहीं खाऊँगी।"

"बेटी, तुम क्या बातें करती हो? यह कैसी तेरी बुआ है और वह उल्लू कैसा तेरा फूफा। उससे बन सके तो तेरी बुआ मुझे मारकर तुझे खाकर स्वयं रानी बन जायेगी। तू इस सांपिन को बचाना चाहती है?"

कोने में बैठी देवम्माजी बोली, "ऐसा क्यों न हो! अगर तुम राज्य-भार उठा

सकते हो, तो मैं नहीं ? एक चमार का लड़का भी तुमसे अच्छा राजा बन सकता है। मैं रानी बनूं तो इसमें क्या बुरा है ?"

बात एक से एक बढ़कर बुरी थी। वीरराज बहन को मारने को उस तरफ बढ़ा। रानी और राजकुमारी ने उसे पकड़ लिया। रानी ने विनय की, "यह गर्भवती है और घर की बेटी है। जो कुछ भी कहे हमें सुनना पड़ेगा। यही हमारा भाग्य है। हम सहेंगे। कम-से-कम यह बदनामी तो न मिले कि इस घर से उसका अहित हुआ।"

राजकुमारी : "बुआजी, आप चुप रहिए। इधर-उधर की बात मत करिये।"

देवम्माजी : "तो मुझसे ही क्यों ऐसी बातें कही जाती हैं। मैंने कब कहा था कि मैं भाई-भतीजी को मारकर रानी बनना चाहती हूं ? सारे देश ने कहा कि राजा सबको अपना दुश्मन बना रहा है, उसे हटाकर उसकी बेटी को गद्दी पर बिठाना चाहिए। यही बात हमने भी कह दी। लोग दुश्मन हो गये कि नहीं ?"

वीरराज : "वाह वाह ! आयी बड़ी जनता की दुश्मनी समझनेवाली उस उल्लू राजा की बीवी। तुम लोगों ने भतीजी को गद्दी पर बिठाने के लिए सिफारिशी चिट्ठी बेंगलूर नहीं लिखवायी।"

बात खतम होने का कोई लक्षण दिखाई नहीं दे रहा था। रानी सोच रही थी किसी तरह राजा को वहां से हटा देना चाहिए। राजकुमारी यों अबोध-थी पर उसके मन में भी यही बात उठ रही थी। उसने पिता से सटते हुए कहा, "पिताजी, आप अब थक गये हैं, चलिए, चलें। यह सब बातें फिर हो जायेंगी।"

पता नहीं वीरराज क्या सोचकर बिना कोई जवाब दिये उस लड़की के साथ कमरे से चला गया।

3

रानी गौरम्माजी ने सेवक को बुलाया और ठण्डा खाना बदलकर गरम खाना लाने की आज्ञा दी। उसे भेजकर वह देवम्माजी से बोली, "बहन, पिछली बातें भूल जाइए। आज आपको आपके घर भिजवा देंगे। आप अपने घर में जाकर सुख से रहें।"

देवम्माजी : "कल की बातें सुनकर लगता है अब मेरा मर जाना ही भला है।"

रानी : "एक ही मां के बच्चे एक दिन लड़ते हैं तो क्या हुआ, दूसरे दिन वे फिर एक भी तो हो जाते हैं !"

देवम्माजी : "अब क्या ठीक होना है ? पिताजी चले गये, उनके साथ ही घर में जो कुछ अच्छे थे सबको वनवास मिल गया। चौदह वर्ष में एक भी अच्छी बात

सुनने को नहीं मिली ।"

रानी : "अब ऐसा लगता है, पर कभी अच्छे भी तो थे । जब पिताजी गुजरे तब आपने और ननदोईजी ने अपने राजभवन जाने की बात कही तो आपके भैया ने ही तो कहा था कि यह भी तो आप ही का घर है, यहीं रहिये न !"

देवम्माजी : "उन्हें कोई हमारे जाने का दुःख थोड़े ही था । उन्हें तो पिताजी का दिया गहना-कपड़ा जाने का डर था । इसीसे तो रोका था ।"

रानी : "यह तो अब कहने की बात है । आप दोनों के स्नेह का हमें पता नहीं क्या ? जैसे पिताजी की गोद में रही वैसे ही आप अपने भैया की गोद में भी तो बैठी खेली हैं !"

देवम्माजी : "भाभीजी, वह तो आपको अच्छा नहीं लगा था, आप बुरा जो मान गयी थीं ।"

रानी : "वह तो नासमझी में बुरा मानने की बात थी । अब उसकी बात क्यों कह रही हैं ? अगर मेरे पेट से लड़का होता और पुट्टव्वा उसकी गोद में बैठती तो क्या हम बुरा मानते ? हम सब यही कहते कि भाई-बहन हैं । आप लोगों की भी तो यही बात थी ।"

देवम्माजी : "आप अच्छी हैं, भाभीजी । इतने से समझ गयीं, पर भैया ऐसे नहीं रहे । उनका स्नेह सूख चुका है, वे हमें पनपने नहीं देंगे ?"

रानी : "पनपने नहीं देंगे—यह सोचकर मुंह नहीं मोड़ लेना चाहिए बहन । उन्हें राह पर लाने की कोशिश करनी चाहिए ।"

देवम्माजी : "लंगड़े को गोद में डाल दूंगा, कहें तो भी क्या उसे ठीक मान लेना चाहिए ?"

रानी कुछ कहने ही को थी कि इतने में नौकर दुबारा खाना ले आया । रानी ने उसे पास बुलाकर आसन बिछाने को कहा । बाद में देवम्माजी से बोली, "उठो बहन, भोजन कर लो । फिर से ठण्डा न हो जाये ।"

देवम्माजी : "आप मालकिन हैं । हम आपकी बात टालेंगे नहीं, पर आपको इस लंगड़े को दण्ड देना ही पड़ेगा ।"

रानी ने 'अच्छी बात' कहकर उसे उठाकर हाथ धोने के लिए पानी दिलवाया और आसन पर बिठाया । देवम्माजी के भोजन समाप्त करने के बाद नौकर थाली लेकर चला गया ।

देवम्माजी ने रानी से कहा, "लंगड़े से एक बार फिर बात कीजिए । नहीं तो रात को कहीं फिर वही हरकत न हो ।"

रानी ने इशारे से उस बात को स्वीकार किया और लंगड़े को आवाज दी, "दमयय्या, जरा इधर आओ ।"

तब तक लंगड़ा कमरे के बाहर खड़ा था, अब दरवाजे पर आकर खड़ा हो

गया। रानी ने उससे कहा, "कल रात तुम लोगों ने बहनजी को तकलीफ दी! खबरदार, दुबारा ऐसी हरकत की तो।"

लगड़ा: "मालिक कल आपे में नहीं थे तिस पर बहनजी का चाल-चलन ठीक नहीं समझते थे। इसी से उन्होंने ऐसा किया।"

देवम्माजी: "वे नशे में थे, उन्होंने चाल-चलन को गलत समझा-था, तुम्हें क्या हुआ था? उनका कहना भर था कि गोद में बैठो, और तुम तैयार हो गये?"

लंगड़ा: "मेरी अकल भी ठिकाने न थी, मालकिन। हमें पता नहीं हमने क्या किया।"

देवम्माजी: "यह ठीक है कि तुमने पी रखी थी पर तुम थे तो होश में। भैया की बात का बहाना लेकर तुम हद से आगे बढ़ रहे थे।"

इतना कहकर देवम्माजी रानी के पास मुँह ले जाकर कुछ फुसफुसायी। रानी का मुँह लाल हो गया। उन्होंने लंगड़े से कहा, "मालिक अपनी मनचाही कर सकते हैं पर नौकर-चाकरों को उनकी तरह नहीं चलना चाहिए, बसवय्या।"

लंगड़ा: "जो हुक्म मालकिन" और दो मिनट बैठकर रानी ने देवम्माजी से कहा, "बहन, आज आप अपने घर चली जायेंगी, चिन्ता मत कीजिए।" यह कहकर वे अपने निवास की ओर चल पड़ीं। लगड़े ने उनके जाते ही देवम्माजी से कहा, "मालिक का हुक्म है कि दरवाजा बन्द करके रखा जाये बहनजी, नहीं तो मेरी जान आफत में पड़ जायेगी।" इतना कहकर उसने दरवाजा बन्द करके बाहर से ताला लगा दिया और एक आदमी को पहरे पर बिठाकर अपने काम पर चला गया।

4

जब राजमहल में ये घटनाएँ घट रही थीं तब सोमवार-पेट से मडकेरी की ओर जानेवाले रास्ते पर दो यात्री धीरे-धीरे मडकेरी जा रहे थे। उनमें प्रौढ़ व्यक्ति की आयु लगभग साठ की थी और युवक बीस से कुछ अधिक होगा। प्रौढ़ की दाढ़ी-मूँछों पर सफेदी फैल चुकी थी। वही उसकी आयु का आभास देती थी। वैसे उसके मुख पर बुढ़ापा दिखाई नहीं देता था, उसकी चमकती आँखों में यह झलक मिलती थी। उसने अपने जीवन में काफी-कुछ सहा है। युवक का नाक-नक्शा प्रौढ़ से मिलता-जुलता था। उनको देखते ही कोई भी उन्हें पिता-पुत्र मान सकता था।

"एक चढ़ाई पार करते ही मडकेरी है।" युवक ने प्रौढ़ से कहा। "यह चढ़ाई पार करते ही मडकेरी मिलेगा, पिताजी।"

प्रौढ़ : "हां बेटा, याद है।"

युवक : "मडकेरी पास आ रहा है तो मेरा मन कह रहा है कि आपका वहां जाना ठीक नहीं है।"

प्रौढ़ : "लगता तो मुझे भी ऐसा ही है परन्तु यह जानना है कि हमारे उस चेन्नवीर का क्या हुआ ? यह सब इसलिए कि यह भूमि हमारी रहे।"

युवक : "हमारी न होकर और किनकी होगी ? इसकी न हो इसकी बहन की हो। इसकी बहन की भी न हो तो इसकी अपनी बेटी की हो। इससे ज्यादा और क्या हो सकता है।"

प्रौढ़ : "कुछ भी हो सकता है बेटा। देखो, मैसूर का क्या हुआ ? गोरों के हाथ पड़ गया कि नहीं ?"

युवक : सुना है गोरे कहते हैं कि प्रजा को सन्तुष्ट करके पुनः ओडेयर (राजा) को सौंप देंगे।"

प्रौढ़ : "तीन वर्ष बीत गये, दिया तो नहीं। और कब देंगे ? एक कहता है देंगे। दूसरा कहता है देने से जनता को असुविधा होगी। इनमें किसकी बात का विश्वास करें ? राजा का राज्य गोरों के हाथ में है। वापस मिले तभी तो उसे उनका कहा जा सकता है ?"

युवक : "ओडेयर के सन्तान नही है क्या पिताजी ?"

प्रौढ़ : "सन्तान होती तो क्या दे देते ? दें भी तो नाममात्र को देंगे। सब कुछ उन्हीं के हाथों में रहेगा। यह तो ऐसे ही जैसे नौकर की रोटी कुत्ते के मुंह में, उसके पास रही तो क्या उसके पास रही तो क्या ?"

युवक : "जो भी हो, ये गोरे बड़े जालसाज हैं, पिताजी।"

प्रौढ़ : "यह ठीक है, राजनीति अगर कुछ है तो इन्हीं की है। राजनीति, होशियारी सीखनी हो तो गोरों से सीखें।"

युवक ने इसका तुरन्त उत्तर नहीं दिया। जबान पर आयी बातों को रोककर सोचता हुआ आगे बढ़ा।

इनकी बातों से यह स्पष्ट हो गया कि यह बाप-बेटे कोडग के राजघराने से हैं। इनसे दो वर्ष पूर्व अंग्रेजों ने मैसूर के राजा 'मुम्मडी कृष्णराज ओडेयर' से राज्याधिकार छीन लिये थे। प्रौढ़ को आशंका थी कि जैसे कृष्णराज के साथ इन लोगों ने किया वैसे ही वीरराज के साथ न करें।

चार कदम आगे चलने के बाद युवक बोला, "तो पिताजी, इन लोगों का हम कैसे विश्वास करें ?"

प्रौढ़ : "बेटा, हमारा और उनका रिश्ता तो सांप और सपेरे जैसा है।"

युवक : "पिताजी जैसे हम उन्हें सांप मानते हैं, अगर वे हमें सांप मान लें तो ?"

प्रौढ़ : "मान लें का सवाल ही कहाँ है। मान चुके हैं। वे हमें राजा का प्रतिद्वन्द्वी बनाकर अपनी सत्ता बनाये रखना चाहते हैं। हमें उनके फन्दे में नहीं फँसना चाहिए और देश उनके हाथ में नहीं जाने देना चाहिए।"

युवक : "वे हमें राजा का प्रतिद्वन्द्वी नहीं बनायेंगे ! हम तो हैं ही।"

प्रौढ़ : "बेटा, हम प्रतिद्वन्द्वी नहीं। हम तो एक ओर हैं, ये लोग ही प्रतिद्वन्द्वी हैं। अण्णाजी● एक बार जब बहुत बीमार हुए थे तब उन्होंने मुझे और लिंगण्णाजी को बुलाकर हाथ-पर-हाथ रखवाकर शपथ दिलायी थी और वचन लिया था कि देवम्माजी रानी बनेंगी और हम दो प्रधान होंगे। मैं बड़ा भाई था और लिंगण्णा छोटा। हम दोनों ने सौगन्ध खायी थी। जिस दिन सौगन्ध खायी उसी दिन मेरे छोटे भाई ने कहा था यह मुझसे निभेगी नहीं। शपथ तोड़ना ठीक है तो कौन राजा बनेगा? बड़ा कि छोटा? लिंगण्णा ने स्वयं राजा बनने को कहा। मैंने पूछा, 'क्या यह उचित है? तुममें राज्य करने की सामर्थ्य नहीं, मेरे होते ऐसा कैसे कहते हो?' पूछने पर उसने उत्तर दिया था : 'जो दिया वचन नहीं तोड़ सकता वह राज्य क्या करेगा।' सच्चे को गद्दी पर बैठाना नहीं चाहिए? अन्त में मैंने उससे ही राजा बनने को कहा। बेटा! मुझे तो राजा बनने की इच्छा थी नहीं। बड़े भैया ने हम दोनों को पाल-पोसकर बड़ा किया था। उन्हें हमसे वचन नहीं लेना चाहिए था, पर ले लिया। हमें भी कहना चाहिए था 'यह हमें अच्छा नहीं लग रहा' पर कहा नहीं। भैया के वचन माँगने पर उन्हें वचन देकर उनके मरते ही उससे फिर जाना क्या कोई अच्छी बात है? इससे माँ-बाप को कीर्ति मिलेगी या सन्तान का भला होगा? कहीं मैं इसकी इच्छा में बाधक न बनूँ, यह सोचकर भैया का नाम लेकर इसने मुझे मरवाने का प्रयास किया। वह तो किसी तरह मैं बच गया पर आगे फिर कभी तुम उसकी राह में बाधा बनोगे, यह सोचकर उसने तुम्हें निशाना बनाया। वंश-नाश के डर से मैं देश छोड़कर परदेसी हो गया। यह अकेला घर में रहा। और खुश होकर गद्दी पर बैठकर क्या पाया? चार दिन उछल-कूद मचाकर खत्म हो गया। उसी का यह बेटा अब राजा बना है। और इसने अपने बाप को भी पीछे छोड़ दिया है। अपने ताऊ की लड़की को मरवा दिया, अपनी सगी बहन को क़ैद में डाल दिया। यदि ये अपना उद्धार ढंग से करते और देश का भला करते तो हमें यहाँ आने की ज़रूरत ही क्या थी। हम जहाँ थे वहीं इज्ज़त से रहते और बड़ों का नाम उजागर करते। इन्होंने अपना भी भला न किया और प्रजा का भी कोई हित नहीं किया। अब वंश का दायित्व हम पर आ पड़ा है। चेन्नवीर ने आकर कहा था : बोझ उठाने वाले कन्धों के रहते हुए दूसरों के

● अण्णाजी बड़े भाई होकर भी पिता के समान थे।

आश्रित क्यों पड़े हो ? मुझे यह बात ठीक जँची। इसलिए आठ महीने पहले तुझे यहाँ भेजा था।"

युवक : "जो गद्दी आपने छोड़ दी वह मुझे क्यों मिले, पिताजी ?"

"प्रौढ़ : "मैंने भैया को वचन दिया था, निभा दिया। तू घर का बेटा है, तुझे वचन से क्या ?"

"इसका मतलब यह हुआ कि चेन्नवीरय्या के आने से पहले यह बात आपके ध्यान में न थी।"

"यह कैसे हो सकता है बेटा ! बात तो थी पर मैं चुप था। चेन्नवीर ने आकर जब यह बताया कि प्रजा बहुत परेशान है, गोरे कुछ चाल चल रहे हैं तो सोचा, अब चुप नहीं रहना चाहिए।"

"तो यह बात थी !"

"हाँ, चेन्नवीर लोगों को अपनी तरफ करने की धुन में प्रमादवश राजा के हाथों में पड़ गया। वह बैंगलूर भाग गया। राजा ने हठ करके अंग्रेजों से कहकर उसे वापस बुला लिया। बाद में उसकी कोई ख़बर ही नहीं मिली। उसका क्या हुआ ? जब तक यह पता नहीं लगता, मन को चैन नहीं।"

"हाँ, पिताजी।"

"बेचारे ने हमारे लिए शायद प्राण दे दिये हों। हमारा दुर्भाग्य उसको भी लग गया।"

"बेचारा—"

"गोरों ने कई बार पूछा उसका क्या हुआ ! राजा ने एक बार भी उत्तर नहीं दिया। इन लोगों ने उसे कुछ कर डाला होगा ?"

इस समय तक प्रौढ़ का स्वर बहुत गम्भीर हो गया था। युवक के मन में भी कोई गम्भीर भाव ही था। क्या कहना चाहिए, बात आगे चलानी चाहिए या नहीं—उसे कुछ सूझा नहीं।

चलते-चलते युवक ने अपने थैले में से दो जोगिया वस्त्र निकाले। एक जगह खड़े होकर धोती पहनी और पगड़ी लपेटकर शिवाचारी स्वामी का वेष धारण कर लिया। पिता-पुत्र दोनों चुपचाप अपने-अपने रास्ते चलते रहे।

5

उसी दिन और लगभग उसी समय मडकेरी के ब्राह्मणों के मोहल्ले में लक्ष्मीनारायण के घर के सामने एक ब्राह्मण युवक खड़ा था। उसे देखकर अन्दर से एक सेवक ने आकर पूछा, "बाहर से पधारे हैं ? खाना खायेंगे ?"

आगन्तुक ने चिन्तित स्वर में कहा, "नहीं, मन्त्री महोदय से मिलना है।"

सेवक : "वे इस समय स्नान कर रहे हैं। भोजन के समय उनके साथ बैठिए और जो कुछ निवेदन करना है कर दीजियेगा।

आगन्तुक ने एक क्षण सोचा और सेवक के साथ चलते हुए कहा, "अच्छा, ऐसा ही सही।"

मन्त्री का घर होने पर भी वहाँ कोई बहुत वैभव के दर्शन नहीं हो रहे थे। घर काफ़ी बड़ा था। ड्योढ़ी पार करते ही बड़ा-सा आँगन था। एक ओर बरामदे में पाँच-छह ब्राह्मण बैठे थे। एक बैठा पत्तलें बना रहा था, दूसरा जनेऊ तैयार कर रहा था, तीसरा जप में लगा था। बाक़ी एक ओर बैठे धीरे-धीरे आपस में बात-चीत कर रहे थे।

आगन्तुक को देखते ही बातचीत करने वालों में से एक ने आगे बढ़कर उसका स्वागत किया और बोला, "पधारिए महाराज, पधारिए!"

आगन्तुक : "मन्त्री महोदय से कुछ निवेदन करना था। इन्होंने कहा—'भोजन कीजिए और तभी बात कर लीजिए!' तो चला आया।"

"कोई बात नहीं, कुछ कहने के लिए वही ठीक समय है। स्नान हो गया या करेंगे?"

उसने उत्तर दिया। "स्नान करके ही आया हूँ, पूजा-पाठ भी हो गया।"

तब सेवक देग में से गर्म पानी लोटे में लेकर उसके पास आया। इसने लोटा हाथ में लिया और स्नानागार में जाकर हाथ-पाँव धोये। फिर लोटा नौकर को देकर जहाँ और सब बैठे थे वहीं जाकर बैठ गया।

कुछ पल बीते। पूजा-पाठ समाप्त हुआ। तब अन्दर से एक मध्यवय का व्यक्ति बाहर आया और बोला, "रामकृष्ण, ब्राह्मणों की पत्तलें लग गयीं?"

यह मन्त्री लक्ष्मीनारायण था—एक हृष्ट ब्राह्मण है। तेजस्वी व्यक्तित्व का धनी। उसके आते ही सभी लोग उठकर खड़े हो गये और उसे नमस्कार किया।

रामकृष्णय्या वही आदमी था जिसने आगन्तुक का स्वागत किया था। उसने मन्त्री महोदय को उत्तर दिया, 'जी महाराज' और ब्राह्मणों से बोला, "कृपा करके सब अन्दर पधारें।"

अन्दर जाने से पूर्व लक्ष्मीनारायण ने पूछा, "और कोई तो नहीं है न?"
रामकृष्ण ने उत्तर दिया, "जी नहीं, मैंने सब देख लिया।"

भीतर बड़ा विशाल भोजनालय था। वहाँ लगभग चालीस आदमी पंगत में बैठ सकते थे। लगता था अब तक दो बार लोग जीमकर जा चुके हैं। अब तीसरी बार में गृहस्वामी स्वयं बैठे थे और उसमें देर से आने वाले भी शामिल हो रहे थे। जहाँ पत्तलें लग रही थीं वहीं एक बुढ़िया खड़ी थी। उसने लक्ष्मीनारायणय्या से पूछा, "बाहर और तो कोई नहीं है बेटा?"

उनके उत्तर देने से पहले ही रामकृष्णय्या बोला, "अब कोई नहीं, माँजी!"

वृद्धा : "देख लिया न !" अच्छा किया। और भीतर की तरफ एक लड़की को आवाज दी—"लक्ष्मी बेटी, जरा बाहर देखना तो, खाने के लिए और कोई तो नहीं रह गया ?"

भीतर से एक सुमंगली आयी और 'देखकर आती हूं' कहकर बाहर गयी और वापस आकर बोली, "कोई नहीं, मां।"

वृद्धा लक्ष्मीनारायण की मां थी। लक्षम्मा उसकी पत्नी थी। भोजन के लिए और कोई बाक़ी तो नहीं रह गया यह देखना उनका प्रतिदिन का कार्य था।

सभी खाने बैठ गये। रामकृष्णय्या ने आगन्तुक से कहा, "आप कुछ कहना चाहते थे ? कह दीजिए ना !

आगन्तुक : "भोजन के बाद निवेदन करूंगा।"

रामकृष्णय्या : "हम सब यहां एक परिवार के समान हैं। यहां किसी को किसी भी बात कहने में संकोच नहीं करना चाहिए। यदि कोई बहुत ही गुप्त बात हो तो आपकी इच्छा, वरना अभी कह सकते हैं।"

वृद्धा वहीं चक्कर काटते हुए "इन्हें सब्जी परोसो, इन्हें कोसम्बरी दो !" आदि-आदि परिचारकों को बताती जा रही थी।

रामकृष्णय्या की बात सुनकर आगन्तुक से बोली, "बड़े चिन्तित दिखते हो, बेटा। कौन-से गांव के हो ?"

आगन्तुक : "हमारा गांव पाणे है, मां। मैं वहां के पुरोहित का दूसरा पुत्र हूं। मेरा नाम है सूर्यनारायण।"

वृद्धा : "पाणे के पुरोहित के दूसरे लड़के हो क्या ? वहां के बारे में कुछ सुनने में आया था !"

सूर्यनारायण : "हां मां, सुना होगा। आज से ठीक छह दिन हुए, मेरी पत्नी कुएं पर गयी थी। पर लौटकर नहीं आयी। सोचा, कहीं फिसलकर पानी में तो नहीं गिर पड़ी। ढूंढा, पर वह गिरी नहीं थी। सब तरफ लोगों को दौड़ाया। मैं इधर चला आया। रास्ते में पूछता आया हूं। शायद यही बात आपको किसी ने बतायी होगी।"

वृद्धा : "हां, ! स्त्री का पति ढूंढ रहा है, इसमें बसव का हाथ है, ऐसा लोग फुसफुसा रहे थे।"

सूर्यनारायण : "हां, मां। लोगों ने मुझसे कहा था। यहां मैंने चुपके से पता लगाया। यहीं लायी गयी है। पहरे में रखी गयी है। लोगों ने कहा है, मन्त्री के कान में बात डाल दी जाये तो सब ठीक हो जायेगा। इसलिए मैं आपके ही चरणों में आया हूं, मां !"

वृद्धा : "अच्छा बेटा, यह भला काम है। अवश्य करा देंगे। मन्त्री के लिए किसी गृहस्थी का उद्धार करने से बड़ा पुण्य और कौन-सा होगा। पहले आराम से

खाना खा लो, फिर सब बताना। सब ठीक करा देंगे। चिन्ता न करो।"

यह कहकर वृद्धा ने परिचारिका से कहा, "शम्मू! इन्हें पचडी (रायता) दो।"

बड़ा दुःखद प्रसंग था। अपमानजनक बात थी। सबका मन कड़वा हो गया था। किसी की जबान न खुली। चुपचाप सब भोजन करते रहे।

6

जिस समय पाणे का सूर्यनारायण मन्त्री लक्ष्मीनारायणय्या के घर पहुंचा लग-भग उसी समय कोडग के एक बूढ़े ने सेवक से पूछा, "क्यों भैया तक्कजी[1] हैं?"

बोपण्णा घर में ही था। बूढ़े की बात कान में पड़ी तो वह द्वार पर आकर बोला, "आइये बाबा; अन्दर आइये, कब आये, सब ठीक-ठाक तो है ना?"

बूढ़ा : "नमस्कार करता हूँ तक्कजी, आप लोग कैसे हैं?" यह कहते हुए वह बोपण्णा के साथ भीतर चला गया।

बूढ़े का नाम उत्तय्यतक्क था। उसे सारा कोडग देश जानता था। उसकी प्रसिद्धि का मुख्य कारण यह था कि जब टीपू सुलतान की मुसलमान सेना ने भाग-मण्डल के प्रदेश पर आक्रमण किया तब यह प्रतिदिन एक ब्राह्मण बालक को कन्धे पर बिठाकर ले जाता, और बिना नागा भागमण्डल के देवालय की पूजा कराता था। यह घटना चालीस वर्ष पूर्व की थी—दोड्ड वीरराज के दिनों की। शत्रु के चले जाने पर दोड्ड वीरराज को जब इस बात का पता चला तो उसने इनको सम्मानित किया और वसीका बांध दिया।

जब नवरात्रि के बड़े दरबार में दोड्ड वीरराज ने उसकी प्रशंसा की तब उसके गर्व की सीमा न रही और कोडगियों के लोगों को परम सन्तोष हुआ। लिंगराज ने भी इसकी पीठ थपथपाकर सम्मानित किया और उसके साथ मित्रता जोड़ी। उत्तय्या ने अपने समय में तीन शेर मारे थे। कोडग में शेर मारनेवाले अपनी मूँछें एक खास ढंग से रखते थे—यही प्रथा थी। बड़े राजा के समय नवरात्रि में इस तरह की मूँछों को सँवार कर दिखनेवाले चार-छह आदमियों में उत्तय्यतक्क भी एक था। लिंगराज एक-दो-बार इसको साथ लेकर शिकार पर भी गया था। तब से सबको यह पता था कि यह अन्य बातों में भी उससे खुला है। इसी वजह से लिंगराज के बेटे को भी उसके बचपन से जानता था। स्नेह से वह उस बच्चे को 'पुटप्पा'[2] कहता था। लिंगराज के गद्दी पर बैठने की बात उठने पर उसने

1. कोडग प्रदेश की एक प्रसिद्ध जाति।
2. छोटा बच्चा।

अपना समर्थन दिया था। उसका (लिंगराज का) बेटा राजा बना तब भी इसकी सहमति स्वीकृति थी। बोपण्णा इसका बहुत आदर करता था।

भीतर जाते-जाते बोपण्णा ने पूछा, "खाना खा चुके हैं या खायेंगे। अभी हमने खाना नहीं खाया।"

वृद्ध : "तक्क के घर आते हुए खाना खाके आते हैं? अभी खाना खाना है, चलिये।"

घर लक्ष्मीनारायण के घर जैसा ही था। भीतर बड़ा आँगन। वहाँ की तरह ही यहाँ भी चार लोग बैठे थे। बोपण्णा ने नौकर को बुलाकर कहा, "बाबाजी के हाथ धुलवाओ।" नौकर पानी लाया तो वह उससे बोले, "भीतर एक थाली और लगाने को कहो।"

वृद्ध उत्तय्यतक्क ने हाथ-पांव धोये। बाद में सब भीतर भोजन करने बैठे।

भोजन करते-करते 'बोपण्णा' ने उत्तय्या से पूछा, "सीधे गाँव से आ रहे हैं? क्या हाल-चाल हैं?"

"महल से मिलनेवाला वसीका लाने नौकर को भेजा था। बसवय्या ने कहला भेजा, 'आगे से नहीं मिलेगा, बन्द कर दिया गया है'।"

"अरे—"

"हाँ ऐसा ही कहा है। तुम्हारा तक्क राजा का विरोध करता है—अब उसे क्यों वसीका मिलेगा? उससे कहना अब इधर शक्ल न दिखाये नहीं तो उसकी मूँछें मुंड़वा दूंगा।"

"अरे इतनी हेकड़ी! इसकी इतनी हिम्मत!"

"देखो तक्कजी इसकी कितनी हिम्मत है! हमारे नौकर ने उससे कहा, 'बड़े राजा साहब ने खुशी से कन्धे पर हाथ धरकर अपने-आप दिया था—यही वसीका है यह। इसे कौन रोक सकता है?' तब बसवय्या बोला, 'एक ने दिया दूसरे ने रोक दिया।' 'क्यों' पूछने पर वह बोला, 'वह राजा का विरोध करता है'।"

"क्या विरोध?"

"यही पूछने तो आया हूँ तक्कजी। पूछूंगा। देश तुर्कों के हाथ में चला गया था। भागमण्डल के ब्राह्मण गाँव छोड़कर भाग गये थे। भगवान पर एक बूंद जल चढ़ाने वाला भी कोई न था। जब दूसरे लोग युद्ध कर रहे थे तब मैं चार महीने तक बिना नागा ब्राह्मण के लड़के को कन्धे पर उठाकर दूर तक चलकर उसे स्नान कराकर उसके हाथ से भगवान की सेवा करता रहा और भगवान की ज्योति को अखण्ड रखा। बड़े राजाजी, भगवान उनकी आत्मा को शान्ति दे, इस बात का पता चलते ही बड़े चकित हुए 'युद्ध में लड़ना कोई बड़ी बात नहीं और मन्दिर की रक्षा कोई छोटी नहीं। यह सम्मान स्वीकार करो।' उसे रोकनेवाला यह

कौन ?"

"एक राजा ने दिया दूसरे ने रोका—यह जो कहा गया है इसका कारण जानने की ज़रूरत है।"

"ऐसी कोई बात नहीं। अगर कुछ है तो मेरे ख्याल में यह है कि मेरी पोती जवान हो गयी है। देखने में अच्छी खूबसूरत है। मेरी बहू अपने भाई के लड़के से शादी करना चाहती है। ब्याह-काज चल रहा था कि तभी महल से हरकारा आया और बोला, 'रनिवास में सेवा के लिए इस लड़की को बुलाया है। शादी रोक दो। बहू घबराई और मुझसे पूछने लगी, अब क्या होगा पिताजी ? यह कैसे हो सकता है।, मैंने हरकारे से कहा, 'शादी के बाद लड़की दामाद दोनों को सेवा में भेज देंगे, ले जायें, वह बोला, 'ऐसे नहीं चलेगा' तो मैंने कहा, 'कैसे नहीं चलेगा ?' इसे वे राजाज्ञा कहते हैं। उसे भी देखेंगे।"

"ठीक ही तो है। देखेंगे इसमें किसका हाथ है। यदि बसव ने राजा की ओर से किया है तो उसकी दूसरी टाँग भी तोड़ देनी चाहिए। राजा की इच्छा से बसव ने किया तो राजा की अकल ठिकाने लगानी है। रनिवास की सेवा का नाम लेकर ये लोग कोडग की बेटों का शिकार करना चाहते हैं।"

बोपण्णा को बड़ा गुस्सा आया। उसका स्वर कर्कश हो उठा। बूढ़े ने कोई उत्तर नहीं दिया। उत्तर देने को कुछ था ही नहीं। चुपचाप दो-तीन कौर निगल कर बोपण्णा ने नौकर को बुलाकर कहा, "ए बिद्य्या, खाना खाकर महल में आकर इत्तला दे देना कि हम शाम को मिलने आयेंगे।"

सेवक बिद्य्या बोला, "जो आज्ञा तक्कजी।"

7

यह सब कुछ हो रहा था। उसी दिन शाम को मडकेरी के ओंकारेश्वर देवालय के समीपवाले अग्रहार के बीच एक बहुत बड़े घर के बाहरी बरामदे में गृहस्वामी दीक्षित ताड़पत्रों पर लिखी एक पोथी को उलट-पलट कर देख रहा था। वह ओंकारेश्वर देवालय का स्थानीय मुख्य उपासक था। वह राजघराने का ज्योतिषी भी था। इसी ने रानी को बताया था कि भाई और बहन के योग में विरोध है। यह बूढ़ा एक मिनट पोथी पढ़ता और दो मिनट सोचता था। सोचता और पोथी को उलटता था। इस पढ़ाई और सोच-विचार में वह बाहरी दुनिया को भूल-सा ही गया था।

इस सोच-विचार में खोये बूढ़े के सामने एक स्त्री आ खड़ी हुई। वह मलयाली ढंग से एक सफ़ेद साड़ी पहने हुई थी। वह स्त्री-मूर्ति जब तक पूरी तरह वृद्ध के सामने नहीं आ गयी तब तक वृद्ध को उसका भास भी नहीं हुआ। अपरिचित

व्यक्ति का असाधारण वेश देखकर दीक्षित कुछ चकित हुआ और अध्ययन छोड़कर उस स्त्री को देखने लगा।

एक क्षण को उसे लगा कि वह उससे ज्योतिष पूछने आयी है।

स्त्री ने हाथ जोड़ नमस्कार किया और बोली, "प्रणाम, अण्णय्याजी।" दीक्षित को एकदम यह पता नहीं चला कि उसे 'अण्णय्याजी' कहने वाली स्त्री कौन हो सकती है? उसने स्त्री की ओर देखा। वह ढलती उमर की औरत थी। मुंह पर बुढ़ापे के चिह्न न थे, पर लालित्य भी न था। स्वभाव कठोर था। ध्यान से देखने पर दीक्षित को लगा कि उसने उसे कहीं देखा है। लिहाज के मारे उसका यह कहने को मन हुआ कि "मैंने पहचाना नहीं।" तुम 'पापा' बिटिया हो क्या?"

आपने ठीक पहचाना। मैं आपका 'पाप' हूं पर मेरे आपका पाप होने से क्या बनता है? आप तो मेरे पुण्य हैं। यह कह वह स्त्री हंस पड़ी। दीक्षित भी हंस पड़ा।

"यह क्या पापा! कब आयी? कहां से आयी? पूरे तीस वर्ष के बाद दिखाई दी? आने की ख़बर भी नहीं देनी थी क्या? ऐसे आयी जैसे कल ही गयी थी। मेरे पापा कहने पर ताना मारती हो! ख़ैर यह तो तुम्हारी हमेशा की आदत है।"

"परदेश से वापस आ गयी।" बाजे बजवा कर आती क्या? मुझे अपना कहने वाला आपके सिवा और कौन है। किसके हाथ आपको ख़बर भेजती? स्वयं ही चली आयी।"

"प्रसन्नता की बात है, बेटी! आओ बैठो। मडकेरी कब आयी?"

वह स्त्री बरामदे के एक कोने में बैठ गयी।

"आज ही आयी हूं, अभी-अभी। वैसे गांव में आये तो छह महीने हो गये। आपसे मिलने का वक़्त कब आये इसी प्रतीक्षा में थी।"

"गांव में आये छह महीने हो गये!"

"लौटे छह महीने हो गये। गांव में लोग मुझे भगवती की उपासिका के रूप में जानते हैं। राजा के महल में भी गयी थी—यह बात शायद आपने सुनी होगी।"

"ओह! वह भगवती तुम्हीं हो! मेरे कान में कैसे न पड़ती? कई बार सुना, रानी साहिबा ने शान्ति-पाठ कराया है।"

"मैंने पूछा था और भी कुछ पूजा करानी है, तो पता चला आपने मना कर [illegible] था।"

[illegible] को पूजा कराने के लिए कौन मना करता है! मैंने तो 'कुछ' को कहा था।"

राज[illegible] के ज्योतिषी है। राजभवन की रक्षा करते हैं। उस [illegible] मैं आपके पास यह कहने आयी हूं कि अब से

आप मेरा भी ध्यान रखिये।"

"क्या चाहिए बेटी?"

"बताती हूँ, पर ये सब बातें बरामदे में कहने की नहीं। मन्दिर में पूजा से पहले या बाद में थोड़ी देर बैठें तो बताऊँगी ताकि कोई और न सुने।"

"ऐसी कौन-सी बात है बेटी! अब भी यहां के लोग यह नहीं जानते कि तुम कौन हो, कहां से आयी हो। इस समय तो मेरे जैसे दो-एक बूढ़े आस-पास ही हैं। तुम्हें किस बात का डर है?"

"मुझे किस बात का डर है। मलयाली भगवती समझकर जनता मुझसे डरती है। मैं आपसे अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करने को कहने आयी हूँ। मेरे बेटे की रक्षा की बात है।"

"तुम्हारा बेटा क्या जीवित है! कहां है?"

"वह सब रात को मन्दिर में बताऊँगी।"

"आज ही।"

"आज ही आऊँ या और कभी? आप बताइये।"

"फिर कभी आने को कहूँ तो शायद तुम्हें अपने मन्दिर जाना होगा ना!"

"जी हां।"

"तो फिर इसके लिए दुबारा क्यों आओगी, आज ही आओ, बात करेंगे।"

"अच्छा जी," कहकर स्त्री उठ खड़ी हुई, "घर में बाल-बच्चे सभी अच्छे हैं ना? फिर कभी आने पर उनसे मिलूंगी।" यह कह वह रास्ते की ओर चल पड़ी।

8

पापा को वापस जाते देखकर दीक्षित उसी की ओर देखता रहा। उसकी आंखों से ओझल हो जाने पर उसने फिर अपनी पोथी की ओर दृष्टि फेरी। अध्ययन अब आगे न बढ़ सका। उसने पोथी को कपड़े में लपेट कर रख दिया। 'अण्णय्या' कहकर पुकारने वाली इस स्त्री की कहानी उसे याद आने लगी।

पचास साल पहले की बात है। दीक्षित का एक छोटा भाई था—जवान और सुन्दर। सब कहते थे वह भाई से भी अधिक बुद्धिमान है। वह संगीतज्ञ था, वैद्यक जानता था और ज्योतिष में भी निष्णात था। पिता का प्रिय पुत्र था वह। उसका विवाह भी ठीक समय पर हो गया था। पर पहले ही प्रसव में वह लड़की चल बसी। युवक ने पुनर्विवाह नहीं किया।

बड़े राजा के जमाने में राजमहल में संगीत-गोष्ठियों का आयोजन होता था। उसमें एक बहुत अच्छी गायिका भी थी। सुन्दरता में भी वह किसी से कम न थी।

राजमहल की उस स्त्री के साथ इसकी मित्रता हो गयी।

विवाह तो न हुआ परन्तु यह सम्बन्ध विवाह से भी कहीं अधिक दृढ़ था। गायिका ने एक लड़की को जन्म दिया। उसे पिता ने प्यार से 'पापा'[1] कहकर पुकारना शुरू किया। वही उसका नाम पड़ गया। माँ-बेटी कभी-कभी दीक्षित के घर भी जाती थीं। यदि कभी ये लोग दीक्षित के स्नान से पूर्व पहुँच जाते तो वह बच्ची को गोद में उठाकर खिलाया करता था। बच्ची के इस घर में पैदा न होने पर इसने उसका निरादर नहीं किया। पिता के बड़े भाई के लिए भी यह बच्ची 'पापा' बनी। पिता अपने बड़े भाई को 'अण्णय्या' कहते थे। 'पापा' भी उसे 'अण्णय्या, कहकर पुकारने लगी।

लड़की सोलह की हुई। परम सुन्दरी। पिता ने उसे संस्कृत सिखायी, माँ ने गीत-संगीत। यह राजकन्या ही बन गयी। लिगराज तब युवक था। उसकी इस कन्या पर नजर पड़ी और वह आकर्षित हुआ। राजा की अपनी रानी थी पर उसके बच्चे न थे। एक बच्चा था जो मर चुका था। उन दिनों उसने इस छोटी-सी लड़की पर बहुत स्नेह दर्शाया और सब्ज बाग़ दिखाकर उसे अपना बना लिया।

यह आशंका सबको पहले से ही थी, पर लड़की के गर्भवती होने पर भेद खुल गया। दीक्षित के छोटे भाई को स्त्री का वेश्या-गायिका होना नहीं खला था परन्तु लड़की का वही सब होना खल गया। उसने लिगराज पर दबाव डालकर यत्न किया कि वह उस लड़की को दूसरी पत्नी के रूप में अपना ले। लिगराज ने इसे स्वीकार न किया और किसी तरकीब से इस प्रसंग को जहाँ का तहाँ रोक दिया। इसके दो-तीन माह बाद दीक्षित का छोटा भाई किसी रोग के कारण चल बसा। लोगों में अफवाह उड़ी कि लिगराज ने उसे विष दिलवाकर मरवा डाला है।

एक साल भी नहीं बीता। क्या बात हुई—दीक्षित को पता नहीं चला। राजभवन से यह लड़की और उसकी माँ यकायक गायब हो गयीं। दीक्षित ऐसी स्थिति में न था कि इनका कुछ पता लगा पाता। कुछ भी पता नहीं चला कि ये लोग कहाँ गये और इन पर क्या बीती। उसकी माँ की एक बड़ी बहन राजभवन में ही थी। पूछना होता तो दीक्षित उसीसे पूछ सकता था। पर उससे क्या पूछा जाता और पूछकर करना भी क्या था! जब भाई ही न रहा तो उसके परिवार को वह क्या दे सकता था। कुछ दिन बीत गये तो दीक्षित इस विषय को भूल गया। 'पापा' का क्या बना और उसके बच्चे का क्या हुआ उसे कुछ भी पता न था।

दोड्डराज गुजर गया, उसकी लड़की रानी बनी। लिगराज उसे गद्दी से हटा कर स्वयं राजा बना। वह भी चल बसा। अब उसका यह लड़का राजा बना। यों

1. बच्चा

कोडग के इतिहास के लगभग चालीस वर्ष बीत गये। इस बीच दीक्षित के छोटे भाई की लड़की की छाया एक बार भी यहाँ नहीं पड़ी थी।

आज वही प्रौढ होकर आयी है और उसने अपने लड़के की रक्षा की बात उठायी है। पता नहीं यह इस बात को कहाँ तक ले जाये और इसका परिणाम क्या हो?

यह सच है कि राजभवन की दीवारों के भीतर से उस दिन जो 'पापा' अदृश्य हो गई थी वही आज भगवती बनकर आयी है। इसका नाक-नक्शा हू-बहू मेरे भाई जैसा है। मुख सुन्दर तो है पर परुषता अधिक आ गयी है। पता नहीं तब लिंगराज की किस बात से दबकर यह देश छोड़कर चली गयी थी। पर आज लौटनेवाली स्त्री किसी से दबनेवाली नहीं।

यह मुझसे क्या चाहती है? यह राजा का भला नहीं कर सकती। अगर यह राजा का बुरा करना चाहती है तो मुझे रोकना होगा। रोका जा सकता है, पर इस वंश का भी क्या भाग्य है! बाप की ग़लती आज इस परुष स्त्री के रूप में बड़ी होकर स्वयं उसके पुत्र के लिए फाँसी बनकर आयी है!

चालीस वर्ष पूर्व जब लिंगराज ने एक कन्या को भ्रष्ट करके देश से भगा दिया था तब क्या यह बात उसके ध्यान में आयी थी कि यही पापा चालीस वर्ष बाद उसके पुत्र के लिए विपदा का कारण बनेगी। जानता तो क्या वह ऐसा करता!

कैसे कहा जा सकता है? क्या लोगों को पता नहीं कि गलती का परिणाम बुरा होता है? 'अथ केन प्रयुक्तेन पापम् चरति पुरुषः अनिच्छन्निव वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः" क्या अर्जुन ने यह नहीं पूछा था? मनुष्य किस समय और क्यों गलत रास्ते पर चलता है—यह वह स्वयं नहीं बता सकता।

इतना सब सोचकर दीक्षित गीताचार्य के उपदेश का मनन करने लगा।

मनन के बीच में ही उसे अपने भाई का चेहरा दीख पड़ा। फिर वही बदलकर बेटी का मुख बन गया। उस भाई के लिए और उसकी इस बेटी के लिए दीक्षित का मन मसोस उठा।

9

उसी दिन दोपहर को वीरराज को मंगलूर से एक पत्र मिला। पत्र भेजनेवाला मंगलूर में नियुक्त सार्वभौम सत्तावाली ईस्ट इण्डिया कम्पनी का कलक्टर एजेण्ट था। उसमें लिखा था: 'कोडग के महाराज श्री चिक्कवीर राजेन्द्र ओडेयर की सेवा में मंगलूर स्थित ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एजेण्ट की ओर से सादर प्रणाम। सेवा में तुरन्त कुछ निवेदन करना है, इसीलिए मैं यह पत्र लिखने का दायित्व ले रहा हूँ।

यह बात सम्मान्य गवर्नर महोदय मद्रास की सेवा में भी पहुँचा चुका हूँ। उनसे भी यथा-समय आपको पत्र प्राप्त होगा। हमें शिकायत मिली है कि मंगलूर के हमारे अधीनस्थ पाणे ग्राम से हमारी प्रजा के एक घर की वहू को इस सप्ताह कोई उठा ले गया है। पता लगाने पर मालूम हुआ कि यह काम कोडगवालों का है, यह भी पता चला कि उस लड़की को मडकेरी ले जाया गया है। इस बात को बतलाने वालों ने और भी कई तरह की सूचनाएँ दी हैं। सत्यासत्य की खोज कर आपकी सेवा में पुनः पत्र भेजा जायेगा। फ़िलहाल सेवा में निवेदन यह है कि हमारे कान तक यह बात पहुँची है कि इस अपहरण में आपके मन्त्री श्री बसवय्या का हाथ है। इस पर हम विश्वास नहीं कर सकते हैं। पर ऐसी बात हमारे कानों तक पहुँचने के बाद आंग्लप्रभु के साथ घनिष्टतम मित्रता रखनेवाले और कम्पनी के शाश्वत मित्र आप तक बात न पहुँचाना ठीक नहीं। इसीलिए मैं आपकी सेवा में यह पत्र लिख रहा हूँ। आशा है कि मद्रास से पत्र आने से पूर्व ही इस विषय पर पूरी छानबीन हो जायेगी और यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि इसमें आपके मन्त्री का किसी तरह का भी हाथ नहीं है। यह आपके और हमारे प्रभु की मित्रता को और दृढ़ बनाने में सहायक होगा। इसीलिए मुझे विश्वास है कि इस बारे में आप आवश्यक कार्यवाही ही करेंगे। कृपया विश्वास बनाये रखें। सदा आपका, विनीत सेवक, पत्र के नीचे एजेण्ट के हस्ताक्षर थे।

पूर्व कथा

10

जिस प्रकार संध्या के समय चारों ओर से अन्धकार घिरता जाता है, उसी प्रकार विपत्तियाँ चिक्कवीर राजेन्द्र को घेर कर भीषण रूप लेती जाती थीं। इसे जानने के लिए इसकी पूर्व कथा जानने की आवश्यकता है।

वीरराज जन्म से दुष्ट न था। परन्तु अपने तैंतीस वर्ष के जीवन में उसने लोगों को यह आभास करा दिया था कि उससे बड़ा दुष्ट और कोई नहीं है। यदि उससे बड़ा कोई दुष्ट कहा जा सकता था, तो वह था उसकी दुष्टता का सहयोगी उसका मन्त्री, लंगड़ा बसव।

वास्तव में वीरराज का भाग्य ही अच्छा न था। राजवंश में वह यदि बड़े भाई का पुत्र होकर जन्म लेता, तो युवराज के रूप में उसका पालन-पोषण होता। मगर वह छोटे भाई के घर पैदा हुआ था। लिंगराज को उम्मीद थी कि भाई इसे गोद ले लेगा, पर ऐसा नहीं हुआ था। दोड्ड वीरराज एक प्रभावशाली राजा था। उसके पराक्रम, धार्मिक प्रवृत्ति, सुशासन के कारण उसे लोगों का प्रेम और मान प्राप्त था। पड़ोसी राजाओं से उसे सम्मान मिला था। अँग्रेज कम्पनी के अधिकारी भी उसे आदर देते थे। उसकी अपनी केवल एक बेटी थी। अभी उसकी अपनी आयु भी इतनी ज्यादा न थी कि उसे पुत्र होने की सम्भावना त्याग देनी पड़े। ऐसी स्थिति में वह क्यों गोद लेता? यदि उसे गोद लेना ही होता, तो उसका एक भाई और था जो लिंगराज से बड़ा था और उसका एक पुत्र था। उस लड़के को गोद लिया जा सकता था। इसी कारण पाँच-छह वर्ष तक शिशु वीरराज ने जो बातें सुनीं वे थीं लिंगराज के मुख से अपने ताऊ के लिए निकलने वाली विद्वेष भरी बातें, और इन दोनों भाइयों के अनुयायियों की स्पर्धा-भरी बातें। इस प्रकार राजकुमार विद्वेष-भरे वातावरण में पलकर बड़ा हुआ।

इसी वातावरण के अनुसार जब वह छह वर्ष का हुआ और दूसरे बच्चों के साथ खेलने लायक हुआ तो घुड़साल में रहने वाला लड़का बसव उसका साथी बना। बसव कौन था, कहाँ का था, यह बात किसी को पता नहीं थी। वह वीर-

राज से कुछ वर्ष बड़ा था। बहुत होशियार लड़का था। उसकी आँखों की चमक ही कुछ और थी, उसकी फुर्ती की कोई सीमा न थी। छुटपन में पांव में कुछ चोट लगने से उसका दायां पांव कुछ मुड़ गया था। यह चोट कब लगी, स्वयं उसे भी याद न था। इसी से वह कुछ लंगड़ाकर चलता था। अनाथ लड़का अगर लंगड़ाकर चले, तो उसे सारा गांव लंगड़ा ही कहेगा। इसीलिए बसव का नाम लंगड़ा पड़ गया था। बुजुर्ग लोगों के 'ऐ लंगड़े !' कहने पर वह कुछ कह नहीं पाता था, परन्तु बुजुर्गों के अलावा अगर कोई और पुकारता, तो वह कहता 'तेरे बाप ने नामकरण किया है मेरा जो मुझे ऐसे बुला रहे हो ?" साईस के लड़के के गुस्से से कौन डरता ? जो भी हो, बसब के न चाहने पर भी उसका नाम 'लंगड़ा' पड़ गया। जाने-अनजाने में भले लोग भी यह समझकर कि उसका नाम यही है 'लंगड़े बेटे' कहकर प्यार से उसे बुलाते। कुछ लोग शरारत से भी इस तरह पुकारते। इन सब बातों से बचपन में ही बसव का मन बड़ा कटु हो गया।

करीब आठ वर्ष की आयु में बसव वीरराज का साथी बना। छोटे लड़के को सहज ही कुत्ता, हाथी, घोड़ा आदि देखने की इच्छा बनी रहती है। बसव राज-कुमार को अस्तबल ले जाता और जिन प्राणियों के साथ उसका स्नेह था उनका परिचय कराता। इस प्रकार बसव वीरराज का अत्यन्त प्रिय तथा निरापद मित्र बना। वीरराज की मां का स्वास्थ्य विशेष अच्छा न था। इसलिए वह धायों के हाथ में पला। उसका पिता लिंगराज अपने धन्धों में व्यस्त रहता था। अगर धन्धे न होते, तो भी वह वीरराज की ओर खास ध्यान देने वाला आदमी न था। पर धन्धों में डूबे रहने से वह बेटे की ओर तनिक भी ध्यान न दे सका। बसव छुटपन से ढोरों और कुत्तों के साथ पला था। ऐसा बच्चा जानवरों की जीवनचर्या देखते-देखते कुछ विचित्र रुचियां बना लेता है। उसमें शर्म कम हो जाती है। उसके साथ रहते-रहते शिशु वीरराज को भी ढोरों और कुत्तों का जीवन देखने में एक विचित्र सुख मिलने लगा। दोड्ड वीरराज का देहावसान हुआ तो देवम्माजी रानी बनीं। देवम्माजी को हटाकर लिंगराज राजा बना और वीरराज युवराज। लिंग-राज नये वैभवपूर्ण जीवन की खूबियों के साथ उसकी खराबियों का भी शिकार बना।

राजा बनकर लिंगराज को अपने पुत्र की ओर देखने का कुछ अवकाश मिला। इसी को तो आगे जाकर राजा बनना है ! इसी के लिए तो है न यह सब ! इसी के लिए तो न्याय अन्याय भुलाकर गद्दी प्राप्त की है। इसके लिए और इसकी बहन के लिए ही तो है ! लिंगराज का अपने बच्चों की ओर ध्यान न देने का कारण उनके प्रति उदासीनता नहीं थी। जैसे जुए के फड़ पर बैठा आदमी मौत का

समाचार मिलने पर भी खेल नही छोड़ता ; वैसे ही गद्दी को प्राप्त करने का धन्धा जुए के खेल से ज्यादा नशीला होता है, जुए में केवल धन ही जाता है। लेकिन इस खेल मे जान का भी ख़तरा है। ध्यान बदलते ही वंश भी नही बचता। स्वयं दूसरों के लिए जो जाल बुनता है वही उसके लिए दूसरे बुन सकते हैं। गद्दी प्राप्त करने के बाद लिंगराज का ध्यान जब लड़के की तरफ गया तो उसने पाया कि वह बसव के हाथ पड़ चुका है। जैसे और सबको यह ठीक नही लगा था, वैसे ही पिता को भी नही लगा। पर वह उनकी दोस्ती में रुकावट नही बना। पर उसने बेटे और लंगड़े को चेतावनी दी, "ख़बरदार, खेल में ज्यादती नही होनी चाहिए।"

लंगड़े को लगा मानो चेतावनी देते समय लिंगराज कुछ लिहाज से काम ले रहा हो। इससे पहले उसे ऐसा लगा था कि उसका रुख इसकी ओर कुछ दयापूर्ण है। लंगड़े ने भी अपनी ओर से जरा ढंग से चलने का प्रयास किया जिससे लिंग-राज उसे पसद करे। पर इन लोगों ने जो रास्ता पकड़ा था, वह ऐसा नहीं था कि ये लोग हमेशा एक सीमा में रह पाते। वीरराज जिस ढंग से पला था, उससे उसके मन पर यह प्रवृत्ति इतनी प्रबल हो चुकी थी कि ऐसा करने से वैसा हुआ, तो वैसा करने से कैसा होगा—यह करके देखना चाहिए। जब कोई बच्चा कुत्ते के डर से भागता तो उसे वह देखने मे बड़ा आनन्द आता। खेलती हुई लड़कियो के बीच दूर से एक सांप फेंककर उनकी चिल्लाहट सुनने में उसे मज़ा आता था। खेत से घर लौटने वालों के चेहरे पर रग पोतकर रास्ते मे भूत का वेश धर कर डराने मे उसे एक प्रकार का सन्तोष मिलता था। इनमें चार लोग अगर डरते थे, तो एक निडर होकर इस भूत पर भी चढ़ बैठता। उत्तय्यतक्क ने एक बार ऐसा ही किया था, तब ये पकड़े गये थे। लिंगराज तक ख़बर पहुँची। उसने बेटे और उसके साथी दोनों को दण्ड दिया। यही नही, ये दोनों रात को जहाँ स्त्रियाँ सोई होती वहाँ जाकर शैतानी करते या लड़कियों को अपने यहाँ बुलाते और उनसे छेड़खानी करते। ये सब बातें तो राजा तक नही पहुँचती थी। कभी-कभी राजकुमार शहर के बदमाशों के साथ जुए में भी हिस्सा लेता। राजा का पुत्र होने के नाते उसे दूसरों से ज्यादा अधिकार तो थे ही, पर दूसरो को होने वाले नुकसान उसे नही थे। यह बात सारे बदमाश हमेशा बर्दाश्त नहीं करते थे, इसलिए कई बार झगड़े और मारपीट तक की नौबत आ जाती। इस प्रकार पिता की मृत्यु होने पर, माता के सती हो जाने पर, जब वीरराज राजा बनने लगा, तब वह दुष्टो मे से ही एक था।

11

इन बातों से, इस पतन से बचाने का एकमात्र साधन थी रानी गौरम्मा जिसे

राज से कुछ वर्ष बड़ा था। बहुत होशियार लड़का था। उसकी आंखों की चमक ही कुछ और थी, उसकी फुर्ती की कोई सीमा न थी। छुटपन में पांव में कुछ चोट लगने से उसका दायां पांव कुछ मुड़ गया था। यह चोट कब लगी, स्वयं उसे भी याद न था। इसी से वह कुछ लंगड़ाकर चलता था। अनाथ लड़का अगर लंगड़ाकर चले, तो उसे सारा गांव लंगड़ा ही कहेगा। इसीलिए बसव का नाम लंगड़ा पड़ गया था। बुजुर्ग लोगों के 'ऐ लंगड़े!' कहने पर वह कुछ कह नहीं पाता था, परन्तु बुजुर्गों के अलावा अगर कोई और पुकारता, तो वह कहता 'तेरे बाप ने नामकरण किया है मेरा जो मुझे ऐसे बुला रहे हो?" साईस के लड़के के गुस्से से कौन डरता? जो भी हो, बसब के न चाहने पर भी उसका नाम 'लंगड़ा' पड़ गया। जाने-अनजाने में भले लोग भी यह समझकर कि इसका नाम यही है 'लंगड़े बेटे' कहकर प्यार से उसे बुलाते। कुछ लोग शरारत से भी इस तरह पुकारते। इन सब बातों से बचपन में ही बसव का मन बड़ा कटु हो गया।

करीब आठ वर्ष की आयु में बसव वीरराज का साथी बना। छोटे लड़के को सहज ही कुत्ता, हाथी, घोड़ा आदि देखने की इच्छा बनी रहती है। बसव राजकुमार को अस्तबल ले जाता और जिन प्राणियों के साथ उसका स्नेह था उनका परिचय कराता। इस प्रकार बसव वीरराज का अत्यन्त प्रिय तथा निरापद मित्र बना। वीरराज की मां का स्वास्थ्य विशेष अच्छा न था। इसलिए वह धायों के हाथ में पला। उसका पिता लिंगराज अपने धन्धों में व्यस्त रहता था। अगर धन्धे न होते, तो भी वह वीरराज की ओर ख़ास ध्यान देने वाला आदमी न था। पर धन्धों में डूबे रहने से वह बेटे की ओर तनिक भी ध्यान न दे सका। बसव छुटपन से ढोरों और कुत्तों के साथ पला था। ऐसा बच्चा जानवरों की जीवनचर्या देखते-देखते कुछ विचित्र रुचियां बना लेता है। उसमें शर्म कम हो जाती है। उसके साथ रहते-रहते शिशु वीरराज को भी ढोरों और कुत्तों का जीवन देखने में एक विचित्र सुख मिलने लगा। दोड्ड वीरराज का देहावसान हुआ तो देवम्माजी रानी बनी। देवम्माजी को हटाकर लिंगराज राजा बना और वीरराज युवराज। लिंगराज नये वैभवपूर्ण जीवन की खूबियों के साथ उसकी ख़राबियों का भी शिकार बना।

राजा बनकर लिंगराज को अपने पुत्र की ओर देखने का कुछ अवकाश मिला। इसी को तो आगे जाकर राजा बनना है! इसी के लिए तो है न यह सब! इसी के लिए तो न्याय अन्याय भुलाकर गद्दी प्राप्त की है। इसके लिए और इसकी बहन के लिए ही तो है! लिंगराज का अपने बच्चों की ओर ध्यान न देने का कारण उनके प्रति उदासीनता नहीं थी। जैसे जुए के फड़ पर बैठा आदमी मौत का

नहीं किया। पर इतना अनुभव उसने अवश्य किया कि इसके साथ रहने में एक खास सुख है। इस पत्नी से उसे एक विशेष तृप्ति-सी मिली।

मगर यह बात बहुत दिन तक नहीं चली। काफी समय तक मनमाना जीवन बिताकर जिसका स्वभाव विकृत हो चुका हो उसे गौरम्मा का शुद्ध और रुचि-शुचि पूर्ण जीवन तृप्ति न दे सका। ढोल और नगाड़े से तृप्ति पानेवाले कान बाँसुरी और बीणा के कोमल स्वरों की मधुरता में रस पाने में अक्षम हो जाते हैं। मनों चावल निगलने वाला हाथी, जैसे चींटी शक्कर का रस लेकर खाती है वैसा तनिक-सा भी आनन्द उठा नहीं सकता। बसव के सम्पर्क में आकर यदि वीरराज ने अपने को बिगाड़ न लिया होता और इस लड़की के सम्पर्क में आता, तो मालूम नहीं उसका जीवन कितना ऊँचा होता। मगर दुर्भाग्य से इन दोनों के मिलन से पूर्व ही वह कीचड़ में लोटकर सुख पाने वाली भैंस के समान अपनी रुचि को विकृत कर चुका था।

रोज रात को देर से लौटना और नशे में ऊटपटांग व्यवहार करना यह सब नापसन्द करने वाली पत्नी को गाली देने और मारपीट करने में उसे देर नहीं लगी। पहले पहल गौरम्मा ऐसा व्यवहार देखकर दुखी हुई, उसे क्रोध भी आया मगर उसने पति से झगड़ा नहीं किया। केवल उसके कमरे से निकलकर साथ के कमरे में जाकर, दरवाजा बन्द करके, वह लेट गयी। पति ने दरवाजा खटखटाया, वह ज़ोर से दहाड़ा। सारा परिवार इकट्ठा हो गया। बात जानने को लिंगराज स्वयं आया। बहू कमरा बन्द करके बैठी है, यह पता चलने पर उसने लड़के को डाँटा और कहा, "जो बात करनी हो, सुबह करना। अब जाकर चुपचाप सो जाओ और शोर मत करो।"

अगले दिन लिंगराज बहू के पास गया और बोला, "तुम्हें घर की लक्ष्मी बनाने के लिए मैं तुम्हें ढूँढ़कर लाया हूँ। तुम्हारे पति को अकल नहीं है। दोनों की अकल अकेले तुम्हें ही रखनी होगी। तुम्हें संसार में रहना है तो उसे साथ लेकर रहना है। पति अच्छा नहो, यह सोचकर अगर पत्नी भी खराब हो जाये तो महल तो क्या झोंपड़ी भी न रहेगी। महल और राज तुम्हारा है यह समझ लो। यह सब अपना बनाये रखने को ही पति को पालो। पेड़ को बचाकर फल खाना ही अकलमन्दी है।"

सास देवक्का ने बहू को तसल्ली दी, "राजमहल में बहुओं को इतना तो सहना ही पड़ता है, बेटी। यह सब मैं भुगत चुकी हूँ। तुम्हारे ससुर ने मेरी आँखों के सामने दूसरियों से अठखेलियाँ की हैं। इनसे बेटा ही अच्छा है, जो करता है बाहर ही करता है। घबराओ मत, एक-दो बच्चे हो जाने दो। बच्चों को अपना संसार मान लेना। औरतों का इससे बढ़कर सुख नहीं है। मैंने उसे शपथ दिलायी है कि यह किसी और को रानी के रूप में नहीं लायेगा। इतना ही कर दे तो

काफी है।"

गौरम्मा गम्भीर ही नहीं, चतुर भी थी। उसने ससुर की बात भी सुनी, सास की बात पर भी ध्यान दिया और उनकी बातों के तथ्य को ग्रहण कर लिया। पिछली रात की बात को भुलाकर तसल्ली से वह पति के साथ चलने लगी। उसने निश्चय किया, पति को गलत रास्ते से हटाकर ठीक करेगी। उसकी रक्षा करेगी।

तीन साल बाद गौरम्मा के एक लड़की हुई। साधारणतः बच्चे माँ या बाप पर होते हैं, पर इसमें दोनों की ही छाप थी। लिंगराज ने सोचा, लड़का होता तो अच्छा था, पर उसने लड़की को भी अपनाया और प्यार से पाला। वीरराज भी बच्चे के पास आने पर भला बन जाता। कितना भी क्रोध क्यों न हो बच्चे को देख कर शान्त हो जाता। अपना गुस्सा पी जाता। इस बच्चे के कारण अनजाने ही वह गौरम्मा का भी लिहाज करने लगा।

लिंगराज यदि कुछ वर्ष और जीता तो सम्भव था कि वीरराज बुराइयों में खोकर भी अच्छाइयों को पहचान जाता। पर गौरम्मा के भाग्य में यह नहीं था। उसी वर्ष पिता देवलोक सिधारे और पुत्र वीरराज राजा बना। वह जो मन में आता, करता और जिधर मुँह उठाता चल देता। इस तरह वह और भी पथभ्रष्ट हो गया।

12

लिंगराज के समय में लंगड़ा योद्धा डरकर ही रहता था। अब अपने ही दोस्त के राजा बन जाने पर वह निडर होकर चलने लगा। चार वर्षों में बसव राजमहल के आन्तरिक विभाग का मुखिया बन गया। उसके बाद तीन वर्ष बाद वीरराज ने उसको अपना मन्त्री बना लिया।

जब वीरराज राजा बना तब बोपण्णा व लक्ष्मीनारायण के साथ नाडतक्क पोन्नप्पा नाम का तीसरा मन्त्री भी था। उसने तीन वर्षों तक जैसे-तैसे राजा के अविवेक को सहा, फिर 'मेरा शरीर साथ नहीं देता किसी और को मेरी जगह नियुक्त कर लीजिये' कहकर अपने मन्त्री-पद से हट गया। इस प्रकार तीसरे मन्त्री का पद रिक्त होने पर राजा को उस जगह बसव को नियुक्त करने का अवसर मिला। यदि यह बहाना न भी मिलता तो भी शायद बसव चौथा मन्त्री बनता, पोन्नप्पा के अपने-आप हट जाने से नया स्थान बनाने की जरूरत न रही। कुत्तों के निरीक्षक का अपने बराबर मन्त्री बन बैठना शेष मन्त्रियों को रुचा नहीं, परन्तु इसके लिए वे क्या कर सकते थे यह उन्हें सूझा नहीं। बोपण्णा और लक्ष्मीनारायण ने आपस में बातचीत करने बाद यह निश्चय किया कि मौके पर बोपण्णा राजा से

अपना असन्तोष व्यक्त करेगा।

वीरराज को पता था कि ये लोग बसव को मन्त्री के रूप मे अपना नही पायेंगे। बसव भी इस बात को अच्छी तरह समझता था पर इसका मन्त्री बनना कई कारणों से, इनके कई हितों में आवश्यक था। इसलिए 'यह भी एक मन्त्री है; देश के अधिकारियों को इसकी आज्ञा माननी चाहिए' कहकर वीरराज ने बसव के मन्त्रित्व की स्थापना की यद्यपि राज-दरबार में बसव को मन्त्रियों की पंक्ति में बैठाने की बात पर उसने जल्दबाजी नहीं की। बसवय्या मन्त्री की आज्ञा को, कई लोगों ने यह कहकर पालन करने से इन्कार कर दिया कि वोपण्णा मन्त्री जब तक आज्ञा न देंगे तब तक अमुक कार्य नहीं किया जायेगा।

एक वर्ष के बाद नवरात्रि के उत्सव के अवसर पर राजमहल में एक सभा हुई तब मन्त्रियों की पंक्ति में एक अधिक कुर्सी रखी गयी। इसका प्रबन्ध बसव के लिए था। इसलिए लक्ष्मीनारायणय्या तथा बोपण्णा ने उसे तभी देखा जब वे सभा मे आये। बोपण्णा सभा में थोड़ी देर पहले आया था, उसने इसका आशय समझ लिया था। लक्ष्मीनारायणय्या के आने पर उससे बातचीत की और कहा, "आज इस विषय को समाप्त करना चाहिए।" लक्ष्मीनारायण बोला, "सबके सामने ठीक न होगा।" इस पर बोपण्णा बोला, "यह सबकी प्रतिष्ठा की बात है; सबके सामने ही उठायेंगे। इसमें कोई गलती नही।"

क्षण भर बाद बोपण्णा ने लक्ष्मीनारायण से कहा, "अच्छा पण्डितजी, इसके लिए और कोई उपाय करता हूं।" इसके बाद एक सेवक को बुलाकर "अरे यहाँ कौन बैठेंगे ?" पूछा और तीसरी कुर्सी की ओर इशारा किया। सेवक ने उत्तर दिया "मुझे पता नहीं महाराज, महल से आदेश हुआ है। इसलिए कुर्सी लगायी गयी है।" बोपण्णा ने उससे आगे कहा, "निरीक्षक से कहो ज़रा हमसे मिले।"

निरीक्षक आया, हाथ जोड़कर तनिक हटकर खड़ा हुआ। बोप्पणा ने कहा, "यह नयी कुर्सी यहाँ से हटवाइए।" निरीक्षक 'जो हुक्म' कहकर महल में चला गया। कुर्सी किसी ने न हटाई। दो मिनट बाद भीतर से लंगड़ा आया, मन्त्रियो को नमस्कार करने के बहाने से बड़ी स्थिरता से बोला, "महाराज की आज्ञा से यह कुर्सी रखी गयी है, हटाई नही जा सकती।" बोपण्णा को बड़ा क्रोध आया। वह बोला, "अगर यह कुर्सी यहाँ से नही हटेगी तो हम भी अपनी जगह पर नही बैठेंगे। महाराज के पधारने के बाद गड़बड़ नही होनी चाहिए। पहले ही जाकर निवेदन कर दो।"

लंगड़ा भीतर जाकर जल्दी ही वापस आया और उस कुर्सी को हटवा दिया।

सभा सदैव की भाँति समाप्त हो गयी। सभा से उठकर भीतर जाते समय वीरराज ने आज्ञा भेजी कि मन्त्री जन भीतर आकर उससे मिलें। लक्ष्मीनारायण तथा बोपण्णा अन्दर गये।

13

वीरराज आँगन में ही खड़ा था, मन्त्रियों को वहीं रोक लिया। क्रोध में आकर कर्कश स्वर में बोपण्णा से पूछा, "हमारी सभा में कौन कहाँ बैठेगा, इसकी जिम्मेदारी आपकी है बोपण्णाजी ?"

बोपण्णा ने कुछ कहने को मुंह खोला ही था कि उसे बात करने का अवसर न देकर लक्ष्मीनारायण बोला, "यदि महाराज उचित समझें तो यह बात शाम को की जा सकती है।"

वीरराज : "हमारी थकावट-बकावट की चिन्ता आप लोग मत करिए। आप लोग सब कुछ अपनी मर्जी से करते हैं। कोडग का राजा कौन है ! इस बात का हमें अभी जवाब दीजिये। आप या हम ?"

लक्ष्मीनारायणय्या : "यह बोपण्णा और मेरे मानने की बात नहीं है। देश के लोग, नगर के लोग सभी के मानने की बात है। उनको विरोधी बना लेना उचित न जानकर ही बोपण्णा ने ऐसा किया।"

वीरराज : "आपने भी मना किया ?"

लक्ष्मीनारायणय्या : "बोपण्णा ऐसी बातों को तो मेरे मन की बातें जानकर ही कहते हैं। लोगों को विरोधी नहीं बनाना चाहिए यह सोचकर ही मैंने इसे स्वीकार किया।"

बोपण्णा ने वीरराज को पुनः बात करने का अवसर न देते हुए कहा, "नाई को हमारे बराबर बैठने की बात को कोडग का कोई भी बच्चा स्वीकार नहीं करेगा।"

वीरराज : "आपके घर में भले ही न मानी जाये। राजमहल में वह क्या है ?"

लक्ष्मीनारायण कुछ उत्तर देने को ही था कि बोपण्णा ने उसे रोककर कहा, "मैं बताता हूँ महाराज ! दरबार महाराज का घर नहीं है। सेठों, यजमनों, हेगड़ों और तक्कों के मिलने का स्थान है। किसे कहाँ बैठना है; यह बात बुजुर्गों ने निश्चित कर दी है। यह सारे देश की बात है। यदि महाराज उसे बदलना चाहते हैं तो पहले जनता को बताना चाहिए।"

वीरराज : "बताना चाहिए ! यह 'चाहिए' क्या होता है। किसे कहाँ बैठाना चाहिए यह बात क्या राजा आप लोगों से पूछेगा ?"

बोपण्णा : "अंगरक्षक, महल के सेवक, राजा के निजी हैं। लंगड़ा आपका अंगरक्षक हो सकता है। वैयक्तिक मन्त्री हो सकता है। देश का मन्त्री होना हमें मन्जूर नहीं। महाराज को जो पसन्द हो वह कर सकते हैं। अगर लंगड़ा मन्त्री बना तो हम मन्त्री नहीं रहेंगे। यदि हमें मन्त्री बनाये रखना है तो लंगड़ा हमारे

साथ नहीं रहेगा। महाराज चाहें तो उसे अपने शयनकक्ष में ले जा सकते हैं, अपने पूजा के कमरे में ले जा सकते हैं, हमारा विरोध नहीं, परन्तु दरबार में उसका हमारे साथ बैठना जनता नहीं मानेगी।"

बात हद से बढ़ गयी है यह राजा, लक्ष्मीनारायण तथा बोपण्णा तीनों ने अनुभव किया। लक्ष्मीनारायणय्या ने 'बोपण्णा, यह बात यहीं तक रहने दीजिए' कहकर राजा की ओर मुड़कर कहा, "मैंने पहले ही निवेदन किया था इन सब बातों पर शाम को विचार किया जाये। अब पुनः वही निवेदन करता हूँ। अब आगे और बात न बढ़ायें। महाराज से मेरी यही प्रार्थना है।"

वीरराज : "अच्छी बात है। आप लोग बड़े हैं; मन्त्री हैं, सब ठीक है पर हम पर हुकूमत करनेवाले मालिक तो नहीं हैं ? शाम को बात करेंगे, आइयेगा !"

लक्ष्मीनारायण ने 'जो आज्ञा' कहकर झुककर नमस्कार किया। वीरराज ने प्रतिनमस्कार किया। बोपण्णा अनमने ढंग से जरा हाथ जोड़कर घूमा; उसके मुँह पर क्रोध झलक रहा था।

भीतर से निकलकर जब ये सभा भवन के द्वार पर पहुँचे तब बसव ने इनके पास आकर और अकड़कर पूछा, "क्यों बोपण्णा मन्त्रीजी, मुझे नाई बना दिया !"

बोपण्णा ने भी उतना ही अकड़कर कहा, "ऐ लंगड़े तू क्या है ? भूलकर सीढ़ियाँ चढ़ता जा रहा है, कहीं सीढ़ी ही खत्म न हो जायें ? ऊपर छाया नहीं है, होशियार। तू नाई नहीं है ? तेरी माँ नाइन थी, तो तू और क्या होगा ?"

"अच्छा ! मेरे बारे में तो कहा सो कहा, मेरी माँ के बारे में भी कह दिया। हद से बढ़कर और क्या कहियेगा ये आप ही जानें, पर ये भी मत समझियेगा कि मैं आपके अहंकार से डर जाऊँगा। मेरा पाँव लंगड़ा हो सकता है, अकल लंगड़ी नहीं है।"

"जा रे गधे चरानेवाले, मुझसे बात करता है। जा ! जाकर अपने गधे चरा। राजसभा में बैठने लायक तू कौन है ? जा गधे चरा।" यह कहकर महल की ओर अपने मुँह से संकेत किया और आँगन में आया लक्ष्मीनारायण भी उसके साथ हो लिया।

वहाँ खड़े सेवकों तथा अन्य कुछ लोगों ने इन्हें नमस्कार किया। ये भी सबको अभिवादन करके सभा मण्डप से बाहर निकल गये।

14

वीरराज की केवल एक छोटी बहन थी। लिंगराज ने मरने से पहले कोडग के एक युवक को लिंगायत धर्म में दीक्षित कराके उसका अपनी लड़की से विवाह करा दिया था। यह इस राजघराने की प्रथा थी। विवाह से पूर्व दामाद बनने वाले

ा नाम 'चेन्नवसव' रखा गया था। पिता ने अपनी बेटी को अप्पगोलं का राज-
हल भी दे दिया था। उसमें काफी गहने आदि भर दिये थे। बेटी और दामाद
ो उन राजमहल में रखा गया। वह सप्ताह में दो-तीन बार स्वयं उनके यहाँ
ाता या उन्हें अपने यहाँ बुलाता। इस प्रकार उसने उन्हें बड़े सुख से पाला।
रते समय बेटे से कहा, "बेटा, छोटी बहन को प्यार से रखना" फिर बहू को
ास बुलाकर कहा, "बेटी, मैंने तुझे किसी बात की कमी नहीं रखी। इसलिए तेरी
नंद को जो कुछ दिया उसे छूने की जरूरत नहीं, उसे जो दिया उसी के पास
हने देना।" बहू ने उत्तर दिया, "आप चिंता न करें। आपकी बेटी अगर सुख से
हेगी तो मुझे कोई जलन नहीं।"

चेन्नवसव अगर राजा का दामाद न बनता तो एक सामान्य गृहस्थ के रूप
में शायद सुखी रहता, पर उसके दुर्भाग्य से लिंगराज की निगाह उस पर पड़ी
और दामाद बना लिया। इसी से वह अपनेको एक खास व्यक्ति समझकर भ्रम में
पड़ गया था। दूसरों के साथ कठोरता से व्यवहार करनेवाला लिंगराज अपनी
बेटी के कारण इसका ज्यादा लिहाज करता था। इसके विपरीत अपने बेटे को
अयोग्य! दुष्ट! मूर्ख! कहकर गालियाँ देता। कभी वीरराज से कहता, "राजमहल
में जन्म न लेने पर भी दामाद कितनी गम्भीरता से रहते हैं, उनकी टाँग के नीचे
से निकल जा, शायद कुछ अकल आ जाये।" ऐसी बातें सुनकर चेन्नवसव यह
समझता कि उसके गुणों पर मुग्ध होकर उसकी प्रशंसा में यह बातें कही जा रही हैं।
कभी उसे भ्रम होता कि शायद ससुर बेटे की जगह उसे ही राजा बनने को कहें।

ऐसा नहीं हुआ। वीरराज ही गद्दी पर बैठा। 'गद्दी पर बैठने की योग्यता मुझमें
उससे अधिक है। अधिकार ही बड़ी चीज नहीं।' इसी विचार को मन में संजोये
वह 'मैं आज नहीं तो कल अवश्य राजा बनूँगा' यह निश्चय कर राजद्रोह
के विष भरे वातावरण की ओर झुक रहा था। यह बात वह अपने व्यवहार के
द्वारा व्यक्त करता था। लिंगराज की मृत्यु के एक वर्ष के भीतर ही राजा और
दामाद में मनमुटाव हो गया। धीरे-धीरे यह बढ़ता गया और चार साल बाद
वीरराज अपनी बहन को विदा करा लाया और उसे वापस नहीं भेजा। दामाद
चेन्नवसव ने आकर पाँव पड़े। रानी ने बहुत प्रार्थना की, बेटी ने बुआ के विषय में
बड़ी मिन्नतें कीं तब कहीं जाकर वीरराज ने बहन को वापिस जाने दिया। इन
दिनों मैसूर अंग्रेजों के अधिकार में था और बैंगलूर में उनका प्रतिनिधि रहता
था। चेन्नवसव ने उनको यह पत्र भेजा कि जिस प्रकार मैसूर के राजा को गद्दी से
हटा दिया गया उसी प्रकार वीरराज से राज्य छीनकर उसको बहन देवम्माजी
को दे दिया जाये। यह बात वीरराज तक पहुँच गई, तब वह स्वयं अप्पगोलं
गया और चेन्नवसव को पीटपाट कर बहन को पकड़कर बलपूर्वक ले आया,
और उसे महल में बंद कर दिया। यह घटना घटे लगभग दो साल बीत चले।

रानी तथा बेटी ने बहुत विनती की, पर राजा ने उनकी बात पर कान न दिये। चेन्नबसव ने अंग्रेजों को फिर शिकायतें भेजी। इससे राजा का मन और भी पत्थर हो गया और देवम्माजी के कैद से छूटने का कोई रास्ता न रहा।

15

दरबार में बसव को सम्मानित जगह दिलाने के चक्कर में वीरराज ने मंत्रियों से झगड़ा कर लिया। इसी प्रकार अपनी कामवासना को बुझाने की हवस में किसी और से तथा धन के लोभ में कुछ और लोगों के साथ उसने शत्रुता मोल ले ली। कामुक तरुण को यदि जल्दी से बीमारियां घेर लें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। बीमारी हो गई तो वैद्य को आना पड़ा। जड़ी-बूटियां कूट-पीस कर, भस्में जला कर उसके पेट में भरी जाने लगीं। जब शास्त्रीय वैद्य के बस की बात न रही तो लंगड़े के सम्प्रदाय की वैद्यकी शुरू हुई। पुरुष के शरीर की कमजोरी दूर करने के लिए नई से नई और कम आयु वाली लड़कियों से सहवास ही इस सम्प्रदाय का विश्वास था। राजा के लिए इसका प्रबन्ध करना कोई कठिन कार्य न था। यह पर्याप्त प्राप्त हुआ, पर वैद्यकी के साथ कुपथ्य भी बहुत रहा। इन सबके परिणामस्वरूप केवल तीस वर्ष का शरीर निर्जीव और खोखला हो गया।

शुरू-शुरू में उसके लिए मद्य, मांस और स्त्रियां जुटाकर उसका स्नेह प्राप्त करने वाले लँगड़े ने ही यह अनुभव किया कि राजा को सावधान करना चाहिए। पतन की ओर जाते हुए इसकी सहायता लेने वाले वीरराज ने इसकी चेतावनी पर कोई ध्यान न दिया।

बसव ने कई बार अनुभव किया कि राजा चिकने पत्थर पर बैठकर फिसल रहा है और उसे लगा कि वह स्वयं अपने पांव अपनी कमर में खींचकर फिसल रहा है। इस यात्रा के शुरू होने के बाद रुकने का स्थान एक ही है और वह है पत्थर की सतह। उसे इस बात पर कई बार निराशा हुई कि वह उसे बीच में रोक नहीं पाया।

16

राज्य की अव्यवस्था ज्यों-ज्यों बढ़ती गई त्यों-त्यों देश के अनेक लोगों में वीरराज के प्रति असन्तोष बढ़ता गया। इनमें वे सब लोग भी थे जिन्हें एक बार लगान दे देने के बाद भी दुबारा देने को विवश किया जा रहा था, और वे भी जिन्हें इच्छा न होने पर भी अपनी बहू-बेटियों को रनिवास में भेजना पड़ता था। इनमें वे सब लोग भी थे जिन्होंने किसी-न-किसी प्रसंगवश बसव या राजा से

गालियाँ खाई थीं। असन्तुष्ट लोग देश की सभी सीमाओं और ठिकानों में फैले थे।

बसव के मंत्री-पद सम्भालने तक ऐसे लोगों की संख्या काफी बढ़ चुकी थी। इन्होंने इस बात की काफी प्रतीक्षा की कि देश के बुजुर्ग और मन्त्रीगण राजा से साहसपूर्वक बात करके इन सब बातों का निपटारा करेंगे, परन्तु ऐसा कुछ भी न हुआ। बसव के भी एक मंत्री की तरह कार्य शुरू करने के बाद लोगों ने सोचा अब उन्हें स्वयं इस कार्य को अपने हाथों में लेना चाहिए।

भागमण्डल का चेन्नवीरय्या ऐसे लोगों में से एक था। इसके पूर्वजों ने राजमहल में नौकरी की थी। अप्पाजी को राजगद्दी मिलनी थी उसकी जगह लिंगराज राजा हुआ इससे इसके परिवार में असन्तोष था। देश के लोगों की धारणा यह थी कि दोड्डवीरराज ने अप्पाजी को मरवा डाला है, पर इसके परिवार का यह विश्वास था कि अप्पाजी मैसूर में हैं, उसका बेटा भी वहीं है। कोडग की राजगद्दी उनकी है। आज नहीं तो कल इस दुष्ट राजा को हटाकर अप्पाजी के पुत्र को ले आना है, नहीं तो देश का भला न होगा। चेन्नवीर ने सोचा कि अब वह मौका आ गया है। वह बेंगलूर गया जहाँ अप्पाजी अपना नाम बदलकर रहते थे। वह उससे उसके पुत्र के नाम को गुप्त रूप से इस्तेमाल करने की अनुमति प्राप्त करके लौटा। अपने विश्वसनीय मित्रों को अत्यन्त गुप्त रूप से उसने यह बात बतायी।

ऐसे सभी लोगों ने इस बात का समर्थन किया। इसी प्रकार यदि कुछ और प्रयत्न गुप्त रूप से चलते तो शायद चेन्नवीर अपने उद्देश्य में सफल हो जाता, परन्तु बीच में किसी की असावधानी से इस बात की गन्ध भागमण्डल के तक्क को मिल गई। उसने 'लड़कों को ऐसे काम में हाथ डालने की क्या जरूरत है? क्या देश में बुजुर्ग नहीं रहे?' कहकर अपना क्रोध प्रकट किया।

रहस्य के खुल जाने से चेन्नवीर की योजना में बाधा पहुँची। इतना ही नहीं इस योजना की बात बसव के कान तक पहुँच गई और उसने राजा तक पहुँचा दी। राजा ने कहा, "ये दुष्ट लोग कौन हैं? उनको पकड़ मँगवाओ।" यह खबर मिलते ही चेन्नवीर मैसूर भाग गया।

बसव ने उसके पीछे अपने आदमी दौड़ाये। राजा की आज्ञा प्राप्त करके मैसूर के मुख्य आयुक्त को अपने एक अधिकारी के हाथ इस प्रकार का एक पत्र भेजा: "हमारे देश में देशद्रोह करके चेन्नवीर नाम का एक अपराधी आपके देश में भाग गया है। उसे पकड़वाकर हमारे पास भिजवाने की कृपा करें।"

मैसूर में अपराध करके कोडग को भागना या कोडग से अपराध कर मैसूर को भागना कोई नई बात नहीं थी। ऐसी बातों में एक शासन को दूसरे शासन से सहायता माँगने की प्रथा थी। मुख्य आयुक्त ने चेन्नवीर को पकड़वाया और उसे

बसव के आदमियों के साथ कोडग भिजवा दिया। भिजवाते समय उसने प्रथा के अनुसार पत्र लिखा : "इसका अपराध क्या है ? इसे कौन-सा दण्ड दिया गया, यह मामले के निर्णय के बाद बताने का कष्ट करें।"

बसव ने चेन्नवीर को राजा के सामने खड़ा किया। राजा ने चेन्नवीर से पूछा, "कोडग को दूसरा राजा लाने वाले वीर तुम्हीं हो न ?"

चेन्नवीर : "मैं आपको कोई बात बताने वाला नहीं हूँ।"

राजा : "तुम्हारे अप्पाजी कहाँ हैं ? यह बता दो तो तुम्हें छोड़ दूँगा।"

चेन्नवीर : "मैं आपको यह बात भी नहीं बताऊँगा।"

राजा ने लोभ दिखाते हुए कहा, "उसे जाने दो। कम-से-कम यह बता दो कि इस काम में तुम्हें किस-किस ने मदद करने को कहा था; तो भी छोड़ दूँगा।"

चेन्नवीर ने उत्तर दिया, "मैं वैसा कुत्ता नहीं हूँ।"

राजा ने पास रखी बन्दूक लेकर सीधी गोली मार दी। चेन्नवीर वहीं ढेर हो गया। यह घटना नालुनाड के राजमहल के पास वाले जंगल में हुई। चेन्नवीर की मृत्यु की कल्पना तो लोगों ने कर ली थी, परन्तु यह घटना किसी के मुँह से किसी के कान तक न पहुँची। बसव ने घटनास्थल में खड़े दो नौकरों को चेतावनी दे दी थी : "खबरदार ! अगर यह बात कहीं बाहर निकली तो तुम्हारा हाल भी यही होगा।" राजा ने बसव को यह आज्ञा दे दी थी कि शव को कुत्तों को डाल दिया जाय।

कुछ महीनों के बाद मुख्य आयुक्त से आये चार-पाँच पत्रों में इसका भी उल्लेख था। "अपराधी चेन्नवीर का मामला समाप्त हो गया ? उसका परिणाम क्या रहा ?" बसव ने और सब बातों का उत्तर तो दिया पर इसका कोई जिक्र तक नहीं किया।

मुख्य आयुक्त ने फिर पत्र लिखा : "इस विषय में कोई जवाब नहीं मिला। अन्य बातों का उत्तर देते समय शायद आप भूल गये होंगे ; कम-से-कम अब तो बताने की कृपा करें।" राजा ने उसका जवाब देने से मना कर दिया। चार स्मरण-पत्र आये। उनके भी जवाब नहीं दिये गये।

अन्त में मुख्य आयुक्त ने लिखा : "मेरे पत्रों की इस प्रकार उपेक्षा करने से हमारे और आपके बीच एक दुराव पैदा हो रहा है। माननीय मद्रास के गवर्नर महोदय ने इस विषय में बड़ा असन्तोष प्रकट किया है। मैं जानता हूँ कि ऐसी छोटी बातों को लेकर आप हमारे साथ वैमनस्य उत्पन्न करना नहीं चाहेंगे। स्थिति को सुधारना अब आपके ही हाथ में है।" वीरराज ने इसका भी उत्तर नहीं दिया। अंग्रेज़ों और उसके बीच यह बात एक दीवार-सी बन गयी।

17

राजकोप द्वारा चेन्नवीर की इस प्रकार वलि होने पर भी उसका शुरू किया हुआ अभियान रुका नहीं। पिछले साल कावेरी मेले में उसने राजा से असन्तुष्ट लोगों से स्वयं मिलकर उन्हें इस वात पर कटिवद्ध होने की प्रार्थना की थी। इससे पहले ही कुछ नौजवानों ने देश की स्थिति के वारे में सोचकर उसे सुधारने के लिए 'कावेरी[1] मक्कल कूट' वनाने का विचार किया था। उनकी योजना यह थी कि जो जहाँ है वहीं रहकर गुप्त रूप से, राजा और वसव द्वारा जनता को जो कष्ट दिये जा रहे हैं उन्हें दूर करें। चेन्नवीर के प्रयत्न से इस कार्य को एक रूप मिला।

संघ के प्रवन्ध का उत्तरदायित्व वोपण्णा के भांजे उत्तय्या ने संभाला। वह कोडग की सेना में एक मुख्य नायक था। उसने इस वारे में पहले ही निर्णय कर लिया था। वैसे उसके मित्रों ने रोका था, और जल्दवाजी करने से मना किया था। उसे ऐसा लगा कि अव रुकने से अनर्थ हो जायेगा, इसलिए उसने संघ की स्थापना कर दी। उस वर्ष उसकी मडकेरी के पहरे के कार्य में नियुक्ति हुई, जिससे उसे अपने उद्देश्य को पूरा करने में सुविधा रही। मडकेरी आने के एक-दो दिन वाद उसने संघ से सम्वन्धित युवकों से अलग-अलग जगहों पर मिलने को कहा। प्रत्येक को देश की विपत्ति का परिचय देकर पूछा, "क्या इसको दूर करने के लिए संघ की आवश्यकता नहीं?" तव उनमें से हरेक ने कहा, "तुम अगुवा वनो मैं कावेरी का पुत्र हूँ सदा तुम्हारे पीछे रहूँगा। जो कहोगे करूँगा। यदि प्राण देने के लिए कहो तो भी मैं तैयार हूँ।" उत्तय्या ने उन्हें 'कावेरी मक्कलु मक्कल ताई'[2] का संकेत शब्द दिया और इसे ध्यान में रखने को कहा। आगे क्या करना होगा यह वाद में वताने को कहा।

इस प्रकार उत्तय्या के साथ शपथ लेकर साथ देने वालों में वर्तकपेटे के यजमान तिमरुप्पा शेट्टी का भतीजा राम शेट्टी, दीक्षित का भतीजा नारायण, लक्ष्मीनारायण का भतीजा सूरी, दीवान पोन्नप्पा का दामाद मुद्दा, राजवैद्य का वेटा विरद, राजमहल के निरीक्षक का पुत्र माचा आदि थे। इनमें प्रत्येक एक-एक विश्वस्त व्यक्ति को साथ ले सकता था और वे एक-दूसरे से विचार-विमर्श कर सकते थे। पर जो भी वात हो उसकी खवर उत्तय्या को देनी थी और सव कामों का विवरण उसे देना था।

इनमें माचा राजमहल में हरकारा था। वाकी किसी पर कोई जिम्मेदारी का

---

1. कावेरी संतान संघ।
2. माँ।

कार्य न था। चेन्नवीर लापरवाही के कारण राजा के हाथ आ गया। कूट के प्रमुखों को इस बात की चिन्ता हो गई कि न मालूम वह क्या बक दे। वह इनमें से किसी का भी नाम लेता तो राजा उनको पकड़ मंगवाता तो इसमें कोई अचरज न था परन्तु ऐसा कुछ न हुआ। तब इन लोगों ने समझ लिया कि राजा ने उसका काम तमाम कर दिया है अतः उन्होंने चेन्नवीर की मृत्यु का बदला लेना अपना कर्त्तव्य समझा।

चेन्नवीर के इस प्रकार अदृश्य हो जाने के कुछ महीने बाद मडकेरी में एक वीर शैव स्वामी आया। उसने अपना नाम अपरम्पर बताया। वह आकर राजा के समाधि-स्थल में रहने लगा। आने वालों से अच्छी बातें कहता और थोड़ी बहुत वैद्यक भी करता। आने के कुछ दिन बाद ही स्वामीजी ने भिक्षा के लिए घर-घर जाते हुए 'कावेरी मक्कल कूट' के प्रमुखों से एक-एक करके परिचय किया। उनके साथ काफी परिचय हो जाने के बाद देश की परिस्थिति के बारे में बातचीत की। उसने उन्हें विश्वास दिलाया कि वह भी 'कावेरी पुत्र' है। उत्तय्या,[1] चिक्क दीक्षित, पुरी रामशेट्टी ने प्रसन्नता से उसे अगुवा स्वीकार किया।

स्वामीजी की सहायता से धीरे-धीरे संघ का उद्देश्य अधिक विस्तृत रूप लेने लगा। उनका पहला उद्देश्य था राजा और बसव द्वारा त्रस्त जनता को किसी उपाय से मुसीबतों से छुटकारा दिलाना। दूसरे, प्रशासन से असन्तुष्ट प्रमुखों से मिलकर अपने उद्देश्य की सफलता के लिए उनसे जहाँ तक हो सके सहायता प्राप्त करना। तीसरे, इस प्रकार असन्तुष्ट मुखिया लोगों को मिलाकर यदि सम्भव हो सके तो राजा और बसव के विरुद्ध एक दल बना देना। राजा से जनता के विरोध की भनक पाकर अंग्रेज मैसूर की भाँति कोडग को भी हड़पने के लिए मौका देख रहे थे। उन्हें मौका न देकर राज्य को कोडग राजघराने में ही बनाये रखना भी उनके उद्देश्य में से एक था।

इसी बीच एक दिन उत्तय्या ने स्वामी से कहा, "मैं अपने मामा को सूचित करके अपनी नौकरी छोड़ कर संघ का ही कार्य करना चाहता हूँ।" तब स्वामीजी बोले, "तुम अपनी नौकरी मत छोड़ो। काम में रहने से अनेक लोग हाथ में रहते हैं, इससे तुम्हारे काम में सुविधा रहेगी। अभी ठहरो, बाद में देखा जायेगा।"

18

दैव-इच्छा से इन्हीं दिनों उत्तय्या के जीवन में देश और राजमहल को प्रभावित करने वाली एक घटना घटी।

1. छोटा।

मडकेरी के पहरेदार दल को राजमहल के पहरे का भी भार सौंपा गया। इसलिए उत्तय्या को महल में आना-जाना पड़ा और वहां की देखभाल का कार्य करना पड़ा। उत्तय्या एक रूपवान युवक था। वह रानी का दूर का सम्बन्धी भी था, रिश्ते में भाई का लड़का लगता था। राजमहल में उसके काम पर रहते हुए यदि रानी और राजकुमारी को कहीं जाना होता तो उसे उनके साथ जाने के लिए किसी का प्रबन्ध करना होता या उसे स्वयं जाना पड़ता था। वहाँ रहते उसने रानी और राजकुमारी की सच्ची भक्ति भावना से सेवा की। वह कोडगी लड़का था और साथ-ही-साथ वह बोपण्णा का सम्बन्धी भी था। इन कारणों से उसे अपने बारे में बड़ा अभिमान था। वंश को यश मिले ऐसा स्वभाव उसकी सहज प्रवृत्ति बन गया था।

यह युवक अक्सर राजकुमारी को देखता था। यदि वह राजपुत्री न होती तो संभवतः उसके साथ विवाह की बात भी सोच सकता था। परन्तु परिस्थिति जैसी थी उसमें यह ठीक न था। ठीक न कहने का अभिप्राय यह नहीं कि यह असाध्य था। राजा की लड़की को कोई राजा आकर अपने घर के लिए माँग सकता था, पर जो राजा नहीं है वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, उसके लिए लड़की को माँगना अनुचित था। इस विषय में पहल राजघराने की होनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त राजवंश में शैव मत चलता था। उत्तय्या यदि राजकुमारी से विवाह करता तो उसे पहले वीर शैव बनना पड़ता। इस विषय में कोडग समुदाय का झुकाव कम था। स्वयं 'कावेरी मक्कल' का सदस्य बने रहने पर भी उसे यह बुरा न लगा क्योंकि उसका विरोध राजा से था, राजघराने से नहीं। रानी और राजकुमारी पर प्रथानुसार उसकी भक्ति थी।

विवाह होने की सम्भावना कम होने पर या न होने पर भी उस आयु के लड़के लड़की का परस्पर लिहाज से व्यवहार करना सहज ही नहीं, अनिवार्य है। राजभवन के प्रहरीदल के नायक के रूप में उत्तय्या जब पहली बार रानी से मिला तब रानी ने उसके बारे में पूछताछ की। बोपण्णा का भांजा हमारा भी दूर का रिश्तेदार है यह पता चला तो उसके मन में यह बात उठी, क्या अपनी पुट्टव्वा के लिए यह ठीक नहीं रहेगा!

रानी जब उससे बातचीत कर रही थी तब बेटी भी उसके पास दांये हाथ से माँ की गलबहियाँ डाले उसके कन्धे पर मुंह रखे खड़ी थी। उत्तय्या सुन्दर था, लड़की को उसे देखने से एक प्रकार की तृप्ति मिली। उत्तय्या को भी यह जानकर तृप्ति हुई।

रात को बेटी को सुलाते समय पास बैठकर उसे सहलाते हुए रानी ने धीरे से उसके कान में कहा "पुट्टव्वा! उत्तय्या तेरे लिए ठीक है ना?"

बेटी ने संतोष के स्वर में माँ को अपनी बाँह में लपेटकर पूछा, "पिताजी

मानेंगे माँ ? उनको भी तो स्वीकार होना चाहिए ?"

राजमहल के स्नेहमय वातावरण में पली हुई चौदह वर्ष की यह बच्ची व्यवहार में बच्ची होने पर भी पिता के जीवन-मार्ग, बसव की दास्य बुद्धि, बोपण्णा का बेवाकपन और माता की व्यवहार-कुशलता के प्रभाव से स्वयं भी लोक-व्यवहार में कुशल हो गयी थी। उसे पिता से असीम प्यार था। माता के अतिरिक्त और किसी से वह प्रभावित न थी। उसे इस बात का दुख भी था और उन पर दया भी आती थी कि उसके पिता ने अन्याय से देश की जनता को, मन्त्रियों को, यहाँ तक कि अपनी पत्नी को भी विरोधी बना लिया था। उसमें अपनी माँ के प्रति दया और गौरव की भावना थी कि वह कितनी ऊँची है फिर भी इतने कष्ट उठा रही है। राजकुमारी को यह पता था कि माँ की ओर से जो भी बात उठायी जायेगी उसका तुरन्त विरोध होगा। इसके अलावा वह लड़का बोपण्णा का भाजा था। राजा को बोपण्णा, उसकी बात, उसका रिश्ता कुछ भी पसन्द न था।

इतनी-सी इस बच्ची ने इस बात को इतने विस्तार से सोचा हो, यह बात नहीं थी। यह भाव तो उसके मन में अज्ञात रूप से ही जमे हुए थे। यह रिश्ता आसान नहीं यह बात उसे अच्छी तरह पता थी। बिना तर्क के ही यह बात उसके मन को सूझ गयी।

यह बात भी नहीं थी कि जो बातें बच्ची को सूझ गयी वह रानी को न सूझी हो। वह तो केवल इतना जानना चाहती थी कि बेटी को लड़का पसन्द है ? यह ठीक है, तो आगे की देखी जायेगी। अगर भगवान की कृपा से संयोग बन जाये तो अच्छा होगा। बेटी की बात पर रानी ने कहा, "बात तो ठीक है।" उसके बाल सवार, पीठ थपथपाकर 'सो जा बेटा' कहकर पास वाले बिस्तर पर लेट गयी।

इसके कुछ दिन बाद मन्त्री लक्ष्मीनारायणय्या किसी कार्यवश महल में आया, तो रानी ने उसे अन्दर बुलवाकर कहा, "पण्डितजी, आपको इस घर का एक उपकार करना है।" लक्ष्मीनारायणय्या बोला, "आज्ञा दीजिए माँ। सिर के बल करूँगा।"

रानी ने उसे उत्तय्या के बारे में अपनी पसन्द बतायी और कहा, "यह जल्दबाजी से करने का काम नहीं। पहले सबके मन की बात जानकर अन्त में महाराज से पूछना होगा। पहले बोपण्णा को स्वीकार करना होगा, उन्हें यह न पता चले कि हमने पुछवाया है। आप अपनी ही तरफ से बात उठाकर देखिये, क्या कहते हैं।"

लक्ष्मीनारायणय्या ने कहा, "जो आज्ञा माँ।"

बाद में जब बोपण्णा से उसकी भेंट हुई तो अलग बुलाकर उसने पूछा, "आपका भांजा शादी लायक हो गया है। राजा की बेटी के साथ उसका विवाह

करा सकते हैं बोपण्णाजी।" बोपण्णा बोले, "यह हमारे उठाने की बात है ?"

"समझ लीजिये उन्होंने ही उठायी है, आपके मन को कैसी लगी।" बोपण्णा और लक्ष्मीनारायणय्या के विचार एक से ही थे। वह लक्ष्मीनारायणय्या की बात को समझ गया। बोला, "रानी माँ को बताना है क्या ?"

लक्ष्मीनारायणय्या : "हाँ ऐसा ही समझिये।"

'समझिये' शब्द इनकी बातचीत में एक संकेत था। रहस्य को समझा देना है पर प्रत्यक्ष रूप से नहीं, यही उनका भाव था।

बोपण्णा : "इसे हमारी जनता पसन्द नहीं करेगी। अगर बेटा लिंगायत बना तो मेरी बहन और बहनोई स्वीकार नहीं करेंगे। इस राजघराने का दामाद बनना एक अनचाही चीज़ हो गयी है। मल्लप्पा का हाल वैसा हुआ। और चेन्नबसव का हाल ऐसा हो गया। अब तीसरे का हाल पता नहीं कैसा होगा ? किसे चाहिए ये सब ?"

लक्ष्मीनारायणय्या ने 'यही ना !' कह, बात वहीं छोड़ दी, दूसरे दिन यह सब रानी से निवेदन कर दिया। रानी ने इस विवाह की बात को फिलहाल स्थगित कर दिया।

19

मदकेरी के पर्तंग पेटे के यजमान चिक्कण्णा शेट्टी का राजमहल में दाल-चावल से लेकर हीरे-मोती तक सभी कुछ पहुँचाने का दायित्व था। इसके पूर्वज चार पीढ़ियों से यही काम करते आ रहे थे। दस साल पहले जब चिक्कण्णा अपने परिवार का मुखिया बना तबसे राजमहल की सेवा का भार इसके कन्धों पर आ गया था।

राजमहल में सामान पहुँचाने का काम काफी लाभदायक था। इससे भी ज्यादा यह काम प्रतिष्ठा का था। कई बार महल में पैसे की कमी हो जाती थी तब पैसे भी पहुँचाता। यह पूरा-पूरा वापस मिल जाता। दोड्ड वीरराज के समय में भी पर्तंग पेटे के शेट्टी ने इस प्रकार किया था। उसे उन्होंने वापस भी पा लिया था। लिंगराज के समय में ऐसे मौक़े ज्यादा न थे पर फिर भी एक दो बार ऐसा समय आ गया था। चिक्कण्णा शेट्टी महल से पैसे आने में विलम्ब होने पर भी महल के लिए आवश्यक सभी सामान महीनों तक पहुँचाता था। चिक्कवीर-राज के दिनों में ऐसे मौके अक्सर आने लगे।

इसके कई कारण थे। देश का भण्डार अलग और महल का भण्डार अलग था। देश के भण्डार का यजमान बोपण्णा था। महल के खर्च को देखकर उसके भण्डार के लिए आवश्यक धन भिजवाने की प्रथा थी। महल का कामकाज अपने

हाथ में आने के बाद बसव यह कहकर, कि बोपण्णा का भेजा गया धन पर्याप्त नहीं है, राजा के नाम का उपयोग करके नौकरों से महल के लिए सीधे सामान मँगवाने लगा। बोपण्णा के मातहत अधिकारी बसव के नौकरो द्वारा सामान माँगने पर बताया करते कि सामान नहीं है महल को दे दिया गया। देने वालों ने कितना दिया इसे और स्पष्ट रूप से जानने के लिए बोपण्णा के लेखपालों ने राजमहल से हिसाब पूछा। वहाँ से कोई भी ठीक हिसाब न मिला। सौ की जगह बीस पहुँचने के कारण देश का भण्डार सूख गया और महल का भी। इस अवस्था को सम्भालने में बोपण्णा को कम-से-कम दो वर्ष लगे। अन्त में यह आदेश निकाला गया कि राजमहल को जो भी पैसा चाहिए वह बोपण्णा की अनुमति से ही मँगवाया जाये।

महल में यदि थोड़ा हाथ रोककर खर्च किया जाता तो यह प्रबन्ध ठीक-ठीक चल सकता था, परन्तु महल मे राजा का निजी खर्च ही हद से बाहर चला गया था। उसके कुत्तों की सख्या, घोड़ों की सख्या चौगुनी हो गई। उसके कामुक जीवनयापन के कारण स्त्रियों और उनके परिवारों का खर्च ही बहुत बढ़ गया था। साथ ही उसने युवतियों का एक दल ही तैयार कर डाला था। इसके साथ-ही-साथ राजा ने अँग्रेजों के सम्पर्क में आकर फ्रांसीसी शराबों का सेवन शुरू कर दिया था। अँग्रेजों को मडकेरी बुलाना और भोज देना और कीमती शराबो मे सराबोर होना तथा उन्हीं की तरह कपडे पहनना उसकी आदत बन गई थी। उनकी खुशी और अपनी इच्छापूर्ति के लिए स्त्री-पुरुषों के मिलकर नाचने का प्रबन्ध भी करना होता था। यह सब भी खर्च के बहुत बड़े कारण बने। इन अँग्रेजों मे कुछ तो ऊँचे दर्जे के थे, पर कुछ लोग इतने अच्छे न थे। उनमे कुछ औरते उसकी प्रवृत्ति को समझकर उससे दोस्ती गाठकर अँगूठी, बुन्दे, मोतियों के हार आदि गहने हड़प लेती।

राज-भण्डार में धन की कमी होने का एक कारण और था। उन दिनों दोड्ड-वीरराज ने अपनी बेटी के नाम कम्पनी के पास सात लाख रुपये धरोहर के रूप मे रखवाये थे। देवम्माजी को गद्दी से उतारते समय लिंगराज ने यह निधि छुई नहीं। चिक्क वीरराज ने कुछ दिन बाद इसके ब्याज को अपने लिए इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। देवम्माजी इसे रोकने की स्थिति में न थी, फिर भी उसने प्रयास किया। एक-दो वर्ष में वह महामारी से चल बसी। लोगो ने यह समझा कि राजा ने उसे मरवा डाला। जो भी हो ब्याज का पैसा बिना किसी अड़चन के इसे मिलता रहा। इसने दो वर्ष तक उसका इस्तेमाल किया। तीसरे वर्ष कम्पनी के अधिकारियों ने बहाने से यह कहकर कि उस निधि पर राजा का अधिकार नही है, ब्याज देने से इन्कार कर दिया। राजा ने कहा, "बड़े की बेटी का पैसा छोटे के बेटे और उसको नहीं मिलेगा तो क्या रास्ता चलते को मिलेगा?" उसने वाद-विवाद

किया, चिल्लाया, प्रार्थना की; पर कम्पनी वाले नहीं पसीजे। उन्होंने कहा आप अपना मामला न्यायालय में ले जाइये। वहाँ आप यह सिद्ध कर सकें तो हम आपकी बात मान लेंगे। न्यायालय भी कम्पनी का ही था। उसमें ले जाना चाहिए या नहीं इसी सोच-विचार में कुछ दिन बीत गये। इस बीच ब्याज का पैसा कम्पनी के हिसाब से बढ़ने लगा और उसकी आमदनी कम हो गई।

चिक्कण्णा शेट्टी ने कई बार राजा की इच्छानुसार पैसा दिया पर पैसा समय पर वापस नहीं मिला। बसवय्या ने जब दुबारा माँगा तो शेट्टी ने उत्तर दिया, "यह कैसे चलेगा बसवय्या ? पैसा कहाँ से दूँ ? जितना मेरे पास था वह सब महाराज को दे चुका। अब क्या करूँ ?"

बसवय्या : "यह तो मालिक की और आपकी आपस की बात है। मैं क्या बता सकता हूँ ?"

चिक्कण्णा शेट्टी : "मालिक से मेरी तरफ से प्रार्थना कीजियेगा कि उनसे आकर मिलूँगा, जैसा वे कहेंगे वैसा कर दूँगा।"

राजा ने गुस्से से उसे बुलाया नहीं।

चिक्कण्णा शेट्टी को चिन्ता हुई। उसके कुल का यह विश्वास था कि गुरु के घर के साथ तथा राजा के घर के साथ झगड़ा नहीं करना चाहिए। उसकी बेचैनी यह थी कि अब इसे तोड़ना पड़ेगा। उसने बोपण्णा को यह कहला भेजा।

बोपण्णा ने कहा, "नियम के अनुसार भण्डार से जितना राजमहल को भेजना चाहिए उतना भेज दिया गया है। वे लोग इसलिए आपसे धन नहीं माँग रहे हैं कि हमारे द्वारा दिया धन पर्याप्त नहीं है बल्कि हमारा भेजा सारा धन खर्च हो जाने के बाद आपसे पैसा मँगाया है। उसे आपको महल से ही वसूल करना होगा।"

शेट्टी ने बाजार के बुजुर्ग साहूकार पार्शण्णा, रामप्पा, सूरप्पा को बुलाकर कहा, "इस बार कैसे भी हो पैसे की मदद कर देंगे। अगली बार हमसे नहीं हो सकता, ऐसा कह देंगे। आप लोगों का क्या विचार है ?"

ये सभी साहूकार लोग थे। उन्होंने मडकेरी से मंगलूर, हासन आदि प्रदेशों में व्यापार करके धन कमाया था। पीढ़ी-दर-पीढ़ी मडकेरी में रहते हुए जड़ जम गई थी। राजा से बिगाड़कर कुछ भी हो बाजार के मुखिया की बात कैसे टाली जा सकती है, उन्होंने हामी भर दी। पैसा दे दिया। चिक्कण्णा शेट्टी ने वह पैसा राजमहल भेज फिलहाल तसल्ली की।

20

उनके दुर्भाग्य से उनका व्यवहार राजमहल में सामान पहुँचाने और पैसा देने तक ही समाप्त नहीं हुआ। इस वर्ष एक और मुसीबत आ खड़ी हुई।

शेट्टी का परिवार काफी बड़ा था। उसके स्वर्गीय बड़े भाई के पुत्र का उल्लेख पहले ही हो चुका है। यह सारा परिवार एक ही घर में था। उसकी छोटी बहन की लड़की का विवाह उसके लड़के से हो चुका था। इस बार ये लोग गंगा स्नान के अवसर पर तल कावेरी गये। यह लड़की भी उस परिवार के साथ थी।

राजा ने उसे वहाँ देखा। वह अठारह वर्ष की नवयुवती थी। उसकी देह सोने से गढ़ी हुई सी थी। राजा को उसके बारे में कौतूहल उत्पन्न हुआ। उसने बसव को यह पता लगाने को कहा। यह कौन है, किस घर की है? बसव ऐसे विषयों में पहले ही बड़ा होशियार था। उसने इसे पहले ही देख लिया था। वह चाहता था कि यह लड़की राजा की निगाह में न आये। किसी ढंग से वह स्वयं शेट्टी को सूचित करना चाहता था, परन्तु दुर्भाग्य से राजा की नज़र उस पर पड़ ही गयी। राजा ने जब उसकी बात उठाई तब बसव बोला, "पता लगाता हूँ मालिक। चार दिन ठहरिये तो अच्छा होगा।

राजा : "अच्छा बुरा तुझे क्या पता रे। जो कहता हूँ सो कर। ज्यादा बात न कर।"

"यह साहूकार की बहू है। पहले उसका कर्जा है जिससे वह बेजार है। अब यह कह दें तो ठीक न होगा।"

"महल में रानी की सेवा में लड़की को भेजने के लिए कहने में क्या दोष है!"

"सेवा के लिए कहें या कुछ और, उनके लिए एक ही बात है मालिक। उन्हें पता है कि यह मालिक की इच्छा है। शेट्टी मान भी जाये तो बेटा न मानेगा, अगर वह मान जाये तो उसकी माँ नहीं मानेगी, बात बढ़ जायेगी।"

"पैसा माँगने की बात पर शेट्टी ने अकड़ दिखाई थी, उसने अपना साहूकारपन और बड़प्पन हमें दिखाया था। तब की अकड़ का नतीजा अब भुगतने दो। यह बात उसे सुनाओ और उसे शर्मिंदा करो।"

बसव कुछ ज्यादा समझाने और अकल सिखाने की स्थिति में न था, 'जो आज्ञा' कहकर शेट्टी के पास गया। शेट्टी उसे देख, फिर पैसे माँगने तो नहीं आया सोचकर आतंकित हुआ। इस बार कैसे पार लगेगी, यह सोचने लगा। भीतर की व्याकुलता को छिपाकर धीमे स्वर में उसने कहा, "आइये बसवय्याजी, मालिक ठीक-ठाक तो हैं?"

बसवय्या : "ठीक हैं। मैं इस समय उनके पास से नहीं आया। रानी माँ ने भेजा है। इसलिए आया हूँ।"

"रानी माँ ने भेजा है! उनकी क्या आज्ञा है?"

"उनकी इच्छा है कि आपकी बहू चार दिन आकर महल में राजकुमारी के साथ रहे।"

शेट्टी का दिल धक् रह गया। वह जानता था इसका मतलब क्या है? ग़ुहर

की हो या गांव की, लड़कियों के बारे में यह राजा और उसका दुष्ट मन्त्री कैसे विचार रखते हैं यह हरेक को पता था। उसे भी पता था। परन्तु अब तक राज-महल के साथ मेलजोल रखने वाले बड़े घरानों को उसने नहीं छेड़ा था। ऐसे बड़े घरानों में शेट्टी का घर भी एक था। यह मेलजोल और बड़प्पन अब उसकी रक्षा नहीं कर पायेंगे। शेट्टी समझ गया। यह मुसीबत अब उसे भी नहीं छोड़ेगी यह देखकर उसे ज़रा आश्चर्य हुआ।

यह अपने भय और आश्चर्य को छिपाकर जल्दी से बोला, "अच्छी बात है, ज़रूर आयेगी। मैं स्वयं बता दूंगा।"

बसव : "कल भेज देंगे, कह दूं?"

शेट्टी : "क्यों नहीं? मैं स्वयं बता दूंगा।"

बसव वापस चला गया। शेट्टी ने तुरन्त अपनी पत्नी को बुलाकर कहा कि बेटे और बहू को तुरन्त अरकलगूड जाना है। दो घंटे बीतते-बीतते बेटा, बहू और दो सेवक टट्टुओं पर मडकेरी से रवाना हो गये।

21

उस संध्या को चिक्कण्णा शेट्टी राजमहल को पहुंचाने वाली सामग्री को लेकर रानी गौरम्मा से मिलने गया। वहां जाकर उसने कहला भेजा कि रानी साहिबा से मिलना है। रानी ने उसको बुलवाया और बैठने को आसन दिखाकर पूछा, "क्या बात है शेट्टीजी?"

"कुछ दिनों में बेंगलूर के अंग्रेज़ों को एक भोज देना है। सुना है कि उसके लिए कुछ सामान चाहिए। अंग्रेज़ों के भोज के लिए आवश्यक सामग्री बेंगलूर से मंगवानी पड़ती है। कुछ पहले पता चल जाये तो मंगवाने में सुविधा होगी। इसी बात की प्रार्थना करने के लिए आया था।"

उसकी बात के ढंग से रानी समझ गई कि इस उद्देश्य से यह नहीं आया है। इन आश्रित लोगों का विचार है कि बात को सीधा कहना असभ्यता है। एक काम के लिए आना, इधर-उधर की चार बातें करना, उसी सिलसिले में बीच में या अन्त में अपनी बात कहना। रानी ने कहा, "अच्छी बात है बसवय्या को कहला भेजेंगे।"

"अच्छी बात है अम्माजी। सुना है कि आपकी आज्ञा हुई है कि आपके यहां सेवा करने के लिए हमारे घर से किसी एक लड़की की आवश्यकता है। क्या काम है? किसे भेजूं? यही पूछने के लिए आया था।"

रानी को उसका मतलब समझ में आ गया। यह राजमहल के लिए अनीति की बात है। अपने मन की बात को न जताकर पति की मर्यादा की रक्षा करते

हुए उसे इस बात को सभालना था।

"हमने कहा था—पुट्टम्माजी के साथ खेलने के लिए कोई सहेली चाहिए। वह बात आप तक पहुँची होगी। फिर कहला भेजूँगी तब तक किसी को भिजवाने की आवश्यकता नहीं है।"

"जो आज्ञा, अम्माजी!"

इस प्रकार अपने लाये सामान की बात कहने का नाटक करके शेट्टी वहाँ से रवाना हुआ।

दूसरे दिन शेट्टी ने किसी को नहीं भेजा। इसीलिए बसवय्या उसके घर आया। शेट्टी ने उसका स्वागत करते हुए केवल अंग्रेजो को दिये जाने वाले भोज के बारे मे बात की मानो उसे और कोई पुरानी बात याद न हो। उसका उत्तर देने के बाद बसवय्या ने पूछा, "बहू को कब भेजेंगे?"

"गाँव से आते ही उसे भिजवा दूँगा।"

"किस गाँव से? कल यहीं थी न?"

"घर में कौन लड़की है और कौन-सी नहीं है? क्या ये बातें सबके साथ करने की होती हैं बसवय्या? रानी माँ ने भेजने के लिए कहा है। भेज दूँगा। कब भेजूँ पूछ रहे हैं? बता दीजिए कि आने पर भेज दूँगा।"

"तो मुझे स्पष्ट रूप से बताना पड़ेगा? राजा की आज्ञा है कि वह उनके परिवार में रहे।"

"अय्यो यह तो बड़ी इज्जत की बात है, भिजवायेंगे। उन्हें सूचित कीजिये।"

"यह रानीमाँ की बात नहीं है। इसे स्पष्ट समझिए, शेट्टीजी। उनसे इसका उल्लेख न करें।"

"अय्यो बसवय्या! कल यह बात नहीं कहनी थी? मैंने अम्माजी से इसका उल्लेख कर दिया।"

"तो यह कहिए कि आपको पता नहीं था कि यह महाराज की आज्ञा है।"

"बसवय्या, हमें कुछ बातें समझ में आती है और कुछ नहीं। यह कहने बैठूँ कि मैं उसे जानता हूँ, इसे नहीं जानता हूँ, तो उसे सुनने के लिए आपके पास समय कहाँ? मुझे भी काम है। महाराज की सेवा मे लगे आपको तो सिर खुजलाने के लिए भी समय नहीं है। महाराज की आज्ञा सिर आँखों पर; उसका पालन करना हमारी जिम्मेदारी है।"

शेट्टी के लड़की न भेजने पर राजा ने सुबह बसव से गुस्से में आकर कहा, "कैसा मन्त्री है रे तू, लँगड़े? तेरा मन्त्री-पद ही लँगड़ाता है।" शेट्टी के इस व्यवहार से बसव को भी आश्चर्य हुआ। उसने सोचा, इसमें यह साहस कैसा! राजा की आज्ञा का पालन किये बिना मडकेरी के बाजार में क्या, कोडग के किसी कोने में भी रहना संभव नहीं है यह शेट्टी जानता है। फिर भी उसने आज्ञा-

पालन नहीं की है। इसमें कोई संदेह नहीं कि शेट्टी जिद्दी है।

बसव के मन में और एक विचार उत्पन्न हुआ : साधारण रूप से विरोध न करने वाला यह व्यक्ति विरोध करने खड़ा हो जाये तो हमारे दुर्भाग्य की कोई सीमा नहीं है। सहन करने वाली जनता सहन करते-करते जब ऊब जाती है तो इसी प्रकार विरोध में खड़ी हो जाती है। ऐसे मौके पर हम ही लोगों को सहन कर लेना पड़ता है। यदि ऐसा न हो तो स्पष्ट रूप से लड़ने के लिए तैयार होना पड़ता है। जो कुछ होगा उसका मुकाबला करना पड़ेगा।

बसव को यह समझ में नहीं आ रहा था कि राजा को 'जो होगा देखा जायेगा' कहे या 'फिलहाल चुप हो जाओ' कहे। वह यह सोचते हुए महल लौट रहा था कि यह सब सुनने पर राजा को बड़ा क्रोध आयेगा।

22

बसव ने आकर जब शेट्टी की कही सब बातें राजा को बतायीं तो वीरराज को असीम क्रोध आया। वह गरजने लगा "ओ गधे! महल की सेवा के लिए कहकर वह लड़की शहर में है या नहीं यह पता लगाने की योग्यता तुझ में नहीं?"

"इतनी तो है, मालिक। शेट्टी ने बहू को दूसरी जगह भेज दिया होगा। मेरे कहते ही डर के मारे उसे यहाँ से भगा दिया है।"

"उसने भगा दिया, तूने भागने क्यों दिया उल्लू?"

"मैं उल्लू हूँ ही मालिक, मैंने सोचा भी नहीं था कि वह ऐसा कर लेगा।"

"सो—चा नहीं। तो तू कैसा मन्त्री है? शेट्टी के झांसे में आ गया! मन्त्री बन जाने से अकल बढ़ जाती है क्या? महल का खाना खा-खा कर तेरी अक्ल मोटी हो गई है।"

"हाँ मालिक। शेट्टी के घर का खाना ही अकल को तेज करता है।"

"लो—लंगड़े! मैंने कुछ कहा तो तू भी बकवास करके समझता है कि तू मेरे साथ निभ जायेगा, यह मत समझ। काम बिगाड़ दिया, जाकर ठीक कर।"

"कोशिश करता हूँ, मालिक।"

"जो भी हो यह शेट्टी बहुत सिर चढ़ गया है। कल उसे आने को कहो। उससे दो बातें करनी हैं।"

"उसके लिए दो दिन ठहरना ठीक होगा, मालिक। कल ही पूरी करने को सोचें, तो बात बिगड़ सकती है।"

"जो कहता हूँ, वह कर। ज्यादा जवाब न दे। तेरी अकल कितनी लम्बी चौड़ी है पता चल गया। लड़की तो खिसक गई, कहीं अब बूढ़ा न खिसक जाये, खबरदार!"

"जो आज्ञा मालिक।"

बसव ने तभी शेट्टी को बुला भेजा। "अंग्रेजों के भोज के बारे में महाराज आप से मिलना चाहते हैं। बिना चूके कल जरूर आइये।" यह बात जब महल के सेवक ने कही तो शेट्टी समझ गया कि यह बहू की बात का ही टंटा है। अब राजा के साथ उपाय से निवटना सम्भव नहीं। बात स्पष्ट करनी पड़ेगी। उसने यह निश्चय कर लिया कि या तो बात ठीक करनी पड़ेगी या फिर मडकेरी से सदा के लिए चला जाना पड़ेगा।

23

शेट्टी शहर छोड़कर भाग न जाये, इस डर से बसव ने उसके आसपास आदमी लगा दिये थे। सतर्कता की आवश्यकता थी। पर शेट्टी ने भागने का विचार नहीं किया। उस रात को पार्शण्णा, रामप्पा तथा सूरप्पा से गुप्त रूप से मिला और अपने संकट का विवरण दिया, पत्नी को भी सारी बातें समझाईं, गृह देवता के सामने प्रार्थना की—'मेरे भगवान आप ही सब ठीक करना।' अगले दिन राजा से मिलने गया।

राजा हमेशा की तरह नशे में धुत बैठा था। शेट्टी ने आकर हाथ जोड़कर 'दण्डवत करता हूँ महाराज' कहा, तो भी उसके प्रति नमस्कार किये बगैर ही राजा बोला, "बैठो, शेट्टी?"

"हाँ मालिक, अंग्रेजों के भोज के लिए कुछ मँगवाने की आज्ञा हुई थी। क्या मँगाना है यह पूछने आया था।"

"ऐ शेट्टी, तू हमारे साथ शेट्टीगिरी करता है? क्या तुम्हें पता नहीं कि हमने तुम्हें किसलिए बुलाया है?"

"पता हो सकता है मालिक। पर कहना नहीं चाहिए। बड़ों के मन की बात बड़ों के मुँह से ही सुनना ठीक रहता है। दूसरों के द्वारा सुनना ठीक नहीं।"

"तो तुम्हारी बहू कहाँ है?"

"अरकलगूड गयी है, मालिक!"

"कब गयी?"

"परसों।"

'हमारे यहाँ से संदेश मिलने के बाद?"

"जी हाँ।"

"इतनी हिम्मत तुम्हारी? हमारा संदेश मिलने के बाद भी तुमने उसे यहाँ से दूर भगा दिया।"

"भगाने की क्या जरूरत थी मालिक? महल में आने के बाद पता नहीं

कितने दिन ठहरना पड़ता। उसने अपने सम्बन्धियों से मिल आने की बात कही। मैंने कहा मिल आ।"

"तेरी बहानेबाजी मेरी समझ में नहीं आती शेट्टी!"

"मालिक की समझ में न आने वाली बात कौन-सी हो सकती है। बेचने वाले दानों में, यदि सौ अच्छे हों तो दो घुने भी होते हैं। मुंह से निकलने वाली बातें भी ऐसी ही होती हैं। दो-एक बहाने भी रहते हैं। सुनने वालों को उसे मानना पड़ता है।"

"तो यह कहो कि तुम अपनी बहू बुलवाओगे?"

"इसमें क्या हानि है? मालिक की बेटी पुट्टम्मा अकेली है। उनकी एक बड़ी बहन आ जायेगी! आपकी बेटी बन जायेगी। पुट्टम्माजी घर में नहीं हैं क्या? क्या हमें डर है कि आप उसका कुछ बुरा करेंगे। पुट्टम्माजी की बड़ी बहन को उनके पास ही भेज दूंगा और तसल्ली से रहूंगा।"

"क्या यह बात सच है!"

"अगर यह बात सच है तो मैं शेट्टी हूं और आप मालिक हैं। नहीं तो मैं शेट्टी नहीं और आप मालिक नहीं।"

"औं—! !—मैं मालिक नहीं?"

"यह बात नहीं महाराज। महल में जो जवान बच्ची आयेगी, वह यदि राजा की बेटी की तरह रहती है तो गांव गांव है, महल महल है, शेट्टी शेट्टी है, मालिक मालिक हैं। अगर ऐसे न रहे तो यह सब कुछ नहीं है।"

"बहुत अकड़कर बातें कर रहे हो शेट्टी। ऐसे हमसे उलझकर तुमने क्या समझा है? क्या बर्तक पेटे का शेट्टी जिन्दा रह सकता है?"

"मैं तो आपके हाथ में मां की गोद में बच्चे की तरह हूं। यदि मां बच्चे को छाती से लगाकर दूध पिलाये तो बच जायेगा। और गर्दन मरोड़कर नीचे फेंक दे तो चिल्लायेगा और मर जायेगा। कितनी ही पीढ़ियों से राजा के आश्रय में हम फले फूले और अब यदि वह छाया नहीं मिली तो उसके नीचे रहने वाले धूप से जल जायेंगे।"

"ठीक है। तो अब जलने को तैयार हो जाओ।"

"अच्छी बात है मालिक, तैयार होता हूं और दूसरों को भी तैयार होने को कहता हूं।"

"तो तुम्हारा मतलब यह है कि तुम जनता को मेरे विरोध में खड़ा करोगे?"

"मैं क्या खड़ा करूंगा मालिक? आप स्वयं ही खड़ा कर रहे हैं। मेरे मुंह से ऐसी बातें निकलवाने वाले किसको जीने देंगे। जब सैकड़ों उजड़ रहे थे तो मैं केवल अपनी ही क्यों सोचता था। अपना ही ध्यान करते-करते दूसरों का दुख अनुभव नहीं कर पाया। अब प्रभु मुझे ही कष्ट देकर कह रहे हैं कि तुझे जब

तक लपटें छुयेंगी नहीं तब तक जलन का पता नहीं चलेगा। जलायेंगे तब भी आपका हूँ, पालेंगे तब भी आपका ही हूँ। जो भी आयेगा वह सहूँगा।"

इतने में बसव राजा के पास आकर बोला, "शेट्टी फिर आ जायेंगे। अब महाराज थक गये हैं।"

वीरराज भी इतनी बात करके थक गया था। शेट्टी जैसे नरम आदमी को विरोध में खड़ा हो गया देख उसका साहस घट गया था। बीच में बसव का यह कहना उसे अच्छा ही लगा। वह 'ठीक है' कहकर अपने बायें हाथ से सिर टेककर बैठ गया। बसव ने शेट्टी को जाने का इशारा किया। शेट्टी राजा को नमस्कार करके द्वार की ओर बढ़ गया। राजा ने उस ओर दृष्टि उठाकर देखा तक नहीं।

24

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि राजा के साथ इतनी बातें करते समय शेट्टी ने यह सोच लिया था कि अब इनके साथ निभाव नहीं होगा। दिया पैसा आता नहीं दिखता, आने की सूचना भी नहीं, और भी पैसे दिये बिना, सामान भेजे बिना इनके साथ निभना संभव नहीं। कष्ट हो या कुछ और जैसे-तैसे चला भी लूं तो भी मान-मर्यादा अब सुरक्षित रहने की आशा नहीं। इस महल या साहूकार-पना करके अब मिलना क्या है?

चिक्कण्णा शेट्टी का परदादा साठ साल पहले अरकलगूड से मडकेरी में आकर बस गया था। उन दिनों मैसूर अव्यवस्थित स्थिति में था और मडकेरी सुरक्षित लगता था। इसका परदादा बुद्धिमान व्यक्ति था। उसने लोगों का विश्वास पाया और अपने विनयशील स्वभाव से राजमहल तक पहुँच गया था। मरते समय बेटे के लिए थोड़ी संपत्ति और यथेष्ट मान छोड़ गया था। बेटा भी पिता के पद-चिह्नों पर चलकर लिंगराज के समय में वर्तक पेटे का मुखिया बन गया। व्यापार उसके बेटे के हाथ में था। वीरराज के राजा बनने तक बाप बेटे दोनों फले। चिक्कण्णा शेट्टी और उसका भाई पेटे के मुखिया बने। हाल ही में बड़े भाई की मृत्यु हो जाने से घर के बड़प्पन की रक्षा का दायित्व इसी पर आ पड़ा था।

बहुत दिन से मडकेरी में रहने पर भी अरकलगूड से शेट्टी के घराने के सम्बन्ध टूटे न थे। व्यापार के कारण नहीं अपितु रोटी-बेटी के लेन-देन से रिश्ते-दारी बनी हुई थी। इस घराने के लिए अरकलगूड एक और घर के समान ही था। इससे पहले शेट्टी को कभी ऐसा नहीं लगा कि उसे कभी मडकेरी छोड़ना पड़ेगा। बहू-बेटे को अरकलगूड भेजते समय उसके मन में शंका उठी अवश्य थी कि कहीं मडकेरी छोड़ना तो नहीं पड़ेगा? आज राजा के साथ इतना वाद-विवाद होने पर यह शंका फिर उत्पन्न हुई। अन्त में अब निश्चय हो ही गया।

उसने सोचा—राजा के साथ इतनी बात हो जाने के बाद क्या वह मुझे जिन्दा छोड़ेगा? राजा का मन चाहे जैसा भी हो, पर यह लँगड़ा उसकी दुष्टता का मूर्तरूप होकर उसकी बगल में खड़ा है। क्या वह मुझे छोड़ देगा? बात अब बीच में खत्म होती नजर नहीं आती। बात करनी थी कर दी। भगवान ने कह-लाई मैंने कह दी, अब इसके परिणाम से कैसे बचा जा सकता है? अब यही एक चिन्ता है। संकट में डालने वाला भगवान ही संकट से पार लगायेगा।

यह सब सोच-विचार कर शेट्टी ने तुरन्त बोपण्णा से मिल सारी बातें उसके सामने रखकर उससे निवेदन कर आगे का रास्ता तय करने का निश्चय किया। घर की तरफ चलते-चलते थोड़ा आगे जाकर दो गलियों का चक्कर लगाकर वह बोपण्णा के घर गया।

बोपण्णा का शेट्टी से अच्छा परिचय था। बोपण्णा धनाढ्य व्यक्ति था। उसके व्यापार के सारे काम शेट्टी द्वारा ही होते थे। इसके अतिरिक्त बोपण्णा एक बड़ी-सी रिश्तेदारी वाला तक्क था। उन सब रिश्तेदारों के भी वस्त्राभूषण इसी शेट्टी के द्वारा खरीदे जाते थे। शेट्टी और बोपण्णा दोनों ही सच्चे आदमी थे। दोनों ही सच्चाई से चलते थे और इसीसे उन्होंने सुख का अनुभव किया था। इसी कारण दोनों में परस्पर गौरव और आदर की भावना भी थी।

शेट्टी के आने का समाचार पाकर बोपण्णा द्वार पर आया। उसने इसे स्नेहपूर्वक भीतर ले जाकर पास बिठाया। "कहिए मेरा कितना लाभ रहा? धान के खाते में आप कितना छूट मेरे लिए देंगे?" उसने मजाक किया।

"घर छोड़कर सब समेट-समाट कर चलने के दिन आ गये हैं। आपद्बंधु के पास यही कहने आया हूँ। भगवान आके रूप में मेरी रक्षा करेंगे यह सोचकर यहाँ आया हूँ।"

"अरे! क्या बात है? राजा ने कुछ किया है या लंगड़े ने?"

"राजा ने ही किया है। लँगड़ा तो उनके हाथ का कारकुन है। सौ घरों की इज्जत मिटा चुके हैं। कल मेरे घर का निशाना था। मैंने निगलने से इन्कार कर दिया तो मुझे मिलने को बुलवाया था। थोड़ी देर पहले वहीं गया था। तू-तड़ाक से बोला और मुझसे एक कुत्ते से भी बदतर व्यवहार किया। अब मडकेरी में रहना ही नहीं चाहिए। मुझे लगा कि जिन्दा भी रहने देंगे या नहीं। डर से मेरी बुद्धि भी खराब हो गयी और मैंने कड़ुवी भी कह दी।"

"आपके घर की इज्जत पर हाथ डालने का मतलब?"

शेट्टी को कुछ बताने में संकोच नहीं हुआ। जो कुछ भी उस पर बीती थी सब रत्ती-रत्ती खोलकर कह दी। अपनी कही कड़वी बातें भी बता डालीं। "मैं स्वयं यह नहीं कहता कि मेरा व्यवहार ठीक ही था। अगर मैं ठीक था तो प्रसन्नता की बात है। यदि नहीं तो मेरा दोष है। अपनी झोली में छिपा लीजिये। मुझे

अपनी चिन्ता नहीं; बाल बच्चों को हानि नहीं होनी चाहिए। घर-बार छोड़ना पड़ेगा, कोई बात नहीं, गहना गुरिया बचाकर अरकलगूड जाने का प्रबन्ध करूँ। ज़रा सोच कर बताइये!"

25

शेट्टी की रामकहानी सुनकर बोपण्णा का कलेजा फुक हो गया। राजा से वह बहुत दिन से असंतुष्ट था। वास्तव में उसका राजा बनना ही बोपण्णा की इच्छा के विरुद्ध था। परन्तु बारह वर्ष पूर्व जब लिंगराज मरने लगा तब सब बुजुर्गों को एकत्रित करके बेटे को राजा बनाने की बात मनवा ली। बहुमत का विरोध न कर बोपण्णा इससे सहमत हो गया। राजा की दुष्टता बढ़ी और वह उपद्रव की मूर्ति बन गया। बोपण्णा को उससे बार-बार उलझना पड़ा। इसलिए मन्त्री राजा का प्रतिपक्षी हो गया है यह बात प्रसिद्ध हो गयी। शेट्टी की कहानी सुनकर उसे ऐसा लगा कि अब राजा का बना रहना ठीक नहीं।

एक क्षण चुप रहकर वह शेट्टी से बोला, "मुझे जो कुछ कहना है थोड़ी देर बाद कहूँगा। आपको क्या सूझता है वह बताइए। जो भी समझ में आता है उसे कहने में हिचकिचाइये नहीं। मैं प्राण दे सकता हूँ; पर आपको संकट में नहीं देख सकता। लीजिये, वचन देता हूँ।" कह उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया।

शेट्टी ने अपना हाथ आगे बढ़ाकर उसके हाथ पर रख दिया। "मैंने इधर आते हुए चिन्ता में डूबकर क्या सोचा था वह बताता हूँ। आपके साहस देने पर संकोच कैसा?"

"कहिये।"

"मैं तो डूब ही गया। मैंने बाजार के चार साहूकारों से पैसा लेकर महल की सेवा की है। मार्वण्णा, रामप्पा, सूरप्पा ने एक लाख से भी ऊपर धन मुझे दे रखा है। वे जानते हैं कि यह पैसा राजा के लिए है। पर यह तो मेरी जिम्मेदारी पर दिया गया पैसा है। वह मुझे चुकाना होगा। अब घर जाता हूँ। उनको बुलाकर सारी स्थिति बताकर जितना बन पायेगा उतना दे दूँगा। शेष को बाद में चुकाकर ऋणमुक्त होऊँगा। घर के लोगों को अरकलगूड भेजने का प्रबन्ध करूँगा। फिलहाल मेरा यही विचार है।"

"और आप?"

"मुझे भी जाना है पर राजा मुझे जाने न देंगे। इसलिए मुझे यहीं रहकर जो होगा भुगतना पड़ेगा।"

"आपकी यह बात ठीक है शेट्टीजी? आपका चाहे जो कुछ बने आप अपने घर वालों को तो बचा लेंगे। मर्तक पेटे के हजारों लोगों का क्या होगा? आप

उसने सोचा—राजा के साथ इतनी बात हो जाने के बाद क्या वह मुझे जिन्दा छोड़ेगा ? राजा का मन चाहे जैसा भी हो, पर यह लँगड़ा उसकी दुष्टता का मूर्तरूप होकर उसकी बगल में खड़ा है। क्या वह मुझे छोड़ देगा ? बात अब बीच में खत्म होती नजर नहीं आती। बात करनी थी कर दी। भगवान ने कहलाई मैंने कह दी, अब इसके परिणाम से कैसे बचा जा सकता है ? अब यही एक चिन्ता है। संकट में डालने वाला भगवान ही संकट से पार लगायेगा।

यह सब सोच-विचार कर शेट्टी ने तुरन्त बोपण्णा से मिल सारी बातें उसके सामने रखकर उससे निवेदन कर आगे का रास्ता तय करने का निश्चय किया। घर की तरफ चलते-चलते थोड़ा आगे जाकर दो गलियों का चक्कर लगाकर वह बोपण्णा के घर गया।

बोपण्णा का शेट्टी से अच्छा परिचय था। बोपण्णा धनाढ्य व्यक्ति था। उसके व्यापार के सारे काम शेट्टी द्वारा ही होते थे। इसके अतिरिक्त बोपण्णा एक बड़ी-सी रिश्तेदारी वाला तक्क था। उन सब रिश्तेदारों के भी वस्त्राभूषण इसी शेट्टी के द्वारा खरीदे जाते थे। शेट्टी और बोपण्णा दोनों ही सच्चे आदमी थे। दोनों ही सच्चाई से चलते थे और इसीसे उन्होंने सुख का अनुभव किया था। इसी कारण दोनों में परस्पर गौरव और आदर की भावना भी थी।

शेट्टी के आने का समाचार पाकर बोपण्णा द्वार पर आया। उसने इसे स्नेहपूर्वक भीतर ले जाकर पास बिठाया। "कहिए मेरा कितना लाभ रहा ? धान के खाते में आप कितना छूट मेरे लिए देंगे ?" उसने मजाक किया।

"घर छोड़कर सब समेट-समाट कर चलने के दिन आ गये हैं। आपद्बंधु के पास यही कहने आया हूँ। भगवान आके रूप में मेरी रक्षा करेंगे यह सोचकर यहाँ आया हूँ।"

"अरे ! क्या बात है ? राजा ने कुछ किया है या लंगड़े ने ?"

"राजा ने ही किया है। लँगड़ा तो उनके हाथ का कारकुन है। सौ घरों की इज्जत मिटा चुके हैं। कल मेरे घर का निशाना था। मैंने निगलने से इन्कार कर दिया तो मुझे मिलने को बुलवाया था। थोड़ी देर पहले वहीं गया था। तू-तड़ाक से बोला और मुझसे एक कुत्ते से भी बदतर व्यवहार किया। अब मडकेरी में रहना ही नहीं चाहिए। मुझे लगा कि जिन्दा भी रहने देंगे या नहीं। डर से मेरी बुद्धि भी खराब हो गयी और मैंने कड़वी भी कह दी।"

"आपके घर की इज्जत पर हाथ डालने का मतलब ?"

शेट्टी को कुछ बताने में संकोच नहीं हुआ। जो कुछ भी उस पर बीती थी सब रत्ती-रत्ती खोलकर कह दी। अपनी कही कड़वी बातें भी बता डालीं। "मैं स्वयं यह नहीं कहता कि मेरा व्यवहार ठीक ही था। अगर मैं ठीक था तो प्रसन्नता की बात है। यदि नहीं तो मेरा दोष है। अपनी झोली में छिपा लीजिये। मुझे

अपनी चिन्ता नहीं; बाल बच्चों को हानि नहीं होनी चाहिए। घर-बार छोड़ना पड़ेगा, कोई बात नहीं, गहना गुरिया बचाकर अरकलगूड जाने का प्रबन्ध करें। जरा सोच कर बताइये!"

25

शेट्टी की रामकहानी सुनकर बोमण्णा का कलेजा फुक हो गया। राजा से वह बहुत दिन से असंतुष्ट था। वास्तव में उनका राजा बनना ही बोमण्णा की इच्छा के विरुद्ध था। परन्तु बारह वर्ष पूर्व जब लिंगराज मरने लगा तब सब बुजुर्गों को एकत्रित करके बेटे को राजा बनाने की बात मनवा ली। बहुमत का विरोध न कर बोमण्णा इससे सहमत हो गया। राजा की दुष्टता बढ़ी और वह उपद्रव की मूर्ति बन गया। बोमण्णा को उससे बार-बार उलझना पड़ा। इसलिए मंत्री राजा का प्रतिपक्षी हो गया है यह बात प्रसिद्ध हो गयी। शेट्टी की कहानी सुनकर उसे ऐसा लगा कि अब राजा का बना रहना ठीक नहीं।

एक क्षण चुप रहकर वह शेट्टी से बोला, "मुझे जो कुछ कहना है थोड़ी देर बाद कहूँगा। आपको क्या सूझता है वह बताइए। जो भी समझ में आता है उसे कहने में हिचकिचाइये नहीं। मैं प्राण दे सकता हूँ; पर आपको संकट में नहीं देख सकता। लीजिये, वचन देता हूँ।" कह उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया।

शेट्टी ने अपना हाथ आगे बढ़ाकर उनके हाथ पर रख दिया। "मैंने इधर आते हुए चिन्ता में डूबकर क्या सोचा था वह बताता हूँ। आपके साहस देने पर संकोच कैसा?"

"कहिये।"

"मैं तो डूब ही गया। मैंने बाजार के चार साहूकारों से पैसा लेकर महल की सेवा की है। पार्वण्णा, रामण्णा, मूरण्णा ने एक लाख से भी ऊपर धन मुझे दे रखा है। वे जानते हैं कि यह पैसा राजा के लिए है। पर यह तो मेरी जिम्मेदारी पर दिया गया पैसा है। वह मुझे चुकाना होगा। अब घर जाता हूँ। उनको बुलाकर सारी स्थिति बताकर जितना बन पायेगा उतना दे दूँगा। शेष को बाद में चुकाकर ऋणमुक्त होऊँगा। घर के लोगों को अरकलगूड भेजने का प्रबन्ध करूँगा। फिलहाल मेरा यही विचार है।"

"और आप?"

"मुझे भी जाना है पर राजा मुझे जाने न देंगे। इसलिए मुझे यहीं रहकर जो होगा भुगतना पड़ेगा।"

"आपकी यह बात ठीक है शेट्टीजी? आपका चाहे जो कुछ बने आप अपने घर वालों को तो बचा लेंगे। वर्तक पेटे के हजारों लोगों का क्या होगा? आप

मुखिया हैं, उन्हें कोई रास्ता नहीं बतायेंगे ?

"कौन-सा रास्ता बोपण्णाजी ? बाड़ ही जब खेत को खाने लगें तो खेत बेचारा क्या खा के जिन्दा रह सकता है ?"

"खेत को चाहिए वह बाड़ को मना करे।"

"आप ऐसी बात कह सकते हैं। क्या हम लोग कह सकते हैं बोपण्णाजी ?"

"अगर नहीं कहेंगे तो बचेंगे कैसे ? शेट्टी लोग, वर्तक पेटे के लोग क्या कहते हैं ? पूछकर पता लगाइये। अगर वे इस राजा को नहीं चाहते हैं तो बताइये।

"बताऊँ ?"

"बाजार के लोग अगर अपनी बात कहेंगे तो राजा को सोचने पर बाध्य होना पड़ेगा। इन सब बातों की जाँच-पड़ताल किये बिना आपका गठरी समेट कर अरकलगूड चले जाना, ये बात मुझे जँची नहीं।" क्या साँप को घर में घुस आया देखकर दूसरा घर ढूंढना अकलमंदी है ? उसे निकलने को मंत्र से पकड़वाना है या और कुछ करना है, या फिर भगा देना है या मार डालना है—इनमें कुछ तो करना ही पड़ेगा। आपके पास तो अरकलगूड है, हमारे लिए कौन-सी जगह है, शेट्टीजी ?"

"आपको छूने की हिम्मत किस में है ? जो बात मुझसे कही गयी है क्या महाराजा वह आपसे कह सकेंगे ?"

"छाती तक चढ़ा विष क्या गले को नहीं पकड़ सकता ? या फिर गले को पकड़ने वाला क्या सिर पर नहीं चढ़ पायेगा ? अगर बुद्धि अपने वश हो तो यह लड़की कौन है ? वह लड़की कौन है ? अपनी और पराई कौन-सी है ? इन सब का ज्ञान रहता है। अकल ठिकाने न होने पर माँ और वेश्या में फर्क ही नजर नहीं आता। जिस राजा की अकल ही ठिकाने नहीं है उसके लिए शेट्टी क्या और मंत्री क्या। आज जो कुछ आपके साथ हुआ वह कल हमारे साथ होगा। हम देश नहीं छोड़ सकते। मटकेरी जैसा राजा का है वैसा हमारा भी है। हम क्या करें। हमें यहीं रहना है, कोई दूसरा स्थान नहीं है।"

"अगर आप ऐसा करने को कहते हैं तो अवश्य करूँगा। सब लोगों की क्या राय है यह जानकर आपको बताऊँगा।"

"ऐसा ही कीजिये। साथ वालों को बुलाकर उनके साथ विचार-विमर्श कीजिये और उनकी राय मुझे बताइये। अगला रास्ता सोचेंगे।"

शेट्टी कुछ सोचकर बोला, "अच्छी बात है बोपण्णाजी। ऐसा ही करूँगा। आज कल में आपसे फिर मिलूंगा।"

बोपण्णा को लगा यह देश के जीवन में एक संधिस्थल है। उसने गंभीरता से कहा, "अच्छी बात है, शेट्टीजी।"

शेट्टी उनसे विदा लेकर घर की ओर चल पड़ा।

26

घर आते ही शेट्टी ने पार्शण्णा को बुलवा भेजा। उसे सब बातें बतलाकर पूछा, 'आगे क्या करें?' साथ ही यह निश्चय किया कि रामप्पा और सूरप्पा को बुलाकर सलाह करनी चाहिए।

वे भी आये। चारों ने बैठकर देश की स्थिति, जनता का मन, राजा का बलाबल, बोपण्णा की शक्ति, अगला कदम, उससे हानि लाभ, इन सब पर सोच-विचार किया। ये चारों मित्र आपस में लुकाव-छिपाव नहीं रखते थे। चारों एक मन होकर चलते थे। चार घड़ी तक परिस्थिति को उलट-पलट, निरीक्षण करने के बाद पार्शण्णा बोला, "बोपण्णा मंत्री को राजा के स्थान में बिठाने के अतिरिक्त और कोई रास्ता नहीं है। बाजार के लोगों को यह स्वीकार हो तो वे आगे कदम बढ़ाएंगे। हमें सारी बातें अपने लोगों को बताकर उनकी स्वीकृति लेनी है। अगर आप सब लोगों की सहमति हो तो शाम घर में पूजा के बहाने से सबको बुला भेजूंगा। जैसे-जैसे लोग आते जायेंगे उन्हें बताकर उनकी सम्मति ले सकते हैं। आप लोग थोड़ा पहले पहुँच जाइये।"

रामप्पा और सूरप्पा ने 'यह ठीक है' कहा। चिक्कण्णा शेट्टी ने भी कहा, "ठीक है।" राजा के आदमी इन लोगों पर नजर रख रहे हैं, यह बात इन सबको पता थी। महल में काफी कहा-सुनी हो जाने के बाद शेट्टी पर पूरी-पूरी निगरानी रखना पक्की बात थी। इसलिए लोगों से मंत्रणा करने के लिए पार्शण्णा के घर बुलाना ही उचित लगा। पार्शण्णा ने लोगों को इसी कारण अपने घर बुलाने की बात सोची। दूसरे लोग भी उसके उद्देश्य को समझते थे।

शाम के समय बाजार के व्यापारी, मुखिया और साधारण लोग तीन-तीन, चार-चार की टोलियों में पार्शण्णा के घर आये। उन्होंने बड़ों से सब बातें सुनीं और उनके निश्चय को सहमति दी। वे पार्श्वनाथ की पूजा का प्रसाद हाथ में लेकर बिना कोई बात किये अपने-अपने घर चले गये। उनकी बातों से, उनके व्यवहार से, यह पता नहीं चलता था कि उन्होंने इतनी महत्त्वपूर्ण मंत्रणा में भाग लिया है। कुछ लोगों के मुख पर चिन्ता झलक रही थी पर अधिकतर लोग शान्त थे। मेले में आकर धूल उड़ाने से फ़ायदा? राजा दुष्ट हो जाये तो वर्तक पेटे[1] का यही हाल होगा। जो होगा उसे सहना पड़ेगा, पहले से ही नहीं डरना होगा।

शेट्टी का दोबारा बोपण्णा के घर जाना उचित न समझ पार्शण्णा ही रात को बोपण्णा के घर गया और बोला, "आपने प्रातः जो बात मुखिया से कही थी

1. बाजार।

सारा बाजार उससे सहमत है।"

"अच्छा हुआ। क्या-क्या बातें मान ली हैं?" बोपण्णा ने कहा।

"राजा के गद्दी से उतर जाने की बात पर सब सहमत हैं।"

"उस पर बैठेगा कौन?"

"इस पर हमने विचार नहीं किया। यह हमारी समझ से बाहर की बात है। आप मंत्रीगण जो भी सोचेंगे वह हमें स्वीकार होगा।"

"अच्छी बात है पार्शण्णा। मुझे बड़ों से बात करनी पड़ेगी। सब विचार करके निश्चय करना है। उस निश्चय को आप तक पहुंचा दूंगा।" पार्शण्णा के चले जाने के बाद बोपण्णा ने लक्ष्मीनारायणय्या के यहां कहला भेजा कि वह दूसरे दिन प्रातः उनसे मिलने आयेगा।

27

अगले दिन प्रातः लक्ष्मीनारायणय्या के पूजापाठ समाप्त करने तक बोपण्णा उसके घर पहुंच गया। उसने पिछले दिन शेट्टी की कही बातें और शेट्टी के साथ स्वयं की हुई बातें, बाद में पार्शण्णा की दी खबरें, सब कुछ उससे कह सुनाया।

इन दोनों के बीच ऐसी चर्चा कोई नई बात न थी। लक्ष्मीनारायणय्या बोला, "यह सब ठीक है। इसमें राजद्रोह की गन्ध है, इसमें एक यही दोष है।"

"राजद्रोह होना नहीं चाहिए इसीलिए सहन करते-करते इतना समय बिताया गया। कहा गया है कि शिकायत राजा तक ले जानी चाहिए। अगर राजा ही गलती करे तो शिकायत किसके पास ले जायें? किसी लड़की को पकड़ लाते हैं, उसे खराब करते हैं। वह कौन लड़की है, स्वयं आई है या बलपूर्वक लाई गई है, हमने इस ओर अभी तक ध्यान नहीं दिया। आज शेट्टी की बहू पर हाथ डाला गया है, कल हमारे घर पर, परसों आपके घर पर। इसे रोकना द्रोह होता है?"

"कोडगी लड़कियों पर, ब्राह्मणों की बेटियों पर क्या आज ही उन्होंने हाथ रखा है? पर इसके लिए क्या किया जाये कुछ सूझता नहीं है।"

"क्या पुराणों में नहीं कहा गया, पण्डितजी? नगर के बच्चों को पानी में डुबाने के कारण राजपुत्र को जंगल में भेज दिया गया। देश की जनता को तंग करने के कारण वेनरस का सिर नहीं उड़ा दिया गया क्या? ठीक-ठाक से रहें तो हाथ जोड़ेंगे। ठीक नहीं चलें तो एक तरफ चुपचाप बैठो कहेंगे?"

"गद्दी पर—?"

"यह सोचने की बात है।"

"रानीमां उनके नाम से शासन चला सकती हैं।"

"उनसे क्या होता है? पति यदि यह कहे कि तुम्हें यह करना ही होगा तो

पत्नी को करना ही पड़ता है। दूसरा राजा कहाँ हुआ?"

"अगर वे ठीक नहीं तो बेटी को बिठाना पड़ेगा।"

"यह तो और भी खराब है।"

"यह दोनों न सही तो राजा की बहिन···।"

"यह क्या पण्डितजी? आपको औरतें ही नजर आ रही हैं। क्या ये शासन चला सकेंगी?"

"इनमें से कोई भी ठीक नहीं तो राजा के रिश्तेदारों में किसी को ढूंढना पड़ेगा।"

"रिश्तेदार ही चाहिए तो अप्पाजी कहीं गुप्त रूप से रह रहे हैं, उनका लड़का भी साथ होगा, उनको बुला सकते हैं।"

"कहीं हैं, सुना है। है कि नहीं ढूंढ़ना पड़ेगा। आयेंगे क्या? पूछना पड़ेगा। यदि वे स्वीकार कर लें तो देश की जनता को बताना पड़ेगा। इन सब बातों के लिए कितना प्रबन्ध करना पड़ेगा! क्या यह गुप्त रूप से चल सकता है? यदि यह रहस्य खुल गया तो हमारे सिर बचेंगे क्या? यह सब देखना पड़ेगा!"

"जी हाँ!"

इतनी सब बातें करने के बाद उन्होंने निश्चय किया कि सारी बाते रानी के सम्मुख रखेंगे और उनसे प्रार्थना करेंगे कि वे फिलहाल राज्य संभालें। यदि वे स्वीकार न करें तो बाद में सोचेंगे। यह भी तय हुआ कि लक्ष्मीनारायणय्या तथा चिक्कण्णा शेट्टी रानी के सम्मुख यह सब निवेदन करेंगे। अगर कारण पूछा जाये तो यहाँ यह कहना होगा, "महल की ओर से बाजार का बहुत कर्जा हो गया है। देश के भण्डार से महल के भण्डार को जो कुछ मिलता था वह मिल चुका। अब और पैसा देना संभव नहीं। अब यदि शासन में परिवर्तन न हो तो और कोई रास्ता ही नहीं।

28

लक्ष्मीनारायणय्या को रानी के साथ यह बात करने की तनिक भी इच्छा न थी। पर बोपण्णा तो उनके साथ किसी भी विषय पर बात करने को तैयार न था। इसका मुख्य कारण था गौरम्मा और बोपण्णा दोनों का कोडगी होना। उसे इस बात की शंका थी कि यदि वह और गौरम्मा आपस में बातें करें तो वीरराज यह सोचेगा कि ये दोनों मिलकर कोई षड्यन्त्र कर रहे हैं। बहुत दिन पहले एक घटना घटने के कारण बोपण्णा का विचार था कि राजा उन दोनों का मिलना पसन्द नहीं करता है। इसके अलावा उसका यह भी विचार था कि रानी उस पर अविश्वास करती है। वीरराज के लिए जिन दिनों लड़की देख रहे थे तब बोपण्णा

की छोटी वहन को लाने की वात भी चली थी। पर उसके स्थान पर गौरम्मा के साथ रिश्ता हुआ। इसलिए वोपण्णा को इस वात का असन्तोष है कि इस लड़की ने उसकी वहन को रानी नहीं वनने दिया, ऐसी इनके रिश्तेदारों में वात फैली थी। गौरम्मा ने जव अपनी वेटी को इसके भांजे को देने की वात उठायी तो वोपण्णा द्वारा स्वीकार न करना भी एक वात थी।

एक न एक कारण वताकर लक्ष्मीनारायणय्या भी रानी से इस विषय पर वात करने को टालता रहा। जव ऐसा लगा कि अब टालना ठीक नहीं तो उसने रानी को कहला भेजा कि वह इस महल के खर्च के विषय में उनसे मिलना चाहता है और। एक दिन दोपहर को चिक्कण्णा शेट्टी के साथ उनसे मिलने गया।

"महल के खर्च के वारे में क्या वात करनी है पण्डितजी? क्या रनिवास का खर्च वढ़ गया है?"

"केवल रनिवास की वात नहीं, माँ। सारे राजमहल के खर्च की वात है। महाराज के साथ वात करने की अपेक्षा आपसे वात करना ज्यादा उपयोगी लगा। वोपण्णा और मैंने आपस में सलाह की और आपसे मिलने को कहला भेजा।"

"अच्छी वात! इसमें मैं क्या कर सकती हूँ, वताइये?"

"इस समय राजमहल पर वाजार का एक लाख से ऊपर कर्ज है। चिक्कण्णा शेट्टी कहते हैं कि सव तरफ से आनेवाला पैसा इस तरह रुक जाये तो व्यापारियों का हाथ वँध जाता है। देश के भण्डार से यदि यह धन मिल जाये तो वच जाएँगे। पर देश के भण्डार के हिसाव में राजमहल के खाते में कोई पैसा शेष नहीं है। अव एक ही रास्ता है, कि महल के खर्च को नियन्त्रण में लाकर प्रतिवर्ष राज्य के खाते में पच्चीस हजार रुपये वचाना चाहिए और उससे वाजार का कर्ज चुकाना होगा। यह प्रवन्ध तुरन्त होना चाहिए। यह आप ही का काम है।"

"रनिवास का खर्च जितना है यह तो हम संभाल सकते हैं। सारे राजमहल के खर्च के वारे में आपको महाराज से ही निवेदन करना पड़ेगा।"

"महाराज के सामने खर्च के वारे में चर्चा करने से कोई लाभ नहीं, माँ। उनका दिल और हाथ दोनों वहुत खुले हैं। पैसे की वात कहें तो कम खर्च करने को कहते हैं। पर जव खर्च करने की वात आती है तो फिर यथापूर्व खर्च कर डालते हैं।"

"ऐसा हो सकता है, पर मैं उनके लिए क्या कर सकती हूँ?"

"राजमहल का प्रवन्ध आपको अपने हाथ में लेना पड़ेगा।"

"आपकी वात मेरी समझ में नहीं आ रही। सारे राजमहल का प्रवन्ध रानी के अपने हाथ में लेने का मतलव क्या है? महाराज से प्रवन्ध छुड़ा लेना है क्या?"

"छुड़ा लेने की बात नहीं। क्या देना है, क्या नहीं देना, इसकी आज्ञा अभी तक महाराज देते हैं, आगे से यह सब रानी साहिबा करेंगी—यह प्रबन्ध होना चाहिए।"

"यह प्रबन्ध कौन करेगा? क्या आप करेंगे?"

"यदि यह जिम्मेदारी लेने को आप तैयार हों तो महाराज के सम्मुख हम मन्त्री लोग ही निवेदन करेंगे।"

रानी कुछ देर के लिए सिर झुकाकर सोचती रही। बाद में चिक्कण्णा शेट्टी की ओर मुड़कर बोली, "एक लाख से भी ऊपर कर्ज का सामान आपने दिया, शेट्टीजी। जब आठ-दस हजार ही हुए तभी क्यों नहीं महाराज से निवेदन किया? कर्ज एक भूत की तरह बढ़ाकर आपने महल को एक परेशानी में डाल दिया।"

चिक्कण्णा शेट्टी: "कर्ज रुक जाने की बात का निवेदन कर दिया गया था रानीमाँ। मालिक ने कहा था 'अभी ठहरो कहीं चला नहीं जायेगा।' और आगे मुँह खोलने पर महाराज डाटेंगे, इसका डर था। इसलिए कर्ज देता गया। अब आगे रास्ता दिखाई नहीं दिया। इसी से मन्त्री लोगों से निवेदन किया।"

"हमसे जब मिलते थे तब क्यों जिकर नहीं किया।"

चिक्कण्णा शेट्टी इसका ठीक से उत्तर न दे सका।

क्षण भर रुककर गौरम्माजी बोली, "ठीक है, यह केवल मात्र पैसे की बात दिखाई नहीं देती। बात कुछ और भी है, उस पर भी सोचना पड़ेगा। बोपण्णाजी कल आ सकेंगे, पंडितजी? आप और वे दोनों आइये, बात करेंगे। शेट्टीजी के आने की आवश्यकता नहीं है।"

इस बात को लक्ष्मीनारायणय्या समझ गया कि रानी भाप गई कि राजा को पूरे शासन से वंचित करके शासन की बागडोर रानी के हाथ सौंपना उनका उद्देश्य है। उसने "जो आज्ञा, कल हम और बोपण्णा मन्त्री उपस्थित होंगे" कह-कर नमस्कार किया और उनकी आज्ञा लेकर दोनों लौट पड़े।

29

अगले दिन रानी से समय निश्चित करके बोपण्णा तथा लक्ष्मीनारायणय्या राज-महल पहुँचे।

लक्ष्मीनारायणय्या ने रानी से जो बातें कही थीं और रानी ने जो बातें उससे कही थी वे सब सविस्तार उसने बोपण्णा को बतायी। रानी के उससे मिलने का उद्देश्य क्या हो सकता है उसके बारे में बोपण्णा को थोड़ी आशंका हुई। गौरम्मा स्वाभिमानिनी स्त्री थी। इधर यह भी स्वाभिमानी था। ऐसे लोग यदि प्रतिद्वन्द्वी

रूप में खड़े हो जायें तो बात यों ही बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त उसके ाँजे के साथ राजकुमारी के रिश्ते की बात में रानी की इच्छा की उपेक्षा कर दी ई थी। जो भी हो, अगर वह सावधानी से बात करे तो बात बिगड़ने की ंभावना नहीं।

जब ये महल में पहुँचे तो रानी रनिवास की बैठक में इनकी प्रतीक्षा कर रही ी। इनका स्वागत करके बैठने को कहकर स्वयं उनके सामने थोड़ा हटकर ठी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि गौरम्मा रूप की दृष्टि से बहुत सुन्दर हीं थी परन्तु उसकी चाल-ढाल, उसका गाम्भीर्य बहुत ही आकर्षक था। वभावतः वह बहुत चिन्तनशील स्त्री थी। कौन-सी समस्या आन पड़ी है इसी चिन्ता के बोझ से वह दबी हुई-सी दिख पड़ रही थी। इस चिन्ता से उसका गाम्भीर्य व सौन्दर्य और चमक उठा था।

मन्त्रियों के बैठने के बाद रानी ने बोपण्णा की ओर मुड़कर पूछा, "घर पर सब कुशल हैं ना बोपण्णा मामा?"

उसकी ध्वनि मीठी थी, उसमें दया की याचना थी। बोपण्णा यहीं आधा हार गये। आगे के प्रश्नों से और आधा भी हार गये।

उसने उत्तर दिया, "आपकी छाया में सब सुखी हैं।"

"पण्डितजी ने कहा था कि आपकी इच्छा है कि महल का खर्च अधिक होने लगा है और अब धन का प्रबन्ध करना कठिन है। प्रबन्ध को हमें हाथ में लेना है। इसी बारे में विस्तार से जानने के लिए आप दोनों से मिलने की इच्छा प्रकट की थी।"

"पण्डितजी ने यह मुझे भी बताया इसीलिए हम दोनों चले आये।"

"मुझे अपने घर की बेटी समझकर आपको रास्ता दिखाना पड़ेगा। घर की स्थिति आपको पता ही है। उसमें कोई नयी बात नहीं है। आपके कहने के अनुसार यदि मैं करूँ तो महाराज कहेंगे कि हमें हटाकर पत्नी ने गद्दी संभाल ली। घर कैसे बचेगा? हमारी तो एक ही बच्ची है। उसको भी समझ आती जा रही है। वह ऐसी माता को क्या समझेगी। माँ और बाप के बीच किस के साथ रहे यह भी तो सोचना पड़ेगा?"

"सोचने की बात तो है ही रानीमाँ।"

"महल के कर्ज को किसी रूप में उतारकर आगे खर्च को एक सीमा में रखने से यह संकट टल सकता है। घर बिगड़ेगा नहीं, बच जायेगा।"

"हाँ माँ। पर वह कर्ज चुकाना ही कठिन है। खर्च एक सीमा में रखने का रास्ता भी दिखाई नहीं देता।"

"मेरे ससुर मेरे लिए प्रतिवर्ष दस हजार रुपये का सोना खरीदते थे। ढेर से गहने रहने पर भी घर की बहू के लिए पन्द्रह हजार रुपये के नये हीरे-मोती और

सोना खरीदकर प्रतिवर्ष गहने बनवाये। पांच-छह वर्ष तक ऐसा करते रहे। वह सब मिलकर इस ऋण के बराबर तो हो ही सकता है और कुछ न भी हो। और फिर आभूषणों का अब क्या काम है? हम तो रोज पहनते भी नहीं और बाहर भी नहीं जाते। उसे लक्ष्मी मानकर पूजा कर रहे है। जिस माँ की पूजा की है वह अब हमारी रक्षा करेगी। गहने आपको सौंप दूँगी, ऋण चुका दीजिये। आगे खर्च को ढंग से करने का प्रबन्ध करेंगे।"

रानी की बातें सुनकर बोपण्णा के मन में आश्चर्य, प्रशंसा और दया तीनों एक के बाद एक उत्पन्न हुए। आश्चर्य से वह क्षण भर अवाक्-सा रह गया, फिर लक्ष्मीनारायणय्या की ओर मुड़कर कहा, "सुना आपने पण्डितजी।"

लक्ष्मीनारायणय्या का मन भी रानी की बात से पिघल गया था, और उसकी आँखें भीग गयी थी। उसने धीरे-से उत्तर दिया, "सुना।"

"आप क्या कहते हैं?"

"हमारी दोनों की बात एक ही है बोपण्णा।"

बोपण्णा थोड़ी देर रुक कर बोला, "आपका इस प्रकार सोचना बड़ी ऊँची बात है माँ। लोग कहते हैं 'राजघराने की स्त्री तो क्या किसी भी घर की स्त्री क्यों न हो, वह अपने गहने छोड़ने से पहले अपने प्राण दे सकती है।' आप अपने सारे गहने ही देने को तैयार हैं। यह एक स्त्री की नहीं देवी की बात है।"

"जो भी हो हम आपसे छोटे हैं, इतनी प्रशंसा न कीजिये। कहीं कुछ बुरा न हो जाये।" कहकर उसकी बात को रोक दिया।

"हाँ माँ, मैं तो सच्ची बात कह रहा हूँ, यह प्रशंसा नहीं।"

लक्ष्मीनारायणय्या, "हाँ माँ, बोपण्णा मन्त्री का कहना ठीक है।"

रानी: "सारे गहने भण्डार की पेटी में रखे हैं। सुबह मैंने सबको चार सन्दूकों में भरवा दिया है आप सहमत हो तो···"

रानी का वाक्य समाप्त होने से पहले बोपण्णा ने लक्ष्मीनारायणय्या की ओर देखा और फिर रानी की ओर मुड़कर बोला, "इसके लिए भी महाराज की सहमति नहीं चाहिए?"

रानी: "हम भी यही बात कहने वाले थे कि आप यदि सहमत हो तो हम महाराज से निवेदन करके गहनों को आपके भण्डार में भिजवा दें।"

बोपण्णा: "बात ठीक है माँ, पर हम उसे स्वीकार नहीं करेंगे।"

"स्वीकार नहीं करेंगे?"

"बड़ों के द्वारा बहू को दिये गहने बहू की अपनी सम्पत्ति है। माथे का सिन्दूर गले के मंगलसूत्र के साथ शरीर पर शगुन की चीज है। उन पर हाथ डालना घर नष्ट करने की बात है। आप राज्य की लक्ष्मी हैं। इसे लेना उचित

जब ये लोग आखिरी शब्द कह रहे थे तभी रानी को बगल के दरवाज़े पर किसी की छाया दिखाई दी। उसने आवाज़ दी, "वहाँ दरवाज़े पर कौन है?" क्षण-भर को कोई न आया। रानी ने फिर दर्प भरी आवाज़ में कहा, "कौन है दरवाज़े पर, इधर आओ।"

मुँह लटकाकर घबराया हुआ बसव दरवाज़े पर दिखाई दिया। रानी ने पूछा, "दरवाज़े पर खड़े क्या कर रहे थे बसवय्या? छुप कर सुन तो नहीं रहे थे?"

"महाराज ने देखकर आने को कहा, इसलिए आया था माँ।"

बात यह थी कि पिछले दिन लक्ष्मीनारायणय्या का आना और आज लक्ष्मी-नारायणय्या तथा बोपण्णा का आना, ये सब राजा तक बसव के आदमियों ने पहुँचा दिया था। पत्नी के बारे में राजा को स्पष्ट रूप से अविश्वास तो न था पर पूर्ण विश्वास भी न था। उसने सोचा यह सब क्या हो रहा है। उसका निश्चय था कि जो भी है, उसके विरोध में ही होगा। 'वे लोग क्या बात कर रहे हैं ज़रा छिपकर सुन के तो आ' कहकर उसने बसव को भेजा था।

सुबह से पीते-पीते वह अपने बस में न था। बसव के आने में कुछ देर हुई, तो वह स्वयं ही उधर आ गया। बसव के उत्तर से असंतुष्ट होकर रानी बोली, "महाराज ने यदि देखकर आने को कहा था तो सीधे हमारे पास आना था दरवाज़े पर क्यों छिपे थे।"

उसका यह कहना ही था कि राजा द्वार पर दिखाई दिया और यह कहते हुए भीतर घुसा, "क्या रंडीपना कर रही है। पता लगाकर आने को मैंने ही भेजा था। क्या कर रही है हरामजादी! इस ब्राह्मण के साथ और इस अपने रिश्तेदार के साथ।"

रानी मन्त्रियों की ओर मुड़कर "यह सब बातें आप लोगों के सुनने की नहीं बोपण्णा मामा, पण्डितजी। यह हमारे घर की बात है" कह राजा की ओर मुड़कर उत्तर दिया, "सभी बातें निवेदन करूँगी। कोई अपराध नहीं हो रहा है।"

"अपराध नहीं हो रहा है? निवेदन करोगी? हरामजादी, हरामजादी! निवेदन तुम करोगी; और हमें सुनना है। ठहर जा तुझे नंगियों को दूँगा। बोपण्णा मामा है। गौरम्मा बहू[1] है। अहा-ा-ा कैसा नाता है, कैसा परिचय है। बहू से मखौल करने को आया क्या बोपण्णा मामा इधर? क्यों आये ये इधर?"

---

1. दक्षिण में बुआ की लड़की से या मामा की लड़की से विवाह होता है।

कहकर गरजते हुए बोपन्ना की ओर बढ़ा।

इन बातों से साफ पता चलता था कि शराब के नशे में राजा की बुद्धि वश में न थी। क्रोध से राजा के मुंह से झाग निकलने लगी। बोपन्ना को भी क्रोध आया। पता नहीं उसके मुंह से और क्या-क्या निकल जाता, परन्तु लक्ष्मी-नारायणय्या ने उसे छूकर कहा, "चुप रहिये, मुंह न खोलिये।" लक्ष्मीनारायणय्या को भी बोपन्ना ने क्रोध से देखा और वह गुस्से को पी गया।

रानी के मुंह पर कोई विकार न दिखाई दिया। वह पति से बोली, "मन्त्रियों को मैंने बुलवाया था, काम था। वह सब बाद में बताऊंगी। इस समय आपकी तबियत ठीक नहीं, जरा बैठ जाइये। बात बाद में करेंगे।" वह दोनों के बीच में आ गयी।

"ऐ हरामजादी, अपने यार को बचाने आ रही है।" कहकर राजा ने रानी को मारने को हाथ उठाया। बोपन्ना ने राजा को रोकने के लिए हाथ बढ़ाया कि तभी लक्ष्मीनारायणय्या ने उसे पीछे खींच लिया।

राजा का हाथ रानी के सिर पर लगा। रानी ने उसे दोनों हाथों से पकड़ लिया। इतने में गुस्से से हांफते हुए वह एक ओर झुक गया। उसके मुंह से ट्‌न्-ट्‌न् की आवाज निकलने लगी।

रानी ने हाथ फैलाकर उसे पकड़ लिया और बोली, "इधर आओ बसवय्या, महाराज की तबीयत ठीक नहीं। इन्हें ले जाकर लिटाना है।"

रानी गौरम्मा के व्यवहार से बसव भी हैरान हो गया था। वह उसकी आज्ञा के अनुसार आगे आया और राजा को उसने हाथ में थाम लिया। राजा बेहोश हो गया था।

रानी मन्त्रियों की ओर मुड़कर बोलीं, "एक मिनट ठहरिये, हम अभी आते हैं।" और बसवय्या से 'इसको छोड़ो बसवय्या, सेविका को बुलाओ' कहकर राजा को पास वाले पलंग पर सहारा देकर बिठाया। बसव ने दरवाजे पर जाकर सेविका को बुलाया। उसके आते ही रानी ने उसे राजा का बायां हाथ पकड़ने को कहकर उसकी सहायता से राजा को भीतर उठाकर ले गयी।

जब रानी ने राजा को उठाया तो लंगड़ा उसकी सहायता को आगे बढ़ा। रानी ने उसे मना कर दिया। बोपन्ना ने भी एक कदम आगे रखा, "रानीजी आप रहने दीजिये।" उसकी बात से सबको यह लगता था कि यह काम कठिन नहीं, इसे करने से इज्जत नहीं घटती।

रानी द्वारा राजा को अन्दर लेकर जाते ही बोपन्ना ने लक्ष्मीनारायणय्या से कहा, "रानी मां को बड़ा कष्ट है। अब इस बात को आगे बढ़ाने की आवश्यकता नहीं।"

लक्ष्मीनारायणय्या 'ठीक है' कह बसव को बुलाकर, "बसवय्या, रानीमां यदि

में कहा गया है कि ऐसी बातें शैतान ही करता है, मैं ईश्वर से इस शैतान को हटाने के लिए प्रार्थना करूँगा।"

उनकी सहिष्णुता देखकर रानी को आश्चर्य हुआ। लगा यह पादरी भी ओंकार मन्दिर के दीक्षित के समान ही सहनशील व्यक्ति है। इस कारण से पादरी उन्हें बड़ा अच्छा लगा। पादरी ने रानी की आज्ञा लेकर उनको और उनकी बेटी को भी ईसाई धर्म की श्रेष्ठता बतायी और उन लोगों से ईसाई धर्म में दीक्षित होने के लिए कहा। रानी बोली, "हमारा धर्म हमारे लिए अच्छा है आपका धर्म आपके लिए। आप उसी रास्ते से मोक्ष पाइये हम अपने रास्ते पर चलते हैं। आप दवा देने आये हैं वही काम भली प्रकार कीजिये। हम आपको बहुत इनाम देंगे।"

उसने कहा, "ईसाई धर्म हिन्दू धर्म से श्रेष्ठ है, मैं आपको सिद्ध कर दिखाऊँगा। आप अपने गुरु को एक दिन बुलाइये, वे मुझसे शास्त्रार्थ करें, उसमें मैं उन्हें हरा दूँगा।"

रानी : "हमारे धर्म के बारे में इस प्रकार शास्त्रार्थ करना हमारे बड़ों को स्वीकार नहीं। आपकी बात हम दीक्षितजी से कहेंगे यदि वे स्वीकार करें तो आप दोनों एक दिन शास्त्रार्थ कर लें।"

इन्हीं दिनों दीक्षित ने मन्दिर में ग्रह-शान्ति तथा देवताओं की पूजा की। राजा के स्वास्थ्य के लिए अन्नदान तथा वस्त्रदान कराया। यह सारा खर्च रानी ने अपने निजी खर्च से किया।

एक मास में राजा का स्वास्थ्य लगभग पहले जैसा हो गया। पति के मूर्च्छित होते समय रानी डर गयी थी कि कहीं उसके सुहाग पर आँच न आ जाये। अब वह डर दूर हो गया और उसके मन को शान्ति मिली। वैद्य दीक्षित तथा पादरी को इनाम देते हुए वह बोली, "भगवान ने आप लोगों के रूप में मेरी रक्षा की।"

33

चिकण्णा शेट्टी का भतीजा अपनी पत्नी के साथ अरकलगूड भाग गया था। वहाँ उसने अपने चाचा की स्थिति के बारे में सोचना आरम्भ किया। उसने अपने इष्ट-मित्रों से अपने आने का कारण बताकर उनसे इस बात पर चर्चा भी की कि उनके चाचा को कैसे बचाया जावे।

दो वर्ष पूर्व अंग्रेज़ों ने मैसूर राज्य को इस बहाने से अपने अधिकार में ले लिया था कि वहाँ का राजा ठीक से राज्य नहीं चला रहा था। उसके इष्ट-मित्रों ने सलाह दी, "कोडग का राजा अयोग्य है, उसे भी गद्दी से उतार कर मैसूर की तरह कोडग को भी अपने राज्य में मिला लीजिये।" इस आशय का पत्र अंग्रेज़ों

ो लिखा जाये। यह भी लिखा जाये हम आप तो मैसूर के निवासी हैं। अब अंग्रेज आपके हमारे प्रभु हैं। चिक्कण्णा शेट्टी मडकेरी में हैं फिर भी वे मूल में अरकलगूड के हैं। कोडग का राजा मैसूर के साहूकार को तंग कर रहा है। इसकी जांच की जाये।" जनता की ओर से यह प्रार्थना अंग्रेजों तक पहुँचानी चाहिए। यह निश्चय किया गया कि अरकलगूड के प्रमुख लोगों की ओर से एक प्रार्थना-पत्र, चिक्कण्णा शेट्टी के बन्धुओं की ओर एक अलग प्रार्थना-पत्र तथा चिक्कराम शेट्टी की ओर से एक पत्र इस सप्ताह के भीतर-भीतर बेंगलूर के अंग्रेज अधिकारी के पास पहुँचे।

अरकलगूड से ऐसी शिकायतें पहुँचाई गई हैं यह बात चिक्कराम शेट्टी ने गुप्त रूप से चिक्कण्णा शेट्टी को कहला भेजी। चिक्कण्णा शेट्टी स्वयं शिकायत भेजने को तैयार नहीं था, पर यदि दूसरे भेजें तो उसकी ओर से कोई विरोध भी न था। उसे यह बात अच्छी ही लगी। पर वह यह चाहता था कि महल में यह बात पहुँचने पर उसे कोई हानि न पहुँचे।

34

जैसे शिकायत भरे पत्र अरकलगूड से पहुँचे ये वैसे ही पत्र अंग्रेजों को अति प्रिय थे। उन दिनों वे भारत-भूमि को निगलने के लिए अजगर का अभिनय कर रहे थे। जिन दिनों हैदर के साथ झगड़ा चल रहा था उन दिनों मैसूर प्रदेश को उन्होंने भली प्रकार देख लिया था। दोड्डवीरराज के साथ मैत्री होने के कारण कोडग प्रदेश को जांच-परख लिया था। तब से अंग्रेज के मन में यह इच्छा थी कि मैसूर हो या कोडग, ये सोने के प्रदेश हैं, ऐसी जमीन का हाथ लगना बड़े भाग्य की बात है।

जब टीपू अन्तिम बार हार गया तब मैसूर राज्य की पुनर्व्यवस्था के सम्बन्ध में अंग्रेजों में दो दल बन गये थे। 'राज्य हमें वापस दिलाइये' कहकर राजमाता ने उस काम में बड़ी सहायता की थी। "उनके विश्वास को हमें धोखा नहीं देना चाहिए। उनके राज्य को उन्हें दे देना ही न्याय है" यह एक दल का मत था "न्याय ही देखने बैठे तो राज्य का अर्जन कैसे होगा? इन लोगों में राज्य करने की योग्यता भी है? इनको गद्दी पर बिठाया जाये तो हमें ही इनकी देखभाल करनी पड़ेगी। इस चक्करबाजी से फायदा? राजा ने हमें मदद की थी इसलि[illegible] प्रतिवर्ष कुछ लाख रुपये की पेंशन बांध देंगे। राज्य को हाथ में ले लेना ही उचि[illegible] है।" यह दूसरा मत था। इन दोनों पक्षों में वाद-विवाद समाप्त होना कठि[illegible] था।

आखिर में अगर उसका कोई हल निकला तो वह न्याय की दृष्टि से [illegible]

नहीं था। टीपू को हराने के लिए निजाम और मराठों ने अंग्रेजों की सहायता की थी। यदि मैसूर राजा को नहीं सौंपते तो टीपू के अधीनस्थ इस विस्तृत प्रदेश को अकेले अंग्रेज निगल नहीं सकते थे। निजाम को हिस्सा देना पड़ता तथा मराठों को भी हिस्सा देना पड़ता। टीपू को हराने में हमने आपकी मदद की ऐसा उन दोनों का हठ था। वे अभी से प्रबल हो गये हैं और कुछ हिस्सा दे दिया जाये तो वे किस के हाथ में आयेंगे? एक टीपू को हराकर दो टीपूओं को तैयार करना होगा। मैसूर राज्य को यदि हिन्दू राजा को दे दिया जाये तो वह उसे अंग्रेजों का उपकार समझकर हमारे साथ कृतज्ञता का व्यवहार करेगा। निजाम और मराठों के विरोध में तीसरी शक्ति की जब आवश्यकता हो तब यह हमारा साथ देगा। यह सोच-विचार कर अंग्रेजों ने मैसूर राज्य हिन्दू राजा को वापस कर दिया था।

तीस वर्ष पूर्व नये ढंग से रहने के लिए आये हुए अधिकारी और उनके सहायकों ने जरूर दुख से कहा, "अरे-रे-रे ऐसी भूमि को हमने अपने पास न रखकर वापस दे दिया?" इस प्रकार बीस वर्ष बीत जाने के बाद टीपू की हार के समय जो मनोभावना अंग्रेजों में थी उसमें अब बहुत परिवर्तन हो गया था। तब का प्रतिपक्षी मराठा अब कमजोर हो गया था। अकेले पड़ गये निजाम को भी इस बात का डर था कि उसकी हालत भी मराठों जैसी न हो जाये। अजगर के स्वभाव वाले अंग्रेज मौके की ताक में थे। मैसूर राज्य के अधिकारियों की अयोग्यता से मैसूर राज्य में अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी। यही बहाना बनाकर अंग्रेजों ने राजा को गद्दी से उतार दिया और मैसूर हो हड़प गये।

कोडग भूमि एक दृष्टि से इन लोगों को मैसूर से भी अच्छी लगी। कोडग के जंगल, पहाड़, नदी, नाले, खेत-बगीचे उन्हें बाईबल के 'गार्डन आफ ईडन' की भाँति दिखते थे। अंग्रेजों का यह विचार था कि उनके देश का स्काटलैण्ड प्रान्त ही बहुत सुन्दर है, परन्तु कोडग का प्राकृतिक सौन्दर्य स्काटलैण्ड की सुन्दरता से भी एक हाथ ऊपर था। मैसूर की भाँति कोडग को भी निगलने के लिए कई अंग्रेजों के मुँह में पानी भर आया। राजा के साथ विवाद बढ़ाना ही इन लोगों की इच्छा थी। पहले की आई कुछ शिकायतें उन्हें भोजन के तैयार होने की सूचनार्थ पहुँची मालपुए की सुगन्ध की तरह लगी। अरकलगूड से पहुँचे शिकायत भरे पत्रों को देखकर इन लोगों को बड़ा सन्तोष हुआ।

उन दिनों मैसूर का शासन आंग्ल अधिकारियों के हाथ में था। वहाँ मक्ली-याड चीफ कमिश्नर था। कैननाइफर रेजिडेंट और हाकर उसका सहायक था। कैननाइफर को कोडग निगलने की इच्छा थी। इन दिनों इस तरफ का सारा कार्य रेजिडेंट के हाथ में रहता था। अरकलगूड से पत्र के आने के लगभग एक सप्ताह के भीतर मरकेरी के नेपलिग पादरी का पत्र भी आया। उसमें लिखा था "राजा का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। वे चाहते हैं कि उनके ठीक होते ही आप लोग यहाँ

आकर उनका आतिथ्य स्वीकार करें। उसके उत्तर में कैममाइकल ने लिखा, "हमें निमन्त्रण स्वीकार है। ईश्वर की कृपा से राजा साहब शीघ्र स्वास्थ्य लाभ करें। बाद में हम आने का उचित समय सूचित करेंगे।"

35

"अभी आती हूँ जरा ठहरिये!" मन्त्रियों से यह कहकर रानी भीतर गई। राजा को पलंग पर लिटाया। सेविकाओं को बुलाकर पंखा झलने को कहा। अपने हाथ से उनके माथे और गाल पर गुलाब जल छिड़का। सेविका से कहा, "दो मिनट देखो मैं अभी आई।" यह कहकर वहाँ आई जहाँ मन्त्रियों को छोड़ गई थी। वहाँ बसव ने बताया, "मन्त्री लोग कल फिर आने को कह गये हैं अम्माजी।" रानी फिर राजा के पास लौट गई।

राजमहल से कदम बाहर रखा ही था कि बोपण्णा का क्रोध उमड़ पड़ा। वह बोला, "आपने देखा पण्डितजी, इस भिखमंगे राजा को, कैसी-कैसी बातें कह सकता है? कोडगी के पेट से जन्म लेकर और कोडगी लड़की से ही शादी करके भी इसे अभी तक कोडगियों के गुणों का पता नहीं चला। जाने दीजिये, मैं कोई ईश्वर नहीं; फिर भी कहता हूँ कि पत्नी घर की लक्ष्मी होती है, उसने उससे कैसी बातें कहीं यह राजा है? क्या इसे राजा बने रहने देना है? ऐसी बातें करने वाले का मैं मन्त्री बनकर रहूँ?"

लक्ष्मीनारायणय्या: "राजा को अभी समझ नहीं बोपण्णा! अनुशासन में नहीं पले। चाल भी अशिक्षित जैसी है। बात करने में फायदा नहीं। पर यह राजा की बात है। हमारी और आपकी बात नहीं। महल की बात के समान देश और गाँव की बातें रहती हैं। पर हम गुस्सा करें तो देश का क्या हाल होगा?

देश की बात और है, पण्डितजी। इसकी कहानी अब समाप्त हुई। मैंने कहा था न यह भिखमंगा है। भिखमंगों में बड़प्पन कैसे आ सकता है? कैसा घर और कैसी जबान!"

"आपका गुस्सा ठीक ही है बोपण्णा, पर गुस्से में कही बात ठीक नहीं होती।"

"ठीक है, पण्डितजी, अब वह बात नहीं उठाऊँगा। पर आज से मैं पोनप्पा का साथी हूँ। मेरे लिए यह राजा नहीं और इसके लिए मैं मन्त्री नहीं। पहले तीनों इसके पास जाते थे, फिर दो हो गये, अब आप अकेले रहेंगे।"

"मैं अकेला आप के बिना कितने दिन रह पाऊँगा? रहना भी चाहूँ तो हो नहीं पायेगा।"

"ऐसा ही होने दीजिये। जब मुसलमानों ने लूटपाट मचाई तब कौन राजा था

और कौन मन्त्री ? इन भिखमंगों का वंश समाप्त ही होने को था। देश के लिए क्या कम हो गया था। बड़े राजा कैद से छूटकर आये, तक्क लोगों से मिले, उनको एकत्रित करके देश का नाम रहने लायक बनाया। तब कहीं जाकर कोडग राजा का हुआ। बड़े का जन्म हुआ, उसने बड़प्पन का जीवन बिताया। कोडग-भूमि के लिए बड़ा नाम कमाया। अब कीड़ा पैदा हुआ है, कीड़े जैसा जीवन बिता रहा है, कोडग-भूमि को बांबी बना दिया है। होने दीजिये, कोई-न-कोई इसका सिर कुचलेगा ही, इसको समाप्त करेगा ही। फिर देश पहले जैसा रह जायेगा; तक्क लोग रह जायेंगे।"

लक्ष्मीनारायणय्या को इस बात का सन्देह नहीं हुआ कि राजा ने बोपण्णा के बारे में कितनी बुरी बातें कहीं। उसके लिए बोपण्णा का मन बहुत कटु हो जाना न्याय-संगत था। पर राजा किसी कारणवश यदि इस प्रकार की बात करे और मन्त्री उसके विरोध में खड़ा हो जाये तो देश की व्यवस्था कैसे चलेगी ? हम जैसे मन्त्रियों की स्थिति क्या हो जायेगी ?

राजा और मंत्री का विरोध हो जाना कोडग के इतिहास में नया नहीं। लोगों को यह बात याद भी है। बात बहुत पुरानी नहीं, लिंगराज ने राजा बनने के लिए अपने साथी कारियप्पा को सूली पर चढ़ा दिया था। बड़े राजा की मृत्यु के बाद देवम्माजी रानी बनी। सौदे का नायक उसका मन्त्री बना। लिंगराज को शिकायत थी : मैं राजा तो न बन सका पर क्या मुझे मन्त्री भी नहीं होना चाहिए। तब इसकी स्थिति को देखकर कारियप्पा को दया आयी। उसने तक्क लोगों को एकत्रित करके कहा, "बाहर का आदमी कितना भी श्रेष्ठ क्यों न हो अपने ही देश का व्यक्ति मन्त्री बनना चाहिए। क्या हमारे यहाँ श्रेष्ठ व्यक्ति नहीं है ? लिंगराज को ही मन्त्री बनना चाहिए यह हमारी इच्छा है।" और यह निर्णय कराया। सौदे के नायक को मन्त्री-पद त्यागना पड़ा, लिंगराज मन्त्री बना। मंत्री बनने के एक वर्ष बाद उसने स्वयं राजा बनने की इच्छा व्यक्त की तो कारियप्पा नहीं माना। उसने कहा, "देवम्माजी का रानी बने रहना बड़े राजा की इच्छानुसार ही है। यह बात रहनी ही चाहिए। कारियप्पा ने मन्त्री पद दिलाकर जो उपकार किया था उसे भूलकर लिंगराज ने उसे विरोधी मान लिया और बलपूर्वक गद्दी प्राप्त कर लेने के बाद उस पर एक झूठा आरोप लगाया कि इसने और इसकी पत्नी ने मुझे समाप्त करने का प्रयास किया है। कारियप्पा को सूली पर चढ़ा दिया और उसकी पत्नी को देश निकाला दे दिया। यदि राजा अपना विवेक खो बैठे तो क्या बाहर वालों को भी विवेकहीन हो जाना चाहिए ? कारियप्पा जैसे महान व्यक्ति की पत्नी को उन्होंने अपने यहाँ स्थान देने का साहस नहीं किया। कारियप्पा सूली पर मरा। उसकी पत्नी उस स्थान के सामने सात दिन तक अन्न-जल के बिना पड़ी रही और आठवें दिन चल बसी। यह

घटे बनी पच्चीस वर्ष भी पूरे नहीं हुए। तब कारियप्पा एक दीवान था।
राजा की स्थिति निरपराज की स्थिति के समान मजबूत न थी। फिर भी
वह चाहता तो समय बोपन्ना के प्राण लेने में न हिचकिचाता। बाद में
जनता और सचानी या विरोध करती, पर बोपन्ना जीवित न रह सकता
। लक्ष्मीनारायणय्या की इच्छा थी कि बात इस सीमा तक न पहुँचे।
ऐसे अनर्थ की सम्भावना की सूचना राजा को दी जावे तो वह डरने वाला
हीं। बोपन्ना को भी डर नहीं है। दोनों का स्वभाव चाहे जो हो, हो जावे
सा था। राजा से विवेक की बात कहकर मुसीबत मोल लेने की स्थिति न थी।
जो भी हो बोपन्ना को समझाना है। यह सोचकर लक्ष्मीनारायणय्या निरुपाय
चुप हो गया।

36

दुबारा जब लक्ष्मीनारायणय्या बोपन्ना से मिला तो आवश्यक बातें करने के बाद
बोला, "राजा का स्वास्थ्य ठीक होने तक उनकी कही बातों के बारे में कुछ भी
न करना ठीक है।"

"यह बात तो ठीक है पण्डितजी, मैं कुछ भी नहीं कहूँगा। जो कुछ कहना है
वही करना है। स्वास्थ्य ठीक होने के बाद अपनी कही बातों का पश्चात्ताप करें
तो 'अच्छा महाराज' कह दूँगा और मन्त्री-पद को त्याग दूँगा। वे अपनी मर्जी से
राज्य करें। मैं अपने ढंग से रहूँगा। गलती नहीं मानते तो मुझे मनवानी पड़ेगी,
नहीं तो मेरी इज्जत कहाँ रहेगी? इनसे विवाह करके वह बेचारी कोडगी लड़की
है ना, उसकी इज्जत ही कहाँ रही? पर जैसा आपने कहा यह राजा के स्वस्थ होने
के बाद की बातें हैं।"

"ठीक है, इतना ही हो जावे तो बहुत है, फिर भी राजा को अपनी गलती
मुँह से मानने को कहना हमारे लिए ठीक है?"

"यह गन्दी बात राजकीय बात नहीं, राजा की अपनी बात है। गलती म
लेने से राजत्व में कोई कमी नहीं आयेगी।"

"यह बात ठीक है, जैसे भी हो चार दिन शान्ति से रहकर उनको समझ
इस सङ्कट से पार लगाना चाहिए। यदि रानीमाँ अधिकार को अपने हाथ में
लेना चाहतीं तो राजा के ही हाथ में रहने देना चाहिए।"

"अब ये मेरे लिए राजा नहीं और मेरा यह मन्त्रित्व"··· उन्होंने क
'छोड़ दो' नहीं कहा मैंने 'छोड़ दिया' नहीं कहा।"

"ठीक है।"

"और एक बात है। वे गलती स्वीकार करें या न करें। ऐसी बातें

तीन बार सहन कर लूंगा। बाद में वे कहें भी तो भी उन्हें गद्दी पर रहने नहीं दूंगा। अच्छी तरह रहने लगें तो खुशी की बात है, नहीं तो विरोधी बनकर लड़ूंगा और गद्दी से उतार दूंगा। न उतार सका तो स्वयं को समाप्त कर लूंगा। मैंने बहुत सोचकर इस बार यह निश्चय किया है।"

"अभी से ऐसा कोई निश्चय न कीजिये, बोपण्णा। आराम से सोचेंगे और स्थिति को सुधारेंगे। उनको ऐसी स्थिति दिखाएंगे तो वे अपने-आप समझेंगे नहीं। वे नहीं मानेंगे, यह सोचकर हमें ऐसा करना ठीक नहीं है।"

"आपकी बात आपके लिए अच्छी है। सहनशीलता आपका गुण है। सहन करना है, सहन कीजिये, पर आपके लिए जो अच्छा है वह हमारे लिए नहीं। लोग कहेंगे बोप्पा डरपोक है, गाली सुनकर भी महल की जूठन खा रहा है। दूसरे कहें तो भी सहन किया जा सकता है पर यदि साथी तक्क लोग कहेंगे तो कोडगी सहन कर सकता है? सहन कर लिया तो तक्कपन बचा रहेगा? ऐसे समय में आपका और मेरा रास्ता एक नहीं है।"

आपकी सारी बातें मुझे जंचती हैं, पर आप मन्त्री-पद छोड़ देंगे तो मैं भी मन्त्री बनकर नहीं रहूंगा। दोनों छोड़ दें तो राजा नहीं बचेगा। देश को हानि होगी। इसलिए कोई और प्रबन्ध करके हमें मन्त्री-पद छोड़ना चाहिए। नहीं तो देश का भला न होगा।"

"यह बात मैं मानता हूं। पण्डितजी, आप ही सोचिये, क्या करना चाहिए, बताइये। जो ठीक हो वही करेंगे।"

37

वैद्य ने बताया कि वीरराज की इस बार की बीमारी का कारण किसी का प्रकोप है। परन्तु किसका प्रकोप है और इस प्रकोप का मतलब क्या है, इसे जानने के लिए किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया। जिस सत्य को सभी जानते हैं उसे छिपाने के लिए वैद्य लोग इस प्रकार के शब्द-जाल का प्रयोग किया करते हैं। यह बात सभी को पता थी कि राजवैद्य ने इस शब्द का प्रयोग इस बार भी किसी उद्देश्य को लेकर किया है।

सर्वविदित बात को लोग आपस में भी मुंह खोलकर नहीं कहते थे। यदि किसी ने कहा तो वह थी राजमहल की रनिवास की मुखिया बूढ़ी दोड्डव्वा। वह लिंगराज के समय से इस रनिवास की यजमान थी। वह राजा और बसव को बचपन से जानती थी। बसव को इसी ने पाला था। इन कई कारणों से बुढ़िया को राजा या बसव के साथ किसी भी विषय पर खुलकर बात करने का अधिकार था।

राजमहल की सेविकाओं के निवास के लिए निर्मित महल भाग राजा के लिए पकड़कर लाई गयी स्त्रियों का निवास था। बलपूर्वक लाई गयी स्त्री यदि इस नये जीवन को स्वीकार कर लेती तो उसके लिए एक अलग घर में रहने की व्यवस्था कर दी जाती थी। इन सबका प्रबन्धकर्ता बसव था। उसके अधीन सबकी मालकिन दोड्डव्वा थी।

वीरराज जिस दिन बेहोश हुआ उस दिन दोड्डव्वा ने महल में आकर राजा को देखा। उसने बसव को अलग बुलाकर कहा, "मालिक के शरीर में सत्व नहीं है, उसे ठीक करने को इस वैद्य की दवा से काम नहीं चलेगा। मलयाल की दवा ही काम करेगी। वहाँ से मगवायी जा सके तो बहुत ही अच्छा है पर एक भगवती भी आजकल इधर आयी हुई है। पहाड़ की तलहटी में नदी के किनारे मन्दिर बनाकर रहती है। उसे बुलवाकर दिखाना भी अच्छा है।"

बसव ने कहा, "देखेंगे, ठहर जा।" उसका भी वही विचार था। पर ऐसे विषय पर पहले वैद्यजी से पूछना था। बाद में रानी से अनुमति लेनी थी। दो-तीन दिन बाद जब राजा को होश आया तब उसने वैद्यजी से जिक्र किया।

वैद्य ने मलयाली भगवती के बारे में सुन रखा था। एक बार जब वह मडकेरी के एक सम्पन्न घर में दवा देने आयी थी तब वहाँ उसने उसे देखा था, उससे बातें भी की थीं। उसकी चालढाल तथा उसके व्यक्तित्व को देखकर उसे लगा कि यह एक निष्णात वैद्य है। उसे इस बात की आशा थी कि यदि उसके साथ मैत्री हो तो उससे कुछ अमूल्य औषधियों की जानकारी मिल सकती है। यदि वह राज-महल आना स्वीकार करे तो उसके साथ मैत्री बढ़ाने का अवसर प्राप्त होगा। यह सब सोचकर वैद्य बोला, "भगवती बहुत जानती है। उसे बुलाकर दिखाना बहुत उत्तम है।" साथ ही उसने यह चेतावनी भी दी, "किसी भी विषय में भगवती को असन्तुष्ट नहीं करना। इन उपासनाओं और इन दवाइयों की बात ही ऐसी होती है। औषधियों के प्रयोग के साथ-साथ भगवती की उपासना से अधिक शक्ति उत्पन्न होती है। उस उपासना के लिए आवश्यक सभी सुविधाओं का प्रबन्ध करना होगा।"

बसव ने कहा, "रानीमाँ स्वीकार कर लें तो यह सब हो जायेगा।" दूसरे दिन रानी से उसने इस बात का जिक्र किया।

रानी ने यह बात भगवान का प्रसाद लेकर आये दीक्षित से कही। "भगवती को बुलाने की इच्छा हो रही है। यह उचित है या नहीं आप ही बताइये।"

दीक्षित ने भी भगवती के बारे में सुन रखा था, पर उसे देखा न था। उसे आये कुछ ही महीने हुए थे। मडकेरी के और उसके आसपास के इलाके पर उसका प्रभाव काफी था। लोग भगवती को बड़ी दर्पपूर्ण स्त्री बताते थे।

रानी के प्रश्न पर उसने कहा, "बुला सकते हैं, उसमें कोई बात नहीं। परन्तु

बुलाने पर सावधानी से रहना पड़ेगा।"

"ज़रा-सी चूक से बहुत नुकसान हो जायेगा क्या ?"

यह सब देवी शक्ति है। इधर ओंकारेश्वर हैं, उधर महाकाली है। दोनों अलग-अलग हैं। इधर यह प्रसन्न मूर्ति है तो उधर वह उग्र मूर्ति। हम यहाँ साधारण ढंग से पूजा करते हैं, सो धीरे-धीरे भगवान की कृपा होती है। शरीर को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता, धीरे-धीरे फायदा होता है। उधर उसका वेग बहुत है। उसका फल भी उसी प्रकार है। सही माने में कहा जाये तो ईश्वर का प्रसाद धीरे-धीरे ही प्राप्त होता है। भगवती के प्रसाद का प्रभाव तीव्र है।"

"लोग इसे भगवती पुकारते हैं न, दीक्षितजी ?"

"भगवती महाकाली का नाम है। यह स्त्री देवी की उपासिका है। उपासना का लाभ उठाना हो तो बड़ी निष्ठा से रहना पड़ेगा। बाहर के लोगों के लिए देवी क्या उपासिका क्या ! उसे भगवती की उपासिका न कहकर 'भगवती' कहते हैं।"

"कमीबेशी होने पर बुरा हो सकता है तो बुलाना ठीक नहीं है।"

"मानिक को अब होश आ गया है। लाभ दिखाई दे रहा है। दवाइयाँ अब आवश्यक नहीं हैं। दो-तीन दिन रुक जाने में बुराई नहीं है। ज़रा देखकर पुनः विचार कर सकते हैं।"

रानी ने कुछ दिन और सोचा। दिन-पर-दिन राजा की कमजोरी कम होती जा रही थी। अतः निश्चय किया कि भगवती को बुलाने की आवश्यकता नहीं है, यह बसव को बतलाया गया। पर उसने मन में सोचा, "भगवती को वैसे ही बुलाकर राजा के श्रेय के लिए देवी की सविधि पूजा करने के लिए कहना चाहिए।"

38

एक सप्ताह के बाद रानी ने दीक्षित से फिर पूछा, "इस बार की बीमारी आपके आशीर्वाद से ठीक हो गई। भगवती को बुलाना नहीं पड़ा। फिर भी आप कहते हैं वहाँ की पूजा का फल तीव्र होता है इसीलिए कुछ पूजा कराना चाहती हूँ।"

दीक्षित बोला, "हम भगवान को प्रसन्न और उग्र कहते हैं। शब्दों के सूक्ष्म अर्थ को न जानने वाले इसी को सौम्य और क्रूर कहते हैं। वैसे श्रेष्ठ-क्षुद्र तथा अच्छा-बुरा भी कहा जाता है। यदि उपासना ठीक हुई तो उपासक बच जायेगा, उसका प्रेरक भी बच जायेगा और यदि वह ठीक नहीं चली, तो उपासक का भी बुरा हुआ और उसके प्रेरक का भी। गलत रास्ते पर चलकर काम बिगाड़कर लोगों ने भगवान को क्षुद्र और बुरा कहा है। हम यह नहीं कह सकते हैं कि

ना विगड़ती ही नही है। अब भगवती को ढूंढकर क्यों लाया जाये ? ...
ल की प्राप्ति के लिए पूर्वजों के बनाये मन्दिर में ओंकारेश्वर हैं। प्रत्यक्ष रूप में
यदि हम ठीक से चलें तो व्याधि आती ही नही। वैद्य की जरूरत ही नही।
नीमाँ, आप यह सब विचार कर लीजिए।"
वैसे दीक्षित की बात से रानी सहमत थी। फिर भी उसने सोचा यह बूढा
यों भगवान की पूजा को मना करता है। गांव में लोग भगवती की बहुत प्रशंसा
कर रहे हैं। क्या बूढे को इस बात की आशंका है कि उसके महल मे आने से इसका
महत्त्व कम हो जायेगा। साधारणतः दीक्षित ऐसे ओछे विचार का आदमी नही।
फिर भी यह ईर्ष्या असम्भव भी नही। रानी ने बसव से कहा, "फिलहाल
भगवती के महल मे आने की आवश्यकता नही है। पर हमें यह मूल भी नहीं
करनी चाहिए कि देश-भर में जिसकी पूजा हो रही हो, हम उससे दूर रहें। राज
महल की ओर से एक दिन पूजा का प्रबन्ध करो। यह सब तुम्हीं को करना
होगा।"

बसव को यही चाहिए था। यदि रानी न भी सहमत होती तो भी वह स्वयं
भगवती से मिलकर राजा की शारीरिक शक्ति प्राप्ति का प्रयास करता। यह
शारीरिक शक्ति की प्राप्ति रानी तथा बाकी लोगों के हिसाब से नही अपितु राजा
की वासनात्मक तुष्टि की दृष्टि से थी।

दोड्डव्वा बोली, "रानी माँ का मान जाना अच्छा हुआ। नही तो हमें गुप्त
रूप से जाना था और इसे भगवती नहीं चाहती।"

दोड्डव्वा की इस बात से बसव को लगा कि अब तक वह भगवती से बात
कर चुकी है और भगवती ने वह भी दिया है कि यदि राजमहल मे ढंग से उसका
स्वागत न हो तो वे वहाँ आना पसन्द नही करेंगी। बसव ने उससे पूछा, "तो तु
भगवती से पहले ही मिल चुकी हो ?"

"नहीं मिलती तो राजा को बचना नहीं था। जो पूजा चाहिए थी वह
करा दी। नही तो क्या महाराज इतनी जल्दी ठीक हो जाते ?"

"तो वैद्य की औषधि, भट्ट की पूजा और पादरी की दवा इनसे कुछ
हुआ ! भगवती की पूजा ही सबसे बड़ी हो गयी ?"

"अय्यो ! बाप रे ! वैद्य की बात जाने दो; ऐसे भी ठीक, वैसे भी।
दीक्षित और पादरी की हाँ मे हाँ मिलाता है। इनकी दवा इस रोग मे कि
की ? भूत को भगाने के लिए कहीं धूप-बत्ती सुलगाते हैं, बेटा ? उसके
झाड़ की जरूरत पड़ती है। महाराज को क्या छोटी-मोटी बीमारी
इधर तुम लोग यह दवाई दिला रहे थे उधर मैंने भगवती से पूजा करा
तो जो सकट आया था उसमे क्या राजा बच सकते थे ?"

"ऐसी बात मे तुम अपनी मर्जी से क्यों चली दोड्डव्वा ?"

"अपनी मर्जी से चलने की क्या बात है भैया? मालिक मेरे नहीं क्या? रानीमां का हिस्सा एक सेर है तो मेरा सवा सेर है।"

बसव हंसकर एक क्षण बाद बोला, "तो तुम उस भगवती को जानती हो?"

"हां जानती हूं; मुझसे अनजानी है क्या यह भगवती?"

"कौन है यह? लोग कहते हैं कि मलयाल से आये हुए उसे पांच-छह महीने हो गये हैं।"

"मलयाल से आये छह महीने हो गये यह तो ठीक है पर मलयाल गयें कितने वर्ष हुए यह कोई नहीं जानता।"

"तो भगवती यहीं की है क्या?"

"और मुझसे कुछ मत पूछ भैया। मेरा मुंह खोलना ही बुरा है। मुंह न खोलने की कसम खा रखी है। मैंने बच्चों की कसम खाई है। जब सब तुम्हें पता लग जायेगा तो बाद में मुझसे पूछना।"

दोड्डव्वा की बात ने बसव की उत्सुकता को बढ़ा दिया, पर वह जानता था कि वह बात आगे नहीं बतायेगी। इसलिए बात को वहीं खत्म करके एक नौकर को बुलाकर कहा, "अरे! भगवती के मन्दिर में जाकर कह आ कि कल हम मन्दिर में पूजा कराने आ रहे हैं।"

39

अगले दिन बसव ने राजा को बताया कि वह भगवती के यहां पूजा कराने जा रहा है। राजा बोला, "भाड़ में जा, अब तुझसे मुझे क्या फायदा?"

बसव बोला, "यही ठीक कराने जा रहा हूं मालिक। यदि भगवती की कृपा हो जाये तो गई जवानी लौट आयेगी।"

"लौट आयेगा तेरा पिण्ड। अब क्या धरा है इस शरीर में? तेरे साथ यह खेल खेलकर मैं आज जिन्दा लाश बन गया हूं।"

"हारी बीमारी तो लगी ही रहती है मालिक। आज खराब तो कल ठीक। मैं ठीक करा दूंगा, आप देखते रहिये।"

"तुझे किसने मना किया रांड के। जो-जो कर सकता है, जाकर कर। मैं सबका मालिक हूं, तू मेरा मालिक है।"

राजा प्रसन्न था, बसव नमस्कार करके वहां से चल पड़ा।

उसने पहले ही पूजा की सामग्री दस आदमियों के सिर पर उठवाकर भेज दी थी। भगवती की आज्ञानुसार पूजा के समय केवल बसव को ही मन्दिर में रहना था। और कोई उस समय वहां रहता तो पूजा का फल निष्फल हो जाता। इस कारण पूजा की सामग्री ले जाने वाले वापस आ गये थे। बसव अकेला घोड़े

पर सवार होकर आश्रम के समीप गया और वहाँ नदी के किनारे उतरकर पैदल मन्दिर गया।

मन्दिर के चारों ओर हरी झाड़ियाँ थीं। झाड़ियों में से भीतर जाने के लिए एक रास्ता था। वहाँ एक स्त्री खड़ी थी। वह लँगड़े को इशारे से बुलाकर भीतर चली गयी।

यह मन्दिर पर्वत की तलहटी में स्थित प्राचीन-काल की एक गुफा ही था। यह किंवदंती थी कि इस गुफा में मतंग या गौतम—किसी ऋषि ने तपस्या की थी। भगवती ने गुफा के सामने लकड़ियों से चार-दीवारी बनवा रखी थी। गुफा के सामने एक द्वार था। दरवाज़े पर एक ढलवाँ छप्पर था। उस पर लताएँ थीं। कुल मिलाकर मन्दिर के पास पहुँचते-पहुँचते मन में यह भावना उठती कि यह एक विशिष्ट स्थान है।

बसव के मन में एक तरह का डर था। लोगों का कहना था कि भगवती एक दर्पवती स्त्री है, पता नहीं वह क्या पूछे और क्या जवाब देना पड़े? क्या कहना चाहिए और क्या नहीं? राजा का शरीर अब बड़ा अशक्त हो गया है। उनको शक्ति प्रदान कीजिए कहना है ना? यह कैसे कहा जाये? किन शब्दों में कहना है? आदि सोचते हुए वह दरवाज़े के पास आया। एक क्षण भर को उसे लगा कि उसका आना गलत हुआ, उसे लौट जाना चाहिए। उसी क्षण उसे मन्दिर के द्वार पर भगवती की मूर्ति दिखाई दी। उसने दूर से नमस्कार किया और आगे कदम रखा।

बसव लंगड़ाते-लंगड़ाते दरवाज़े के पास आ रहा था तो भगवती उसे सीधी दृष्टि से देख रही थी। उसको अपनी ओर देखते देखकर बसव के मन में एक भय मिश्रित आकर्षण उत्पन्न हुआ। अहा-हा कैसी भव्य मूर्ति है! उमर ढलने पर भी मुख पर कैसी चमक है! लगातार सीधे देखना उचित नहीं सोचकर उसने अपनी आँखें एक बार झुकायीं। दुबारा सिर उठाकर देखने पर उसे ऐसा लगा कि भगवती अपने बायें हाथ से आँख की कोर से कुछ झिटक रही है। तब तक वह उसके और भी पास आ गया। उसने देखा उसकी आँखें भरी हुई थीं।

भगवती बसव को भीतर आने का संकेत करके घूम गयी। वह सामने से जितनी गम्भीर थी, पीठ की तरफ से भी उतनी ही गम्भीर थी। वह सीधी खड़ी होती थी और गर्दन भी सीधी ही थी। बसव ने मन में कहा, "भगवती साधारण नहीं; सशक्त महिला है।"

भगवती बसव को गुफा में ले गयी। गुफा में तीन भाग थे। मध्य भाग की पिछली दीवार से लगे दो दरवाज़े के कमरे में दीये का प्रकाश दिखाई दे रहा था। बायें ओर के कमरे में प्रकाश कम था। बीच में पिछली दीवार के एक आले में एक चित्र था; उसके सम्मुख एक दीया जल रहा था।

"अपनी मर्जी से चलने की क्या बात है भैया? मालिक मेरे नहीं क्या? रानीमां का हिस्सा एक सेर है तो मेरा सवा सेर है।"

बसव हँसकर एक क्षण बाद बोला, "तो तुम उस भगवती को जानती हो?"

"हाँ जानती हूँ; मुझसे अनजानी है क्या यह भगवती?"

"कौन है यह? लोग कहते हैं कि मलयाल से आये हुए उसे पाँच-छह महीने हो गये हैं।"

"मलयाल से आये छह महीने हो गये यह तो ठीक है पर मलयाल गये कितने वर्ष हुए यह कोई नहीं जानता।"

"तो भगवती यहीं की है क्या?"

"और मुझसे कुछ मत पूछ भैया। मेरा मुँह खोलना ही बुरा है। मुँह न खोलने की कसम खा रखी है। मैंने बच्चों की कसम खाई है। जब सब तुम्हें पता लग जायेगा तो बाद में मुझसे पूछना।"

दोड्डव्वा की बात ने बसव की उत्सुकता को बढ़ा दिया, पर वह जानता था कि वह बात आगे नहीं बतायेगी। इसलिए बात को वहीं खत्म करके एक नौकर को बुलाकर कहा, "अरे! भगवती के मन्दिर में जाकर कह आ कि कल हम मन्दिर में पूजा कराने आ रहे हैं।"

39

अगले दिन बसव ने राजा को बताया कि वह भगवती के यहाँ पूजा कराने जा रहा है। राजा बोला, "भाड़ में जा, अब तुझसे मुझे क्या फायदा?"

बसव बोला, "यही ठीक कराने जा रहा हूँ मालिक। यदि भगवती की कृपा हो जाये तो गई जवानी लौट आयेगी।"

"लौट आयेगा तेरा पिण्ड। अब क्या धरा है इस शरीर में? तेरे साथ यह रोग भोगकर मैं आज जिन्दा लाश बन गया हूँ।"

"हमारी बीमारी तो लगी ही रहती है मालिक। आज खराब तो कल ठीक। मैं ठीक करा दूंगा, आप देखते रहिये।"

"तुझे किसने मना किया रांड के। जो-जो कर सकता है, जाकर कर। मैं नकली मालिक हूँ, तू मेरा मालिक है।"

राजा प्रसन्न था, बसव नमस्कार करके वहाँ से चल पड़ा।

उसने पहले ही पूजा की सामग्री दस आदमियों के सिर पर उठवाकर भेज दी थी। भगवती की आज्ञानुसार पूजा के समय केवल बसव को ही मन्दिर में रहना था। और कोई उस समय वहाँ रहता तो पूजा का फल निष्फल हो जाता। इस कारण पूजा की सामग्री ले जाने वाले वापस आ गये थे। बसव अकेला पीछे

पर सवार होकर आश्रम के समीप गया और वहाँ नदी के किनारे उतरकर पैदल मन्दिर गया।

मन्दिर के चारों ओर हरी झाड़ियाँ थी। झाड़ियों में से भीतर जाने के लिए एक रास्ता था। वहाँ एक स्त्री खड़ी थी। वह लँगड़े को इशारे से बुलाकर भीतर चली गयी।

यह मन्दिर पर्वत की तलहटी में स्थित प्राचीन-काल की एक गुफा ही था। यह किंवदंती थी कि इस गुफा में मतंग या गौतम—किसी ऋषि ने तपस्या की थी। भगवती ने गुफा के सामने लकड़ियों से चार-दीवारी बनवा रखी थी। गुफा के सामने एक द्वार था। दरवाज़े पर एक ढलवाँ छप्पर था। उस पर लताएँ थीं। कुल मिलाकर मन्दिर के पास पहुँचते-पहुँचते मन में यह भावना उठती कि यह एक विशिष्ट स्थान है।

बसव के मन में एक तरह का डर था। लोगों का कहना था कि भगवती एक दर्पवती स्त्री है, पता नहीं वह क्या पूछे और क्या जवाब देना पड़े? क्या कहना चाहिए और क्या नहीं? राजा का शरीर अब बड़ा अशक्त हो गया है। उनको शक्ति प्रदान कीजिए कहना है ना? यह कैसे कहा जाये? किन शब्दों में कहना है? आदि सोचते हुए वह दरवाज़े के पास आया। एक क्षण भर को उसे लगा कि उसका आना गलत हुआ, उसे लौट जाना चाहिए। उसी क्षण उसे मन्दिर के द्वार पर भगवती की मूर्ति दिखाई दी। उसने दूर से नमस्कार किया और आगे कदम रखा।

बसव लंगड़ाते-लंगड़ाते दरवाज़े के पास आ रहा था तो भगवती उसे सीधी दृष्टि से देख रही थी। उसको अपनी ओर देखते देखकर बसव के मन में एक भय मिश्रित आकर्षण उत्पन्न हुआ। अहा-हा कैसी भव्य मूर्ति है! उमर ढलने पर भी मुख पर कैसी चमक है! लगातार सीधे देखना उचित नहीं सोचकर उसने अपनी आँखें एक बार झुकायीं। दुबारा सिर उठाकर देखने पर उसे ऐसा लगा कि भगवती अपने बायें हाथ से आँख की कोर से कुछ झिटक रही है। तब तक वह उसके और भी पास आ गया। उसने देखा उसकी आँखें भरी हुई थीं।

भगवती बसव को भीतर आने का संकेत करके घूम गयी। वह सामने से जितनी गम्भीर थी, पीठ की तरफ़ से भी उतनी ही गम्भीर थी। वह सीधी खड़ी होती थी और गर्दन भी सीधी ही थी। बसव ने मन में कहा, "भगवती साधारण नहीं; सशक्त महिला है।"

भगवती बसव को गुफा में ले गयी। गुफा में तीन भाग थे। मध्य भाग की पिछली दीवार से लगे दो दरवाज़े के कमरे में दीये का प्रकाश दिखाई दे रहा था। बायें ओर के कमरे में प्रकाश कम था। बीच में पिछली दीवार के एक आले में एक चित्र था; उसके सम्मुख एक दीया जल रहा था।

भगवती बसव को मन्दिर के द्वार के समीप बैठने का संकेत करके अन्दर चली गयी।

मन्दिर में दरवाजे की ओर मुंह करके कमरे के बीच में देवी की मूर्ति थी। वह एक लौह-मूर्ति थी। उसका रंग ऐसा था कि तांबे या सोने की होने का भ्रम होता था। यह प्रायः अगम रीति से देवताओं के विग्रहों को ढालने के लिए पूर्वजों द्वारा स्वीकृत पंचलौह नामक धातु की मूर्ति थी। यह मूर्ति प्रायः मन्दिरों में पाई जाने वाली मूर्तियों से कुछ लम्बी थी। उसकी नाक व मुंह बहुत सावधानी से बनाया गया था। संसार को चलाने वाली शक्ति साधारण नहीं, यह भाव उस मूर्ति में विद्यमान था। उसे देखने से बरबस भक्ति उत्पन्न होती थी। मूर्ति के एक हाथ में खड्ग था। मूर्ति के आकार और गांभीर्य को द्विगुणित करने के लिए उसका फूलों से शृंगार किया गया था। उन फूलों में लाल रंग की अधिकता थी। भय उत्पन्न करने में यह भी एक मुख्य कारण था। यह लाल रंग ऐसा लगता था कि सब जगह वही भर गया है। वह आंखों को चौंधिया देता था। मूर्ति के सम्मुख फूलों के बीच कुंकुम की राशि थी।

बसव मन्दिरों में ज्यादा नहीं जाया करता था। यह सब उसके लिए नया था। आते ही उसके मन में जो डर बैठ गया यहां की अर्चिका का मौन, गुफा का अंधेरा और फूलों के लाल रंग ने उसे और बढ़ा दिया था। उसके मन में एक अपूर्व भक्ति जाग्रत हुई और वह हाथ जोड़ टकटकी बांधकर मूर्ति की ओर निहारने लगा। उसका दिल जोर से धड़क रहा था।

भगवती मूर्ति के सामने एक पुस्तक खोलकर बैठ गयी। उसने मूर्ति के दोनों पार्श्व की बत्तियों को ठीक करके प्रकाश बढ़ाया। बसव की ओर मुड़कर मुंह न खोलने का इशारा करके स्वयं पुस्तक से मन्त्रों का जाप करने लगी।

बसव भगवती की ध्वनि सुनते ही डरकर चौंक पड़ा। वह ऊंची और गम्भीर ध्वनि थी। उसे लगा उसके विशेष आकार की भांति उसकी ध्वनि भी विशेष है।

यह मन्त्रोच्चार कितनी देर तक चला, बसव इसका अनुमान नहीं लगा पाया। पढ़ने के साथ-साथ बीच में तनिक रुककर भगवती कुंकुम और फूल मूर्ति के चरणों में चढ़ाती और मूर्ति पर दृष्टि टिकाकर हाथ जोड़ती। इन सब कार्य-कलापों से बसव को लगा कि यह जगह सामान्य नहीं, यह मूर्ति सामान्य नहीं और यह अर्चिका भी सामान्य नहीं।

निर्विघ्न रूप से अर्चना समाप्त होते ही भगवती उठ खड़ी हुई। उसने बसव को भी खड़े होने का संकेत किया। पहले से तैयार रखा कपूर आरती की

थाली में जलाकर उस मूर्ति की आरती उतारी। उस समय उसके मुँह से निकले मन्त्र बसव को ऐसे लगे कि पहले भी उनको उसने दीक्षित के मुँह से मन्दिर में सुना है।

आरती समाप्त करके भगवती ने मूर्ति के पास से पाँच बार अञ्जलि भर कुंकुम और पाँच बार अंजलि भर फूल महल से आयी थालियों में डाले और लाकर बसव के सामने रख दीं और बोली, "आज की पूजा समाप्त हुई, यह पूजा कम-से-कम पाँच दिन चलेगी। आप लोगों को सुविधा हो तो सप्ताह या दो सप्ताह के अन्तराल में चार बार और पूजा कराइये।"

बसव : "अच्छी बात है, माँ।"

"हमें रानीमाँ से भी बात करनी है। हम राजमहल आयेंगे, उन्हें सूचित करो।"

"अच्छी बात है, माँ!"

यह उत्तर देते हुए बसव के मन में आया : भगवती का मुझसे एकवचन में बात करने का कारण क्या है? क्या उसे पता नहीं कि मैं मन्त्री हूँ या जानने पर भी लंगड़ा समझकर मेरी उपेक्षा कर रही है! या भगवती है इसलिए सबसे ऐसे ही बात करती है!

उसने सोचा भी, जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी मुझे यहाँ से चल देना चाहिए। उसने प्रसाद की दोनों थालियों को उठाकर पूछा, "यह बाद में मँगवा लूँ।"

"तुम घोड़े पर आये हो?"

"जी हाँ।"

"नदी के पास छोड़कर आये हो?"

"जी हाँ।"

"अच्छी बात है, हमारी सेविका वहाँ पहुँचा देगी।"

"ठीक है माँ।" कहकर लंगड़ाते हुए वह द्वार की ओर बढ़ा।

उस क्षण क्या हुआ उसे पता नहीं चला। भगवती की दोनों बाँहें उसे लपेटे थीं। उसने इसे खींच छाती से लगा लिया था। इसके सिर को अपनी छाती से दबाकर सिर पर अपना गाल रख दिया था। उस क्षण उसे लगा कि वह सिसक रही है। दूसरे ही क्षण उसने इसे छोड़ दिया और तेजी से थोड़ी दूर जाकर खड़ी हो गयी। अब यहाँ मत ठहरो, जाओ। यहाँ जो भी हुआ है वह किसी से मत कहना, खबरदार। ऐसा कहकर बसव से पहले ही बाहर जाकर सेविका को बुला लायी और स्वयं पूजा-गृह में चली गयी।

बसव इस विचित्र व्यवहार से अकबका गया। उस समय वह कुछ भी सोचने की स्थिति में न था। उसके सिर को कुछ हो गया है सोचकर उसने छूकर देखा।

उसके अपने सिर के बाल गीले थे।

अरे इस औरत ने यह क्या किया ? पर उसका शायद यहाँ ऐसा सोचना गलत हो उसे यह भी डर था। यहाँ रहना ही ठीक नहीं, सोचकर जल्दी-जल्दी लंगड़ाता हुआ तेजी से बाहर आया। वह हाँफते-हाँफते नदी तक आकर घोड़े पर सवार हो गया, तब तक भगवती की सेविका प्रसाद की दोनों थालियाँ लेकर वहाँ पहुँच गयी थी। उन्हें नौकर से उठवाकर बसव महल में लौट आया।

41

घोड़े पर बैठने के बाद बसव ने संध्या के सारे अनुभव को दोहराया। मन्दिर में जगी एक भावना अब जोर पकड़ती जा रही थी। वह थी कि भगवती एक बहुत सुन्दर स्त्री है।

सभी राजमहलों में एक ही बात है। मडकेरी के राजमहल में भी वही बात है। राजमहल ही क्यों ? धनी के घर में भी वही बात है। "क्या इसे खरीदेंगे" कहकर स्त्री-सौंदर्य का व्यापार चलता है। यदि यह पता चल जाये कि घर के स्वामी का इस ओर झुकाव है तो राजमहल ही सौंदर्य की हाट बन जाता है। वीरराज के राजा बनने से पूर्व ही उसकी नजर को आकर्षित करने के लिए कई प्रकार के सौंदर्य महल में आ चुके थे। राजा की दृष्टि उस पर पड़ने से उसने अपने को धन्य समझा। इतनी आसानी से मिल जाने के कारण राजा को वह सौंदर्य हलका लगा अतः उसका मन इधर-उधर चक्कर काटने लगा। उसे प्रसन्न करने के लिए बसव ने ही प्रयास करके बहुत कुछ सौंदर्य प्राप्ति कराई थी। बसव को लगा अपने-आप मिले सौंदर्य और प्रयास से प्राप्त किये सौन्दर्य में भी, जो आज तक नहीं दिखा वह सौन्दर्य इस अधेड़ स्त्री भगवती में है।

इसके साथ ही, बसव के मनमें यह प्रश्न उठा कि क्या यह 'स्त्री चरित्र वाली' है। इसने मुझे ऐसे क्यों बाँहों में बांध लिया ? अपरिचित पुरुष के सिर को उसने अपने हृदय से क्यों लगा लिया ? उसे क्या चाहिए था ? क्या आने वाले सभी पुरुषों को ऐसे ही गले लगा लेती है ? ऐसा नहीं हो सकता। तो मुझे ही क्यों ऐसे बाँहों में बांध लिया ? कामुक राजा के साथ रहकर कामुक जीवन को उसने तल-छट तक देखा था। पर उसे पता था कि जिन लड़कियों ने उसे गले से लगाया था वे उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर नहीं आयी थीं। इस स्त्री ने क्यों बिना किसी कारण मुझे खींच कर अपनी बाँहों में बांध लिया ?

यही सोचते-सोचते उसे ध्यान आया, मान्त्रिक लोग मन्त्रोच्चार के बाद रोगी को ठीक करने के लिए उसे छूते हैं और गले लगाते हैं। राजा को स्वास्थ्य-लाभ हो, इसीलिए तो हमने पूजा करायी है। पूजा के लिए राजा तो नहीं

आये, उनका प्रतिनिधि बनकर मैं आया था। यह हो सकता है कि भगवती ने इसीलिए मुझे गले से लगाया हो तकि राजा को शक्ति प्राप्त हो।

यह भी कैसे हो सकता है? भगवती मुझे गले से लगाकर रो पड़ी थी। रोते हुए उसकी सिसकी भी सुनाई दी थी, उसके आँसुओं से मेरा सिर भीग गया था ना? वह रोना और सिसकना क्यों? यह कहीं इस चिकित्सा का अंग तो नही?

अगर ऐसा था तो उसे मुझे पहले ही चेतावनी देनी चाहिए थी। इस बीच में उसके महल आने की बात भी है। पूजा कैसे समाप्त होगी? महल में आकर पता नही यह क्या और कहेगी? और आगे क्या-क्या होगा? राजा का व्यवहार कैसा रहेगा? शहर के लोग इसके बारे मे क्या कहेंगे?

बसव की समझ में कुछ न आया। वह महल पहुँचा। पूजा की थाली को रानी की सेवा मे पहुँचाकर कहा, "भगवती महल में आना चाहती हैं। और चार बार पूजा होनी है।"

रानी बोली, "अच्छी बात है बसवय्या।"

उस समय राजा शराब पीकर अपने कमरे में बेहोश पड़ा था। प्रसाद वगैरह वह साधारणतः पास आने नही देता था। उस हालत में उसे समझ भी नही पाता था। फिर भी रानी कुछ कुंकुम और दो फूल ले गई, उसके माथे पर कुंकुम लगाकर फूलों को अपनी आँखों को छुआकर पास रख दिया। उसने स्वय कुकुम को माथे पर लगा फूल को बालों मे लगा लिया। बाद में वह अपने कमरे में गई, बेटी को भी कुंकुम लगाकर थोड़ा प्रसाद दिया।

42

रानी ने आज्ञा दी कि शेष पूजा सप्ताह मे एक बार कराई जाये। दूसरी, तीसरी पूजा मे बसव नही गया। चौथी पूजा के लिए भगवती ने बसव को ही बुलवाया। वह गया। उस दिन भगवती में उसे पहले दिन की तरह विचित्र व्यवहार दिखाई नही दिया। "पाँचवी पूजा अगले सप्ताह नही होगी, क्योकि उसके लिए कुछ विशेष प्रबन्ध होना है। सब तैयारी करके बताऊँगी" यह कहकर भगवती ने उसे भिजवा दिया।

चार दिन के बाद किसी ने आकर खबर दी कि भगवती गाँव में आई हैं। कुछ देर बाद उसी की भेजी सेविका ने आकर कहा, "भगवती इधर आ रही हैं, राज-महल मे सूचना देने को मुझे भेजा है।"

रानी ने मन में कहा, "इनके आने की सूचना कुछ पहले मिलती तो अच्छा था। अब हम उन्हे आदर दे सकेंगे या नही, पर करें क्या? उन्होंने अपने आने की सूचना भेजी है तो स्वागत होना ही चाहिए। जितनी सम्भव हो उतनी मर्यादा

दिखाएँगे। फिर सेविकाओं से बोलीं, "यह पीठिका इधर रखो, थाली में पान फूल ले आओ।" बाद में स्वयं भगवती के स्वागत के लिए आँगन में आ गयी।

आँगन में आकर थोड़ा इधर-उधर देखने को ही थी कि भगवती आ गयी। उसके पीछे केवल एक सेविका थी। भगवती सेविका को वहीं द्वार पर खड़ा करके भीतर चली आयी। रनिवास की चेटी ने उसे नमस्कार करके कहा, "रानीमाँ द्वार पर आप ही की प्रतीक्षा कर रही हैं।" भगवती 'अच्छा' कहकर इशारे से ही उत्तर देकर भीतर आँगन में गयी।

भगवती का चलने का ढंग और इशारा करने का तरीका देखकर रानी को लगा कि वह एक विचित्र स्त्री है। उस प्रौढ़ स्त्री का रूप इस युवती को बड़ा भला लगा। रानी ने जब नमस्कार किया तब उसके मन में भक्ति-भावना थी।

रानी को देखकर भगवती भी प्रभावित हुई। उसने लोगों के मुंह से रानी की प्रशंसा सुनी थी। परन्तु उसने यह कल्पना तक नहीं की थी कि इस मध्य आयु की स्त्री की आँखों में इतना बड़प्पन रहेगा। भगवती उमर में अपने से बहुत बड़ों के अतिरिक्त अन्य सब लोगों को एकवचन से सम्बोधन करती थी। राजमहल आते समय उसने यह नहीं सोचा था कि रानी को एकवचन से सम्बोधन करना चाहिए या बहुवचन में। परन्तु सामने हाथ जोड़े खड़ी मूर्ति को देखकर उसके मुंह से एकवचन नहीं निकला। वह आमतौर पर भगवान या गुरु के अतिरिक्त किसी को हाथ जोड़ने वाली नहीं थी। पर हाथ जोड़कर खड़ी रानी को देखकर उसने स्वयं सहज रूप से हाथ जोड़कर कहा, "आप यहाँ तक क्यों आ गईं, हम अन्दर आ ही रहे थे।"

रानी बोली, "आपके आने की बात कुछ और पहले ज्ञात हो जाती तो आपके स्वागत का अच्छा प्रबन्ध किया जा सकता था। पर अब जो भी कमी रह जाये उसे आपको सहन करना पड़ेगा।"

यह कहकर रानी भगवती को भीतर ले गयी। वहाँ इसके लिए पहले से ही रखे पीढ़े पर बिठाया और आप पास ही कुर्सी पर बैठ गयी। सेविकाएँ चारों ओर खड़ी थीं। रानी ने उनमें से एक को बुलाकर कहा, "पुट्टव्वा को बुलाना। वह भगवती के चरण स्पर्श करे।"

भगवती बोली, "आपकी बेटी है ना।"

रानी : "जी हाँ।"

भगवती : "विवाह योग्य हो गई।"

"यह तो बच्ची है। पर ऐसी भी लड़कियाँ हैं जो इस आयु तक माँ बन जाती हैं। राजमहल की बेटियों का ब्याह कुछ देर से ही होता है।"

"आपकी एक ननद भी है ना?"

"जी हाँ है।"

यह प्रश्न करते समय भगवती को राजा और उनकी बहन के बीच वैमनस्य की बात का पता चल गया था। फिर भी उसने ऐसे पूछा मानो उसे पता न हो। रानी ने स्वाभाविक रूप से जब यह उत्तर दिया कि जी हाँ एक ननद है तो उस क्षण उसके मन में सन्देह जागा। क्या यह सब बातें सचमुच ही नहीं जानती या बहाना कर रही है? पर उसने अपने भाव को व्यक्त होने नहीं दिया।

भगवती ने कहा, "रिश्तेदारी में मन-मुटाव हो तो उसको ठीक करने के लिए भगवती की सेवा की जा सकती है। वे शीघ्र फल देती हैं। आपकी इस समय पूजा आगम की रीत है और वे पूजाएँ तन्त्र की पूजाएँ हैं। उनमें नेम और निष्ठा ज्यादा है। उनका खर्च भी थोड़ा ज्यादा ही है पर महल के लिए खर्च आदि की कोई बात नहीं है।"

इसकी बात से यह पता चल गया कि भाई-बहन के वैमनस्य की बात इसे पता है। रानी बोली,"घर-गृहस्थी में ऊँच-नीच लगा ही रहता है। सब ठीक-ठाक चलता रहे इसके लिए आप भगवती से प्रार्थना कीजिए। तान्त्रिक पूजा फिलहाल नहीं चाहिए।"

"चाहिए या अभी कहने की आवश्यकता नहीं। बाद में सोच-विचारकर निश्चय कीजिए। सहोदर की बात नहीं पति-पत्नी, माँ-बेटी, नौकर-मालिक आदि किसी सम्बन्ध में भी बिगाड़ हो तो उसे ठीक करने के लिए तान्त्रिक पूजा में व्यवस्था है।"

"अच्छा माँ।"

भगवती ने देखा कि अब बात आगे बढ़ाने की और गुंजाइश नहीं तो वह चुप गई। दो क्षण के बाद वह बोली, "पूजा कराने वाले भक्तों से मिलने की प्रथा है। अब हम मिल लिये, चलते हैं, फिर आएँगे।" कहकर उठ खड़ी हुई।

रानी भी उठ कर खड़ी हो गयी। उसने दासी को इशारे से पान की थाली लाने को कहा। स्वयं अपने हाथ में थाली पकड़ भगवती के सम्मुख रखी। भगवती पान-सुपारी लेकर विदा हुई।

43

भगवती स्वयं अपने-आप राजमहल से सम्बन्ध बढ़ाने का प्रयत्न कर रही है इस बात का सबको आभास हुआ। उसकी बात पहले उठाने वाली दोड्डव्वा थी। उस बुढ़िया की बात से उसे पता लगा कि भगवती उससे परिचित है, पहले वह कोडग में ही थी। इस स्त्री का उद्देश्य क्या हो सकता है? राजा को दवा देकर ठीक करने भर का है या कुछ और? यह संदेह उसके मन में उत्पन्न हुआ।

यदि वह सामान्य स्त्री होती तो बसव एक क्षण भर को संकोच किये बिना

उसके पीछे अपने लोगों को लगा देता। भगवती बड़ी पहुँची हुई भक्त थी। अगर ऐसा किया जाये तो हो सकता है उसकी देवी मेरी गर्दन ही मरोड़ डाले तो क्या होगा? ऐसा सोचकर उसने आगे पीछे देखा। अन्त में उसका कुछ किया तो नहीं पर स्थिति को जानने के लिए उसकी गतिविधि पर निगाह रखने के लिए कुछ अपने आदमी लगा दिये। एक-दो महीने में उसे पता चला कि भगवती मडकेरी तथा आसपास के कुछ सम्पन्न घरों में जाने के लिए कोई बहाना बनाकर जाया करती थी। इनमें कुछ लोग राजा के विरोधी थे; कुछ ही क्यों अधिकतर लोग ऐसे ही थे। बसव के भेदिये हर जगह होनेवाली हर बात को पता नहीं लगा सकते थे परन्तु कई प्रसंगों से पता चला कि यह सब गुप्त रूप से चल रहा है।

भगवती के इस प्रकार आने-जाने वाले घरों में अप्पगोल का राजमहल भी एक था। वहाँ जो कुछ हुआ वह विस्तार से बसव तक पहुँचा।

चेन्नबसवय्या की तबियत थोड़ी-सी खराब थी। तब किसी आसपास के मिलने वाले ने भगवती को बुलाकर दिखलाने को कहा। इस बात का कारण स्वयं भगवती ही हो सकती थी। चेन्नबसवय्या ने उसे बुलवा भेजा। भगवती ने खबर भेजी कि पूजा करवाओ। उसकी स्वीकृति पाकर पूजा भेजी गई। उसके स्वस्थ होने के बाद वह उससे मिलने के लिए; स्वयं प्रसाद देने के बहाने दो बार महल में गयी।

पहली ही बार की भेंट में उसने चेन्नबसवय्या और राजघराने के वैमनस्य की बात उठाई और उसे ठीक करने के लिए पूजा कराने को कहा। चेन्नबसवय्या गुस्से से बोला, "अब इसे ठीक करने के लिए पूजा कराऊँगा। इसे खत्म कराने के लिए भूत जगाऊँगा।"

भगवती ने उसे तसल्ली देने के बहाने राजमहल में हुआ उसका अपमान याद दिलाकर उसके मन में क्रोध उत्पन्न कर दिया। उसने जो शिकायत अंग्रेजों को भेजी थी वह भी पता लगाई। मुँह से तो यह ठीक नहीं कहा पर उसका विरोध भी नहीं किया। अन्त में जो बातें चलीं उन पर जब चेन्नबसय्या ने कहा कि एक और शिकायत भेजनी है। उस पर भगवती ने ऐसा दिखाया मानों इसमें कोई बुराई नहीं। इनकी बातचीत से पता चला कि देवम्माजी को गद्दी पर बिठाने के लिए वह पूजा करने को तैयार है।

अप्पगोल में हुई सब बातें जानने पर बसव ने सोचा कि यह स्त्री राजा के विरोधियों के साथ ऐसी बातें कर रही है। यह राजा को हानि पहुँचाने की कोशिश करे तो वह चुप नहीं रह सकता। इसका विरोध करना पड़ेगा। यह वह अकेला कैसे कर सकेगा? यदि किसी की सहायता की आवश्यकता हो तो वह कौन दे सकता है? राजा से निष्कलुष प्रेम अथवा स्नेह केवल रानी में है। किसी और पर वह विश्वास नहीं कर सकता। रानी तक उसकी पहुँच नहीं। राजा से पूछने पर

दो देने का भी फायदा नहीं। वे तो यही कहेंगे, "भगवती का सिर कलम कर दो, चमारों के यहां भिजवा दो।" अब क्या किया जाये?

बहुत देर तक सोचने के बाद बलव ने दोड्डव्वा के साथ विचार-विनिमय करने का निश्चय किया और एक दिन उसने उस बुढ़िया से पूछा, "क्यों दोड्डव्वा, तुमसे एक बात पूछूं?"

दोड्डव्वा बोली, "एक क्या दस बातें पूछो भैया। तुम्हारी बातें मोतियों-सी हैं।"

दोड्डव्वा की बात का ढंग ही कुछ ऐसा था। बड़े लोगों की सेवा में रहकर उसने सबसे बात करने का अधिकार प्राप्त कर लिया था। इस पर बलव उसी के हाथों में पला हुआ था। इन दो कारणों से बुढ़िया बलव से बात करते समय किसी किस्म की हिचकिचाहट नहीं करती थी।

"दस बातें तो बाद में बताना पहले एक ही बताओ। यह भगवती माँ है ना; क्या यह पहले यहीं थी? बताओ तो दोड्डव्वा?"

"देख बेटा, यही एक मत पूछ, मैं यही एक बात न बता सकूंगी। फिर अगर जानना ही चाहते हो तो उसी से जाकर पूछो।"

"यह पूछने से बुरा मान कर यदि वे शाप दे बैठीं तो?"

"तुम्हारी बात का वे बुरा नहीं मानेंगी, शाप भी नहीं देंगी। निर्भीक होकर जाओ और पूछो।"

बलव को याद आया कि जब वह भगवती के मन्दिर गया था तब उसने उसे गले लगा लिया था। दोड्डव्वा की बात में उसे तथ्य दिखाई दिया पर उस पर भगवती का इतना प्रसन्न होना इसे कैसे पता है! भगवती का उस दिन का व्यवहार दोड्डव्वा को बताकर उसका कारण पूछूं? प्रश्न जबान तक आया पर मन ने उसे वहीं रोक लिया क्योंकि भगवती की वह चेतावनी भी आई, "यह सब किसी से मत बताना, खबरदार।"

44

दोड्डव्वा से जब बात का पता न लग सका तो बलव ने बुढ़िया के कथनानुसार भगवती के पास जाने का निश्चय किया। भगवती को देवी बड़ी प्रबल थी, उसे यह नहीं बताना चाहिए। इस दृष्टि से उसे थोड़ा भय था। पर मन्दिर में जाने तथा भगवती से बातचीत करने की इच्छा उसे थी। इसका मुख्य कारण था, बलव का अनाथ होकर महल की चार-दीवारी में पालतू कुत्तों के साथ एक कुत्ते के समान रहना। उसे अपनी माँ की याद नहीं। उसे पालने वालों में पहला स्थान दोड्डव्वा का था। वास्तव में दोड्डव्वा ने जिस ढंग से उसे पाला था उसे 'पालन

जाने के बाद बसव से पूछा, "कैसे आये ?" बसव का दिल जोर से धड़कने लगा। भगवती की उस ध्वनि में प्यार की गंध भी न थी। उस दृष्टि में उसे गले लगा लेगी इस विचार की छाया तक न थी।

"आपसे निवेदन करने को एक बात थी माँ, इसलिए आया। गलती हो तो बुरा मत मानियेगा।"

"किसकी बात, रानी माँ की बात ?"

"नहीं माँ, मेरी ही है।"

"अपनी, क्या मतलब राजा ने भेजा है क्या ?"

"नहीं माँ, मेरी अपनी।"

"क्या बात है बताओ।"

"बताता हूँ अधीर मत होइए। आप इन दो महीनों में इधर-उधर काफी लोगों से मिली है। इनमें ज्यादातर लोग राजा के विरोधी हैं। ऐसे लोगों से आपका मिलना देखकर डर लगता है कि कहीं राजा की हानि न हो। इसीलिए आपसे मिलने आया।"

"तुम क्या चाहते हो ?" भगवती की ध्वनि कर्कश हो गई थी।

"राजा पर कृपा करें।"

"तुम्हें क्या चाहिए ?"

"मैं क्या उनसे अलग हूँ, मैं तो राजा के पीछे चलने वाला कुत्ता हूँ।"

"राजा के पीछे चलने वाला कुत्ता, शर्म नहीं आती, ऐसी बातें करते। आदमी का जन्म लेकर कुत्ते की तरह जीओगे। क्या तुम्हारी माँ ने कुत्ता बनाने को तुम्हें जन्म दिया ? हमें क्या करना है, कैसे चलना, कहाँ जाना है और कैसे रहना है यह हमारी अपनी इच्छा पर रहता है। यह सब बताना किसी और का अधिकार नहीं है। अब आगे हम क्या करेंगे, और कहाँ जायेंगे, यह सब तुम पता लगाने की कोशिश मत करना, खबरदार। तुम्हे भी इसे देखने की जरूरत नहीं और किसी से दिखवाने की जरूरत भी नहीं। यदि किसी प्रकार कोशिश की तो काम तमाम हो जायेगा, समझे।"

भगवती की एक-एक बात बसव के दिल में छुरी की तरह उतरती चली गई और वहीं की वहीं फँसी रह गई ? उसका धैर्य समाप्त हो गया। वह आदमियों से डरने वाला व्यक्ति न था। पर यहाँ आदमियों की बात न थी। देवी की प्रतिनिधि की बात थी। वह उठ खड़ा हुआ। भगवती को हाथ जोड़े। डर से उसकी टाँगें काँप रही थी। वह बोला, "गलती हुई माँ, गुस्सा न कीजिए, आज्ञा हो तो अब चलता हूँ।"

भगवती ने अनुभव किया कि वह उससे अनावश्यक रूप से कठोर हो गई थी। उसे कुछ धैर्य देने के लिए उसने बात आगे बढाई, "तुम राजा को इतना

बड़ा मानते हो और अपने को इतना छोटा, इससे गुस्सा आया। ऐसे नहीं सोचना चाहिए। राजा ने तुम्हारे लिए ऐसा क्या किया है।"

बसव को कुछ हौसला हुआ, पर वह राजा को छोड़ने को तैयार न था। वह बोला, "क्या करूँ माँ। मुझे एक आदमी मानकर प्यार करने वाले दुनिया में एकमात्र वे ही हैं। ऐसे व्यक्ति के साथ कुत्ते की तरह रहने में कोई बेइज्जती नहीं।"

"फिर से वैसी बात न करो। तुम राजा होते और वह कुत्ता होता तो कोई मनाही थी?"

"शिव! शिव! ऐसी बात न कहिये।"

"मेरी बात का विरोध न करो। अगर तुम्हें नहीं चाहिए तो वह दूसरों को भी नहीं चाहिए। मुझे तुम्हारे राजा की चिन्ता नहीं, जनता का भला जिससे हो वही हमें देखना है। हमारे काम में बाधा न डालना, खबरदार—"

"खबरदार हूँ माँ, पर मालिक की हानि न हो ज़रा यह ध्यान रखिये।"

"अच्छी बात है। तुम इतना कहते हो इसलिए तुम्हारी खातिर यह वचन देती हूँ तुम्हारे राजा की प्राण-हानि न हो इतना ध्यान हम ज़रूर रखेंगे।"

"इतना ही हो जाये तो बहुत है, माँ। अब मेरे मन को शान्ति मिली। अब आप आज्ञा दीजिये, मैं चलता हूँ माँ।"

"अच्छा जाओ।"

राजा की रक्षा का आश्वासन पाकर प्रसन्नता से बसव बाहर आया। पहले की तरह भगवती ने खींचकर गले नहीं लगाया। वह सुख शायद मिल जाये इस आशा से आया बसव उसके न प्राप्त होने के कारण असन्तुष्ट होकर आश्रम से निकला। राजा की शारीरिक शक्ति के लिए जड़ी-बूटी की प्रार्थना आज भी वह न कर पाया।

46

इसी बीच एक दिन अपरम्पर स्वामी ओंकारेश्वर मन्दिर के सामने वाली पुष्करणी के ऊपर की सीढ़ी पर ध्यान के बहाने बैठा था। उस समय सदा की भाँति बुजुर्ग दीक्षित पुष्करणी के पास आया और पानी में उतर कर आचमन-प्रोक्षण समाप्त करके मन्दिर जाने के लिए पुष्करणी की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। सामने ऊपर की सीढ़ी पर तरुण संन्यासी बैठा था। कोई संन्यासी संध्या के लिए बैठा है, समझकर दीक्षित आगे बढ़ा। समीप आने पर संन्यासी ने 'शरण महाराज' कहा।

दीक्षित चौंक पड़ा। उसके चौंकने का कारण उस व्यक्ति का अचानक बोलना नहीं था बल्कि कुछ और था। प्रत्युत्तर में उसने भी "शरण स्वामीजी, कहाँ से आये हैं?" पूछा।

"हम सकलेशपुर के है; कभी-कभार इधर आते ही रहते हैं।"

"ओह ! यह बात है, यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई। मन्दिर मे आपको कभी देखा नहीं। यहाँ यात्रियों के लिए ठहरने का प्रबन्ध है। पूजा के समय आने पर प्रसाद भी प्राप्त हो जाता है। यदि आप प्रतिदिन आयेंगे तो हमें बडी प्रसन्नता होगी। हमें आपका दर्शन मिलेगा और आपको भिक्षा मिल जाया करेगी।"

"अच्छी बात दीक्षित जी। आज हम ठहरेंगे। पर आपसे एक बात पूछनी थी।"

"अब आगे पूछने की आवश्यकता नही। यदि प्रतिदिन दस संन्यासी भी आयें तो भी प्रसाद मे कठिनाई न होगी ?"

"यह तो ठीक है दीक्षित जी, पर हम जो पूछना चाहते हैं वह यह नहीं।"

"क्या पूछना चाहते हैं ?"

"हमारी आवाज सुनकर आप चौंक पड़े थे, यही जानने की इच्छा थी।"

इतने में दीक्षित अन्तिम सीढ़ी पर पहुँच गया। संन्यासी उसके सामने आ गया। दोनों मन्दिर की ओर चले। दीक्षित उसकी ओर ध्यान से देख फिर कुछ सोचकर बोला, "आपकी आवाज हमारे परिचितों की-सी है। इसी से हम चौंक पड़े होंगे।"

"हाँ चौंके थे। वे कौन हैं आपके परिचित।"

"वह सब कहने से लाभ ?"

"राजमहल के अप्पाजी की आवाज़ के समान है क्या हमारी आवाज़ दीक्षित जी ?

चलते हुए दीक्षित ठिठककर खडा हो गया। सन्यासी को देखकर बोला, "क्या तुम बीरण्णा हो भैया ?"

"जी हाँ, दीक्षित जी।"

"अरे ! यह बात पहले ही न बताकर डरा दिया ना बीरण्णा। सुख से तो रहो ! अप्पाजी ठीक-ठाक हैं ? अप्पाजी कहाँ है ? कैसे हैं ?"

"अप्पाजी तीन दिन शहर मे, तीन दिन मैसूर में, तीन दिन अरकलगूड मे रहते हैं। इन दिनों बेंगलूर में छह दिन से हैं। घर छोड़कर दर-दर भटकने वाले जितने सुखी हो सकते हैं, उतने सुखी वे है। मैं भी साथ हूँ।"

"'जीवन् भद्राणि पश्यति' जहाँ भी रहें। सुखी रहें और सब सौभाग्य अपने आप आ जाते हैं। इससे पहले यहाँ लौटने की बात क्यों नही सोची ?"

"बात आप से छिपी है क्या ? लौट आने से कही मेरा बुरा न हो इस विचार से अप्पाजी ने स्वयं ही यहाँ कदम नही रखा और मुझे भी इधर आने नहीं दिया। अरकलगूड के चिक्कराम शेट्टी ने अप्पाजी से प्रार्थना की थी कि मडकेरी और सारा कोडग आप के भतीजे को पसन्द नहीं करता। अब यदि जाकर प्रयत्न करें

बड़ा मानते हो और अपने को इतना छोटा, इससे गुस्सा आया। ऐसे नहीं सोचना चाहिए। राजा ने तुम्हारे लिए ऐसा क्या किया है।"

बसव को कुछ हौंसला हुआ, पर वह राजा को छोड़ने को तैयार न था। वह बोला, "क्या करूँ माँ। मुझे एक आदमी मानकर प्यार करने वाले दुनिया में एक-मात्र वे ही हैं। ऐसे व्यक्ति के साथ कुत्ते की तरह रहने में कोई बेइज्जती नहीं।"

"फिर से वैसी बात न करो। तुम राजा होते और वह कुत्ता होता तो कोई मनाही थी?"

"शिव! शिव! ऐसी बात न कहिये।"

"मेरी बात का विरोध न करो। अगर तुम्हें नहीं चाहिए तो वह दूसरों को भी नहीं चाहिए। मुझे तुम्हारे राजा की चिन्ता नहीं, जनता का भला जिससे हो वही हमें देखना है। हमारे काम में बाधा न डालना, खबरदार—"

"खबरदार हूँ माँ, पर मालिक की हानि न हो ज़रा यह ध्यान रखिये।"

"अच्छी बात है। तुम इतना कहते हो इसलिए तुम्हारी खातिर यह वचन देती हूँ तुम्हारे राजा की प्राण-हानि न हो इतना ध्यान हम ज़रूर रखेंगे।"

"इतना ही हो जाये तो बहुत है, माँ। अब मेरे मन को शान्ति मिली। अब आप आज्ञा दीजिये, मैं चलता हूँ माँ।"

"अच्छा जाओ।"

राजा की रक्षा का आश्वासन पाकर प्रसन्नता से बसव बाहर आया। पहले की तरह भगवती ने खींचकर गले नहीं लगाया। वह सुख शायद मिल जाये इस आशा से आया बसव उसके न प्राप्त होने के कारण असन्तुष्ट होकर आश्रम से निकला। राजा की शारीरिक शक्ति के लिए जड़ी-बूटी की प्रार्थना आज भी वह न कर पाया।

46

इसी बीच एक दिन अपरम्पर स्वामी ओंकारेश्वर मन्दिर के सामने वाली पुष्करणी के ऊपर की सीढ़ी पर ध्यान के बहाने बैठा था। उस समय सदा की भाँति बुजुर्ग दीक्षित पुष्करणी के पास आया और पानी में उतर कर आचमन-प्रोक्षण समाप्त करके मन्दिर जाने के लिए पुष्करणी की सीढ़ियाँ चढ़ने लगा। सामने ऊपर की सीढ़ी पर तरुण संन्यासी बैठा था। कोई संन्यासी संध्या के लिए बैठा है, समझकर दीक्षित आगे बढ़ा। समीप आने पर संन्यासी ने 'शरण महाराज' कहा।

दीक्षित चौंक पड़ा। उसके चौंकने का कारण उस व्यक्ति का अचानक बोलना नहीं था बल्कि कुछ और था। प्रत्युत्तर में उसने भी "शरण स्वामीजी, कहाँ से आये हैं?" पूछा।

अप्पाजी ने यह पसन्द नहीं किया। सिर पर गठरी धर कर चले गये। उन्होंने कहा, 'अन्याय करना मेरे बस का नहीं, भले ही देश छोड़ना पड़े।' वे बड़े सत्य-वादी हैं। ऐसे व्यक्ति को कहने के लिए मेरे पास क्या है? अप्पाजी स्वयं जानते हैं कि सबके लिए शुभ क्या है?"

"वह तो ठीक है पर अब वे राजा बनना नहीं चाहते। उनका बेटा राजा बन जाये, यही उनकी इच्छा है।"

"न्याय से हाथ लगे तो अच्छा, नहीं तो अप्पाजी यह पसन्द नहीं करेंगे।"

"आपकी बात ठीक ही मालूम होती है, दीक्षित जी। राजा और उनकी बेटी को हटाकर राज्य लेने की बात अप्पाजी स्वीकार नहीं करेंगे।"

"मुझे भी ऐसा ही लगता है।"

वीरण्णा ने कुछ और सोचा और यह निश्चय किया कि दीक्षित की सलाह लेकर संन्यासी वेश में ही मडकेरी तथा आसपास भ्रमण कर परिस्थिति का ब्यौरा लेकर वापस जाकर अपने पिता को बतायेगा और वे जैसा कहेंगे वैसा ही करेगा। उसे विदा करते समय दीक्षित बोला, "भैया सुनो, राजमहल के ज्योतिषी का भाग्य अच्छा नहीं। मेरा तुमसे कोई भी बात करना राजद्रोह है। मैंने तुमसे बात करने का साहस इसलिए किया कि मुझे पता है कि तुम्हारे पिता धर्म छोड़ कर नहीं चलते।"

वीरण्णा बोला, "ठीक है दीक्षित जी।"

48

ओंकारेश्वर मन्दिर के पुजारी का पद और राजमहल के ज्योतिषी का पद दीक्षित को वंश परम्परा से मिले थे। बड़े राजा ने जब ओंकारेश्वर का मन्दिर बनवाया तभी इन्होंने इसके पिता को मुख्य अर्चक नियुक्त किया। तब दीक्षित जवान लड़का था। पिता के साथ मन्दिर की पूजा में भाग लेने और राजमहल में आते-जाते रहने से व्यवहार-कुशल बन गया था। ज्योतिष में पिता को हिसाब-किताब लगा-कर देते-देते उस विद्या में भी पिता के समान निपुण हो गया था। तीस वर्ष पूर्व जब इसके पिता का स्वर्गवास हुआ तब यह सहज ही मन्दिर का मुख्य पुजारी और राजमहल के ज्योतिषी का पद पा गया।

जब कोई ज्योतिषी हो तिस पर भी एक सफल ज्योतिषी तो अपने प्रान्त ही क्या, आसपास के प्रान्तों के लोग भी अपना भविष्य जानने को आया करते हैं। दीक्षित सब पड़ोसी प्रान्तों में प्रसिद्ध हो गया।

पिता की दी हुई तीन नसीहतों को निरन्तर ध्यान में रखकर उसने जनता का प्रेम और गौरव प्राप्त किया था। पहली नसीहत यह थी कि ज्योतिष लगाते हुए

करता था। उस दिन उसने उन चित्रों को निकाल कर फिर से देखा। उनमें सहो-दरों के द्वैप के चित्रों को ढूंढ कर अलग निकलने पर राजा की ग्रहगति इस वर्ष कंस के अन्तिम वर्ष की ग्रहगति के हू-ब-हू समान दिखाई दी। वहिन को साकर कैद में रखा है इस बात से ऐसी आशंका हो सकती थी कि इसमें सहोदर द्वैप दिखाई देता है।

यह तो ऐसे हो गया। राजा को ऐसे संकट से बचाना मेरा कर्त्तव्य है। राजा की वहिन को यदि कैद से छुड़वा दिया जाये तो इस हानि के प्रभाव का एक भाग कम किया जा सकता है। यह कैसे हो? भविष्य की ग्रह दशा को रानी से निवेदन करके उसके द्वारा राजा को रोका जाये। किसी भी उपाय से राजा की वहिन को अम्पगोल भेजने का प्रबन्ध करना चाहिए।

सप्ताह में एक-दो बार प्रसाद पहुँचाने के लिए दीक्षित स्वयं भी राजमहल जाया करता था। दीक्षित ने निश्चय किया कि इस बार जब वह महल जायेगा तो रानी से इस ढंग से बात करेगा कि वह स्वयं ही इस प्रश्न पर आ जाये, फिर उसे भविष्य के फल की चेतावनी दे देगा। अचानक रानी ने उसे उसी दिन बुलवा भेजा। दीक्षित महल गया।

उस दिन रानी के उसे बुलवाने का कारण था कि वह राजा के द्वारा अंग्रेजों को दिए जाने वाले भोज के विषय में उससे बात करना चाहती थी। रानी ने उससे कहा कि अगले महीने या डेढ़ महीने में बरसात शुरू होने से पहले एक ऐसा दिन निकालिये जिस दिन मन्दिर में विशेष उत्सव पूजा न हो और महल के सेवकों का कोई तीज-त्योहार न हो। दीक्षित बोला कि पचांग देखकर उपयुक्त दो-तीन दिन आपको बता दूँगा।

इसके बाद रानी स्वयं बोली, "दीक्षितजी, अगले दो-तीन महीनों में महा-राज का स्वास्थ्य तथा अन्य बातें कैसी हैं जरा देखकर बताइये?"

दीक्षित को ऐसा लगा कि रानी ईश्वर की प्रेरणा से ही यह बात कर रही है, नहीं तो मेरी इच्छा और उनका प्रश्न दोनों कैसे एक हो सकते हैं? दीक्षित बोला, "वह सब देख चुका हूँ माँजी। एक-दो दिन में आपको बताऊँगा।"

• "कोई हानि तो नहीं है न?"

"राजा को और उनके निकटतम कुटुम्ब को कोई हानि नहीं है पर दूसरे ढंग से ग्रहदशा बड़ी क्रूर है।"

रानी का हृदय धक् रह गया। फिर भी भय को छिपाकर बोली, "क्या हानि है? शान्ति के लिए क्या उपाय करना चाहिए? आप आज्ञा दीजिये हम करायेंगे।"

."यह ग्रहशान्ति दूर होने वाली बात नहीं। महाराज से आपको एक काम कराना होगा।" यह कहकर दीक्षित ने ग्रहगति का ब्यौरा देते हुए कहा, "शीघ्राति-

शीघ्र अपनी ननद को कैद से छुड़ाकर अप्पगोलं भिजवा दीजिये।"

"अरे—दीक्षितजी, महाराज यह बात मानेंगे? आपसे यह बात छिपी है?"

"जी अम्माजी, आपका कहना तो सब ठीक है मगर हमारे लिए यही एक रास्ता है।"

"आप कंस वाली दशा बता रहे हैं। ननद जी के बच्चे नहीं, यह डर कैसे?"

ग्रह दशा जब यह कह रही है तो हमें इसका विश्वास करना ही चाहिए, उसका ब्यौरा हम पा नहीं सकते। यह ग्रह दशा मुख्य रूप से यह बताती है कि उनकी सहोदरा को उनसे दूर रखा जाये। इसी से राजा का क्षेम है। राजा की हित चिंतक के लिए इससे बड़ा और कोई काम नहीं है।"

"अच्छी बात है दीक्षितजी, हम से जो बन पड़ेगा करेंगे। इस संकट से महाराज मुक्त हो जायें, ऐसी प्रार्थना कीजिये और मन्दिर में पूजा कराइये।"

"करायेंगे रानीमां, आप चिन्ता न करें। इधर आप महाराज को किसी रूप से समझाकर ननद को अप्पगोलं भेजने का प्रयास कीजिये।"

यह कहकर दीक्षित रानी से आज्ञा ले वापस लौटा। रानी आगे के मार्ग पर चिन्ता करते हुए बैठ गयी। चिन्ता का जो कारण अब तक नहीं था वह उसे आज ही शाम को पता चला।

50

बेंगलूर में स्थित अंग्रेजी राज्य के प्रतिनिधि तथा उसके एक अंग्रेज साथी से मडकेरी में जो पत्र प्राप्त हुए उनका विवरण इस प्रकार है।

प्रतिनिधि द्वारा लिखा हुआ पत्र इस प्रकार था :

'कोडग के महाराज श्रीमान् चिक्कवीर राजेन्द्र ओडेयर की सेवा में अंग्रेज सार्वभौम कम्पनी सरकार के मैसूर देश के रेजिडेंट महोदय का आदरपूर्वक नमस्कार तथा पुत्रादि की शुभकामनाएं। आपके स्वास्थ्य के बारे में आपके प्रतिनिधि का लिखा पत्र यथासमय प्राप्त हुआ। इसके लिए हम श्रीमान्जी की सेवा में अनेक धन्यवाद भेजते हैं। यह बात जानकर हमें अत्यन्त हर्ष हुआ कि सार्वभौम प्रभु के मित्र थोड़े समय अस्वस्थ्य रहने के बाद अब स्वास्थ्य लाभ कर चुके हैं और अब प्रभु प्रसन्नचित्त हैं। महाराजा के स्वास्थ्य लाभ की यह बात वैद्यराज महोदय की सेवा में निवेदन कर दी गई है यह आपको ज्ञात हो गया होगा। महाराज ने इससे पूर्व हमें अपने परिवार सहित मडकेरी आने का आग्रह किया था। अब यह जानकर सबको बड़ी प्रसन्नता हुई कि महाराज ने पुनः उसे स्मरण करके हम लोगों को आने का आग्रह किया है। महाराज के आदर द्वारा दिए गए आमन्त्रण को स्वीकार करने में हमें न केवल प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है

अपितु गौरव का अनुभव हो रहा है। अतः यह निवेदन करने में हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि हम और हमारा परिवार इस नियन्त्रण को स्वीकार करने में हर्ष का अनुभव कर रहे हैं। युगादि के समय हम आपकी सेवा में उपस्थित हो सकते थे, पर ऐसा न हो सका। महाराज की सुविधानुसार बरसात से पहले इन दो महीनों के भीतर समय सुविधाजनक होगा उसी समय हम सब आपकी सेवा में उपस्थित हो सकेंगे। अब यदि कोई और दिन सुविधाजनक न हो तो नवरात्रि में आ सकते हैं। वैसे यह यात्रा महाराज के दर्शन के उपलक्ष्य में ही की जा रही है, परन्तु इस यात्रा से लाभ उठा कर उसी समय सार्वभौम सत्ता के प्रतिनिधि तथा महाराज के बीच कुछ बातों पर विचार होना है। वे आपके सामने रखकर उनका निर्णय आपसे कराना चाहता हूँ। इस बारे में एक और पत्र आपकी सेवा में भेजा जा रहा है।

आपकी सेवा में इस प्रकार निवेदन करने वाला—

कैसमाइजर
मैसूर रेजिडेंट'

इस पत्र के साथ रेजिडेंट के निजी सहायक पार्कर महोदय ने मन्त्री श्री बसवय्या को एक व्यक्तिगत पत्र भेजा था। वह इस प्रकार था :

'प्रिय मित्र सौभाग्यवती महारानी तथा श्रीमान् महाराज की ओर से भेजे गये निमन्त्रण-पत्र का रेजिडेंट महोदय ने विधिवत् उत्तर भेजने की कृपा की है उसी के साथ मैं यह पत्र भेज रहा हूँ।

वहाँ आने की सम्भावना से महामहिम की प्रिय कुछ वस्तुएँ पहले ही मँगवा रखी हैं आते हुए उन्हें लेता आऊँगा। रेजिडेंट महोदय तथा उनके सहायक सेनाधिकारी और मैं आ रहे हैं। श्रीमती लूसी तथा उसकी सखी हेलन भी हमारे साथ आ रही हैं।

हम आ तो रहे हैं। अतः हमारे वरिष्ठ मित्रों का विचार है कि एक-दो दिन शिकार खेला जाये। प्रार्थना है कि यदि सम्भव हो तो इसका प्रबन्ध किया जाये।

श्रीमती लूसी ओडेयर को तथा आपको सम्मान भेजती है। कृपया मेरी ओर से आदर स्वीकार करें और यह सब बातें महाराज से भी निवेदन करें।

आपका ही
.........'

बाद में यह लिखा गया था : 'हम आपके यहाँ इससे पूर्व कई बार आ चुके हैं, फिर भी आपके यहाँ की अच्छे घराने की लड़कियों का सौन्दर्य तथा व्यवहार देखने का सौभाग्य नहीं मिला। इस बारे में मैंने इससे पहले भी हलका-सा संकेत दिया था, सम्भवतः आपको इसका स्मरण होगा। यदि इस बार यह खुशी हमें प्राप्त करा सकें तो हम आपके चिरऋणी होंगे। उच्च वर्ग की स्त्रियों के सम्पर्क

में जाने की श्रीमती लूसी को बड़ी इच्छा है। इस बात को अलग से लिखा जा रहा है। यह मेरा विश्वास है कि इसका आप कुछ और अभिप्रायः नहीं लगायेंगे।'

इन दो पत्रों के अतिरिक्त रानी के नाम एक छोटा-सा पत्र था, 'आपके आदर निमन्त्रण के बारे में पत्र का उत्तर महाराज के ही पत्र में भेज दिया गया है।'

51

रानी द्वारा दीक्षित को बुलवाने का कारण यह तीसरा पत्र था। राजा के पत्र को बसव ने राजा को सुना कर उसे मन्त्रियों के पास भेज दिया। अपने लिए आये पत्र को स्वयं पढ़ कर राजा को एकान्त में पढ़ कर सुनाया।

राजा के लिए 'प्रियवस्तु' का जो उल्लेख उस पत्र में था उससे उन्होंने अति उत्तम मद्य समझा। लूसी अत्यन्त आकर्षक युवती थी, उसके आने की सूचना से राजा को बड़ा सन्तोष हुआ। शिकार के लिए प्रबन्ध करना कोई कठिन काम नहीं था। परन्तु अन्त में जिस बात का उल्लेख किया गया था वह एकमात्र रह गया। राजा ने बसव से पूछा, "उस बार इस पार्कर को क्या चाहिए था ?"

"यह आदमी ठीक नहीं महाराज।" उसके पास जिन लड़कियों को दोड्डव्वा ने भेजा था उनके बारे में उसका कहना था ये उच्च वर्ग की महिलाएँ नहीं है, बातचीत में उनमें वह नफासत नहीं है।"

"तो !"

"तो उच्च वर्ग की महिलाएँ, ब्राह्मण, कोडगी-स्त्रियाँ बुलाई जायें तो अच्छा है।"

"अरे, ये हरामी कितने गन्दे हैं !"

"हाँ मालिक !"

"और कभी होता तो मुंह पर थूका जा सकता था। अब किसी और बात का जिक्र कर रहे हैं ना ?"

"हाँ मालिक !"

"इस आवारा चेन्नबसव ने हमारी शिकायत लिख भेजी है और चन्द्र सूर्य के रहने तक दोस्ती का दम भरने वाले ये लोग हमारी जवाब-तलबी करने को आ रहे हैं।"

"हो सकता है मालिक !"

"अब इनसे झगड़ना नहीं चाहिए। एक ब्राह्मण और एक कोडगी लड़की लाकर इनके मुंह पर दे मार।"

"इससे तो और भी शिकायतें हो सकती हैं।"

"जाने दो। क्या होता है ? जवाब तलबी करें तो हम यह तुम्हारे ही लिए हुआ, कह देंगे।"

"उनकी तरफ वे ध्यान नहीं देते मालिक। वे तो यही कहते हैं : जो कुछ तुम लेकर आओ उसमें मेरा हिस्सा है। अगर कुछ भी हो गया तो तुम्हारा जिम्मा।"

"जो तुम कर सकते हो उसे करो। देवता को न्योतने के बाद बकरा चढ़ाना ही पड़ेगा।"

बसव : "अच्छा मालिक।"

"अब इन लोगों को अलग से बुलाया जाये तो ठीक रहेगा। अगर ऐसा नहीं होता तो नवरात्रि में ही आने दो। यह बात चार दिन बाद लिख भेजो।"

"अच्छा, मालिक।"

52

यह पहले ही बताया गया है कि रानी को ननद के बारे में जो चिन्ता थी और जिसे वह पहले सोच नहीं पायी थी वह उसे आज शाम को पता चला। उसे अब विस्तार से जाना जा सकता है।

उत्तय्या को राजमहल के सुरक्षा दल का नायक नियुक्त हुए लगभग दो मास हो गये थे।

तभी एक दिन राजकुमारी माँ के पास आकर बोली, "माँ, बुआ बहुत रो रही हैं। फूफाजी के यहाँ आ जाने का प्रबन्ध करें ?"

रानी बोली, "तुम्हारे पिताजी नहीं मानेंगे, बेटा।"

"यह बात पिताजी को पता ही न लगे।"

"गुप्त रूप से ऐसा काम करना बुरी बात है, बेटा। कुछ कमी-बेशी हो तो तुम्हारे पिताजी अपनी बहिन और बहनोई को कुछ कर बैठे, तो क्या होगा ?"

"यह सब मुझे पता नहीं, माँ। बुआ इस घर में पैदा होकर यहीं ऐसे दुखी हों यह मुझसे देखा नहीं जाता। लगता है जैसे कल को मुझ पर भी यही बीतेगा।"

अन्तिम वाक्य से रानी कुछ ढीली पड गयी, "ऐसी बातें मुँह से नहीं निकालते, बेटा। घर की बेटी क्यों रोये। पर ननदोईजी आयें तो कैसे ?"

"जब वे आयेंगे तब मैं बाहर के दरवाजे पर खड़ी रहूँगी। हमारी जान-पहचान के हैं ऐसा दिखाकर उन्हें भीतर ले आऊँगी तो कौन रोक सकता है ?"

"बिना पहचाने पहरेदार किसी को अन्दर नहीं आने देंगे।"

"मैं ले आऊँगी। उत्तय्याजी से कह दूँगी।"

"उत्तय्या मान लेगा बेटा ?"

"मान लेंगे माँ।"

रानी को अपनी बेटी के इस विश्वास को देखकर हँसी आ गयी। वे बोलीं; "कल को कहीं इससे उत्तव्वा का नुकसान हो सकता है।"

"क्या नुकसान हो सकता है माँ, रात को बुलाकर ले आना और सुबह-सुबह वापस भेज देना, किसको पता चलेगा?"

"रानी ने इस बात को काफी सोचा। इधर अपनी बेटी की इच्छा और ननद का दुख, उधर दामाद महल के लिए विष वो रहा है। क्या राजमहल को हानि से बचाने के लिए भगवान ने इस लड़की के मन में इस भावना को जन्म दिया। बार-बार सोचकर वह बोली, "अच्छी बात है पुट्टव्वा। जैसे तुझे ठीक लगे, कर। देखो, केवल एक ही बार।"

उत्तव्वा को मनाना राजकुमारी के लिए कोई कठिन काम न था।

आठ-दस दिन बाद एक रात चेन्नबसवय्या राजमहल में आया। पत्नी से मिलकर सुबह ही उठकर चला गया।

एक बार आने के बाद फिर उसे अपने को रोकना संभव नहीं हो सका। देवम्माजी भी रह न सकीं। राजा की लड़की को हानि न हो यह समझकर ही वे दस दिन बाद या महीने बाद मिलते रहे। तीसरे महीने मिलने पर जब पता चला कि देवम्मा गर्भवती हो गयी है तो दोनों डर गये। चेन्नबसवय्या ने आना बन्द कर दिया।

देवम्माजी का गर्भवती होना रानी को छह महीने तक पता न चल पाया। कई मास बीतने पर दामाद का न आना देखकर उसे सन्तोष हुआ। लेकिन यह सन्तोष ज्यादा देर टिका नहीं।

बुआ के साथ पांसे खेलकर लौटने के बाद बेटी ने अपनी बुआ के गर्भवती होने की बात माँ को बतायी। दीक्षित ने उसी दोपहर रानी को राजा के कंस-योग के बारे में बताया था। ग्रह-योग की इतनी क्रूर गति देखकर रानी को बहुत डर लगा। चेन्नबसव के बारे में बेटी की बात मानकर जो गलती उसने की थी उसके परिणामस्वरूप अब क्या-क्या अनर्थ होगा, यह सोचकर रानी बड़ी चिन्तित हुई।

उनकी चिन्ता बिलकुल ठीक ही थी। यह बात इसको कोई पन्द्रह-बीस दिन बाद समझ में आयी। राजा कभी-कभार जाकर बहिन को जली-कटी सुनाकर आता था। इस बार जब वह आया तो बसव ने बहिन के गर्भवती होने की बात उसके कान में कही। राजा ने बहिन से पूछा परन्तु देवम्मा कुछ न बोली। राजा गुस्सा हुआ, चिल्लाया और बोला, "बता किसका गर्भ है नहीं तो चमारों के यहाँ भेज दूंगा।" तब भी वह चुप ही रही। राजा ने बसव से कहा, "इसे अपनी गोद

में बिठा लो, बसव।" बसव भी राजा के साथ पीकर आया था। उसका दिमाग भी ठिकाने न था। उसने पकड़कर देवम्मा को गोद में बिठा लिया। राजा को खुश करने के लिए उसको बेइज्जती से खींचा। इतना करके राजा बाहर आते हुए बसव से बोला, "ओय बसव, यह किसने गर्भवती हुई पता लगायेगा। अब इसके कमरे का ताला डाल दे। हमारे पूछे बिना किसी को अन्दर मत आने देना।"

कथा के आरम्भ में जैसा बताया गया है इसके अगले ही दिन राजकुमारी तथा रानी ने देवम्मा को बचाने का प्रयास किया।

53

गर्भिणी बहिन पर हाथ उठाने की बात वहीं छोड़कर वीरराज बेटी के साथ लम्बे-लम्बे डग भरता अपने निवास की ओर चला गया। वह इसी भ्रम में न था कि उसीका रास्ता ठीक है, पर इस बात को ठीक करने का कोई सरल रास्ता भी उसे समझ में नहीं आ रहा था। लौटते हुए उसके मन में मुख्य रूप से तीन बातें थीं। अपनी ही बेटी अपना भला-बुरा न समझकर राजा के विरोध में विरोधी होकर बुआ देवम्मा की तरफ हो रही है। वैसे ही रानी गौरम्माजी भी अपने पति का विरोध करके अपनी ननद के पक्ष में जा खड़ी हुई है। इन सबका मुख्य कारण ज्योतिष द्वारा राजा की जन्म-कुण्डली देखकर कंस देवकी योग की भविष्यवाणी ही थी। 'यह पण्डित अपना खा-पीकर चुप क्यों नहीं रहता। इसे इस बकवास से मतलब ? उसे बुलाकर अच्छी सुनानी पड़ेगी।'

यह सोचकर वीरराज ने सेवक को बुलाया और, "ऐ, जाकर उस मन्दिर के पुजारी को तो बुला ला" कहकर अपनी बैठक में जा बैठा। पिताजी मालूम नहीं क्या करेंगे, सोचकर राजकुमारी थोड़ी देर उनके पास बैठी, फिर उनके गुस्से को कम करने के विचार से बोली, "पिताजी, कल दोपहर से पुजारी बाबा रनिवास में पुराण की कथा करेंगे।"

यह बात राजा के मन में पड़ी या नहीं, कहा नहीं जा सकता। उसका खून गुस्से से खौल रहा था। बेटी ने बाप की ओर देखा, उसका ध्यान कहीं और है, देखकर वह चुप लगा गयी। थोड़ी देर और बैठकर राजकुमारी रनिवास की ओर चल पड़ी। द्वार पर खड़े सेवक से बोली, "पुजारी बाबा अगर वहां आये तो उन्हें साथ लेकर आती हूं, अगर इधर आयें तो उनसे कहना, मां उन्हें बुला रही है।"

राजा अपने गुस्से को जुगाली करता हुआ काफ़ी देर बैठा रहा। तभी द्वार पर खड़े सेवक को दीक्षित रनिवास की ओर जाते दिखे।

कुछ देर बाद राजकुमारी पिता के पास आकर बोली, "पिताजी पुजारी बाबा आ गये हैं, यहां भेज दूं ?"

वीरराज ने "हूँ" कहा। उस समय अपने भविष्य के बारे में सोचकर उसका सारा गुस्सा दीक्षित पर केन्द्रित हो गया था। दीक्षित के सामने न पड़ने के कारण जो भी उसके सामने आता उस पर बरस पड़ता।

राजकुमारी स्वयं रनिवास में जाकर दीक्षित को बुला लायी। उनके पीछे-पीछे रानी भी आयी।

54

दीक्षित को देखते ही राजा का गुस्सा सातवें आसमान पर पहुँच गया। वह बोला, "आइये पुजारीजी, आपको पूछने-ताछने वाला कोई नहीं है क्या? आपने क्या कहा था, कंस देवकी वाली बात? औरतों को डराने का ही काम है क्या? जरा जबान को ताला लगाकर रखिये।"

क्षण भर को दीक्षित हक्का-बक्का रह गया। उसके मुँह से कंस देवकी की बात सुनकर उसे समझ में आ गया कि उसके ज्योतिष का प्रसंग है। राजा के पास आते समय उसे रानी ने बताया था कि उसकी ननद गर्भवती है।

दीक्षित को राजा की बहिन के बारे में यह बात सुनकर आश्चर्य हुआ। जन्म-कुण्डली देखकर जब उसने कहा कि राजा का योग कंस योग है तो उसे पता था कि राजा की बहिन कैद में है और उसके गर्भवती होने की सम्भावना नहीं है। उसे यह लगन शुभ ही प्रतीत हुआ था। बहन के यहाँ बच्चा होने पर यह भान्जा उसे मार डालेगा। बच्चा होगा ही नहीं, यही क्षेम है, परन्तु यह कैसी देवेच्छा है कि कैद में होने पर भी वह गर्भवती हो गयी। ऐसा लगता है ग्रह अपना काम करने का ही निश्चय कर चुके हैं।

अपने शास्त्र-ज्ञान के बारे में अभिमान करनेवाले दीक्षित को राजा की कटु बातें ऐसी लगी जैसे किसी ने उस पर थूक दिया हो। दीक्षित को एक पल भर को गुस्सा आया पर उसने अपने को सम्भाल लिया। वह राजा को सम्बोधन करके बोला, "महाराज, जिस विषय के बारे में आप पूछ रहे हैं वह शान्ति से, आज्ञा दें तो देखकर बताऊँगा।"

"और क्या आज्ञा देने की बात है! यह सब क्या है? सुना है आपने कंस देवकी योग की बात कही है, वह सब क्या है? आप तो सारे भविष्य के ज्ञाता हैं। कहिये जरा सुनें तो।"

दीक्षित रानी की ओर घूमकर बोला, "आपने महाराज से इन बातों की चर्चा की है, रानीमाँ?"

रानी : "जी हाँ! परन्तु आप सारी बात ठीक तरह से बताइये। महाराज बहिनजी को अप्पगोल भेजना चाहते हैं। उसका ठीक-ठीक मुहूर्त जानने के लिए

ही आपको बुलाया है।"

राजा के अविवेक को ही रानी सुधार रही थी। यह बात राजा भी समझता था। उसने पत्नी को तीक्ष्ण दृष्टि से देखा और बिना कुछ कहे दीक्षित की ओर मुड़ा।

दीक्षित : "मैं सब बात निवेदन कर सकता हूँ। अभी कहूँ या फिर कभी आऊँ, यह आप सोचिये। मेरी बात सुनकर परेशान न होइए। जब मन शान्त हो तब प्रश्न पूछने पर जहाँ तक मुझे पता है वहाँ तक सब बातें निवेदन कर दूँगा।"

इन शान्ति की सब बातों से वीरराज और चिढ़ गया और कुछ फ़ायदा न हुआ। वह पुनः पहले जैसी ही कर्कश आवाज में बोला, "बहानेबाजी मत कीजिये। उस योग की बात बताइये। कल जो कहना है आज ही कह दीजिये। हम सुनने को तैयार हैं। बताकर दफ़ा हो जाइये।"

दीक्षित बोला, "मेरी बात अच्छी न लगे तो भी महाराज गुस्सा न करें। हमारे पूर्वजों की सिखायी विद्या, जो दिखाती है वही बताता हूँ। महाराज का योग इस समय हमारे यहाँ रखी एक पुरानी कुण्डली का एकदम प्रतिरूप है। उसके अनुसार अब के ग्रह यह बताते हैं कि भाई बहिन को और उसकी सन्तान को कष्ट पहुँचायेगा। बड़ों ने ऐसा ही कहा है। ग्रह जो कुछ दिखाते हैं वह सब जानकर उससे बचने का प्रयत्न करना चाहिये। आजकल महाराज ने बहिन को दामाद से अलग करके यहाँ रख रखा है। ग्रह दशा चेतावनी दे रही है कि बहिन को दामाद के साथ भेज देना चाहिए। पहले जब मैंने देखा तब ऐसा मालूम नहीं था कि बहिन गर्भ से है। अब वह गर्भवती है, इससे यह स्पष्ट होता है कि ग्रह जो भी दिखाते हैं उनमें सच्चाई अवश्य है। बहिन को अप्पगोलं भिजवा देना चाहिए और प्रसव होने के एक वर्ष तक महाराज को उधर नहीं जाना चाहिए। बहिन और उसके बच्चे को इधर आने से पूरी तरह रोक देना चाहिए। इस बीच भगवान से प्रार्थना करते रहना चाहिए कि कोई अनर्थ न हो। बिना किसी संकट के यदि एक वर्ष बीत जाये तो फिर कोई भय नहीं।"

राजा : "हमें कभी भी डर नहीं। आपके डराने से डरने के लिए हमने कोई साड़ी नहीं पहन रखी है। आप जो चाहे बताइये। हम वैसे करने वाले नहीं। आपकी पोथी को झूठा बनाकर दिखा देंगे, देखते रहिये। हमारी बहिन यहीं रहेगी।"

दीक्षित : "यह महाराज की मर्जी, जैसा चाहें करें।"

राजकुमारी पिता के पास जाकर उनकी ठुड्डी पकड़कर बोली, "पिताजी, बुआ यहाँ रहने पर भोजन नहीं करेंगी। उन्हें उनके महल भिजवा दीजिये।

रानी : "बहिन के महल में रहने में कोई दोष नहीं। हमारे यहाँ ही उनका प्रसव होने दीजिए। बाद में माँ और बच्चे दोनों को सुख से उनके घर भेजा जा सकता

है। तो भी दामाद इसमें प्रसन्न नहीं होंगे। अब भेज दें तो उनको भी तसल्ली होगी और देश में भी यश होगा। बहन को भी प्रसन्नता होगी। शास्त्र की बात भी पूर्ण हो जायेगी। पुट्टम्माजी जब चाहें देखकर आ सकती हैं। इस समय भिजवा देना ही ठीक मालूम होता है।"

राजकुमारी पिता के गले में हाथ डालकर गाल पर गाल रखकर गिड़गिड़ाते हुए बोली, "हाँ पिताजी, उन्हें भेज ही दीजिये न।"

किसी से भी हार न माननेवाला वीरराज बेटी के प्रेम के सामने हार गया। "अच्छा जाओ ऐसा ही सही, उसे भेज दो। आज ही दफा कर दो। पण्डित को जीत जाने दो। पूजा-पूजा रट रहा है। उसे जो कुछ अन्न, सोना-चाँदी और गहने कपड़े चाहिए, देकर भिजवा दो।"

रानी को इस बात का डर था कि कहीं इस व्यंग्योक्ति पर दीक्षित कुछ कह न बैठे, परन्तु दीक्षित ने उठकर, "स्वस्त्यस्तु'। आज्ञा हो तो मैं चलता हूँ," कहा।

राजा ने कुछ जवाब नहीं दिया, उसकी ओर देखा भी नहीं।

राजकुमारी इससे पहले ही बाहर भाग गयी थी। दो क्षणों में बसव को साथ लेकर लौट आयी। राजा से बोली, "पिताजी बसवय्या से कह दीजिये।"

राजा बसव से बोला, "देवम्मा को अप्पगोल दफा कर दे, लगड़े। वैसे राज-महल के पहरे पर कौन था जिसने चेन्नबसव को भीतर आने दिया। उस हरामखोर को जरा बुलाना, उसने उसे कैसे अन्दर आने दिया। बेंत लगवायेंगे।"

राजा के अन्तिम शब्द सुनते ही राजकुमारी ने रानी की ओर देखा। रानी इसे देख अन-देखा करके दीक्षित से बोली, "पधारिये दीक्षितजी, सब सामग्री दिलाते हैं।" और रनिवास की ओर चल पड़ी। दीक्षित भी राजा को हाथ जोड़-कर उसके पीछे हो लिया।

भीतर जाते समय रानी ने सिर हिलाकर बेटी को आने का संकेत किया। राजकुमारी माँ के पीछे-पीछे चली गयी।

55

वीरराज का बहिन को क़ैद से मुक्त करने को मान जाना ही रानी के लिए सन्तोष तथा आश्चर्य की बात थी। वास्तव में उसे सन्तोष से बढ़कर आश्चर्य ही था। उसे उस क्षण एक ही बात की चिन्ता थी—राजा के और कोई बात उठाकर अपने वचन से फिरने से पूर्व ही देवम्मा को अप्पगोल भेज दिया जाये। रनिवास के भीतर जाते ही रानी ने दीक्षित को आसन देकर पूछा, "बहिन के मायके से जाने

का दिन आज ठीक तो है ना दीक्षितजी ?"

दीक्षित बोला, "वह सब देखना ही नहीं चाहिए। अच्छा काम करने का अवसर मिलते ही किसी दूसरी बात को सोचने की आवश्यकता नहीं। उन्हें इसी समय यहाँ से भेज देने के काम में लग जाइये। भगवान रक्षा करेंगे।"

रानी लड़की से बोली, "बिटिया, बुआजी से जाकर कहो आज ही जाना है। पिताजी मान गये हैं। और उन्हें यहीं लिवा लाओ। इतने में मैं यहाँ सामान तैयार कराती हूँ। समझ गयी ना मेरी रानी बेटी !" राजकुमारी तुरन्त बुआ के पास चली गयी।

ननद के आने से पहले सब चीजें तैयार कराने के लिए रानी ने तीन सेविकाओं को एक के बाद एक करके बुलाया। एक को कहा, "तू जाकर गुरिकारजी को कह, तुरन्त एक पालकी द्वार पर मंगवाये। साथ में दो कहार ज्यादा भेज देना। साथ दो बन्दूक़वाले भी रहें। सब तैयार होकर यहाँ आ जायें तो हमें ख़बर कर दें।"

फिर दूसरी ओर बुलाकर कहा, "रनिवास में जाकर कहो, देवम्माजी यहाँ आ रही हैं। थाली में फल-फूल दूध तैयार रखें।" तीसरी सेविका से बोली, "दो बड़ी थालियों में पान-सुपारी, फल, गन्ध, चावल जल्दी से तैयार करो। ननद को देने लायक कपड़े आदि लाने मुझे स्वयं जाना पड़ेगा। रानी यह सोचकर दीक्षितजी को 'कुछ देर ठहरिये पण्डितजी, लड़की को आशीर्वाद देकर जाइये, कहकर भीतर कमरे में गयीं।"

जल्दी काम निबटाने के लिए रानी जल्दी दो कड़े, दो साड़ियाँ, दो ब्लाउज के कपड़े लिये हुए लौटी। इन सबको एक ओर रखकर दीक्षित से बोली, "मैं आप से एक विनती करती हूँ, पण्डितजी।"

दीक्षित बोला, "सकोच की आवश्यकता नहीं रानीमाँ, आज्ञा दीजिए।"

"किसी कारण चिढ़कर महाराज ने आपसे ढंग से बात नहीं की। इसलिए बुरा मत मानियेगा। उनकी बात को भूल जाइये।"

दीक्षित बोला, "रानी माँ, आपको इस बारे में चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। महाराज क्या मेरे लिए नये हैं ? क्या वे मेरे बराबर के हैं ? आपके ससुर भी मुझ से आयु में छोटे थे। उनके पुत्र को मैं आशीर्वाद देने के सिवा कह ही क्या सकता हूँ।"

"हमारा क्या है हम तो सात फेरे लेकर उनके साथ आये हैं, सहोदरों और अपने जायों को तो सहना ही पड़ता है। दूसरे ऐसी बातों से दुखी हो ही जाते हैं। आपना उन्हें माफ़ करना ही काफ़ी नहीं, आपको यह भी देखना पड़ेगा कि उनके मुँह से निकले शब्दों के कारण उनकी कोई हानि न हो।"

"उसे भगवान संभाले, रानीमाँ। आप भी प्रार्थना कीजिये। एक क्षण को

मैं हक्का-बक्का रह गया था। तुरन्त भगवान को स्मरण किया। हे ओंकार, मेरी रक्षा करो, मेरी परीक्षा मत लो—यही मन में सोचा। उसी समय बुद्धि वश में आ गयी।"

"आप पुण्यात्मा हैं, पण्डितजी।"

"बड़ों का आशीर्वाद है, रानीमाँ। मुझे सदा याद रहता है कि इस महल के अन्न से मैं पला हूँ। तीन पीढ़ियों से इस घर से मेरा परिवार पलता चला आ रहा है। साठ साल से किया गया उपकार कहीं भुलाया जा सकता है माँ? भात की थाली में यदि एक पत्थर मिल जाये तो उससे क्या हो जाता है? क्या भोजन नहीं रहता, कुछ और हो जाता है? अगर मैं बुरा मानूँ तो मेरा ही बुरा होगा। भगवान से आप भी प्रार्थना कीजिये कि मेरी कोई हानि न हो।"

दीक्षित की इन सांत्वना भरी बातों से रानी की व्याकुलता शान्त हो गयी। इस समय तक बाहरवाली सेविका ने आकर ख़बर दी कि पालकी आ गयी है। उसी समय राजकुमारी, देवम्माजी तथा उनके पीछे-पीछे बसव आ पहुँचे। बसव ने रानी को हाथ जोड़े और पूछा, "पालकी भीतर मंगवा लूँ, रानीमाँ।"

रानी: "कह दिया है, बसवय्या। बहिन को लेकर आते हैं। सब मिलकर विदा करेंगे, नौकर को बाहर रहने को कहो।"

बसव द्वार तक गया और फिर इनकी ओर घूमकर बोला, "बहिनजी मुझ पर गुस्सा न करें।" राजकुमारी फक से हँस पड़ी। रानी और देवम्माजी के मुँह पर भी मुस्कान दिखायी दी। दीक्षित के मुख पर हँसी की छाया दीख पड़ी। बसव उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना बाहर चला गया।

रनिवास के नौकर दूध-फल लेकर आ गये थे। रानी ने वह सब देवम्माजी को दिया फिर उसे फूल विभूति और कुंकुम लगाकर कड़े पहनाये, नये वस्त्र देकर बोली, "अब आप अपने घर जाइये। भगवान आप पर कृपा करें। आप भी भगवान से अपने भाई के घर के फलने-फूलने की मंगल-कामना कीजिये। जाने से पहले दीक्षितजी के चरण छूकर आशीर्वाद लीजिये।"

देवम्माजी के मुँह से शब्द न निकल पाये। जिस बात को स्वप्न में भी सोच नहीं सकती थी वह सौभाग्य अचानक आज उसे स्वयं आगे बढ़कर मिला। आँसू भरी आँखों से देखकर और भरी गोद को सभालकर उसने दीक्षित को नमस्कार किया। बिना एक शब्द बोले भाभी की छाती पर सिर रखा और भतीजी का माथा चूमकर प्यार किया। मन ही मन भगवान तूने ही मेरी रक्षा की, कहकर ईश्वर का धन्यवाद करके महल से बाहर निकली। रानी तथा राजकुमारी भी उसके पीछे-पीछे चलीं। दीक्षित भी अक्षत के चार चावल लेकर साथ-साथ पीछे चला। 'स्वस्त्यस्तु' कहकर देवम्माजी के चलते समय उन पर बरसाये।

राजा की बहिन को लेकर पालकी अप्पंगोल की ओर चल दी। रानी से लेकर

झाड़ू देनेवाली जमादारिन तक ने इस बात को महसूस किया कि वर्षों से छाया हुआ अँधेरा मानो आज छँट गया है।

56

ननद की रक्षा का काम हुआ। अब रानी के लिए उतना ही कठिन कार्य एक और था। उसकी बात पर चलकर संकट में फँसे उत्तय्या की रक्षा करना है। इससे पहले ही उसे इस बात की आशंका थी कि ऐसी मुसीबत आयेगी। पर पहले उस आशंका से उतना डर नहीं था जितना अब हुआ। राजा की अब की मनःस्थिति को देखने से ऐसा लगता था कि वह उत्तय्या का पता नहीं क्या कर डाले। अब इस लड़के का क्या बनेगा? अपनी बेटी का क्या बनेगा? बोपण्णा क्या कहेगा? देश का क्षेम कैसे होगा? आने वाले संकट के बारे में जितना वह सोचती गयी उतना ही भय लगा। रानी को लगा कि किसी कारण से राजा उत्तय्या को बुलाना भूल जायें तो फिलहाल अच्छा ही होगा। कौन-सा कारण हो सकता है? उसके अचेतन मन में यह बात भी थी कि राजा कुछ अधिक पीये। रानी को सदा इस बात का दुख था कि राजा पीता है, उसका स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। पर रानी को उस समय ऐसा लगा कि अब पीकर होश में नहीं रहना ही अच्छा है।

पर यह आशा पूरी नहीं हुई। राजा जितना ज्यादा पीता था उतना ही उसे गुस्सा चढ़ता जाता था। उस दिन वह पीता ही रहा और बीच में चार बार बसव से पूछा था, "वह उत्ता कहाँ है?"

उत्तय्या के जिम्मे राजमहल के पहरे के साथ-ही-साथ नगर के पहरे का काम भी था। वह उसी दोपहर नगर के किसी एक काम को देखने गया था, इसलिए वह राजमहल का रात के पहरे का प्रबन्ध देखने आ पाया।

महल के बाहरी द्वार पर पहुँचते ही पहरेदार ने कहा, "महाराज ने दोपहर को आपको बुलाया था।" उत्तय्या सोच ही रहा था कि क्या काम हो सकता है कि इतने में उसे ढूँढ़ते हुए एक और सेवक पीछे से आ मिला। उसने राजा के बुलाने का कारण बताया और साथ ही उस शाम राजा की बहन के अप्पगोल्ल जाने की बात कही।

उत्तय्या के दिमाग में एक ही बात थी: राजा मनमानी जबान चला सकता है। पर यदि मैं भी गुस्से से ही जवाब दूँ तो वह अविवेक ही होगा। बाकी कुछ भी बात हो मुझे यह नहीं बताना चाहिए कि चेन्नबसवय्या को भीतर आने देने में राजकुमारी का हाथ था। मन-ही-मन यह सब सोचते हुए वह राजा के निवास पर पहुँचा। द्वारपाल ने 'थोड़ा ठहरिये' कहकर उसके आने की सूचना बसवय्या को देने के लिए एक आदमी भेजा। थोड़ी देर में बसवय्या आया। राजा के कमरे में

झाँककर देखा। उसे नींद में समझकर चुपचाप द्वार पर वापस आया। इतने में राजा जाग कर गरजा, "कौन है? लंगड़ा है क्या? उत्ता को बुलाया नहीं? इसमें इतनी देर क्यों?"

"पहरे के नायक आ गये महाराज।"

"इधर आने को कहो उस हरामखोर को।"

बसव फिर द्वार पर आकर बोला, "महाराज बड़े गुस्से में हैं, अभी आप किसी काम के बहाने जा सकते हैं तो चले जाइये। मुझे डाटेंगे मैं संभाल लूँगा। क्या विचार है?"

उत्तय्या को यह बात जँची नहीं। इसके अलावा उसे पता था कि उसके बोपण्णा का सम्बन्धी होने के कारण बसवय्या उससे जलता है। यह सच भी था। और कोई समय होता तो बसव बोपण्णा के इस सम्बन्धी को अपमानित कराने में न हिचकिचाता। पर अब उसे इस बात का डर था कि बोपण्णा को नीचा दिखाने के प्रयास में राजा के शत्रुओं को एक साथ मिला देने के समान हो जायगा। उत्तय्या को यह बात मालूम न थी। उसे इस बात की शंका थी कि बसवय्या की यह चेतावनी उसे हानि पहुँचाने के लिए है। इसके अतिरिक्त उसमें साहस के साथ कठिनाइयों को सहने की आदत थी। कहीं मुसीबत है यह पता लगते ही उसकी पहली प्रतिक्रिया यह होती है कि वह कैसा संकट है मैं भी जरा देखूँ। बसव की बात सुनकर एक क्षण रुककर वह बोला, "वे जो भी पूछना चाहते हैं, पूछ लें। चलिये भीतर चलें।"

बसव उसे साथ लेकर द्वार तक गया और स्वयं एक ओर खड़े हो उसे दूसरी ओर खड़े होने को कहकर बोला, "उत्तय्याजी आ गये हैं, मालिक।"

57

इस समय रानी गौरम्मा और राजकुमारी रनिवास से यहाँ आकर कमरे से बाहर आँगन में एक ओर खड़ी हो गयीं। इन्हें राजा देख नहीं सकता था। शुरू में उत्तय्या को भी ये दिखाई नहीं पड़ीं। उसे रानी और राजकुमारी का होना सामने की दीवार पर लगे शीशे में दिखाई पड़ा। जब बसव ने उनकी ओर देखा, अपने बारे में उसने राजा के सम्मुख जो कुछ कहने का निश्चय किया था वह इन लोगों का मुख देखकर और दृढ़ हो गया।

बसव की आवाज सुनकर राजा ने पूछा, "कौन है रे! उत्तय्या तुम आ गये?"

उत्तय्या बोला, "जी हाँ मालिक।"

"ए उत्ता तुझे महल की रखवाली का जिम्मा दिया था। तुमने उस चेन्न-बसव को कैसे अन्दर आने दिया?"

झाड़ू देनेवाली जमादारिन तक ने इस बात को महसूस किया कि वर्षों से छाया हुआ अँधेरा मानो आज छँट गया है।

56

ननद की रक्षा का काम हुआ। अब रानी के लिए उतना ही कठिन कार्य एक और था। उसकी बात पर चलकर संकट में फँसे उत्तय्या की रक्षा करना है। इससे पहले ही उसे इस बात की आशंका थी कि ऐसी मुसीबत आयेगी। पर पहले उस आशंका से उतना डर नहीं था जितना अब हुआ। राजा की अब की मनःस्थिति को देखने से ऐसा लगता था कि वह उत्तय्या का पता नहीं क्या कर डाले। अब इस लड़के का क्या बनेगा? अपनी बेटी का क्या बनेगा? बोपण्णा क्या कहेगा? देश का क्षेम कैसे होगा? आने वाले संकट के बारे में जितना वह सोचती गयी उतना ही भय लगा। रानी को लगा कि किसी कारण से राजा उत्तय्या को बुलाना भूल जाये तो फिलहाल अच्छा ही होगा। कौन-सा कारण हो सकता है? उसके अचेतन मन मे यह बात भी थी कि राजा कुछ अधिक पीये। रानी को सदा इस बात का दुख था कि राजा पीता है, उसका स्वास्थ्य बिगड़ रहा है। पर रानी को उस समय ऐसा लगा कि अब पीकर होश में नहीं रहना ही अच्छा है।

पर यह आशा पूरी नहीं हुई। राजा जितना ज्यादा पीता था उतना ही उसे गुस्सा चढ़ता जाता था। उस दिन वह पीता ही रहा और बीच में चार बार बसव से पूछा था, "वह उत्ता कहाँ है?"

उत्तय्या के जिम्मे राजमहल के पहरे के साथ-ही-साथ नगर के पहरे का काम भी था। वह उसी दोपहर नगर के किसी एक काम को देखने गया था, इसलिए वह राजमहल का रात के पहरे का प्रबन्ध देखने आ पाया।

महल के बाहरी द्वार पर पहुँचते ही पहरेदार ने कहा, "महाराज ने दोपहर को आपको बुलाया था।" उत्तय्या सोच ही रहा था कि क्या काम हो सकता है कि इतने मे उसे ढूंढ़ते हुए एक और सेवक पीछे से आ मिला। उसने राजा के बुलाने का कारण बताया और साथ ही उस शाम राजा की बहन के अप्पगोल्ले जाने की बात कही।

उत्तय्या के दिमाग़ में एक ही बात थी: राजा मनमानी ज़बान चला सकता है। पर यदि मैं भी ग़ुस्से से ही जवाब दूँ तो वह अविवेक ही होगा। बाक़ी कुछ भी बात हो मुझे यह नहीं बताना चाहिए कि चेन्नबसवय्या को भीतर आने देने में राजकुमारी का हाथ था। मन-ही-मन यह सब सोचते हुए वह राजा के निवास पर पहुँचा। द्वारपाल ने 'थोड़ा ठहरिये' कहकर उसके आने की सूचना बसवय्या को देने के लिए एक आदमी भेजा। थोड़ी देर में बसवय्या आया। राजा के कमरे में

झांककर देखा। उसे नींद में समझकर चुपचाप द्वार पर वापस आया। इतने में राजा जाग कर गरजा, "कौन है? लंगड़ा है क्या? उत्ता को बुलाया नहीं? इसमे इतनी देर क्यों?"

"पहरे के नायक आ गये महाराज।"

"इधर आने को कहो उस हरामखोर को।"

बसव फिर द्वार पर आकर बोला, "महाराज बडे गुस्से मे हैं, अभी आप किसी काम के बहाने जा सकते हैं तो चले जाइये। मुझे डाटेंगे मैं संभाल लूंगा। क्या विचार है?"

उत्तय्या को यह बात जँची नहीं। इसके अलावा उसे पता था कि उसके बोपण्णा का सम्बन्धी होने के कारण बसवय्या उससे जलता है। यह सच भी था। और कोई समय होता तो बसव बोपण्णा के इस सम्बन्धी को अपमानित कराने में न हिचकिचाता। पर अब उसे इस बात का डर था कि बोपण्णा को नीचा दिखाने के प्रयास में राजा के शत्रुओं को एक साथ मिला देने के समान हो जायेगा। उत्तय्या को यह बात मालूम न थी। उसे इस बात की शका थी कि बसवय्या की यह चेतावनी उसे हानि पहुँचाने के लिए है। इसके अतिरिक्त उसमें साहस के साथ कठिनाइयों को सहने की आदत थी। कहीं मुसीबत है यह पता लगते ही उसकी पहली प्रतिक्रिया यह होती है कि वह कैसा सकट है मैं भी ज़रा देखूं। बसब की बात सुनकर एक क्षण रुककर वह बोला, "वे जो भी पूछना चाहते है, पूछ लें। चलिये भीतर चलें।"

बसव उसे साथ लेकर द्वार तक गया और स्वयं एक ओर खड़े हो उसे दूसरी ओर खड़े होने को कहकर बोला, "उत्तय्याजी आ गये हैं, मालिक।"

57

उस समय रानी गौरम्मा और राजकुमारी रनिवास से यहां आकर कमरे से बाहर आंगन मे एक ओर खड़ी हो गयी। इन्हें राजा देख नहीं सकता था। शुरू में उत्तय्या को भी ये दिखाई नहीं पड़ी। उसे रानी और राजकुमारी का होना सामने की दीवार पर लगे शीशे में दिखाई पडा। जब बसव ने उनकी ओर देखा, अपने बारे में उसने राजा के सम्मुख जो कुछ कहने का निश्चय किया था वह इन लोगों का मुख देखकर और दृढ़ हो गया।

बसव की आवाज सुनकर राजा ने पूछा, "कौन है रे! उत्तय्या तुम आ गये?"

उत्तय्या बोला, "जी हां मालिक।"

"ए उत्ता तुझे महल की रखवाली का जिम्मा दिया था। तुमने उस चेन्न-बसव को कैसे अन्दर आने दिया?"

उत्तय्या ने कोई उत्तर नहीं दिया

राजा बोला, "क्यों बेटे, बात का जवाब क्यों नहीं देता ?"

उत्तय्या बोला, "बेटे-बेटे सुनने की आदत हमें नहीं महाराज। ग़लती हो तो जवाब तलबी कीजिये, दोष हो तो दण्ड दे सकते हैं, पर हम बेटे और हरामखोर नही हैं।"

"दण्ड देंगे, छोड़ेंगे क्या ? दण्ड देंगे, बताओ क्यों आने दिया ?"

"आने तो जरूर दिया था महाराज। ज़्यादा तहकीकात की जरूरत नहीं। दण्ड क्या है उसकी आज्ञा दीजिये, भुगतने तो तैयार हूँ।"

"भुगतोगे क्या मुअर, ख़त्म ही हो जाओगे। सिर कलम करा दूंगा, सूली पर चढ़वा दूंगा।"

रानी को लगा, अब लड़के को असहाय छोड़ना ठीक नहीं। वह अभी सोच ही रही थी कि इस बात के बीच में कैसे बोले कि इतने में पता नहीं राजकुमारी क्या सोचकर माँ को कुछ कहने का अवकाश दिये बिना ठक से कमरे में घुस गयी। पिता के समीप घुटने टेक, उसकी बाहों को पकड़कर बोली, "पिताजी आप उत्तय्या को कुछ नहीं कहिये। फूफाजी को मैं ही चोरी से भीतर ले आयी थी। बुआजी बहुत रोती थीं, मुझसे देखा नहीं गया। जो भी दोष है सब मेरा है।"

"बाहर चलो पुट्टम्मा। तू यहाँ क्यों आयी ? तू चोरी से उसे अन्दर लायी। तुम्हें चोरी करने का मौका इसने क्यों दिया ? तेरी सुन्दरता पर मुग्ध होकर उसे आने दिया क्या ?"

"हाँ पिताजी, मालिक की बेटी ने कहा तो मालिक क्या और बेटी क्या। दोनों में अन्तर क्या है ? इसीसे मेरा मुँह देखकर इसने आने दिया।"

तब तक रानी भी भीतर आ गयी। बेटी को बुलाकर बोली, "इधर आओ पुट्टम्मा ! पिताजी को तंग मत करो। महल के पहरे के नायक का दोष क्या है ? रानी तथा राजा की बेटी राजा की बहन को न रोने देने के लिए दामाद को अन्दर ले आयी तो पहरेदार मालिक के सामने शिकायत कर सकते हैं क्या ?"

रानी और बात कहने को थी इतने में राजा उबलकर बोला, "ओह-हो ! तुम भी आ गयीं कोडग की रानी ! अपने बोपण्णा के भांजे को बचाने। चलो बाहर। यह क्या पुट्टम्मा ! मैं कुछ करने चलूं तो तू बीच में आ जाती है ना। इसका मतलब यह कि मैं जो करूँ तुम से पूछकर करूँ।"

राजकुमारी बोली, "इस समय आप मेरी बात मान जाइये पिताजी, फिर आगे से तंग नहीं करूँगी।"

राजा ने पूछा, "क्या इसका मुंह देखकर मुग्ध हो गयी बेटी ? कल को इससे शादी करेगी ?"

राजकुमारी : "यह तैयार है पिताजी, पूछिये ?"

राजा के मन में पता नहीं कौन-सी भावना उत्पन्न हुई, कौन-सा तार बजा, उसने कहा, "हाँ बिटिया, मुझे तुम्हारे लिए एक अच्छा लड़का ढूंढ़ लाना चाहिए। अच्छा बाप होता तो अब तक ले आता। यह ही कौन-सा बहुत ख़ूबसूरत है। तुम मानने को तैयार हो इससे भी सुन्दर नहीं क्या ?" फिर उत्तय्या से बोला, "ओय उत्ता ! राजमहल की पहरेदारी पर रखा तो सिर ही चढ़ गया। दफ़ा हो जाओ। भोली-सी बच्ची को फुसलाने की सोची है, क्यों रे ख़ूबसूरत आदमी ! आँखों से दूर हो जाओ। ख़बरदार इस तरफ़ आँख उठायी तो।" बाद में बसव से बोला, "ऐ बसव, यह हरामखोर अपने को बोपण्णा का भजीता सोचकर अपने को बड़ा समझता है। बोपण्णा से कहो इसे सीमा के पहरे पर भेज दे। इस बार छोड़ दिया। बेंत भी नहीं लगवाये सिर भी कलम नहीं कराया। सब लोग दफ़ा हो जाओ यहाँ से। अरे बाप रे, मेरा सिर दर्द से फटा जा रहा है। ओ बसव के बच्चे, जरा पानी दे।"

वीरराज बहुत थक गया था। पिछले वर्ष जब ग़ुस्से में वह बेहोश हो गया था तब से जब भी भावोद्रेक होता था वह जल्दी ही थक जाता था। बेहोश होने के डर से बात को वहीं ख़त्म कर देता था। इससे अब वह आगे कुछ और बोलेगा ऐसा नहीं लगा। रानी ने उत्तय्या को हाथ के इशारे से चले जाने को कहा। वह रानी और राजकुमारी की ओर देखता हुआ बाहर की ओर चला। बसव उसके पीछे कमरे में गया और थोड़ी देर बाद एक गिलास में पानी लाया। रानी उसे अपने हाथ में लेकर "पानी लीजिये" बोली। राजा ने लेकर थोड़ा पानी पिया और व्यंग भरी आवाज में बोला, "कोडग की रानी, जिस-तिस को लड़की मत दे देना। ठीक आदमी देखकर देना।" फिर पास बैठी बेटी के सिर पर प्यार से हाथ फेर कर आँखें बन्द कर लीं। क्षण भर में खर्राटे सुनायी दिये।

पर्वत के समान दिखाई देने वाला डर पल भर में राई की तरह उड़ गया, यह देखकर रानी ओंकारेश्वर का मन में स्मरण करने लगी। बेटी को छूकर उठाया और उसे रनिवास की ओर ले गयी।

58

उस साँझ अपने वचनानुसार भगवती दीक्षित से आकर मन्दिर में मिली और उसने अपनी रामकहानी अपने ताऊ को सुनायी :

"मैं सिर्फ़ सोलह साल की थी। अण्णय्या महल के तौर-तरीके मुझे क्या पता ? राजा ने महल के मन्दिर में बुलाया। मना कैसे करती ! पास खड़ी हुई। 'शादी हो गयी समझो, मेरे साथ चलो' कहा। माँ से पूछती हूँ कहा, तो 'बाद में पूछना' कह खींचकर ले गये। अपने मन की कर ली। बाद में माँ को बताया। 'क्यों ऐसा

करना ठीक था ?' वे बोले, 'कुछ भी नहीं किया। तुम चुप रहो। समझो शादी कर ली' माँ चुप हो गयी। मुझसे कहा, 'चार दिन देखो।'

देखो कहकर रह जाने में वह लड़की बूढ़ी हो गयी, अण्णय्या। क्या वह देखने की आयु थी ? देखनेवाला खानदान था ? देखेंगे कहने से क्या इन्तजार किया जा सकता था ? चार दिन देखने में ही चार बार मिले। पिताजी को पता चला। 'राजा साहब से बात करता हूँ' कहा। उन्होंने पिताजी को समझा दिया।

"यह मेरी पत्नी है, दासी नहीं" कहा। हालेरी से निकालकर नाल्कुनाड ले गये।

पता नहीं कैसे बड़े राजा तक खबर पहुँची। वे घोड़े पर नाल्कुनाड आये। शाम का वक्त था। कमरे से तहखाने में उतारकर सुरंग से बाहर भेज दिया और दरवाजा खोलकर भाई से मिले। यह सच है पूछने पर 'नहीं तो' कह दिया। बाद में बहुत गुस्सा किया। 'राजा से शिकायत की है जो चाहे कर लेना' कहा।

बेटे को जन्म दिया। पिताजी और माँ उनसे मिले और बहुत विनती की। उस बच्चे के बाप ने कहा कि अपनी बेटी को भेजिये उसी से बात करूँगा। फिर फुसलाया और साथ रखा। फिर से कहा कि समझ लो शादी हो गयी। वापस भेज दिया। चुपचाप रहोगी तो शादी कर लूँगा। अगर शिकायत करोगी तो नहीं। 'अच्छा' कह चुप हो गयी तो उन्होंने पिताजी को मरवा डाला।

जब साथ में होते तो उनकी बात सुनने वाली ही होती थी, अण्णय्या। 'भाई के बाद मैं ही तो राजा बनूंगा। मेरे बाद मेरा बेटा राजा बनेगा।' मैं तो सच ही समझी थी, अण्णय्या। आपको तो पता है कि उनके यहाँ बच्चे नहीं थे। देवम्मा ने एक बच्चे को जन्म दिया वह भी मर गया था। फिर कितने ही साल बीत जाने पर भी वह गर्भवती न हुई। अगर उसे मान लेते, शादी हो गयी ही समझती तो इस राज्य का अधिकारी उनका बेटा ही तो बनता। अच्छा सोचकर चुप रही।

समझ लीजिये मैं खुश ही थी। शादी न होने पर भी वे पति थे और मैं पत्नी। मैंने उन्हें धोखा नहीं दिया। मैं उनके साथ ऐसे ही रही जैसे उन्होंने कंगना और मांगल्य बांधा हो। मैं सच्चाई पर चली, उसका कोई प्रतिफल नहीं माँगा। बिना फेरों के पत्नी बनी। पत्नी ही समझकर प्रसन्न रही।

एक साल बीत गया। देवम्मा के घर एक बच्चा हुआ। मेरा बच्चा बिना शादी का था, उनका शादीवाला। इसका क्या हाल होगा सोचकर मैं डर गयी।

बच्चे को लेकर माँ के साथ उनके पास गयी। शिकार के लिए वे और उनके साथी नाल्कुनाड के महल में ठहरे थे। देवम्मा ने हालेरी के महल में प्रसव किया था। उन्होंने मुझे और माँ को भीतर बुलाया। दासी कहा, हरामजादी कहा

और बहुत-सी गालियाँ दीं। माँ बच्चे को लेकर पास जाकर बोली, "यह तो तुम्हारा ही लडका है। मेरी बेटी हरामजादी सही। हरामजादी ने तुम्हारा ही बेटा तो पैदा किया है। यह तुम्हारा बेटा नही क्या ?" बच्चे को देखकर बाप गुस्से से उबल पडा। अण्णय्या उन्होंने कहा, "हरामजादी मेरे मुँह लगती है।" बच्चे के पाँव मरोडकर खीचते हुए बोले, "बेटा मेरा ही सही, यहाँ छोडकर चली जाओ।" पाँव मोडने से बच्चा चीखा। मेरा कलेजा फुक गया अण्णय्या। मैंने उन्हें गालियाँ दी 'तुम्हारा वंश बचेगा ?' तभी बोले अभी बचाता हूँ। बच्चे को नीचे रखती है या मार डालूँ। माँ ने डर कर बच्चे को नीचे रख दिया। वह रो पड़ा। बच्चे के बाप ने कहा, "मेरा लडका है न, मैं सभाल लूंगा। उससे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही। दोनों सीधी यहाँ से चली जाओ, कोडग की सीमा से बाहर हो जाओ। बिना मेरी आज्ञा के, खबरदार जो फिर यहाँ कदम रखा तो। चली जाओ, नही तो बच्चे को जान से मारकर उसकी लाश ही तुम्हें दूंगा। निकल जाओ।'

फिर चार आदमियों को बुलाकर बहार निकाल देने को कहा। हम माँ-बेटी मुँह लटकाये निकल गयी, अण्णय्या। मन में यही प्रार्थना की : हे भगवान जैसे भी हो उस बच्चे को बचा लो। इस बात को चौंतीस वर्ष बीत गये। बच्चा बचा रहे इस आशा से इधर ताका भी नही। बड़ा भाई मरा, छोटा राजा बना। आने की आज्ञा माँगी तो कहला दिया 'अगर इधर आयी तो बच्चे को मरा पाओगी।' ठीक है बच्चा ही हमारा नही। जाकर करना ही क्या है? जहाँ भी रहे जीता रहे। हमारा क्या कही भी पड़े रहेंगे। माँ भी मर गयी। मैं अकेली हो गयी। गुरु की सेवा की। भगवती की शरण ली। उनसे प्रार्थना की कि आज नही तो कल जब भी आपकी दया हो मेरा बच्चा बाप की गद्दी संभाले। उस बेटे को बिना देखे उसकी ख़बर मँगवाती रही।

गुरुजी भी आपकी ही तरह बहुत अच्छे थे, अण्णय्या। वे भी मुझे 'पापा' कहकर बुलाते थे। वे मुझे बेटी की तरह रखते रहे। पिताजी की तरह वे वैद्यक और संगीत जानते और आपकी तरह ज्योतिष भी। उन्होंने कहा, 'चुपचाप क्यों रहती हो सीख लो, जितना मुझे आता है सिखा दूंगा। मैंने 'हाँ' कहा। जो कुछ उन्होंने सिखाया सीखा। वही वैद्यक और ज्योतिष मैं जानती हूँ।

ज्योतिष सीखने के बाद मैंने बेटे की कुण्डली का अध्ययन किया। गणना करके गुरुजी को दिखायी और पूछा। दस पंक्तियाँ पढ़कर वे बोले 'ठीक ही दिखती है।' आप ही की तरह वे कहते थे कि ज्योतिष से बहुत आगे की बात नही देखनी चाहिए। वे गुरुजी भी दो साल पहले चले गये, अण्णय्या। मरते समय बोले, "तुम्हारा वनवास समाप्त होनेवाला लगता है। छह महीने तक वहीं रही। इधर आने को मन हुआ। पत्री देखी, बेटे की ग्रह दशा बहुत अच्छी थी। खोये बन्धुओं से मिलेगा, अच्छा पद प्राप्त करेगा। बन्धु और कौन है? मैं ही

तो ? पास रहने को आयी आपके छोटे भाई का दोहता है। उनकी कुण्डली देखकर ऐसा कीजिये जिसमें उसका भला हो। मैं आपकी पापी हूं अब मेरा पुण्य क्या है बताइये।"

59

भाई की बेटी की आत्मकथा सुनकर दीक्षित उदास हो गया : "हे भगवान लड़की ने कितना कष्ट उठाया। घर में जन्म लेकर यदि और सबके समान जीवन बिताती तो इस बच्ची को इतना ऊँच-नीच देखना पड़ता ? किसे पता है। शायद देखना ही पड़ता। हमारे घर में जितनी भी लड़कियां पैदा हुईं क्या वे जन्म से लेकर मृत्यु तक सुखी ही थीं ? पर उनके कष्ट सुख दूसरे ही थे और इसका कुछ और ही। सब भगवान की इच्छा है। यह सब क्यों ? हम कुछ भी नहीं जानते। पर यह दृढ़ विश्वास रहे कि सब कुछ वह देखता है ? तो कष्ट को शान्ति से सहा जा सकता है।

अपनी बीती कह चुकने के बाद भी ताऊजी ने मुंह न खोला तो पापा ने पूछा, "अण्णय्या क्या कहते हैं ? आप चुप क्यों हैं ?"

दीक्षित : "बच्चा कहाँ है बेटा, तू कहती है बाप के पास था ? अब कहां है ?"

"वह सब बाद में बताऊँगी। आप यह वचन दीजिये कि उसे राजा बनने का योग है। आप उसमें सहायता देंगे ?"

"पापा, मैं तुम्हारा ताऊ तो हूं पर साथ ही राजघराने का ज्योतिषी भी हूं। यदि यह मान लिया जाये कि तुम्हारा बेटा राजा बने तो इस राजा का क्या होगा ?"

"तो आपको अपने दोहते से यह पराया ज्यादा प्यारा है ?"

"ऐसा न कहो बेटा, मेरी बेटी, मेरी बेटी ही है मेरा दोहता मेरा ही दोहता है। पराये-पराये ही हैं। फिर पापा, क्या तुम्हें पता नहीं कि धर्म भी कोई चीज है ? अपने दोहते का भला करने के लिए पराये की हानि करूँ ? ऐसा करने को तो तुम भी नहीं कहोगी।"

"परायों की हानि नहीं कीजिये अण्णय्या। केवल इतना ही कीजिये कि दोहते के लिए न्यायोचित रूप से आस्था मिले। यह आपका पहला धर्म नहीं ?"

"तुम्हारा बेटा लिंगराज का बेटा है; पर वह राज्य का अधिकारी नहीं बन सकता।"

"आप भी यही कहते हैं ?"

"क्यों बेटी मेरा कहना तुम्हें बुरा लगता है। इस पर मैं चर्चा करना नहीं

चाहता। पर तुम साधारण स्त्री की तरह स्त्री नहीं हो। तुम्हें ईश्वर ने किसी भी पुरुष से अधिक बुद्धि दी है। इस पर तुमने तीन वर्ष तक तपस्या की है?"

"तपस्या?"

"हाँ पाप्पा, ऐसे दुःख के दिनों में भगवान के सामने बैठकर मन को स्थिर करके 'हे भगवान बच्चे की रक्षा करो और मुझे रास्ता दिखाओ' यह जो प्रार्थना की है वही तुम्हारी तपस्या थी। तुम्हारी माँ पुण्यात्मा थी। तुम्हारे पिताजी धर्मात्मा थे। तुम्हारा बच्चा होना कोई आश्चर्य की बात है?···हाँ, मैं क्या कह रहा था?"

"बेटी की अक्लमन्दी की प्रशंसा कर रहे थे।"

"हाँ, देखो! अगर कोई और होता तो यह सब बातें मैं नहीं कहता। तुम समझदार हो इसलिए कहता हूँ। तुम घर की बेटी हो पर तुम्हारी माँ हमारे घर की बहू नहीं थी। इससे क्या हुआ? तू हमारे घर में नहीं रही। इसी तरह सोचो तुम्हारा बेटा राजा का बेटा है पर तुम राजा की बहू नहीं। और तुम्हारा बेटा राजघराने का बेटा नहीं। अब क्या करें बेटी? शादी न होने से बेटे का अधिकार छिन गया।"

"जो राजा बनने वाले थे, उन्होंने विश्वास दिलाया था। मैंने विश्वास करके धोखा खाया। इतनी सजा काफी नहीं क्या? पैदा हुए बच्चे को भी उसकी सजा भुगतनी पड़ेगी?"

"यह तो तुम पर बीती ही ना पाप्पा। तेरे बाप की करनी से तुमसे तेरा घर छूटा। कर्म सदा साथ चलते हैं। तेरा जन्म कहाँ हुआ और तेरे बेटे का जन्म कहाँ। मेरा जन्म यहाँ क्यों हुआ? लिंगराज वहाँ क्यों पैदा हुए? पूर्वजों ने इसे कर्म कहा। जहाँ जन्म लिया वहीं ठीक से रहना चाहिए।"

"लिंगराज धर्म पर चले जिससे मैं धर्म छोड़कर न चलूँ? उनके लिए अन्याय के बदले में मैं अन्याय न करूँ?"

"यह सब पुरानी बातें हैं पाप्पा। लिंगराज ने अन्याय किया। उसका हिसाब भगवान के घर होगा। छुटकारा हो जायेगा क्या? वह गलती करके नरक को जाने को तैयार थे तो तू भी गलती करके नरक का मार्ग क्यों ढूँढती है बेटी? अब भी किसी के फन्दे में फँसकर दुःख पा रही हो। हिरनी की तरह फन्दे छुड़ाकर स्वर्ग का रास्ता पकड़ो, बेटी।"

"अप्पय्या, मेरी अक्ल ठिकाने नहीं, जब मैं अपने बेटे के बारे में सोचती हूँ तो पेट में आग लग जाती है। स्वर्ग में भी जाऊँ तो भी यह आग मुझे जलाती ही रहेगी। बच्चों की हालत देखकर कामधेनु भी इन्द्र के पास जाकर रो पड़ी थी। इन्द्र के घर जाकर भी मेरी आँखों से आँसू नहीं सूखे।"

- पाप्पा, क्या तुम्हारा बच्चा इतने संकट में है? तो सारी बातें बताती क्यों

नहीं ?"

"समय आने पर बताऊंगी अण्णय्या। अभी समय नहीं। इस पर भी मैं नहीं चाहती कि वह अपने छोटे भाई को हटाकर स्वयं राजा बने। वह भाई राज्य खो देगा, किसी दूसरे को राजा बनना पड़ेगा। तब आपका दोहता राजा बने। यही मेरा कहना है। वह सब समय आने पर बताऊंगी।"

"बड़ी दूर की सोची बेटी तुमने। राजा की पत्री और बेटे की पत्री दोनों देखी हैं ?"

"जी हां देखी हैं, गणना करके आयी हूं। आप भी देखिये क्या कहती हैं ?"

"अच्छा बिटिया, देख लूंगा।"

"भले ही आपकी इच्छा न हो कि आपका दोहता राजा बने, पर आपकी इतनी ममता तो है ना कि मैं आपकी बेटी हूं। कितने साल बीत गये। डरते-डरते आयी। पता नहीं आप कैसा बर्ताव करेंगे ? ऐसा लगा मानो स्वर्गीय पिताजी ने फिर से मुझे गले लगा लिया हो। अब तक जी हलका करने के लिए दुखड़ा सुनाने को कोई अपना नहीं था। खाने के साथ उसे भी पचाने की कोशिश की। आज मैंने मुंह खोला और निडर हो सब कुछ कह दिया। यह कागज लीजिए, इस पर मैंने गणना कर रखी है उसे देख लीजियेगा। अब मैं चलती हूं।"

"मन्दिर जाओगी क्या ? इतनी दूर, रात में, अकेली जाओगी ?"

"आपकी बेटी के लिए भगवती ने रात को भी दिन और दिन को रात बना दिया है। मुझे डर नहीं है। अब मैं चलूं ?" यह कहकर भगवती उठी। अण्णय्या के चरणों में माथा झुकाया। उसके किसी भी उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना जहां खड़ी थी वहीं प्रदक्षिणा करके मन्दिर के बाहर चली गयी।

60

पत्नी को छुड़ाने के बारे में पाणे सूर्यनारायण मन्त्री लक्ष्मीनारायणय्या से प्रार्थना करना चाहता था। इससे पहले उसे इस बात का पक्का पता लगाना था कि वह उनके अधीन ही है या नहीं। मडकेरी में उसके सम्बन्धी थे। मडकेरी पहुंचकर वह सबसे पहले अपनी पत्नी की मौसी के घर गया और उनसे पूछा कि उसे ढूंढने के लिए यहां किसकी सहायता मिल सकती है। उन्होंने कहा कि देवालय के दीक्षित का भतीजा नारायण दीक्षित ऐसे काम में सहानुभूति रखता है। सूर्यनारायण, नारायण दीक्षित के यहां गया।

छोटे दीक्षित ने सूर्यनारायण की सारी कहानी सुनी और उसने कहा, "आप आज और कल यहां ठहरिये। सब पता लगा लूंगा।"

उसी शाम को नारायण दीक्षित पहरे के नायक उत्तय्या से मिला और सूर्य-

नारायण की कहानी सुनायी। उत्तय्या बोला, "पता लगाता हूँ, कल तक पता दूँगा।"

उत्तय्या ने रात को गश्त के समय दासी-गृह के निरीक्षक माचा से कहा, "जरा पता लगाकर बताना कि मंगलूर की तरफ की एक ब्राह्मण स्त्री उठाकर तो नहीं लायी गयी ?" माचा ने कहा, "ठीक"।

माचा पहरे के काम पर था। आने-जानेवालों पर बहुत उत्सुकता दिखाना एक जोखिम का काम था। उसने चुपके से पता लगाया कि एक औरत आयी तो जरूर है पर उस तक पहुँचना मुश्किल है। आगे ब्यौरा और जानना है। यह बात उसने उत्तय्या को दूसरे-दिन बतायी। उत्तय्या ने नारायण दीक्षित को इसकी सूचना देते हुए कहा, "पूछो कि यह आदमी वेश बदलकर उस घर में जाकर अपनी पत्नी का पता लगा सकेगा ?"

दीक्षित के सूर्यनारायण से पूछने पर वह बोला, "इतना चतुर व्यक्ति तो मैं नहीं हूँ पर एकाध बार यक्षगान में भाग जरूर लिया है। आप जो ठीक समझें वह वेश धारण करके जैसा आप बतायेंगे वैसे कर सकूँगा।"

बलपूर्वक पकड़कर लायी गयी स्त्रियाँ दासी-गृह के पिछवाड़े में एक जगह रखी जाती थीं। वहाँ साधारणतः कोई प्रवेश नहीं कर सकता था। केवल कथावाचक, नाचनेवाले, मनिहार और सपेरे तथा बनजारे आदि खेल दिखानेवाले ही जा सकते थे। इनमें से सूर्यनारायण केवल मनिहार ही बन सकता था।

उत्तय्या और नारायण दीक्षित ने आपस में बात करके यह निश्चय किया कि दूसरे दिन सूर्यनारायण मनिहार के वेश में दासी-गृह जाये। माचा को उसे दासी-गृह तक भाव-ताव करने के बहाने भीतर ले जाना है मानो वह उस काम से न आया हो। सूर्यनारायण को जाकर यह पता लगाने का प्रयास करना है कि उसकी पत्नी वहाँ है या नहीं ? बातचीत में इस बात का ध्यान रखना है कि उसके वेश का भेद न खुल जाये। परिस्थिति देखकर काम करके जैसे भी पता लग सके वैसे करके उसे लौटना था। यह भी संभव है कि उसकी पत्नी वहाँ न भी हो। इसलिए किसी तरह की क्षति भी नहीं होनी चाहिए। इस काम में यदि कहीं कोई अड़चन आये तो उसे चुपचाप स्वाभाविक रूप देकर वापस चले आना चाहिए।

सूर्यनारायण को नारायण दीक्षित ने यह सब बातें विस्तार से बार-बार समझाईं ताकि उसके मन में अच्छी तरह बैठ जायें। अगले दिन सूर्यनारायण बाजार में एक पूर्व-निश्चित दुकान से मनिहार का वेश धारण करके दासी-गृह की ओर गया।

योजना के अनुसार सब काम हुआ। माचा बहुत होशियारी से उसे बाड़े के भीतर छोड़ आया। चार युवतियों ने आकर अपनी पसन्द की चार चीजें खरीदीं।

माचा ने कहा, "पिछवाड़े की हवेली में भी खरीद होगी ?" गोडी (मुख्य दासी) बोली, "ले जाकर दिखा लाओ।"

वहाँ भी तीन नवयुवतियाँ आयीं। एक ने मोती खरीदे, दूसरी ने माला, तीसरी ने धागे खरीदे। माचा ने पूछा, "अब ये जा सकता है ?" भीतर एक स्त्री दूसरी से बोली, "आप भी जाकर देखिये तो ?" उत्तर में आवाज सुनायी दी, "जिस हालत में मैं हूँ उसमें मणि-मोती चाहिए क्या ?"

सूर्यनारायण को निश्चय हो गया कि वह आवाज उसकी पत्नी की ही है।

पत्नी का नाम लेकर पुकारे बिना रहना उसके लिए कठिन हो गया। किसी प्रकार उसने अपने को संभाल लिया। वह इस ढंग से बोला कि उसकी आवाज भीतर तक सुनायी दे। "मैं फिर आऊँगा" कहकर उसने अपना थैला संभाला। पत्नी ने उसकी आवाज पहचान ली। झट से दरवाजे पर आ गयी। सूर्यनारायण ने उसे देख लिया। अब वहाँ ठहरने में खतरा समझकर "कल आऊँगा" कहकर चल पड़ा।

इतना सब कुछ बड़ी सरलता से हो गया। अब रह गयी थी उसके छुड़ाने की बात। उत्तय्या तथा नारायण दीक्षित ने सोच-विचारकर यह निश्चय किया कि मन्त्री लक्ष्मीनारायण की सहायता से उसे छुड़ाने का प्रयास करना चाहिए। अगर वैसा न हो सका तो वे स्वयं उसे छुड़ाने का प्रयत्न करेंगे।

इसके तुरत बाद ही सूर्यनारायण लक्ष्मीनारायण के घर सहायता माँगने चला गया।

61

उत्तय्या तनक के वसीका बन्द हो जाने की बात पर चर्चा करने के लिए बोपण्णा उस शाम तनक के साथ पहले लक्ष्मीनारायण के घर गया। लक्ष्मीनारायणय्या ने उन दोनों का प्रेम से स्वागत किया। बोपण्णा बोला, "आपने जब मुझे बुलवा भेजा तब तनकप्पा एक ऐसी समस्या लाये थे जिसके लिए मैं आपसे स्वयं मिलना चाहता था। इसलिए मैंने कहला दिया था कि मैं अभी आ रहा हूँ। आप अपनी बात पहले कहेंगे या मैं शुरू करूँ ?"

लक्ष्मीनारायणय्या बोला, "उसे देखा जायेगा। जरा इधर तो आइए !" उसे भीतरी कमरे में ले जाकर पाणे सूर्यनारायण की बात बतायी। बोपण्णा उत्तय्या तनक की बात कहकर बोला, "अब भी आपका यही कहना है पण्डितजी कि इस राजा की राज करना चाहिए ?"

"बोपण्णा, मैं क्या करूँ ? मेरा स्वभाव ही ऐसा है। यह मेरे लिए धर्म-संकट है। मन्त्री को चाहिए कि वह राजा को सही रास्ते पर ले जाने का प्रयास करे।

यदि अच्छा न लगे तो मन्त्री-पद छोड़ देना चाहिए। बाद में राजा का विरोध किया जा सकता है, उसे गद्दी से हटाया जा सकता है। मेरी समझ में मन्त्री-पद पर रहकर यह करना राजद्रोह होगा। आपसे बढ़कर मेरा कोई अपना नहीं है। आप कहें तो मैं यह पद छोड़ दूँगा। राजा का क्या करना चाहिए, बताइये ? मैं आपके साथ हूँ पर मन्त्री-पद पर रहकर राजा की उपेक्षा नहीं कर सकता। राजा की गलती देखकर भी उसे दण्ड नहीं दिया जा सकता है।"

"अच्छी बात है पण्डितजी। आपको जो ठीक लगे वह कीजिये। मुझे जो ठीक लगेगा वह मैं करूँगा। मैंने पहले कहा था तीन गलतियाँ सह लूँगा। बाद में नहीं सहूँगा। देखिये अब तीन गलतियाँ हो चुकी हैं। उन्होंने ब्राह्मण की बहू का अपहरण कराया है, कोडगी परिवार को छेड़ा है। तक्क का वसीका बन्द कर दिया है। मैं अब आपके सामने शपथ लेता हूँ, जल्दी-से-जल्दी इसे गद्दी से उतार दूँगा। आपके कहने के अनुसार इसकी पत्नी रानी बने और राज्य करे, मुझे स्वीकार है परन्तु इसका राजा बने रहना अब मैं स्वीकार नहीं करूँगा।"

"हम दोनों के रास्ते अलग-अलग हों तो कैसे चलेगा, बोपण्णा ? आप कहेंगे तो मैं नौकरी छोड़ दूँ, बताइये ?"

"इसे राजा नहीं बने रहना चाहिए यह कहनेवाला मैं स्वयं मन्त्री-पद नहीं छोड़ रहा हूँ। आप तो कहते हैं कि यह बना रहे। तो आप क्यों मन्त्री-पद छोड़ते हैं। ठहरिये, जब तक चल सके चला लेंगे। बाद में देखा जायेगा।"

"मेरा आशय यही है बोपण्णा, कि अभी और देखेंगे। जहाँ तक संभव है मैं आपके कहने के अनुसार करूँगा। आप भी वैसा ही मेरे कहने के अनुसार करिये।"

लक्ष्मीनारायणय्या ने यह विनती बड़ी नम्रता से की थी। बोपण्णा को उस पर दया आ गयी। उसने कहा, "अच्छी बात पण्डितजी, आप बड़े हैं। जो सही हो आप बताइये। मुझसे जहाँ तक बन पड़ेगा करूँगा।"

अन्दर यह बात खत्म करके दोनों बाहर आये।

62

बाहर के कमरे में आने के बाद उत्तय्या तक्क के साथ पहले इस बात पर चर्चा हुई कि सूर्यनारायण की पत्नी को छुड़ाने के लिए क्या करना चाहिए।

बोपण्णा ने कहा, "क्यों सूर्यनारायणजी, क्या आपको यह विश्वास है कि आपकी घरवाली उस दासी-गृह में ही है ?"

सूर्यनारायण : "अपनी आँखों से देख आया हूँ, यजमान। इसमें सन्देह है ही नहीं। मेरी आवाज वह सुन ले ताकि उसे थोड़ा धैर्य हो जाये, यह सोचकर जोर

से 'फिर आऊँगा' कहकर आया हूँ। उसने मेरी आवाज पहचान ली होगी झट से दरवाज़े पर आ गयी। आमने-सामने देखा। उसे शायद मेरी पहचान नहीं हुई होगी। वह यह जान ले कि मैं वेश बदलकर आया हूँ इससे 'कल फिर आऊँगा' कहकर आया हूँ।" एक क्षण चुप रहकर फिर बोला, "पता नहीं क्या पाप किये थे कि यह दुख देखना पड़ा। शायद उसके भाग्य में यही लिखा था। आप बड़े लोग हैं, हम पर दया करके हमारी रक्षा करें।"

लक्ष्मीनारायण, बोपण्णा और उत्तय्या तक्क ने कुछ देर तक बातचीत करके यह निश्चय किया कि अगले दिन लक्ष्मीनारायण राजा से मिले और सूर्यनारायण के आने की बात राजा को बताकर उसकी पत्नी को दासी-गृह से छुड़ाकर उसके साथ भिजवा देने की प्रार्थना करे।

यह बात समाप्त होने पर सूर्यनारायण को विदा कर दिया। फिर उत्तय्या तक्क की बात पर विचार-विनिमय किया, उसकी पोती को राजमहल भेजने की बात बीच में ही रुक गयी। अब उसे फिर उठाने की ज़रूरत न थी। वसीके की बात तय करने की आवश्यकता थी। चाहे राजा की आज्ञा हो या स्वयं बसव ने ही यह किया हो, इस प्रकार की ज्यादती को किसी भी रूप में रोकना ही पड़ेगा। पहले तक्क राजा से मिलें और सारी बात बताकर अपने वसीका फिर से शुरू कराने का प्रयास करें। यदि यह न हो पाये तो मन्त्री इस बात को अपने हाथ में लें, बाद में अगला कदम उठायें।

इतनी बात कर बोपण्णा तथा उत्तय्या तक्क लक्ष्मीनारायण के घर से चले आये।

63

उस दोपहर अप्पाजी और वीरण्णा सोद्देश्य धीरे-धीरे रास्ता तय करके संध्या समय दीपा जनते गाँव पहुँचे। वीरण्णा अपरम्पर स्वामी के रूप में पहरेदारों से परिचित था। उसके साथ उनके अनुयायी होते थे, इसलिए पहरेदारों ने अप्पाजी कौन हैं, क्या हैं, आदि छानबीन नहीं की।

गाँव की सीमा में आते ही अप्पाजी बोले, "इस मन की शान्ति को देखो। यहाँ आते ही मुझे ऐसा लगता है मानो बच्चा माँ की गोद में आ गया हो।"

"हाँ अप्पाजी।"

"देखो, वास्तव में जिस काम के लिए मैं आया था वह अब ख़त्म हो गया है। अब जो बात करनी है यह इसलिए करनी है क्योंकि मैं यहाँ आ गया हूँ। मन जिद्दी की मादा तो यहीं तक आना चाहती थी वह चाहना तो पूरी हो

गयो।"

"यह अच्छा ही तो हुआ, अप्पाजी।"

"अब मैं डेरे की ओर चलता हूँ तुम सूरप्पा को बुला लाओगे ?"

"आपका अकेले जाना ठीक नहीं अप्पाजी। अगर मैं साथ रहूँगा तो कोई रोक-टोक नहीं करेगा। मैं जाते हुए रास्ते में सूरप्पा को बुला लूँगा। आप भी साथ चलिए।"

"यह भी ठीक है, बेटा।"

यही बातचीत करते दोनों आगे चलकर ब्राह्मणों की गली में पहुँचे। लक्ष्मीनारायण के घर से थोड़ी दूर पर पिता को रोककर वीरण्णा अकेला सूरप्पा के घर गया और समाधि-स्थल के पास आने के लिए कह आया।

इन दोनों के समाधि-स्थल पर पहुँचने से पहले ही सूरप्पा वहाँ पहुँच गया। सूरप्पा और अप्पाजी के आपस में कुशल-क्षेम जान लेने के बाद वीरण्णा बोला, "बहुत मना करने पर भी अप्पाजी आ ही गये, सूरप्पा।"

सूरप्पा : "यहीं जन्मे, पले। देखने की इच्छा स्वाभाविक ही है। पर आप यहाँ कल ठहरने का विचार छोड़ दीजिये। उत्तय्या तक यहाँ आये हैं। हमारे घर में भाई साहब और बोपण्णा मन्त्री है, तथा वे किन्हीं दो-तीन विषयों पर चर्चा कर रहे हैं। बूढ़ा बड़ा तेज है। शिकारी कुत्ते की तरह गन्ध ले लेता है।"

"अच्छी बात है, चल देना ही ठीक है।"

"हाँ, पर अब भोजन ?"

वीरण्णा बोला, "आप आपस में बातें कीजिये। मैं जाकर भोजन ले आता हूँ।"

यह सबको ठीक लगा। वीरण्णा शहर के अन्दर गया। अप्पाजी बोले, "कुछ पूछना था सूरप्पा। पत्र लिखकर खबर मंगवाना ठीक न लगा। आमने-सामने की बात है इसलिए मिलने चला आया।"

सूरप्पा : "अच्छा ही किया। जन्मभूमि भी देख ली।"

"हाँ। हमारे चेन्नवीर की कोई ख़बर ही नहीं मिली ?"

"चेन्नवीर को उन्होंने खत्म ही कर दिया होगा। गोरों ने जब उसे यहाँ भेजा तब राजा नालकुनाड के जंगल में शिकार को गये थे। पता चला है उसे भी वहीं ले गये थे। बाद में उसकी ख़बर ही नहीं मिली। ख़बर उड़ी थी कि वह फिर मलयाल की ओर भाग निकला। यह उड़ायी हुई ख़बर होगी। यह बसव की ही करनी होगी। झूठ बोलना तो उसके लिए मुँह का कौर है।"

"कितने पापी हो गये हैं यह लोग !"

"आप केवल पापी ही कहते हैं, ये तो पिशाच हैं। यमराज को इनके लिए एक और नरक तैयार करना पड़ेगा।"

"यह तो ठीक है। अब हमारे लोगों का क्या कहना है ?"

"आप अपना निश्चय करें तो ये लोग कल को आपका साथ देंगे। आपको उन्हें बताना ही पड़ेगा।"

"बात सोचने की है, सूरप्पा। इनसे अगर लड़ना ही था तो इतने दिन चुप क्यों रहे ? देश दूसरों के हाथ न पड़े, यही मेरी एकमात्र इच्छा है।"

"आप सदा ऐसे ही रहे। बेटे को भी ऐसा ही बना दिया। हम क्या कर सकते हैं; यदि किसी ने कुछ हिम्मत दिखाई तो वह चेन्नवीर था। साहस दिखाने का उसे दण्ड भी मिल गया। इसीलिए आपको कहला भेजा था, इस काम में हाथ डालना है तो मन को मजबूत करना पड़ेगा।"

"ऐसा ही होगा, सूरप्पा। ये गोरे आकर क्या करनेवाले हैं ? यदि यह पता चला कि देश इनके हाथ से निकल जायेगा तो फिर हमारे कदम आगे बढ़ेंगे।"

"आगे हों या पीछे यह आज ही निश्चय करना होगा।"

"हाँ। उस कावेरी मक्कल संघ की क्या ख़बर है ?"

इन लड़कों ने उसे बनाया है। मुझे उसके बारे में ज्यादा पता नहीं। उसमें कौन-कौन है यह भी मुझे पता नहीं। ये बड़े ही गुप्त रूप से चला रहे हैं।

"यह तो अच्छी बात है। और क्या ख़बर है ? अम्माजी ठीक हैं ? भैया कैसे हैं ? घर से कैसी हैं ? बाल-बच्चों की सुनाइए।"

"ईश्वर की कृपा से सब ठीक हैं। मन्त्री बनकर भाई मुसीबत में पड़ गये हैं।"

"मन्त्री के लिए मुसीबत तो है ही। काँटों पर चलना पड़ता है। यह काम ही ऐसा है।"

"दूसरी मुसीबतों की तो कोई बात नहीं है। राजा स्वयं एक काँटा बन गये हैं। यह काँटा जनता को न चुभे इसके लिए भाई साहब ढाल बने हुए हैं।"

"यह भी एक पुण्य का काम है। वे जनता का भला करेंगे, भगवान उनका भला करेगा।"

64

इस समय तक वीरण्णा एक नौकर के हाथ भोजन लिवाकर आया। सूरप्पा ने कहा, "आप अपना भोजन कीजिये तब तक मैं यहीं ठहरता हूँ।"

बाप बेटे ने भोजन किया। अप्पाजी बोले, "यदि कल यहाँ रुकना नहीं है तो अभी दीक्षित से मिलकर मन्दिर में रात बिताकर सुबह जाया जा सकता है।"

थोड़ी थकान ज्यादा होगी पर बिना दीक्षित से मिले नहीं जाना चाहिए। यह सोचकर वे लोग दीक्षित से मिलने चल दिये।

रास्ते में लक्ष्मीनारायण का घर पड़ता था। इसके आगे ढलान पर दीक्षित का घर था। उससे भी आगे ज़रा चढ़ाई पर बोपण्णा का घर था। एक साथ जाना ठीक नहीं है यह सोचकर सूरप्पा अलग कुछ आगे-आगे चला। जब ये लोग लक्ष्मीनारायण के घर के सामने आये तो बोपण्णा और उत्तय्या भीतर से बात खत्म करके बाहर आ रहे थे।

आगे जाते हुए अप्पाजी ने सूरप्पा से कहा, "मैं चलता हूँ, भाई"।

सूरप्पा 'अच्छा' कहकर घर के सामने पहुँच गया।

अप्पाजी की आवाज़ सुनते ही इधर उत्तय्या तक्क चौंक पड़ा और पूछा, "यह किसकी आवाज़ है बोपण्णा?"

बोपण्णा बोला "पहचान नहीं पाया।"

तब तक सूरप्पा इनके पास पहुँच गया था। उत्तय्या ने उससे पूछा, "तुमसे कौन बात कर रहा था भैया?"

सूरप्पा ने कुछ सोचकर थोड़ी देर बाद प्रश्न किया, "आप किसके बारे में पूछ रहे हैं?"

"उन्होंने 'मैं चलता हूँ भाई' कहा और आपने 'अच्छा' कहा था।"

तब तक सूरप्पा सोच चुका था कि क्या उत्तर देना है। वह बोला, "ओह उनके बारे में? वे कोई आपसे मिलना चाहते थे। उन्होंने कहा, 'हम बोपण्णा मन्त्री के घर आ ठहरे हैं। वहाँ जाना है।' तो मैंने कहा, 'वे तो यहीं हमारे घर में बात कर रहे हैं।' तो बोले, 'मैं वहीं प्रतीक्षा करूँगा'।"

उत्तय्या तक्क बोला, "वे हमसे मिलना चाहते थे। तो फिर वह आवाज़ उनकी नहीं थी जिनके बारे में मैंने सोचा।"

बोपण्णा बोले, "यहीं मिलने को नहीं कहना था?"

सूरप्पा बोला, "मुझे क्या पता था कि आप यहाँ बात खत्म कर चुके हैं। अभी जाकर बुला लाता हूँ।" और तेज़ी से कदम रखते हुए लौट पड़ा। वहाँ अप्पाजी और वीरण्णा के पास जाकर उनके कन्धों पर हाथ रखकर उसने उनके कान में कहा, "जैसा मैंने कहा था वैसा ही हो गया। उत्तय्या तक्क दरवाज़े पर ही था। आपकी आवाज़ सुन 'आप कौन हैं?' मुझसे पूछा। अब दीक्षित से मिलने की ज़रूरत नहीं। और सुबह तक ठहरने की भी ज़रूरत नहीं। अभी शहर छोड़कर चले जाने में ही कुशलता है।"

दोनों ने दो मिनट बात की और निश्चय किया कि यही अच्छा है। सूरप्पा ने लौटकर बोपण्णा से कहा, "उन्होंने कहा है कि वे वहीं मिलेंगे।" और अन्दर चला गया। वीरण्णा पिता को कुशालनगर के द्वार से तत्काल शहर से बाहर ले गया।

65

जब ये सब लोग यहाँ बातचीत कर रहे थे तब उसी शाम को बोपण्णा का आदमी राजमहल गया और बसव से पूछा, "उत्तय्या तक्क आये हैं। क्या कल प्रातः महाराज से भेंट हो सकेगी ?"

बसव यह जानता था कि उत्तय्या तक्क क्यों आया है। उसने राजा के पास जाकर यह समाचार देते हुए कहा, "बोपण्णा ने कहला भेजा है। आप तक्क से मिल सकेंगे ?"

राजा : "बसीका क्यों बन्द किया ?"

"महाराज से पूछकर ही बन्द किया था।" बसव ने कहा।

"नहीं, कौन कहता है रांड के ? तूने रोकने को कहा था हमने हाँ कह दिया। तू ही बता कि तूने रोकने को क्यों कहा था ?"

वास्तव में बसीका रोकने की बात पहले राजा ने ही कही थी। पर ऐसे समय में बसव राजा के दोष अपने ऊपर लेने को सदा तैयार रहता था। ऐसा करके ही वह राजा का इतना अपना बना हुआ था।

"वह मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूँ, मालिक। बैंगलूर से गोरे आ रहे हैं न। उनकी स्त्रियों के साथ रहने को दो औरतें चाहिए, यह आपने ही तो कहा था। इसका प्रबन्ध करने को मैंने अपने आदमियों से कहा था। उसकी लड़की सुन्दर है यह लोगों ने बताया था। मैंने कहला भेजा। उन्होंने भेजने से मना कर दिया। उनके मना करने पर मैं चुप रह जाऊँ ? सब तरफ से सभी लोग मना ही करते हैं। सिर पर डण्डा न रहे तो ये डरते नहीं। इसी से मैंने बसीका रोकने को कहा था। मालिक ने बन्द कर दिया।"

"तेरा सौभाग्य ही सौभाग्य है लंगड़े। जब देखो तेरे मुंह में औरतों की ही बात रहती है। कभी मेरे लिए, अब गोरों के लिए।"

"महाराज खुश रहें तो इसमें क्या दोष है ? शरीर घूमता है तो साथ छाया भी घूमती है। जो आपको पसन्द है वह मुझे भी पसन्द है। जो आपको नहीं चाहिए, वह मुझे भी नहीं चाहिए।"

"तो यह कहो कि यह सब तुम हमारे लिए करते हो !"

"इसमें कोई शक नहीं महाराज। नहीं तो कहीं मुंह-सिर लपेटकर निकल जाता।"

"बुरा न मान रांड के। हमने तो ऐसे ही कहा था।"

"मुझे पालनेवाला मालिक झूठ-मूठ में यदि मजाक करे तो क्या बुरा मान जाऊंगा ? जहाँ आपके पाँव पड़ते हैं वहाँ मैं पलकें बिछाता हूँ। यह आपको पता

सा भृत्य होने पर भी अब शरीर का सुख नहीं रहा न -लंगडे ? न
लाभ, न मन्त्र-तन्त्र से। इन गोरों के पास शायद कुछ हो। जब आयें तो
?"
"उनके पास क्या नहीं होगा? आयेंगे तो पूछेंगे। वे तो आ ही रहे है।"
"कुछ-न-कुछ तो करना ही चाहिए। आग नहीं, चिंगारी भी नहीं रही। यह
र तो राख हो गया।"
"अशुभ क्यों बोलते है, मालिक। सब ठीक हो जायेगा। इस तवक को कल
ह आने को कह दूँ?"
"आने दो जरा धमका देंगे। फिर वसीका शुरू करा देना। वह पिताजी का
ादमी है।"
"जो आज्ञा मालिक। पर जरा धमकाइयेगा जरूर। नहीं तो हमारी नरमी
का फायदा उठाकर देश मे हमारी कोई भी बात चलने न देंगे।"
"धमका देंगे। तुम उसे बुलाओ।"

66

अगले दिन सुबह उत्तय्या तवक आया। बसव उसका स्वागत करके राजा के पास ले गया। बूढा राजा के पास जाकर हाथ जोड़कर, "हाथ जोडता हूँ। पुट्टप्पाजी कुशल तो हैं?" बड़े प्यार से बोला।

राजा को झट से बचपन की याद आ गयी। वह बोला, "आइये तवकजी, बैठिये। आप कुशाल हैं?"

तवक हाथ जोड़े-जोड़े ही राजा के सामने दरी पर बैठ गया।

राजा ने पूछा, "कैसे आये है तवकजी? बसव कह रहा था वसीके के बारे में कोई बात है।"

तवक: "जी हाँ, बडे राजा का बाँधा वसीका था वह। जब मैं ब्राह्मण के लडके को कन्धे पर बिठाकर लगातार तीन महीने तक पूजा कराने ले जाता रहा तब मैंने वसीका पाने की आशा से वह काम नहीं किया था। भगवान की [illegible] करने के उद्देश्य से किया था। तब राजा ने मुँह खोलकर कहा था [illegible] हमने अपने प्राणों के बचाने की चिन्ता मे यह नहीं सोचा कि भगवान [illegible] होगा। तुम वास्तव में बहादुर हो और भगवान के भृत्य भी। [illegible] लगाकर भगवान की पूजा की। सैकडो के भगवान को [illegible] की। ऐसे भृत्य का भगवान साथ कभी नहीं छोडते। पर हम [illegible] ही आप लोगों की रक्षा का भार छोड दे तो हम [illegible]

[illegible]

का प्रसाद। यह भगवान के वसीके के साथ उसके सेवक का भी वसीका है। प्रतिदिन एक सेर धान मिला करेगा। आपका घर तो अनाज से भरा है। वह सब भगवान का दिया है। यह एक सेर भी भगवान ने ही दिलाया है।' आप उस समय पैदा भी नहीं हुए थे, पुट्टप्पाजी। जब महाराज की यह बात सुनी तो जैसे मेरी चार भुजाएँ हो गयी थीं। बाँहें फड़क उठी थीं। उस समय अगर शेर भी सामने आ जाता तो उसे पकड़कर मरोड़ देता। जवानी के दिन थे, फूल उठा था।"

"अच्छा, अब आगे की बात बताइये।"

राजा में पहले वाली शान्ति कम होने लगी और उमड़ी हुई प्रीति दुबारा फीकी पड़ गयी।

"बताता हूँ थोड़ा और सुनिये। आपके पिता ने मुझे अपना सहायक कहा और दोस्त की तरह माना। आपको ही बताता हूँ, दूसरों को बताने की बात नहीं। उन्होंने एक बार अपने गुप्त निवास पर बुलाया था। मैंने मना करते हुए कहा था, महाराज के भाई के साथ ऐसा व्यवहार नहीं कर सकता। उन्हीं दिनों आपका जन्म हुआ था। आपके पिताजी ने कई बार आपको मेरे हाथों में दिया। मैंने आपको गोद भी खिलाया है मालिक! जब आप नन्हें बालक थे तब मैंने आपको गोद खिलाया था।"

यह सोचकर कि राजा कुछ कहेंगे बूढ़ा कुछ रुका। राजा ने कुछ न कहा। उत्तय्या ने बात आगे बढ़ायी, "बड़े राजा के दिनों में यह वसीका रामनवमी के दिनों में दिया जाता था। आपके पिताजी ने भी यही चार साल तक किया।" बाद में कहा, 'इसे लेने मडकेरी क्यों आते हो। वहीं मिल जाया करेगा। वहीं देने को कारणिक को कह दूंगा।' आपके समय भी वही था इस साल तक। इस वर्ष कारणिक ने कहा कि वसीका रोक दिया गया है। मैंने पूछा 'क्यों भैया?' वह बोला 'मैं नहीं जानता' तो मैंने पूछा, 'महल में किसने आज्ञा भेजी।' तो वह बोला, 'मन्त्रीजी ने।' 'किस मन्त्री ने?' उसने कहा, 'मुझे पता नहीं' इसलिए मैंने सोचा बड़े राजा स्वयं अपने हाथों से देते थे। शायद इस समय भी ऐसा ही कुछ हो। इसीलिए यहाँ आया।"

"यह सब झूठ है'।" राजा ने मन-ही-मन कहा। उसे चिढ़ के साथ-साथ कुछ गुस्सा भी आया। बुड्ढा उसे तंग कर रहा था, फिर भी राजा कुछ न बोला।

बूढ़ा बोलता ही गया: "कल आया और बोपण्णा तथा लक्ष्मीनारायण मन्त्री से मिला। उन्होंने बताया यह हमारा किया नहीं, लंगड़े बसव ने किया है। मैंने सोचा बसव से क्या पूछना, आप ही से मिल लूं। अब सारी बात मैंने आपसे निवेदन कर दी। आप इसे ठीक करा दीजिए।"

राजा ने आवाज दी, "बसव, यहीं हो क्या ?"

बसव दरवाजे के बाहर खड़ा था। वह अन्दर आया। राजा ने पूछा, "इनका वसीका क्यों बन्द किया गया, इन्हें बता दो।"

बसव बोला, "पुट्टम्माजी के साथ रहने के लिए एक लड़की को इनके गाँव से भेजने को कहा था। इस पर उन्होंने गन्दी-गन्दी बातें कहीं। लड़की भेजने से इन्कार कर दिया। पूछने पर वे बोले, 'हमारे तक्क हैं वे संभाल लेंगे।' हमने सोचा कि तक्कजी से झगड़े की क्या जरूरत है। इनको यहीं बुला लिया जाये। इसीलिए महाराज से पूछकर वसीका बन्द किया।"

एक क्षण के बाद राजा ने तक्क से पूछा, "क्यों तक्कजी ?"

उत्तय्या को गुस्सा आ गया : "क्या गलती और क्या दण्ड ? पैर लंगड़ा हो जाये तो कहीं सिर काटा जाता है ? ऐसा करना चाहिए ? बोपण्णा और मन्त्री जी से आप पूछिये, पुट्टप्पाजी।"

"इसमें उनसे पूछने की कोई बात नहीं है। यह बसव की बात है।"

"मैं भी मन्त्री हूँ। वे भी मन्त्री हैं। मैं उनसे किस बात में कम हूँ ?

"उसकी इच्छा आपके मुँह से तो नहीं निकलनी चाहिए। क्या आपको पता नहीं कौन बड़ा है और कौन छोटा ?"

बसव को बहुत गुस्सा आया पर फिर भी संयत स्वर में बोला, "महाराज ने मुझे मन्त्री बनाया फिर भी मैं तक्कजी के लिए बसव हूँ, लँगड़ा हूँ, इसलिए मुझसे तू-तड़ाक से बात करते हैं।"

उत्तय्या बोला, "गलती हो गयी बसवय्या। तुम बड़े आदमी हो, यह सच है। तुम कितने बड़े हो यह स्वयं तुम्हें नहीं पता है। पर तीस वर्ष से इस जुबान को जो आदत पड़ गयी है वह आसानी से छूटने वाली नहीं।" फिर राजा की ओर मुड़कर बोला, "पुट्टप्पाजी, कूर्गियों में एक कहावत है : बड़े काम को बड़ा।"

साठ साल के तक्क के सामने तीन साल का मन्त्री सम्मान के लिए खड़ा है। जो महाराज को ही 'पुट्टप्पाजी' कहकर बात करता है भला उसके सामने यह बसव क्या कहे ?

राजा ही बोला, "यह सब बाद में देखा जायेगा।। पुट्टम्माजी के साथ रहने के लिए लड़की भेजने की बात का आपने विरोध किया इस बारे में आपका क्या कहना है ?"

"वह तो आप ही की बात थी। वह भी निवेदन करता हूँ" कहकर बसव की ओर मुड़कर व्यंग्यपूर्ण नम्रता से कहा, "बसवय्याजी, जरा बाहर ठहरिये। मुझे

महाराज से एक बात निवेदन करना है ।"

राजा बोला, "उसके यहाँ रहने में कोई दोष नहीं । आपको जो कहना है वह कहिये ।" ऐसी परिस्थिति में ऐसा हठ उसके अशिक्षित स्वभाव के अनुकूल ही था ।

"जैसी आपकी मर्जी पुट्टम्माजी । लड़की को पुट्टम्माजी के साथ रहने भर को ही बुलाया गया है न ? इसमें कोई धोखा तो नहीं ?"

"क्या धोखा देखा आपने ?"

"यदि मैंने देखा होता तो जरूर बता देता । आपको पता होगा इसलिए मैंने पूछा ।"

"तो आपको इतनी हिम्मत हो गयी कि हमसे ऐसी बात पूछ सकें ?"

"मेरी हिम्मत की बात पूछते हैं पुट्टम्माजी ? ऐसे मरनेवाला होता अब तक सौ बार मर गया होता । मेरे पुट्टम्माजी अगर मेरा सिर चाहते हैं तो मैं एक सौ एक बार तैयार हूँ । लीजिए !"

बसव बीच में बोला, "महाराज ने ऐसी कौन-सी बात कह दी, तक्कजी ?"

"एक के मन को दूसरा नहीं जान सकता । सबके मन की बात भगवान ही जानते हैं । मैंने आपसे पूछा था कि आप सही बोल रहे हैं ? आप 'हाँ' कहिये न !"

बसव ने कहा, "आप यह क्यों समझते हैं कि हम कुछ बुरा कर रहे हैं ?"

उत्तय्या : "इसीलिए पुट्टम्माजी, मैंने इन्हें बाहर जाने को कहा था । मुझे और बसवय्या को वाद-विवाद नहीं करना है । मैं राजा के बेटे से निवेदन करने आया था । बसवय्या से प्रार्थना करने को मैं तैयार नहीं हूँ ।"

राजा बोला, "जो भी कहना है वह कहकर खत्म कीजिए ।"

उत्तय्या : "देश के ज्ञानीजनों ने कहा है, बिना बाँध के तालाब में बिना जड़ के कमल होते हैं । लोगों के सब कर्मों का हिसाब भगवान रखता है । केवल दरवाजा बन्द करने से कहीं रोक लग जाती है ? दीया कहीं सारे अँधेरे को भगा सकता है ? मन में विचार उठने से पहले ही मन भगवान के सामने नंगा हो जाता है । आप मुझसे यह कहते हैं कि पुट्टम्माजी के साथ रहने के लिए । पर अन्दर के भगवान से क्या कहिएगा ? मुझ-सा कैसे भी चला आया है । वसीका दिला दें, प्रसन्नता की बात है । नहीं दिलाया तो यही होगा न कि बड़ों ने दिया था उसी को छोटे ने बन्द कर दिया । मैं हँसता-हँसता अपने घर चला जाऊँगा । पर लोग क्या कह रहे हैं यह सोचने की बात है । पहले तो बड़ों की मुट्ठी में देश था । पर अब छोटे की मुट्ठी से उसकी उँगली तक भी नहीं आती । इसे देखकर मुझ बूढ़े को रोना आता है । यही रास्ता तो बड़े राजा बताया करते थे, आपके पिता भी यही बताते थे । वे दोनों ही अब नहीं रहे । मैं भी यही कहता हूँ । स्वामी लक्ष्मीनारायण

णा से, चाहे जिससे पूछा जाये वही सही रास्ता बतायेगा। इसमें पूछना
किसी से। इसे आप स्वयं जानते हैं। आप थोड़ी देर सोचें तो स्वयं समझ
जायेगा। अच्छा रास्ता पकड़िए। आप भी बने रहिए और देश को बने रहने
। आज्ञा हो तो अब मैं चलूँ।" यह कहकर उत्तय्या उठा। राजा को इतना
आया कि वह बात तक न कर सका।
उत्तय्या ने बाहर कदम रखा फिर राजा की ओर मुड़कर, "देश की बात रहने
जिए पुट्टप्पाजी, पहले अपने शरीर को देखिए। मैं साठ का हो चुका पर अब
बाँहों में स्त्री को जकड सकता हूँ। शरीर का दुरुपयोग करने से वह भरे घड़े
उलट देने के समान हो जाता है। जवान को बूढ़े से भी गया बीता नहीं होना
ाहिए। बात कडवी हो गयी है। इससे बुरा न मानियेगा। यही समझियेगा कि
पिता के दोस्त ने आपकी भलाई के लिए कहा है। अब मैं चलता हूँ; हाथ जोड़ता
हूँ।" कहा और वह द्वार पर खड़े बसव की ओर नजर डाले बिना बाहर चला
गया।"

68

उत्तय्या राजा के निवास से कोई दस क़दम ही आगे गया होगा कि इतने में एक
सेविका आकर बोली, "रानीमाँ आपको ज़रा इधर से होते हुए जाने को कह
रही हैं।"

उत्तय्या बोला, "रानीमाँ ने बुलाया है क्या? चलो चलता हूँ।" वह उसे
लेकर रनिवास के बरामदे में ले गयी। रानी इसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसने
स्वयं पहले "नमस्कार करती हूँ बाबाजी, आइए बैठिए, थोड़ा दूध पी के जाइए"
कहा।

बुड्ढे का असन्तोष पता नहीं कहाँ चला गया। सामने की गंभीर प्रसन्न वदन
मूर्ति ने उसके मन को शान्ति दी। उसकी बात सुनकर तो वह अपने आपको भूल
गया।

"हाज़िर हो गया माँ। आप रानी हैं। आपको हाथ नहीं जोड़ना चाहिए।
तो आपकी प्रजा तक्क हूँ। हाथ जोड़ता हूँ।"

"आप तक्क तो हैं ही, पर बड़ों के मित्र भी तो हैं। हाथ जोड़नेवाले छो
को आशीर्वाद दीजिए न।"

तक्क उसके दिखाये स्थान पर बैठ गया। सामने थोड़ी दूर पर अपने आ
पर बैठते हुए रानी सेविका से बोली, "पुट्टम्माजी से कहो, आकर बाबाजी
नमस्कार करें।"

राजकुमारी अपने कमरे में थी। माता के बुलाते ही बैठक में

"नमस्कार करती हूँ बाबा !" कहकर उसने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और माँ के पास आ खड़ी हो गयी।

"राजदुलारी अच्छी तो हो, बहन। इधर तो आ। आँखें ठण्डी कर लूँ।"

रानी को हँसी आ गयी। उसने बेटी से कहा, "पुट्टम्मा जरा उनके पास जाओ। बाबाजी अच्छी तरह देख लें।" राजकुमारी जरा शर्माकर वृद्ध के पास जा खड़ी हुई।

उत्तय्या अपने दिनों में बड़ा रसिक माना जाता था, पर कभी भी उसे किसी ने यह नहीं कहा था कि वह मर्यादा से बाहर गया हो। सुन्दर मुख जब सामने पड़ जाता तो निस्संकोच उसको निहार लेना उसकी प्रकृति थी। साथ ही, उसकी यह भी प्रवृत्ति थी कि समाज के किसी नियम का उल्लंघन न करना। भले ही समाज किसी बात का विरोध न करे पर इसने सामाजिक मर्यादा की अपनी ही एक सीमा बांध रखी थी। लिंगराज ने जब इसे अपने गुप्त निवास पर निमन्त्रित किया तो इसने बातों ही बातों में अपने जीवन का दृष्टिकोण व्यक्त किया था। लिंगराज और 'पापा' का जब प्रेम प्रसंग चल रहा था तब इसने पापा को प्रशंसा भरी दृष्टि से देखा था। इसे देखकर लिंगराज ने उसके कान में कहा था, 'क्या इसे तुम्हारे पास भेज दूँ ?' पता नहीं उसने दिल से कहा था या मात्र परीक्षा लेने के लिए। परन्तु इन दोनों में कृत्रिमता और कपट न था। उत्तय्या ने लिंगराज के कथन को सच ही माना। परन्तु उसे यह अच्छा न लगा कि एक स्त्री को दो पुरुष इस प्रकार बांट लें। मित्रता में कभी-कभी एक क्षण जो भाव उदारता का आता है उस समय दूसरा कुछ भी त्याग कर सकता है पर वह उदारता घटते ही मन में पछतावा होता है कि मैंने क्या कर डाला। यह सोचकर वह लिंगराज से बोला था, 'आप की उदार प्रकृति के लिए यह काम कठिन नहीं है। पर मैं यह मानकर आपकी दोस्ती निभा नहीं पाऊँगा।' लिंगराज को इसका संयम देख आश्चर्य के साथ सन्तोष भी हुआ था। और उसने कहा था, 'आप बड़े ही संयमी हैं तक्कजी।' इसके संयमी होने के कारण ही उसने निस्संकोच होकर राजकुमारी को पास बुलाया था।

लड़की जब आकर सामने खड़ी हुई तो उत्तय्या ने उसे सिर से पांव तक अच्छी तरह देखा और बोला, "ऐसा मालूम पड़ता है मानो कावेरी माता साक्षात् सामने आ खड़ी हुई है। सोने की प्रतिमा है।" राजकुमारी सन्तोष से हँसी और शरमा कर माँ के पास आ खड़ी हुई। रानी उत्तय्या से बोली, "बड़ों की इच्छा कुछ और ही होती है। जवान पोतों को दादा तो देख नहीं पाये पर उनके मित्र ने उनके बदले देख लिया।"

"हाँ रानीजी आज आपके ससुर को होना चाहिए था। कितनी सारी बातें ठीक हो जातीं !"

"भगवान की मर्जी न थी, क्या करें ? अब आप जैसे बड़े लोग यह ध्यान रखें कि इस घर का सदा भला हो।"

"मैं इसीलिए आया हूँ रानीमाँ। बड़े राजा साहब का दिया वसीका महाराज ने बन्द कर दिया है। यही कहने आया हूँ कि गाँव भर के लोग बिगड़ेंगे।"

"पता नहीं किसका किया काम है ? महाराज का नहीं हो सकता। वसीका चलता रहेगा। बड़ों का दिया उनके बेटे बन्द कर सकते है ? अगर महाराज ने ही कहा होगा तो सचमुच मे नहीं कहा होगा। यूँ ही कह दिया होगा।"

"अच्छी बात है, रानीमाँ। मैंने सोचा था कि राजा के घर में अब हमारी सुननेवाला कोई नहीं। पर पता चला रानीमाँ हमारा ध्यान रखती हैं। आप जैसा कहती हैं, शायद ऐसा ही होगा।"

उससे यह बात करते समय रानी ने बेटी के कान में कहा, "बाबा को कटोरे में दूध लाओ।" राजकुमारी भीतर गयी और थाली मे दूध का कटोरा रखकर स्वयं लायी। उसके पीछे-पीछे एक दासी एक थाली मे पान-सुपारी, अंगूर-खजूर आदि इत्र छिड़ककर लायी। राजकुमारी द्वारा दिये कटोरे को लेकर तक्क बोला, "एक कटोरी मे कहीं दो तरह का तेल हो सकता है। जैसी माँ वैसी बेटी। दादा के मित्र को पा लोगी बेटी।" और दूध पीकर कटोरे को फिर से थाली में रख दिया।

बाद में सेविका की लायी थाली से हाथ भरकर पान-सुपारी, अंगूर-खजूर आदि लेकर, "अब मैं चलता हूँ रानीमाँ" कहकर उठ खड़ा हुआ। रानी ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया और कहा, "बुजुर्ग तो चले गये पर उनकी जगह आप हैं। बच्चों को अपना मान कर बड़ों की तरह देखते रहिए। आया करते रहिए बाबा।"

राजकुमारी ने भी हाथ जोड़े। वह उसकी ओर बड़े ध्यान से देख रही थी। यह बात बूढ़े ने पहले ही देख ली थी। अब उसने फिर देखा तो उसने परखा कि उसका सारा ध्यान उसकी मूँछ की ओर ही है। "यह मूँछें शेर को मार कर पाली हैं, बिटिया। आजकल के लोगों की तरह यूँ ही नहीं।" कहकर हँस पड़ा।

राजकुमारी भी हँस पड़ी। बूढ़े का अहंकार देख रानी को भी हँसी आ गयी। उत्तय्या तक्क फिर से रानी को नमस्कार करके बैठक से बाहर चला आया।

69

उत्तय्या तक्क के कमरे से जाने के थोड़ी देर बाद राजा ने "ऐ लंगड़े, बाहर ही खड़ा है क्या ?" कहकर आवाज़ दी।

बसव वहीं था। उसने कहा "यहीं हूँ मालिक।"

राजा : "अरे इस बार बीमारी के बाद कभी-कभी सिर में चक्कर-सा आने लगता है। आज भी ऐसे ही हो रहा है।"

बसव : "हाँ मालिक, अभी शरीर पूरा ठीक नहीं है, अभी पूरी ताकत नहीं आयी।"

राजा : "शरीर ठीक नहीं ? सुनी थी उसी वसीकेखोर बुड्ढे की बात ?"

बसव : "पिताजी के दोस्त होने के कारण ज़रा बढ़ के बात करता है।"

राजा : "अरे ! देखी उसकी हिम्मत ! बुड्ढा कहता है, उससे जो काम हो सकता है वह दूसरों से नहीं हो सकता। उसकी चर्बी ज़रा कम करनी पड़ेगी।"

बसव : "अच्छी बात, मालिक।"

राजा : "फिर भी जब वह बात कर रहा था तो मुझे ऐसा लगा जैसे पिताजी ही सामने हों।"

बसव : "ऐसा होना स्वाभाविक है, मालिक।"

राजा : "यह कर तो कुछ सकता नहीं, पर पिताजी का आदमी है इसलिए इससे झगड़ना ठीक नहीं।"

बसव : "अच्छा मालिक।"

राजा : "इसके रिश्ते वाली लड़की को भेजने के लिए नहीं कहना था।"

बसव : "हुक्म भेजने के बाद रिश्तेदारी पता चली, मालिक। इनमें पता नहीं कौन किसका रिश्तेदार निकल आता है।"

राजा : "हमने वसीका बन्द करने को कहा ही था कि तुमने बन्द कर दिया।"

बसव : "हाँ मालिक।"

राजा : "जाने दो। हमने कहा तुमने कर दिया। पर वसीका बन्द करना कुछ ठीक नहीं हुआ।"

बसव : "हाँ मालिक।"

राजा : "इसकी अकड़ ज़्यादा बढ़ गयी है, उसे ज़रा दबाओ। उससे कह दो वसीका फिर चालू कर दिया है। मरने दो इस जंगली बिलाव को।"

बसव : "अच्छी बात, मालिक।"

राजा : "कल की बात और आज की बात सब घुलमिल गयीं। मेरा दिमाग़ चक्कर खा रहा है। ज़रा बोतल तो इधर ला, लंगड़े।"

बसव ने बोतल लाकर राजा के हाथ में दे दी। उसे उत्तय्या के बात करने के ढंग से आश्चर्य हुआ था। उसे प्रत्यक्ष रूप से शत्रु बना लेना ठीक नहीं। घमण्डी तो है ही। उसे अप्रत्यक्ष रूप से सज़ा देनी चाहिए। गोरे लोग भी आ रहे हैं। उस समय इसे हमारी तरफ़ रहना ही अच्छा है। यह सोचकर उसने थोड़ी देर बाद राजा से पूछा, "तो तक्क को यह बात अभी सूचित कर दूँ, मालिक ?"

राजा : "कर दो।"

तक्क के रानी से मिल बाहर आने पर बसव उसे मिला और बोला, "महाराज ने आपका वसीका फिर से दे दिया है।"

तक्क को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने कहा, "ऐसी आज्ञा दी है तो मालिक को मेरा नमस्कार कह देना।"

तक्क को कही गयी बात रानी के कान में पड़ी, उसे बड़ी शान्ति मिली।

70

उत्तय्या तक्क ने जब महल से लौटकर सारी बातें बतायीं तो लक्ष्मीनारायण ने कहा, "यह प्रसंग शान्ति से निबट गया।"

बोपण्णा बोला, "यह तो हुआ, पर आगे से इन्हें हमारी लड़कियों को नहीं छेड़ना चाहिए।"

उत्तय्या ने कहा, "अरे-रे यह बात अब जाने दीजिए, पास से नहीं देखा था पर अब तो पता चल गया कि स्त्रियों के साथ वह कुछ नहीं कर पायेगा। जो आयेगी जैसी की तैसी जायेगी।"

बोपण्णा : "हमने भी ऐसा ही सोचा था। पर छेड़ने से ये बाज नहीं आते। इनकी चाहनेवाली तो बहुत हैं पर फिर भी इन्होंने पाणे की लड़की को उठवा मँगवाया।"

उत्तय्या : "कोई और पागलपन होगा या बसव का कोई कारनामा होगा।"

बोपण्णा : "वह भी हो सकता है, तक्कजी। सोचने की बात तो यह है कि राजा से संपर्क बनाकर बड़े बनने की इच्छा करनेवाले तो बहुत होंगे, पर बसव से संपर्क बढ़ाकर बड़े बनने की इच्छा रखनेवाले लोग भी हो सकते हैं संसार में?"

उत्तय्या : लोगों की बात जाने दीजिये। उसकी कोई चाह नहीं है। ये दोनों चाहे जो कर डालें, पर रानीमाँ बचा लेती हैं। संगड़े के आकर बताने से पहले ही उन्होंने बता दिया था कि तुम्हारा वसीका चलता रहेगा। वे 'मेरी माँ' जब सामने आ जाती हैं तो लगता है मानो साक्षात् कावेरी माँ ही आ खड़ी हुई हों।"

बोपण्णा : "आपकी तो आँखें ही ऐसी हैं तक्कजी! खूबसूरत स्त्री के अतिरिक्त आप अन्य किसी को देख ही नहीं सकते।"

"जाने दीजिए। बुढ़ापे को देखकर जवानी हँसे बिना रहती है? इसी तरह बड़े को देखकर छोटा हँसता ही है।"

यहाँ आकर इनकी बात रुक गयी। बोपण्णा ने लक्ष्मीनारायण से कहा, "अब पण्डितजी, आप जाकर पाणे वाली का पता लगाइए।"

राजा : "अरे इस बार बीमारी के बाद कभी-कभी सिर में चक्कर-सा आने लगता है। आज भी ऐसे ही हो रहा है।"

बसव : "हाँ मालिक, अभी शरीर पूरा ठीक नहीं है, अभी पूरी ताकत नहीं आयी।"

राजा : "शरीर ठीक नहीं? सुनी थी उसी वसीकेखोर बुड्ढे की बात?"

बसव : "पिताजी के दोस्त होने के कारण ज़रा बढ़ के बात करता है।"

राजा : "अरे ! देखो उसकी हिम्मत ! बुड्ढा कहता है, उससे जो काम हो सकता है वह दूसरों से नहीं हो सकता। उसकी चर्बी ज़रा कम करनी पड़ेगी।"

बसव : "अच्छी बात, मालिक।"

राजा : "फिर भी जब वह बात कर रहा था तो मुझे ऐसा लगा जैसे पिताजी ही सामने हों।"

बसव : "ऐसा होना स्वाभाविक है, मालिक।"

राजा : "यह कर तो कुछ सकता नहीं, पर पिताजी का आदमी है इसलिए इससे झगड़ना ठीक नहीं।"

बसव : "अच्छा मालिक।"

राजा : "इसके रिश्ते वाली लड़की को भेजने के लिए नहीं कहना था।"

बसव : "हुक्म भेजने के बाद रिश्तेदारी पता चली, मालिक। इनमें पता नहीं कौन किसका रिश्तेदार निकल आता है।"

राजा : "हमने वसीका बन्द करने को कहा ही था कि तुमने बन्द कर दिया।"

बसव : "हाँ मालिक।"

राजा : "जाने दो। हमने कहा तुमने कर दिया। पर वसीका बन्द करना कुछ ठीक नहीं हुआ।"

बसव : "हाँ मालिक।"

राजा : "इसकी अकड़ ज्यादा बढ़ गयी है, उसे ज़रा दबाओ। उससे कह दो वसीका फिर चालू कर दिया है। मरने दो इस जंगली बिलाव को।"

बसव : "अच्छी बात, मालिक।"

राजा : "कल की बात और आज की बात सब घुलमिल गयीं। मेरा दिमाग़ चक्कर खा रहा है। ज़रा बोतल तो इधर ला, लंगड़े।"

बसव ने बोतल लाकर राजा के हाथ में दे दी। उसे उत्तय्या के बात करने के ढंग से आश्चर्य हुआ था। उसे प्रत्यक्ष रूप से शत्रु बना लेना ठीक नहीं। घमण्डी तो है ही। उसे अप्रत्यक्ष रूप से सज़ा देनी चाहिए। गोरे लोग भी आ रहे हैं। उस समय इसे हमारी तरफ़ रहना ही अच्छा है। यह सोचकर उसने थोड़ी देर बाद राजा से पूछा, "तो तम्मा को यह बात अभी सूचित कर दूँ, मालिक?"

राजा : "कर दो ।"

तक्क के रानी से मिल बाहर आने पर बसव उसे मिला और बोला, "महाराज ने आपका वसीका फिर से दे दिया है ।"

तक्क को बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने कहा, "ऐसी आज्ञा दी है तो मालिक को मेरा नमस्कार कह देना ।"

तक्क को कही गयी बात रानी के कान में पड़ी, उसे बड़ी शान्ति मिली ।

70

उत्तय्या तक्क ने जब महल मे लौटकर सारी बातें बतायीं तो लक्ष्मीनारायण ने कहा, "यह प्रसंग शान्ति से निबट गया ।"

बोपण्णा बोला, "यह तो हुआ, पर आगे से इन्हें हमारी लड़कियों को नहीं छेड़ना चाहिए ।"

उत्तय्या ने कहा, "अरे-रे यह बात अब जाने दीजिए, पास से नही देखा था पर अब तो पता चल गया कि स्त्रियों के साथ वह कुछ नही कर पायेगा । जो आयेगी जैसी की तैसी जायेगी ।"

बोपण्णा : "हमने भी ऐसा ही सोचा था । पर छेड़ने से ये बाज़ नही आते । इनकी चाहनेवाली तो बहुत हैं पर फिर भी इन्होंने पाणे की लड़की को उठवा मँगवाया ।"

उत्तय्या : "कोई और पागलपन होगा या बसव का कोई कारनामा होगा ।"

बोपण्णा : "वह भी हो सकता है, तक्कजी । सोचने की बात तो यह है कि राजा से संपर्क बनाकर बड़े बनने की इच्छा करनेवाले तो बहुत होंगे, पर बसव से संपर्क बढ़ाकर बड़े बनने की इच्छा रखनेवाले लोग भी हो सकते हैं संसार में ?"

उत्तय्या : लोगों की बात जाने दीजिये । उसकी कोई चाह नहीं है । ये दोनों चाहे जो कर डालें, पर रानीमाँ बचा लेती हैं । लंगड़े के आकर बताने से पहले ही उन्होंने बता दिया था कि तुम्हारा वसीका चलता रहेगा । वे 'मेरी माँ' जब सामने आ जाती हैं तो लगता है मानो साक्षात् कावेरी माँ ही आ खड़ी हुई हो ।"

बोपण्णा : "आपकी तो आँखें ही ऐसी हैं तक्कजी ! खूबसूरत स्त्री के अतिरिक्त आप अन्य किसी को देख ही नहीं सकते ।"

"जाने दीजिए । बुढ़ापे को देखकर जवानी हँसे बिना रहती है ? इसी तरह बड़े को देखकर छोटा हँसता ही है ।"

यहाँ आकर इनकी बात रुक गयी । बोपण्णा ने लक्ष्मीनारायण से कहा, "अब पण्डितजी, आप जाकर पाणे वाली का पता लगाइए ।"

राजा : "अरे इस बार बीमारी के बाद कभी-कभी सिर में चक्कर-सा आने लगता है। आज भी ऐसे ही हो रहा है।"

बसव : "हाँ मालिक, अभी शरीर पूरा ठीक नहीं है, अभी पूरी ताकत नहीं आयी।"

राजा : "शरीर ठीक नहीं ? सुनी थी उसी वसीकेखोर बुड्ढे की बात ?"

बसव : "पिताजी के दोस्त होने के कारण ज़रा बढ़ के बात करता है।"

राजा : "अरे ! देखी उसकी हिम्मत ! बुड्ढा कहता है, उससे जो काम हो सकता है वह दूसरों से नहीं हो सकता। उसकी चर्बी ज़रा कम करनी पड़ेगी।"

बसव : "अच्छी बात, मालिक।"

राजा : "फिर भी जब वह बात कर रहा था तो मुझे ऐसा लगा जैसे पिताजी ही सामने हों।"

बसव : "ऐसा होना स्वाभाविक है, मालिक।"

राजा : "यह कर तो कुछ सकता नहीं, पर पिताजी का आदमी है इसलिए इससे झगड़ना ठीक नहीं।"

बसव : "अच्छा मालिक।"

राजा : "इसके रिश्ते वाली लड़की को भेजने के लिए नहीं कहना था।"

बसव : "हुक्म भेजने के बाद रिश्तेदारी पता चली, मालिक। इनमें पता नहीं कौन किसका रिश्तेदार निकल आता है।"

राजा : "हमने वसीका बन्द करने को कहा ही था कि तुमने बन्द कर दिया।"

बसव : "हाँ मालिक।"

राजा : "जाने दो। हमने कहा तुमने कर दिया। पर वसीका बन्द करना कुछ ठीक नहीं हुआ।"

बसव : "हाँ मालिक।"

राजा : "इसकी अकड़ ज़्यादा बढ़ गयी है, उसे ज़रा दबाओ। उससे कह दो वसीका फिर चालू कर दिया है। मरने दो इस जंगली बिलाव को।"

बसव : "अच्छी बात, मालिक।"

राजा : "कल की बात और आज की बात सब घुलमिल गयीं। मेरा दिमाग चक्कर खा रहा है। ज़रा बोतल तो इधर ला, लंगड़े।"

बसव ने बोतल लाकर राजा के हाथ में दे दी। उसे उत्तय्या के बात करने के ढंग से आश्चर्य हुआ था। उसे प्रत्यक्ष रूप से शत्रु बना लेना ठीक नहीं। घमण्डी तो है ही। उसे अप्रत्यक्ष रूप से सज़ा देनी चाहिए। गोरे लोग भी आ रहे हैं। उस समय इसे हमारी तरफ़ रहना ही अच्छा है। यह सोचकर उसने थोड़ी देर बाद राजा से पूछा, "तो तक्क को यह बात अभी सूचित कर दूं, मालिक ?"

राजा : "कर दो।"

तक्क के रानी से मिल बाहर आने पर बसव उसे मिला और बोला, "महाराज ने आपका वसीका फिर से दे दिया है।"

तक्क को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने कहा, "ऐसी आज्ञा दी है तो मालिक को मेरा नमस्कार कह देना।"

तक्क को कही गयी बात रानी के कान में पड़ी, उसे बड़ी शान्ति मिली।

70

उत्तय्या तक्क ने जब महल से लौटकर सारी बातें बतायी तो लक्ष्मीनारायण ने कहा, "यह प्रसंग शान्ति से निबट गया।"

बोपण्णा बोला, "यह तो हुआ, पर आगे से इन्हें हमारी लड़कियों को नही छेड़ना चाहिए।"

उत्तय्या ने कहा, "अरे-रे यह बात अब जाने दीजिए, पास से नही देखा था पर अब तो पता चल गया कि स्त्रियों के साथ वह कुछ नही कर पायेगा। जो आयेगी जैसी की तैसी जायेगी।"

बोपण्णा : "हमने भी ऐसा ही सोचा था। पर छेड़ने से ये बाज़ नही आते। इनकी चाहनेवाली तो बहुत हैं पर फिर भी इन्होंने पाणे की लड़की को उठवा मँगवाया।"

उत्तय्या : "कोई और पागलपन होगा या बसव का कोई कारनामा होगा।"

बोपण्णा : "वह भी हो सकता है, तक्कजी। सोचने की बात तो यह है कि राजा से संपर्क बनाकर बड़े बनने की इच्छा करनेवाले तो बहुत होंगे, पर बसव से संपर्क बढ़ाकर बड़े बनने की इच्छा रखनेवाले लोग भी हो सकते हैं संसार में?"

उत्तय्या : लोगों की बात जाने दीजिये। उसकी कोई चाह नहीं है। ये दोनों चाहे जो कर डालें, पर रानीमाँ बचा लेती हैं। लंगड़े के आकर बताने से पहले ही उन्होंने बता दिया था कि तुम्हारा वसीका चलता रहेगा। वे 'मेरी माँ' जब सामने आ जाती हैं तो लगता है मानो साक्षात् कावेरी माँ ही आ खड़ी हुई हो।"

बोपण्णा : "आपकी तो आँखें ही ऐसी हैं तक्कजी! खूबसूरत स्त्री के अतिरिक्त आप अन्य किसी को देख ही नही सकते।"

"जाने दीजिए। बुढ़ापे को देखकर जवानी हँसे बिना रहती है? इसी तरह बड़े को देखकर छोटा हँसता ही है।"

यहाँ आकर इनकी बात रुक गयी। बोपण्णा ने लक्ष्मीनारायण से कहा, "अब पण्डितजी, आप जाकर पाणे वाली का पता लगाइए।"

लक्ष्मीनारायणय्या ने कहा, "वसीके के बारे में बात करते-करते अब तक महाराज थक गये होंगे। कल बात करना ज्यादा ठीक होगा।"

बोपण्णा : "आप थक गये हैं तो कल देखा जायेगा, कल नहीं तो परसों मिला जा सकता है। हमें तो सब बराबर है। पर पिंजरे में फँसे चूहे की कहानी कुछ और ही है। उसे इन बिलावों से तो बचाना ही पड़ेगा।"

लक्ष्मीनारायणय्या को इस काम में रुचि न थी। उसकी इच्छा थी कि एक दिन और बीत जाये तो अच्छा है। पर इसका अभिप्राय यह नहीं था कि मुसीबत में पड़ी लड़की पर उसे दया न थी। दया थी और साथ ही उसे छुड़ाने की इच्छा भी थी, पर उसे इस बात का डर भी था कि पता नहीं मालिक से चर्चा करते समय इसका क्या रूप हो जाये। उसने कहा, "आज ही जाकर उनसे मिल लेता हूँ।"

71

उस शाम अनमने मन से लक्ष्मीनारायणय्या राजमहल गया और अपने आने की सूचना दी। वीरराज सामान्य से कुछ ज्यादा पीकर सोया हुआ था। बसव उसके पास ही था। उसने कहा, "महाराज पूछते हैं क्या बात है?"

लक्ष्मीनारायण को उसे बात बताने की इच्छा न थी। वह सीधा राजा से बात करना चाहता था। इसलिए वह बोला, "अगर अभी मिल सकूँ तो अच्छी बात है, नहीं तो कल आ जाऊँगा।" बसव समझ गया कि मन्त्री किसी बात की चर्चा उससे नहीं करना चाहते हैं। ऐसी सूक्ष्म बातें समझ लेने में वह किसी से कम न था। अतः बोला, "पूछकर बताता हूँ, पण्डितजी।" फिर भीतर जाकर दो मिनट बाद वापस लौटकर बोला, "आपने कहा था कि आपको कल आना ठीक रहेगा सो महाराज की आज्ञा है कि कल मिल लीजिए।" लक्ष्मीनारायणय्या अपना-सा मुँह लेकर लौट आया।

लक्ष्मीनारायणय्या की माँ सावित्रम्मा इस मामले के बारे में पूछताछ करती रहती थी। शाम को जब उसका बेटा राजा से मिलने गया तो वह बोली, "भगवान राजा को सुबुद्धि दे और सब की रक्षा करे।" बेटे को लौट आते देखकर उसे लगा कि वह राजा से मिल नहीं पाया। लक्ष्मीनारायणय्या के आँगन में पाँव रखते ही उसने पूछा, "क्यों बेटा, क्या पुट्टप्पाजी से भेंट नहीं हो सकी?" वह बोला, "नहीं हुई माँ। कल आने को बसव के हाथ कहला भेजा।"

"कल तक प्रतीक्षा नहीं की जा सकती है। जरूरी काम कहना था न।"

"हम जिस किसी काम को भी जाते हैं जरूरी ही होता। आज जिस काम को गया था वह भी जरूरी था। कल को कोई दूसरा जरूरी होगा। उन्हें किसी

की भी जरूरत नहीं है। कल आने को कहा है। यदि मैं जरूरी कहता तो वे परसों आने को कह सकते थे।"

"उनकी बात का बुरा मानकर तुम तो वापस आ गये, पर उस लड़की का क्या होगा?"

"एक ही दिन की तो बात है न माँ!"

"तुम्हारी बातचीत को एक दिन चाहिए। पर उसे तो पकड़ लाये दस दिन हो गये न। दस दिन से जो कष्ट वह सह रही है उसे एक दिन और सहने को कह दें? मुझे या तेरी पत्नी को कोई पकड़ कर ले जाये तो ऐसे ही कहोगे क्या?"

"ईश्वर की अभी तक तो कृपा है। बात यहाँ तक नहीं पहुँची। अगर ऐसा हो भी जाये तो इस देश के भाग्य का क्या होगा?"

"बेटा, जनता के सेवकों को कुछ मजबूत बनना पड़ेगा। पानी गहरा है जानकर मछलियाँ डर जायें तो काम कैसे चलेगा? तुम्हारे पिताजी ऐसे ही नहीं छोड़ देते थे। अब क्या किया जाये बताओ? पुट्टप्पाजी से जाकर पूछूं?"

"तुम तो उन्हें बड़े प्यार से पुट्टप्पाजी कह रही हो, माँ। मिलना चाहो तो मिल लो। उसमें क्या दोष है। पर जैसे तुम पुट्टप्पाजी कहती हो उन्हें भी तुम्हें सातम्माजी कहना चाहिए न?"

"नहीं भी कहें तो भी क्या मैं उन्हें पुट्टप्पा कहना छोड़ दूंगी? और फिर मैं उनके मातहत तो हूँ नहीं जो कल को नौकरी से निकाल देंगे। मन्त्री की माँ अपने बेटे की बात न मानकर राजा से मिलने जायेगी। मेरा क्या कर लेंगे? जाकर मिलूंगी।"

इतनी बात कह कर सावित्रम्मा भीतर जाकर बहू से कहकर राजमहल चली ही गयी।

72

राजमहल में आकर सावित्रम्मा रानी से मिली, उसे फुसफुसाकर सारी बातें बतायीं और बोली, "आप भी साथ चलिए, महाराज से एक बात पूछनी है।"

गौरम्माजी बोली, "आप महाराज से मिलने जा रही है, मेरे साथ चलने की क्या जरूरत है? नानी, आपने महाराजा के बेटे को बचपन में अपने हाथों से खिलाया है। इसमे किसी का क्या एहसान है?"

"ठीक है, कोई बात नहीं, पर ब्राह्मणों के मौहल्ले से सीधे राजा के निवास पर जाना ठीक लगेगा? कम-से-कम पुट्टम्माजी ही मेरे साथ चलें और कहें कि सातम्मा नानी आयी है।"

रानी ने बेटी को बुलाकर कहा, "पुट्टम्माजी सातम्मा नानी आयी हैं। तुम्हारे पिताजी से मिलना चाहती हैं। इन्हें साथ ले जाओ।"

राजकुमारी आयी और उसका हाथ पकड़कर उसे राजा के निवास पर ले गयी। वह बुढ़िया को द्वार पर खड़ा करके भीतर जाकर पिता से बोली, "पिताजी, सातम्मा नानी आयी हैं। आपसे मिलना चाहती हैं।"

चाहे जैसी भी दशा में वीरराज क्यों न हो, उसे अपनी बेटी की आवाज अमृतवाणी-सी लगती थी। इसके अलावा इस समय तक उसका शराब का नशा कम हो चुका था। "क्यों मिलना चाहती है?" यह सुनते ही बुढ़िया कमरे में घुसते हुए बोली, "कोई बड़ी नहीं, एक छोटी-सी बात थी पुट्टप्पाजी। उतना ही कहकर आपकी अनुमति लेकर चली जाऊँगी।" इतना कह वह राजा के पास जा खड़ी हुई।

"क्या है वह छोटी-सी बात?"

बुढ़िया ने राजकुमारी को यह कहकर बाहर भेज दिया, "तुम माँ के पास चलो बेटी, मैं अभी आती हूँ।" फिर वीरराज से धीमे स्वर में बोली, "बच्ची है, उसके कान में यह बात नहीं पड़नी चाहिए इसलिए भेज दिया।"

वीरराज: "तो किसी औरत की बात मालूम पड़ती है?"

"औरत की बात है तभी तो अप्पाजी यह औरत आयी है। मर्द की बात होती तो मर्द ही आते।"

"हमेशा ऐसा नहीं होता, नानी। औरतें मर्दों की बात के लिए और मर्द औरतों की बात के लिए आते हैं यह भी प्रथा है।" यह उसका मजाक था। राजा स्वयं अपनी बात पर हँस पड़ा।

लड़की होती तो मजाक को समझती। बुढ़िया भला क्या समझती? "राजा के घर जब तुम पैदा हुए तो तुम्हें गोद में सबसे पहले मैंने ही लिया था। अब एक औरत की बात के लिए आयी हूँ। तुम्हें माननी ही पड़ेगी।"

"कौन-सी औरत है?"

"राणे की लड़की हमारी रिश्तेदार है, यहाँ उठाकर ले आये हैं। दासी-गृह में रख गयी है। उसका पति आकर रोया-धोया, छुड़वा दीजिए कहा। अपने पुट्टप्पा जी से कहकर छुड़वा दूँगी यह वचन देकर आयी हूँ। बेटा, बुढ़िया की बात रख लो। उसे छुड़ा दो।"

"राणे की लड़की हम नहीं जानते, पूछताछ करके कल बतायेंगे, नानी।"

"पूछताछ करने का समय नहीं है, पुट्टप्पाजी। बसव को बुलाकर अभी कह दो कि यदि वह लड़की है तो सातम्माजी के साथ भेज दें। एक लड़की छोड़ दोगे, तीन लड़कियाँ आ जायेंगी। किसी का घर बिगाड़ने से क्या मिलता है! नौकरों की कमी नहीं है।"

"तो इसका मतलब यह है कि आप मेरे सिर पर बैठकर काम करना चाहती हैं।"

"ऐसा कही हो सकता है, अप्पाजी। चाहे जो भी हो, राजा राजा ही है। मेरे पुट्टप्पाजी मेरे हो सकते हैं पर राजा की अलग बात है। यह तो विनती है। गोद मे खिलानेवाली बुढ़िया माँग रही है। राजा को देना ही है। बुढ़िया की बात मानकर यदि आज उसको बचा लेंगे तो कल को भगवान आपकी बेटी की रक्षा करेंगे। बेटियाँ सब एक सी-ही हैं, क्या अपनी क्या परायी। कल को पुट्टम्माजी को भगवान कोई कष्ट न दे।···"

वीरराज जानता था कि बुढ़िया उसकी बेटी का प्रसंग किसी विशेष मतलब से ही उठा रही है। साथ ही उसकी बेटी सुखी रहनी चाहिए इसलिए उसका मन कुछ पिघल गया। उसने, "अरे बसव! यहीं है क्या? यह क्या, इस बुढ़िया को मुझ पर छोड़ दिया! राड के इधर तो आ!" कहकर बसव को बुलाया।

इनकी सारी बातें बसव बाहर खड़ा-खड़ा सुन रहा था। राजा के बुलाने पर 'आया मालिक' कहकर भीतर आया।

वीरराज बोला, "वह पाणे की लड़की कौन है रे? ब्राह्मणी है क्या? यह बुढ़िया मेरी जान खाये जा रही है। इसे कुछ कह सुनकर दफा करो न।"

"दफा करने मे कोई बुराई नही, लड़की भर दे दीजिये। मेरे मुँह पर भी थूक दो तो भी दोष नही दूँगी। जिस दिन तुम्हारी माँ ने तुम्हारी छोटी बहन को जन्म दिया उस दिन मैं राजा के बेटे को (तुम्हे) गोद मे लेकर बाहर सोयी थी। एकाएक नींद खुली। देखा तो राजा का बेटा कान मे मूत रहा था। उस समय पेशाब, अब थूक, कोई फर्क नही। मेरा काम कर दीजिए मैं हँसती-हँसती चली जाऊँगी और आशीर्वाद देती जाऊँगी कि आपके बच्चे सुखी रहें।"

बुढ़िया से बचने का रास्ता राजा को सूझा नही। वह बोला, "ठीक है नानी, ले जाओ। अरे ओ बसव! सातम्मा की बतायी लड़की उनके साथ कर दे।"

बसव: "कौन-सी, किस लड़की को देखकर आऊँ मालिक?"

"जा रांड के, इसमे देखकर आने की क्या बात है। हो तो ले जाये, नही तो खाली चली जाये। मैं यह बात फिर नहीं सुनना चाहता। सुबह वह बुड्ढा, शाम को यह बुढ़िया, इस पर तू अब जाकर देखकर आने में और देर करेगा। मुझसे यह सब नही होगा। जाओ बाहर! तू जाने और तेरी यह बुढ़िया।"

बुढ़िया वीरराज की ठुड्डी पर प्यार से हाथ रखकर उसे सहलाकर बोली, "यह बात हुई न मेरे पुट्टप्पाजी की। इसीलिए तो मैं खुद आयी थी। मेरे राजा के बेटे का भला हो। उसके बच्चे सुखी रहें। अब मैं चलती हूँ, बेटे।" इतना कहकर बसव के साथ चली गयी।

वह दहलीज पार करने ही वाली थी कि वीरराज ने बुढ़िया को बुलाकर कहा, "कौन से कान में मैंने पेशाब किया था नानी, दायें में या बायें में ?"

"दायें में, मुझे अच्छी तरह याद है।"

राजा : "इसीलिए इतनी लम्बी उम्र पायी है।" कहकर ठहाका लगाकर हँस पड़ा। बुढ़िया भी हँसती हुई चली गयी।

73

बसव के साथ बाहर आकर बुढ़िया "एक मिनट में आती हूँ, बसवय्या" कह जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाती रनिवास में गयी और वहाँ जाकर रानी से बोली, "पुट्टप्पाजी ने उस लड़की को छोड़ देने के लिए बसवय्या से कहा है, रानीमाँ। यह भगवान की बड़ी कृपा है।"

रानी बोली, "बहुत ही अच्छा काम किया, नानी। राजमहल की प्रतिष्ठा बचा ली।"

बुढ़िया ने कहा, "मैं अब चलूँ। फिर मिलकर सब बताऊँगी। अभी तो उसको छुड़ाना पहला काम है।"

रानी पास रखी थाली से पान-सुपारी बुढ़िया के हाथ में देकर आत्मीयता से बोली, "हाँ नानी, जाइये। आज ही उस लड़की को अपने घर ले जाइये।" बुढ़िया अपनी उम्र के मुकाबले में काफी तेज़ थी। वह तेज़-तेज़ पाँव धरती बाहर आकर बसवय्या से बोली, "बसवय्या, उस लड़की को यहीं बुलवा लोगे क्या ?"

बसव बोला, "वह वहाँ से निकलेगी भी ? आपके स्वयं चलकर बुलाने से शायद चली आये। हमारे कहने से प्राण रहते वह बाहर नहीं आयेगी।"

"सच है" बुढ़िया बोली, "चलो मैं ही चलती हूँ।"

वे दोनों वहाँ गये जहाँ लड़की को क़ैद किया गया था।

"महाराज ने आपको अपने घर भेज देने की आज्ञा दे दी है। मन्त्री लक्ष्मी-नारायणय्या की बुढ़ी माँ आपको लेने आयी हैं, यह कहने पर भी पाणे नागम्मा को विश्वास न हुआ। वह बोली, "मेरी जान-पहचान का कोई आये तो मैं उसी के साथ जाऊँगी।" आप मुझे कहो और भेजने की सोच रहे हैं।" तब सावित्रम्मा स्वयं जाकर बोली, "देखो बेटी, अगर तुम अपने पति को ही बुलाने को कहती हो तो मैं आकर भेज देती हूँ। मुझे इसमें कोई दिक्कत नहीं है पर देरी क्यों हो ? दो मिनट पहले ही यह जगह छोड़ दो तो अच्छा है। मैं धोखेबाज-सी दीखती हूँ क्या ?"

"नानी, आप बहुत बड़ी हैं, यह ठीक है मगर मुझे आपकी पहचान तो नहीं

है ना? यहाँ के लोग विश्वास से बात करके फुसलाने की सोच रहे हैं।"

बुढ़िया: "अच्छी बात है बेटी। तुम्हारा डर सच्चा है। इसमे कोई दोष नही है। बसवय्या! ज़रा हमारे घर तो कहला भेजो कि पाणे सूर्यनारायणय्या चले आयें। मैं थक गयी। इतनी देर जग यही ठहरूँगी।"

बसवय्या ने बाहर जाकर एक नौकर को आज्ञा दी। नौकर के जाने के दो मिनट बाद ही नागम्मा बोली, "तुम मेरी रक्षा करने आयी हो, नानी। चलिये चलें। चलते-चलते अगर पता लग गया कि और कही ले जा रही हैं तो अपना गला अपने हाथों मे घोंटकर जान दे दूँगी।"

सावित्रम्मा बोली, "भई तू तो जान दे देनेवाली है। बड़ी हिम्मतवाली लड़की है तू। फिर भी पता नही किस बात को देखकर तू डर जाये। इससे तो अच्छा है कि तेरा पति ही आ जाये, तो इकट्ठे चलें।"

नौकर को जाकर सूर्यनारायण को बुला लाने मे तीन घड़ी से भी ऊपर समय लग गया। बुढ़िया भगवान का नाम जपते हुए बैठी थी। सूर्यनारायण के आने की आवाज सुनते ही उठकर बोली, "आओ बेटा, अपनी पत्नी को हिम्मत बँधाओ। उसे साथ बुला ले चलो।"

सूर्यनारायण भूमि पर लेटकर दण्डवत प्रणाम कर बुढ़िया के पाँव पर माथा टिकाकर बोला, "आप मेरा घर बचानेवाली देवी हैं, नानीमाँ। मेरी प्रतिष्ठा और मेरी पत्नी के प्राणों की आपने ही रक्षा की है।"

"रक्षा करनेवाले तो भगवान है, भैया। आदमी कौन है किसी की रक्षा करनेवाला? अगर कहना ही है तो कहो कि हमारे पुट्टप्पाजी ने रक्षा की है। कहने भर की देर थी, ले जाओ कह दिया।"

इतनी देर में नागम्मा भीतर से आकर सावित्रम्मा के पाँव पर गिर पड़ी और बोली, "मैंने कोई गलती नही की। कोई मुझे ताने मारे तो मेरा हाथ थामने वाले को ही समझाना होगा। यह उन्हें बता दीजिए, नानीमाँ।"

सूर्यनारायण ने कहा, "कौन तुझे ताने मारेगा? जो ताना मारेगा उसे मैं देख लूँगा।"

सावित्रम्मा: "तू ही कभी गुस्से में कह बैठेगा, भाई। मेरे हाथ पर हाथ रखकर वचन दे, अपनी पत्नी से कभी ऐसी बात नही कहेगा।" यह कहते हुए बुढ़िया ने हाथ आगे बढ़ाया।

वह बुढ़िया का हाथ अपने सिर पर रखते हुए बोला, "अगर मैं इसे कोई बुरी बात कहूँ तो मुझे रौरव नरक मिले।"

इतनी देर से अपने को सयत्न रोककर बैठी नागम्मा का दुख उसकी सहनशक्ति से बाहर हो गया और वह "दैया रे, आपको ऐसी स्थिति में पहुँचाना ही क्या मेरे भाग्य मे बदा था!" कहकर रोती हुई पति के कन्धे पर सिर रखकर

उन्होंने चेतावनी भेजी होगी, तब डर गया होगा।"

"आपने तो अपने साले को गालियाँ देते-देते मेरी इज्जत को घूरे पर डाल दिया। उन कमबख्तों ने आपकी चिट्ठी पर क्या सोचा होगा कि यह औरत पति को छोड़कर भाई के घर बैठ गयी। ऐसी औरत कैसी होगी? वह सब लोग जब यहाँ आयें तो देखना चाहेंगे। तभी आपके मन को शान्ति मिलेगी।"

"अपने भाई की तुम तरफदारी कर सकती हो। पर हमें किस बात का लिहाज है? भाई को गद्दी से उतार कर बहिन को अगर गद्दी पर न बिठा दूँ तो मूँछें मुंडवाकर कुत्ते के बाल चिपकवा लूँगा। क्या समझे बैठा है यह दासी-पुत्र?"

"उसे अगर आप दासीपुत्र कहेंगे तो आप भी तो दासी के दामाद कहलायेंगे। मुझे जन्म देने वाली माँ देवक्काजी ने सौ दासियों पर राज्य किया था। वे रानी थी। आप दोनों साले-बहनोई की लड़ाई में मेरे माँ-बाप का नाम नहीं बिगाड़िए।"

"माँ-बाप को कोई क्या कह रहा है? बेटे के मुँह पर थूका जाय तो माँ-बाप पर एकाध छींटा पड़ता ही है। ऐसे बेटे को जन्म देनेवाले माँ-बाप का नाम क्या बच सकता है?"

"जाने दीजिए, उनके साथ मेरा भाग्य और मेरे साथ आपका भाग्य बँधा है, बस यही बात है न? हमने जो भुगता वही काफी न था, शेष को भुगतने मेरे पेट में एक जीव और आ गया।"

चेन्नबसव ने पत्नी के अति निकट आकर पूछा, "दिल की जलन के मारे मुँह से बुरी बातें निकल गयीं। तुम बुरा मत मानो। कौन-सा महीना चल रहा है?"

"सात पूरे हो गये। वहाँ जो कष्ट सहे उससे मैंने सोचा था कि यह रहेगा नहीं। कल भी मैंने यही सोचा था कि यदि ऐसा हो जाये तो अच्छा है। पर मेरे भाग्य में तो क़ैद लिखी थी। क्या इसको भी क़ैद ही नसीब थी? कल इस समय भगवान ने दया-दृष्टि की। इसके भाग्य में क़ैद नहीं थी। इसकी इस भाग्य लिपि से मैं यहाँ आ पायी। भाग्य रेखा चाहे जो भी हो, बिछुड़े पति से तो फिर आ मिली। भगवान की दया-दृष्टि आपकी और आपके घर की रक्षा करे।"

पति-पत्नी में काफी प्रेम था। राजा के बारे में दोनों को असन्तोष भी था। पर दामाद चेन्नबसव के असन्तोष का ढंग कुछ और था और घर की बेटी देवम्माजी के असन्तोष का ढंग कुछ और।

पति-पत्नी इसी प्रकार कुछ देर तक बातचीत करते रहे। देवम्माजी ने पति को बताया कि उसके क़ैद से छूटने का क्या कारण है। उन बातों में उसने यह नहीं बताया कि बसव ने उसे अपनी गोद में बिठाया था और उसको छाती से

लगाकर जकड़ लिया था। इसका कारण बताने की आवश्यकता भी नहीं है। ऐसी ख़राब बातें स्त्री के लिए याद करना उचित भी नहीं। अगर याद भी करे तो भी पति को बताने में इससे हानि ही होगी। इस बात को उसका अंतःकरण जानता था। बलात्कार से इतना करनेवाले ने और क्या किया होगा, यह सोचना पतियों की प्रकृति होती है। संक्षेप में उसकी कहानी से यह स्पष्ट था कि गौरम्मा बहू के रूप में बड़ी ही स्नेहशील थी और भाभी के रूप में स्वाभिमानिनी और बड़े लिहाज़वाली स्त्री थी। माँ और बेटी ने मिलकर उसकी रक्षा की। इस बात की उसने जी भर कर प्रशंसा की।

तब तक नौकरों ने आकर सूचना दी कि भोजन तैयार है। वे दोनों उठकर भोजन करने गये। दूसरे दिन सूर्योदय से कुछ पहले ही देवम्माजी ने एक लड़के को जन्म दिया।

75

बच्चे के जन्म का समाचार मडकेरी के राजमहल में पहुँचा, अप्पगोलं के महल में सबको बड़ी ख़ुशी हुई।

राजमहल की क़ैद में रहकर बड़े ही दुख के दिनों में उसने गर्भ धारण किया था। गर्भकाल में माता के दुखी रहने के कारण नौ माह की जगह सात मास में ही बच्चा पैदा हो गया। अतः वह बहुत ही कमज़ोर था। परन्तु बच्चा बड़ा सुन्दर था। अन्तिम दो दिनों का कष्ट न सह पाने के कारण जन्म जल्दी ही हो गया। "क़ैद से माँ को बाहर लाकर अपने महल में पैदा होनेवाला यह बच्चा बड़ा ही भाग्यशाली होगा," प्रसव के समय से ही पास बैठी परिचारिका ने कहा। सबने इस का समर्थन किया।

मडकेरी के राजमहल से माँ-बेटे के लिए प्रसाधनादि मांगलिक वस्तुएँ भेंट के रूप में आयीं। रानी ने अपनी ननद को बधाई भेजते समय कहलाया था कि अच्छी तरह खा-पीकर जल्दी ठीक हो जाना। राजकुमारी का सन्देश था, "मैं बच्चे को देखना चाहती हूँ। पर शुभ दिन में ही देखना चाहिए इसलिए अभी नहीं आ सकती। शीघ्र ही देखने आऊँगी।"

राजा की ओर से कुछ भी नहीं कहा गया था। वास्तव में जो कुछ उसने कहा था वह दूसरे के कान में पड़ने लायक ही न था। ख़बर पहले रनिवास में पहुँची फिर राजकुमारी ने उसे अपने पिता को सुनाया तो वह बोला, "हरामी पहले ही क़ाबू से बाहर था, अब और मदद मिल गयी। लड़का हो जाने से तो और चर्बी चढ़ जाएगी।" फिर बसव को बुलाकर बोला, "अरे ओ बसव, वह मिट्टी का बच्चा पहले तो महीने में एक शिकायत भेजता था; अब हफ़्ते में भेजा

करेगा। देखना वह क्या खेल खेलता है।"

बसव : "ठीक बात है, मालिक।"

बच्चे के पैदा होने का ठीक समय पता लगाकर रानी ने दीक्षित को बुलवा भेजा और एक थाली में मंगल-द्रव्य रखकर दीक्षित से जन्म-कुण्डली देखने को कहा। दीक्षित ने कहा, "वह तो देखूंगा ही। लेकिन उससे पहले मैं एक बात निवेदन करना चाहता हूं। कुण्डली देखने के बाद जो बताऊँ तो उस पर आप शंका कर सकती हैं कि यह कुण्डली की बात है। वह शंका न उठे इसलिए पहले ही कहता हूं।"

"अवश्य बताइये, दीक्षितजी। हमें पता है चाहे अब बताइये या बाद में। आप तो भगवान के बताये सत्य को ही बतायेंगे। आप पर हमें किसी प्रकार की शंका नहीं है।"

"पहले देखी हुई बात को ही दुहरा रहा हूं। मैंने पहले ही कहा है कि कोई अशुभ योग है। हमारी देखी कुण्डली का एक अंश सच हो गया। हमने सोचा था कि दामाद के वहां रहते और बेटी के यहां रहते गर्भवती होने की संभावना नहीं। हमारे हिसाब से भगवान ने उन्हें मिला ही दिया। गर्भाधान करा ही दिया। योग जो शंका दिखाता है वह भगवान की कृपा से ही दूर हो सकती है। उसे रोकने के लिए हमें भगीरथ प्रयत्न करना पड़ेगा।"

"अच्छी बात है दीक्षितजी, आप क्या करने को कहते हैं?"

"यह साल निकल जाये तो कोई डर नहीं। आपको जल्दी-से-जल्दी दामाद साहब को कहीं भी तीर्थ करने भेज देना चाहिए, इसी में भलाई है।"

उस नन्हें शिशु को राजा के हाथ से दूर रखना ही दीक्षित का उद्देश्य है, यह बात रानी की समझ में आ गयी। वह बोली, 'अच्छी बात दीक्षितजी, इसमें लाभ ही होगा कि पैदा हुए बच्चे को किसी पुण्य क्षेत्र में भगवान के सान्निध्य में रखा जाये। एक महीना बीत जाये फिर व्यवस्था करेंगे।"

कुण्डली देखकर दीक्षित दूसरे दिन आया और बोला, "कुण्डली देख ली रानीमां। ऐसा लगता है, इसका इतनी जल्दी हिसाब लगाना ठीक नहीं। वास्तव में यह कुण्डली बनाना ही एक कठिन कार्य है। जलोदय और शिरोदय के समय कौन ग्रह, कौन नक्षत्र कहां था यह जान लेने पर भी गणना करने में कुछ कठिनाई होती ही है। इससे फल कुछ और होता है बताया कुछ और जाता है। इस पर प्रसव अप्पगोलं में हुआ है और उनके बताये समय के आधार पर हम कुण्डली बनाते हैं तो ठीक न होगा। उसके थोड़ा बड़े हो जाने पर यदि कुण्डली बनायें तो ठीक है क्योंकि पीछे आये सुख-दुख को ध्यान में रखकर अमुक समय का जन्म है तो यह नहीं होता और यदि अमुक घर में हुआ होता तो यह अवश्य होता इत्यादि ध्यान में रखकर ठीक गणना की जा सकती है तथा ज्योतिषी ठीक भविष्य बता

सकता है। पैदा होने के दो ही दिनों में ऐसी कोई घटना घटित नहीं हुई कि जिनके हिसाब से सही गणना की जा सके। थोड़ा ठहरना ही ठीक है।"

दीक्षित की इस लम्बी भूमिका को सुनकर रानी ने इसका मतलब लगाया कि कुण्डली कुछ अनर्थ दिखा रही है जिसे बताने का मन दीक्षित का नहीं है। वह बोली, "तो आपका मतलब यह कि फिलहाल कुण्डली न बनायी जाये, दीक्षितजी?"

"हाँ रानीमाँ!"

"अच्छी बात है। रहने दीजिये।"

"इस बीच कुण्डली बनने की बात न देखकर जैसा मैंने कल निवेदन किया था कि माँ, बच्चे और बाप को कहीं बाहर तीर्थ पर भेज देना चाहिए।"

"ऐसा ही प्रबन्ध किया जायेगा, दीक्षितजी।"

रानी का संदेह सच्चा था। मोटे तौर पर देखने से भी दीक्षित को इस शिशु की आयु कम ही लगी। कंस के योग वाले मामा के साथ कम आयु वाला भांजा। दीक्षित को लगा यह सान्निध्य हानिकारक है। ग्रहों के द्वारा सूचित अमंगल का निवारण करने का प्रयत्न करना भगवान के हाथ में नहीं होता। दीक्षित का यह विश्वास था कि मनुष्य के अमंगल का निवारण आदमी का धर्म है। उसने अपना यह विचार रानी के सम्मुख भी रखा।

76

माँ में बच्चे की कुण्डली दिखाने की प्रबल इच्छा होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। उसने चेन्नबसव से कहा, "भाभीजी ने पुजारी बाबा को कहला भेजा होगा। कुण्डली में क्या है पता लगा? जरा समाचार मंगवा लीजिये।"

चेन्नबसव बोला, "तुम्हारा पुजारी बाबा फिसलने वाला पत्थर है। कहना भर जानता है। ठीक बताना उसके बूते की बात नहीं। मैं किसी दूसरे से पूछता हूँ।"

"किससे पूछेंगे?"

"बुलाता हूँ आप स्वयं देख लेंगी।"

चेन्नबसव का इशारा भगवती की ओर था। उसने उसी दिन एक नौकर के साथ कहला भेजा कि कृपा करके माँ और बच्चे को 'रक्षा-सूत्र' पहना जायें और कुण्डली बना दें।"

जब चेन्नबसव का नौकर भगवती के आश्रम में पहुँचा तब वह मडकेरी आयी हुई थी। ओंकारेश्वर के मन्दिर में दीक्षित के साथ बातचीत कर रही थी। पिता-पुत्री की बातचीत का विषय भी नवजात शिशु की जन्म-कुण्डली ही था।

"मामा की कुण्डली और भान्जे की कुण्डली हू-ब-हू मिलती है, अप्पय्याजी।

एक-दूसरे से ऐसे मिलती है जैसे ऊपर-नीचे के दाँत भी नहीं मिलते हैं। यह मामा उसे मारेगा और वह इसके हाथ से मरेगा।"

"रहने दे 'पापा'। इन सारी बातों की चिन्ता तुम क्यों करती हो?"

"मैं चिन्ता क्यों करूँ? लेकिन यह सब अगर सच है तो यह भी सच है कि राजा का राज्य नहीं रहेगा, और यह भी सच है कि मेरा बेटा राजा बनेगा।"

"राजा मिट जाये यह तुम कह सकती हो। पर 'पापा', राजा के अन्न पर पलनेवाला मैं भगवान से प्रार्थना करूँगा कि वह बना रहे।"

"तो मेरा बेटा राजा न बने आप यही कहते हैं न?"

"अगर कोई चारा न हो और राजा का राज्य छूट जाये तो दूसरे को राजा बनना होगा। यदि तुम्हारा कोई बेटा है और वह राजा बनना चाहता है तो मैं क्यों मना करूँ? दुर्भाग्य से बिटिया ने बहुत दुख झेला है, अब इतने दिन बाद अगर उसे सुख मिले तो मुझे प्रसन्नता ही होगी।"

"उस सुख को देखने के विषय में आपको कोई सन्देह है अण्णय्याजी?"

"कहने में सन्देह नहीं है पर एक बात के दस मतलब निकलते हैं। किस समय पर कौन-सा मतलब लगाना चाहिए यह गिननेवाले की अक़्ल पर निर्भर है। अपनी कुण्डली को स्वयं देखें तो ममता भ्रम में डाल देती है। बात को मनचाहे ढंग से घुमाने की इच्छा होती है। इसलिए ज्योतिषियों ने अपने से सम्बन्धित पत्रियों को न देखने का नियम बना रखा है।"

जब इन दोनों में यह बातचीत चल रही थी तभी चेन्नबसव का नौकर भगवती को ढूंढता हुआ मन्दिर आ पहुँचा। अपने मालिक का सन्देश भगवती को दिया। वह कहाँ से आया है यह जानकर दीक्षित ने पूछा, "तुम्हारा इनके साथ बहुत मेलजोल है क्या, पापा?"

"हाँ। क्यों अण्णय्या?"

"देखो बेटा। इनकी और राजा की लगती है। ख़बरदार, इनसे मिलकर और इनको राजा का विरोध करने के लिए उकसाकर अपनी पत्री की गणना को सच करने का प्रयास न करना।"

"ऐसा क्यों कहते हैं अण्णय्या?"

"उससे ज्यादा ख़राब बात कोई न होगी, पापा। उनके लिए ही नहीं, तुम्हारे बेटे के लिए भी। इस दुराशा में उन्हें तुम जो हानि पहुँचाओगी वह तुम्हें दुगनी होकर लग सकती है। सावधान रहना।"

भगवती के मुँह का रंग उड़ गया। उसने "अच्छा, अब मैं चलूँ" कहा। दीक्षित बोला, "जाओ।" उसके चार क़दम चलते ही फिर बोला, "पैदा करनेवालों को और पैदा होनेवाले को ज्योतिषी क्या कह सकते हैं और क्या नहीं, वह तुम्हें पता है।"

"याद है, अप्पय्या।" यह कहते हुए भगवती चली गयी। बाप, माँ और बच्चे को जाकर कहीं किसी तीर्थ पर एक साल तक रहना चाहिए, यह बात दीक्षित ने उसे भी बता दी। उसने भी चेन्नबसव को कोई और बात न बताकर इतनी ही बात बतायी।

77

इस समय तक अंग्रेजों को नवरात्रि पर वहाँ आने का निमन्त्रण भेज दिया गया था। नवरात्रि के उत्सव तथा अंग्रेजों के आतिथ्य के प्रबन्ध के बारे में बोपण्णा और राजा के मध्य चला विवाद और भी तीव्र हो उठा। नवरात्रि के बाद राज-महल में 'कैलू' का उत्सव हुआ करता था। खेलों के कार्यक्रम में कोडगियों का नृत्य एक मुख्य अंश होता था। बाहर के अतिथि जन आकर देखेंगे इसलिए वीर-राज यह चाहता था कि इस भाग को कुछ और बढ़ा दिया जाये। कोडगियों का मुखिया और मन्त्री होने के कारण बोपण्णा को ही इस कार्यक्रम की देख-रेख करनी थी।

इस बार बसवय्या ने बोपण्णा के घर जाकर जब यह बात उठायी तो वह बोला, "इस बार हमें उत्सव में आने की सुविधा नहीं है। यह प्रबन्ध किसी दूसरे के हाथ में दे दीजिये।"

बोपण्णा यदि उत्सव में न आये तो राजा के और उसके विरोध की बात देश भर में फैल जायेगी, बाहर से आनेवालों के लिए तो वह प्रत्यक्ष प्रमाण होगा। इससे ही बसव को काफ़ी डर लगा। साथ ही उसे इस बात की चिन्ता हुई कि यदि बोपण्णा ने यह प्रबन्ध न किया तो और कौन इसे करेगा।

बोपण्णा अपने लोगों में अत्यन्त विश्वसनीय था। उसकी-सी योग्यता किसी में न थी। उससे कुछ कम योग्य व्यक्ति भी हो जाये तो भी कोई बात नहीं, पर दूसरा कौन हो सकता है? वह पूछेगा कि बोपण्णाजी यह काम क्यों नहीं करते? यदि कारण पता चल जाये तो कहेगा, उन्होंने जिस काम को चिढ़कर छोड़ दिया उसे करके मैं उनकी मित्रता कैसे खो दूँ? तब क्या किया जाये? बसव ने यह बात सबसे पहले रानी को बतायी। उसे लगा मानो राजा के सिंहासन का एक पाया ही टूट गया हो। बोपण्णा जब इतने स्पष्ट रूप से अपना विरोध प्रकट कर रहा है तो इसका अभिप्राय यह है कि वह स्पष्ट रूप से राजा का विरोधी बनकर ताल ठोक कर खड़ा है। इसे किसी प्रकार ठीक करना चाहिये। रानी सोचने लगी। उसने कहा, "पण्डित लक्ष्मीनारायणजी से कहो कि वे बोपण्णा से बात करके उन्हें समझा दें।"

बसव ने जाकर जब लक्ष्मीनारायण से यह बात कही तो उसे इस बात पर

आश्चर्य हुआ कि बोपन्ना के मन में इतना क्रोध बढ़ गया है। पहले जब उसने बोपन्ना से बात की थी तो उसे लगा था कि बोपण्णा को राजा के बारे में असन्तोष है। पर मन्त्री होकर देश के कार्य में भाग लेकर अलग रहने से कैसे काम चल सकता है? बोपन्ना इस तरह की हठ करेगा, यह बात लक्ष्मीनारायण के ध्यान में न थी। उसने सबव को प्रकट में कुछ न बताकर कहा, "बोपण्णाजी से मिलकर उनसे बात करूँगा, आप रानीमाँ से निवेदन कर दें।" वह उसी दिन बोपन्ना से मिला।

बोपन्ना : "देखिए पण्डितजी, आपके राजा ने मुझे घर बिगाड़नेवाला कहा है। यह सुनने के बाद भी मैं उसके घर जाऊँ! वह मुझे देखकर फिर वही बात कहे तो उसे सुनकर चुप रहूँ क्या? यह बात अगर बाहर फैल जाये और रानीमाँ और मेरा नाम साथ-साथ लिया जाये तो ठीक होगा क्या? अगर महल में मुझे क़दम रखना ही है तो दो बातें होनी चाहिए। पहली यह कि पिछली कही सब बातें गलत थीं, राजा यह मान लें। दूसरी यह कि फिर वे ऐसी बातें नहीं करेंगे, उनको इस प्रकार की शपथ लेनी पड़ेगी।"

लक्ष्मीनारायण ने इस सम्बन्ध में काफ़ी समझाया फिर भी बोपण्णा यही कहता रहा, "उस दिन राजा ने मुँह पर थूककर भेज दिया था। यदि वह दुबारा यह कह दे कि तुम्हें यहाँ आने में शर्म नहीं आती तो बताइये मुझ से क्या उत्तर बन पड़ेगा?"

"वह एक बुरा समय था। ग़ुस्से में आपे से बाहर हो जाने के कारण उनके मुँह से यह बात निकली थी, नहीं तो सीता जैसी पतिव्रता पत्नी को कोई ऐसी बात कहता है भला? यह उनके मन की बात नहीं थी।" लक्ष्मीनारायण ने समझाया।

बोपण्णा : "आप बड़े हैं, पण्डितजी। मेरी इच्छा आपकी अवज्ञा की नहीं है। मैं ग़ुस्से में हूँ यह मत सोचिए। समझिए मैं संकोच कर रहा हूँ। महाराज से यह सारी बात निवेदन कर दीजियेगा। अगर वे यह कह दें कि उस समय की बात मेरे अपने मन की बात नहीं थी तो दोष मानने की जरूरत भी नहीं और समझौता करने की जरूरत भी नहीं।"

"इसका मतलब भी वही हुआ ना। मालिक से ऐसी बात की आशा करना व्यर्थ ही है।"

"पण्डितजी, मेरी भी समझ में यह बात आती है। पर वे इतना भी न कहें तो मुझे उनके पास जाने में संकोच होता है। आपके सामने उन्होंने जो बातें कहीं, वही अगर दूसरे के सामने कह देते तो मेरी और उनकी हालत क्या होती?"

अब आगे बात करना बेकार समझकर लक्ष्मीनारायण ने इन बातों का सार रानी को बताया। रानी बोली, "महाराज की बात बोपण्णा को बहुत कटु लगी

रहा हूँ। आपने जिस उत्सव और आतिथ्य का प्रबन्ध किया है, वह सुचारु रूप से सम्पन्न होना चाहिए। इसमें एक भाग बोपण्णा पर निर्भर है। उस भाग को अपने ऊपर लेने के बारे में एक संकोच के कारण वे जरा पीछे हट रहे हैं। अन्नदाता कृपा करके एक वाक्य कह दें तो उनके संकोच का निवारण हो जाये इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक उपयुक्त वाक्य सोच रहा हूँ। मेरी बातों का ढंग अन्नदाता में झुंझलाहट पैदा करता है, यह मैं जानता हूँ। पर बुजुर्गों से बात करते समय प्रिय बात को सीधा कह सकते हैं, अप्रिय बात सीधी नहीं कहनी चाहिए, यह पाठ मुझे अपने गुरुजनों से मिला है। उन्होंने स्पष्ट बताया था कि यह ढंग सदा के लिए उपयुक्त है। मैं उसी ढंग पर चल रहा हूँ। इससे आपको बुरा लगे तो उसे सहन कर लें यह सोचकर कि मेरा आशय भला है। वैसे राजकार्य चलाना महाराज के हाथ में है।"

इतनी बातें होने के बाद राजा बोला, "ठीक है। उन्हें बुलाइए, जो कहना है वह सामने ही कहें!"

79

लक्ष्मीनारायणय्या ने बाहर जाकर बोपण्णा को कहला भेजा कि महाराज बुला रहे हैं, जरा आकर बात करके जायें। कुछ देर बाद बोपण्णा अनमना-सा आया। दोनों राजा के कमरे में गये और नमस्कार करके बैठ गये।

"हमने जो बात कही थी वह गलत थी यह हमें स्वीकार कर लेना चाहिए ऐसा आपने पण्डितजी के हाथ कहला भेजा था!" कहते हुए राजा ने उन पर एक खिन्नता भरी नजर डाली।

लक्ष्मीनारायणय्या ने कल्पना भी न की थी कि राजा इस प्रकार बात करेगा। बोपण्णा को क्रोध आ गया, राजा पर ही नहीं अपितु अपने साथी मन्त्री पर भी। उसने सोचा, क्या लक्ष्मीनारायणय्या ने उसके विचारों को इस प्रकार सीधे ढंग से कह दिया? राजा की यह बात ताल ठोककर लड़ाई के आह्वान जैसी है।

इससे पहले यदि ऐसा होता तो बोपण्णा झगड़ा कर बैठता परन्तु अब वह झगड़ा करने को तैयार न था। उसको ऐसा लगा कि अब राजा और उसके बीच चर्चा योग्य कुछ नहीं रह गया है। उसने लक्ष्मीनारायणय्या की ओर मुड़कर पूछा, "पण्डितजी, ऐसी बात की क्या जरूरत है?" लक्ष्मीनारायणय्या राजा को सुनाने की गरज से बोपण्णा की ओर मुड़कर बोला, "उस दिन महाराज ने जो बात कही, उससे आपको ऐसा लगा कि आपका महल में आना महाराज को अच्छा नहीं लगता इसलिए आप आने में संकोच करते हैं। यह बात मैंने

महाराज से निवेदन कर दी थी। महाराज उस बात को इस रूप में ले रहे हैं। मैंने यह नहीं कहा था कि आप महाराज से क्षमा मंगवाना चाहते हैं।"

बोपण्णा बोला, "वही बात आप फिर महाराज से निवेदन कीजिए। अब मेरा बोलना ठीक नहीं। मैं शायद सीमा से बाहर हो जाऊँ।"

लक्ष्मीनारायण राजा से बोला, "बोपण्णा महाराज से क्षमा याचना नहीं चाहते। सेवक मालिक से ऐसी बात कहलाने का प्रयास नहीं करता। यह सोचकर कि बोपण्णा का महल में आना राजा को पसन्द नहीं वे यहाँ आकर महाराज को अप्रसन्न करना नहीं चाहते, इसीलिए जरा हटकर खड़े हैं। मैं यह जानता हूँ कि उनका यहाँ आना महाराज को बुरा नहीं लगता, मैंने यह बात उनसे भी कही है। महाराज को तो केवल हाँ भर कहनी है। पुरानी बातें उठाने की जरूरत नहीं।"

"आप अपने साथी मन्त्री की प्रतिष्ठा की तो रक्षा करना चाहते हैं पर अपने मालिक की प्रतिष्ठा का ध्यान क्यों नहीं करते? वे जो काम कर रहे हैं उसे करने के लिए हम कहते हैं? इस काम को करने के लिए क्या अलग बुलाना पड़ेगा? जैसे और काम करते है वैसे इसे भी करना चाहिए। उसके लिए अलग बुलाने की क्या जरूरत है?"

बोपण्णा ने फिर से लक्ष्मीनारायण की ओर देखा और बोला, "बाक़ी काम भी छोड़ देने को कह रहे हैं न?"

लक्ष्मीनारायण उससे "जरा ठहरिए" कहकर राजा से बोला, "मैंने पहले ही निवेदन किया था। दूसरा कोई काम करना हो तो महल में आने की जरूरत नहीं पड़ती है। इस त्योहार के काम के लिए भीतर आना ही पड़ता है इसलिए महाराज की आज्ञा चाहिए थी।"

राजा : "अपनी चतुराई रहने दीजिए, पण्डितजी। आपने हमारी तरफ से बात करने का बहाना किया पर वास्तव में अपने मित्र की तरफ से बात कर रहे हैं। चलिए जाने दीजिए, आपकी इच्छा ही सही। आप दोनों मन्त्री महोदय दया करके राजमहल में पधारिये और अपना-अपना काम संभाल कर हमारी रक्षा कीजिए।"

बोपण्णा झट से उठ कर खड़ा हुआ। उसका मुँह लाल हो गया था। वह लक्ष्मीनारायण की ओर मुड़कर बोला, "ऐसे ताने मारने से क्या हम यहाँ आकर काम कर पायेंगे। यहाँ मेरे और ठहरने से बात ज्यादा बिगड़ सकती है।" इतना कहकर राजा को नमस्कार करके मुड़ा। लक्ष्मीनारायण ने उसके कन्धे पर हाथ रखकर बिठा लिया और स्वयं भी बैठ गया, फिर राजा से बोला, "आपकी आज्ञा हुई पर उसमें कुछ असन्तोष का पुट है। उस ओर ध्यान न देने की आज्ञा हो तो बड़ी कृपा होगी।

राजा : "पण्डितजी, आप चाहें तो जान दे सकते हैं, पर आप आत्मसम्मान छोड़ने को तैयार नहीं। अच्छी बात। हमने आज्ञा दी है, हमारी कृपा भी ले जाइये।"

ऐसा लगा कि बात को और आगे बढ़ा पाना सभव नही था। लक्ष्मीनारायण ने सोचा कि इतना ही काफ़ी है। अतः "जैसी महाराज की आज्ञा" कहकर उठ खड़ा हुआ और बोपण्णा को भी इशारा किया। बोपण्णा भी उठ खड़ा हुआ। दोनों ने हाथ जोड़कर राजा को नमस्कार किया और चल पड़े।

80

नवरात्रि के 'कैलू' त्योहार मे भाग लेने अंग्रेज अतिथि बनकर आ रहे थे, इस बारे मे वीरराज और रानी ने एकसाथ बैठकर कोई विचार-विमर्श नही किया था। परन्तु उन दोनों के हृदय मे एक ही बात थी कि कुछ प्रमुख व्यक्ति राजघराने के विरोधी बन रहे हैं। मन्त्री बोपण्णा राजा से असन्तुष्ट था, घर का दामाद चेन्नबसव भी राजा के विरुद्ध शिकायतें भेज रहा था। त्योहार में इन अंग्रेज़ों को आमन्त्रित करके, उनका विश्वास जीतकर अच्छी बातचीत करके उनका प्रीतिपात्र बनकर स्नेह बढा लेने से राजघराने को एक बड़ी प्रबल मैत्री प्राप्त हो सकती है। जिन अधिकारियों ने चेन्नबसव के शिकायत भरे पत्र पढे हैं, चेन्नबसव को देखने पर उन्हें पता लग जायेगा कि वह कोई प्रमुख व्यक्ति नहीं है। इन सबको देखने पर उन्हे ऐसा लगना चाहिए कि राजा की स्थिति मजबूत है।

रानी को लगा कि घर की बेटी को बन्धन से मुक्त करके उसे अपने पति के पास भेजना इस मामले मे बहुत अच्छा हुआ। महाराज को बहिन से असल मे कोई शिकायत न थी। किसी एक झगड़े के कारण उनका पति उसके साथ अच्छा व्यवहार नही कर पा रहा था इसलिए उसे यहाँ लाकर रखना पड़ा था। ऐसा किसी के द्वारा कहलवाने से बात ठीक बन जायेगी। पर रानी इस झूठ को कहने के लिए तैयार न थी। फिर भी अगर महाराज कहें तो उसका विरोध भी नही करेगी।

81

राजा और रानी जब [illegible] सोच रहे थे तब [illegible] गोरे लोग कुछ और ही सोच रहे थे। उनका उद्देश्य [illegible] के [illegible] के द्वारा बेंगलूर के रेजिडेंट को [illegible] लिखे गये [illegible] और रेजिडेंट के द्वारा भेजे गये उत्तर से स्पष्ट हो जाता था। [illegible] के [illegible] के [illegible] का [illegible] कुछ इस प्रकार था:

"[illegible] के [illegible] एक रिपोर्ट से पता चला है कि कोडग

के राजा के आदमी मंगलूर के पास के एक गांव से एक लड़की को चुराकर ले गये हैं। हमें यह पक्का पता चला कि कोडग का यह राजा अपने ताऊ दोड्डवीर और पिता लिंगराज की भांति ठीक रास्ते पर नहीं चल रहा है यह बात इससे पहले भी कई प्रसंगों से स्पष्ट हो चुकी है परन्तु तब उसने अपनी दुष्टता अपने प्रदेश तक ही सीमित रखी थी। अब वह दुष्टता अपने राज्य की सीमा लांघकर बाहर क़दम रख चुकी है। ऐसी बातें हम सह नहीं सकते यह बात उन्हें स्पष्ट कर देनी चाहिए। उनके आदमियों के द्वारा उठाई गयी लड़की को खोजकर वापस उनके गांव पहुँचाकर राजा को उसकी सूचना हमें भेजनी होगी। अगर वे ऐसा नहीं करते तो हमारे आदमी उसे खोजने आवेंगे। उन्हें राजा को सब तरह की मदद देनी होगी। अगर वह लड़की मिल जाये तो हमारे आदमियों के साथ भेजना होगा और जो गलती हुई उसके लिए पश्चात्ताप करना होगा।

इससे पूर्व की घटनाओं तथा इस घटना से हमें ऐसा लगता है कि इस देश की जनता अपनी समस्याओं को आप हल करने में समर्थ नहीं है। अब भी ये लोग कई बातों में असभ्य हैं। जंगली जानवरों की भांति व्यवहार करते हैं। आपस में लड़ते हैं। और कई बातों में छोटे बच्चों के समान असहाय हैं। राजा यदि गलत मार्ग पर चले तो अधिकारी उसे रोकते नहीं हैं। यदि अधिकारी गलत रास्ते पर जायें तो जनता विरोध नहीं करती है। ऐसी स्थिति में जनता का आगे बढ़ पाना संभव नहीं।

इस विषय में जितना भी सोचा जाये, हमें एक ही प्रमुख बात स्पष्ट होती है कि प्रभु की यह इच्छा है कि इस अबोध जनता को अंग्रेज लोग अपनी सुरक्षा में लेकर उसकी रक्षा करें। अब तक के इतिहास को देखने पर यही विचार उत्पन्न होता है। भारत की जनता ने हर जगह आपस में लड़कर एक के बाद एक प्रान्त हमारे अधिकार में दिये। जब तक हम शासन की बागडोर अपने हाथ में नहीं लेंगे तब तक किसी भी प्रान्त में सुख और शान्ति नहीं हो पायेगी। हमने जहां-जहां शासन को संभाला है वहीं जनता को सुख-शान्ति मिली है। लोग बड़ी तसल्ली से रह रहे हैं और उनकी इच्छा अंग्रेजों के शासन को बनाये रखने की है। इस बात का उदाहरण सारा उत्तर भारत है। दक्षिण में कर्नाटक, पश्चिम समुद्र का तटवर्ती प्रदेश मैसूर इस बात की पुष्टि करते हैं। हाल ही का उदाहरण महाराष्ट्र है। सम्पूर्ण भारतवर्ष यदि हमारे हाथ आ जाये तो लोग हमारे नीतिबद्ध और दक्ष शासन में सुख का अनुभव करके उन्नति के मार्ग को देख पायेंगे—यही हमारा सुनिश्चित और सुदृढ़ विचार है।

मैसूर की जनता को अव्यवस्थित शासन से मुक्त करके उनकी रक्षा के लिए कम्पनी की सरकार ने दो वर्ष पूर्व उस प्रान्त के शासन का दायित्व अपने कन्धों पर ले लिया। कोडग के राजा यदि तुरन्त ही अपनी दुष्टता छोड़कर शासन को

व्यवस्था ठीक कर लें तो बड़ी प्रसन्नता होगी। इस विषय में यदि वे हमें सन्तोषजनक रूप से विश्वास न दिला पायें तो उन्हें भी मैसूर के राजा की भाँति, फिलहाल कुछ वर्षों के लिए शासन-भार से मुक्त कर देना चाहिए और कम्पनी की सरकार को चाहिए कि उनकी तरफ से कोडग का राज्य-भार अपने ऊपर ले ले।

यह हमारा निश्चित विचार है। हमने गवर्नर जनरल महोदय को सूचित कर दिया है। आपको भी यह सूचित किया जाता है कि इस बात को ध्यान में रखकर ही अपना अगला कार्यक्रम निश्चित करें।"

82

इसके उत्तर में मैसूर के रेजिडेंट द्वारा लिखे गये पत्रों का सारांश इस प्रकार था :

"यह जानकर आश्चर्य हुआ कि आपने अपने पत्र में जिस नीति का उल्लेख किया है वही हमारी भी है। इस देश की जनता के बारे में आपके जो विचार हैं उनसे हम पूर्णतः सहमत हैं। असहाय और अबोध जनता की रक्षा का कर्त्तव्य प्रभु ने हमें सौंपा है। आपके इस निर्णय से हम सहमत हैं। शासन फूलों की सेज नहीं। फिर भी जब तक समस्त भारतवर्ष की शासन व्यवस्था को कम्पनी अपने हाथ में नहीं ले लेती तब तक यहाँ की जनता के भाग्य में सुख नहीं।

यह बात और प्रान्तों की अपेक्षा कोडग पर अधिक लागू होती है। राजा ठीक से शासन नहीं कर रहा है। लोग असन्तुष्ट हो शिकायत कर रहे हैं और यह प्रार्थना कर रहे हैं कि राजा को दण्ड दिया जाये। राजघराने के दामाद के कई पत्रों से हमें यह विदित हुआ है। राजा ने उसकी पत्नी को कैद में डाल रखा है। उसकी प्रार्थना है कि राजा अयोग्य है अतः उसे गद्दी से उतारकर उसकी बहिन अर्थात् इसकी पत्नी को गद्दी पर बिठाना चाहिए। इधर एक वृद्ध सामने आया है। वह अपने को राजा का ताऊ बताता है। उसकी प्रार्थना है कि यदि राजा को हटाया जाये तो उसके अपने पुत्र को राजा बनाया जाये। इसने और इसकी ओर से किसी ने एक और सूचना दी है। वह सूचना है कि राजा का एक भाई है। उसी को राजा बनना था। इस राजा का गद्दी पर बैठना गलत है। इसके अतिरिक्त शासन प्रबन्ध भी ठीक नहीं है इसीलिए इसका अधिकार छीनकर इसके भाई को राज्य सौंप देना चाहिए। तथाकथित भाई के बारे में निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता कि वह उस वृद्ध का पुत्र है या कोई और। इस प्रकार जैसे भी हो, इस राजा को गद्दी से उतारना ही सबसे पहले ठीक लगता है। उसके बाद यह प्रश्न उठता है कि जो लोग अपने को राजा बनने का अधिकारी बताते हैं क्या उनमें से किसी को गद्दी दी जा सकती है? ऐसा कोई ठीक प्रमाण नहीं मिलता कि इनमें से किस व्यक्ति को गद्दी दी जाये। और जिस व्यक्ति को बिठाया जायेगा,

वह मंजूर की गद्दी पर बिठाये गये व्यक्ति से अच्छा राजा सिद्ध हो सकेगा। किसी वैसे ही व्यक्ति को राज्य दिया गया तो देश फिर भी संकट में पड़ सकता है। यह देखकर फिर से इस शासन को हमें अपने हाथ में लेना पड़ सकता है।

जो भी हो, हम हाल ही में राजा के अतिथि बनकर मडकेरी जानेवाले हैं। इन सब बातों के बारे में राजा को चेतावनी देंगे। वैसे वहां की स्थानीय परिस्थितियों का सावधानी से अध्ययन करके कोडग को कम्पनी सरकार के अधीन करने के बारे में साधक-बाधक, बलाबल सब बातों को जानने का प्रयास करेंगे। उस समय यदि आप कम-से-कम एक दिन के लिए आ सकें तो स्थिति को जानने में सहायता मिलेगी।

आपके पत्र में एक बात का उल्लेख नहीं है जो मुझे बहुत महत्त्वपूर्ण लगती है। वह यह है कि अंग्रेजों को यहां आकर इस देश की जनता को एक सुव्यवस्थित राजनैतिक जीवन ही प्रदान करना नहीं है अपितु ईसा मसीह के पवित्र वचनों का प्रसार करके यहां की जनता के दिलों के अंधकार को दूर करके उनका उद्धार भी करना है। यही प्रभु की इच्छा है। हमें यह पता है कि अन्य प्रान्तों का हिन्दू धर्म पर्याप्त अविवेकपूर्ण है। जानकारों का कहना है कि उसका रूप कोडग में और भी विकृत है। पूज्य मेघलिंग नाम के हमारे धर्म प्रचारक ने कोडग में खूब भ्रमण करके परिस्थिति का अध्ययन करके हमें यह बताया है। उनका कहना है, ईसा के सेवकों को कोडग में धर्म की अच्छी फसल पैदा करने का अच्छा अवसर है। यदि ढंग से प्रयत्न किया जाये तो कुछ वर्षों में समस्त कोडग ईसाई धर्म का केन्द्र बन सकता है। राजमहल के लोग भी कुछ-कुछ इस ओर झुके हुए हैं।

इस बार जब हम कोडग जायेंगे तब इस बारे में और अध्ययन करेंगे।"

83

त्योहार की तैयारियां आगे बढ़ीं। बोपण्णा ने अपने काम को 'नहीं करूंगा' कह कर भी नहीं छोड़ा। परन्तु उन पर खास मेहनत भी नहीं की। उसके गुल्म नायक उत्तय्या के मडकेरी में न रहने से काम में थोड़ी अड़चन भी हुई। उसने राजमहल की पहरेदारी का प्रबन्ध उचित ढंग से नहीं किया यह कहकर राजा ने उसे सीमा प्रान्त में भिजवाने की आज्ञा दे दी थी। उसे हेग्गड़ सीमावर्ती प्रदेश में भेजा गया था। कोडगियों के मेलजूद में उत्तय्या बहुत दक्ष तथा उत्साही था। वह जहां खड़ा हो जाता वहां सौ लोग आ खड़े होते थे। इतना प्रभाव किसी और का नहीं था।

घर का दामाद-चेन्नबसव अब स्नेह सम्बन्ध फिर से बन जाने के कारण उत्सव में भाग लेने के लिए बुलाया गया था। वह कोडगियों के गीत व नृत्य का जानकार था। उत्तय्या के काम का एक हिस्सा उसे सौंपा गया था।

बाहर से आनेवाले अतिथियों को कोडग की संस्कृति तथा इतिहास का परिचय कराना जरूरी था, इसलिए पुराने लिखे गये कुछ दृश्यों को गाँव के लोग प्रस्तुत करेंगे। वैसे जो भी कविता पढ़ना या नाटक खेलना चाहता तो उसे वैसा करने की सुविधा थी। यह सारा प्रबन्ध लक्ष्मीनारायण के भाई मणेगार मूरप्पा को दिया गया था।

यह ज्ञात था कि अंग्रेज अतिथियों को शिकार के लिए जाना प्रिय है। उनके लिए दो-तीन दिन की शिकार की व्यवस्था की गयी। राजभवन की आयुध-शाला से पर्याप्त अस्त्र, जाल तथा रस्सियाँ आदि निकाले गये। शिकार के लिए निश्चित जंगल के आसपास के गाँवों को शिकार में सहायता पहुँचाने की आज्ञा भेज दी गयी।

राजभवन की घुड़साल मे काफ़ी घोड़े थे। शिकारी कुत्ते का दल था ही। मन्त्री बनने के बावजूद बसव ही उसकी देखभाल करता था। अतिथियो के भोजन के बारे मे कुछ सलाह-मशविरा हुआ। अंग्रेजों में इस बात का अहंकार था कि उनकी विजय का कारण गो-मांस और गेहूँ का प्रयोग था। पीने के लिए कोडग मे कोई रोक-टोक न थी। यह सही था कि राजा के कुल में मद्यपान वर्जित था। उसके पिता और ताऊ ने पूर्वजों का आचार-विचार नही छोड़ा था। पर उन्होंने कभी दूसरों को पीने से नहीं रोका था। जब अंग्रेज उनसे मिलने आते थे तब उन्हें उनके लिए मद्य का प्रबन्ध करना होता था। इसी कारण चिक्कवीरराज ने बसव की सहायता से पीने की आदत डाल ली थी। उसने इतनी शराब इकट्ठी कर रखी थी कि उससे वह सब अतिथियो को एक सप्ताह ही नही, तीन मास तक भरपेट पिला सकता था। अतः शराब के बारे में कोई चिन्ता न थी, पर गो-मास की बात? कोडग में गो-हत्या नही हो सकती है, अभी तक न हुई थी।

बसव ने मन्त्रियो को सूचित किया कि राजा की आज्ञा है कि आनेवाले अतिथियो को उनका प्रिय आहार देना चाहिए। यदि वे गो-मास चाहे तो वह भी दिया जाये। लक्ष्मीनारायण इससे सहमत न था। बोपण्णा ने भी, "हमारे देश का यह रिवाज नहीं। हमे यह नही करना चाहिए" कहा। रानी से पूछा गया। वह बोली, "जो हमारा रिवाज नही उसे नही करना चाहिए।" इस पर बसव ने कहा, "देश में गो-हत्या की जरूरत नहीं तो पिरियापट्टण से या पाणे से मँगाने मे क्या हानि है? इसमे धर्म की रक्षा भी होगी और अतिथियों की सतुष्टि भी हो जायेगी।" 'जैसी तुम्हारी मर्जी' कहकर यह बात उस पर छोड दी गयी।

अंग्रेज स्त्री-पुरुष एक साथ आते हैं। इसलिए यह निश्चित हुआ कि उनके रिवाज के मुताबिक उनके भोजन तथा नृत्य का प्रबन्ध होना ही चाहिए।

बीच मे मेंघलिंग पादरी के द्वारा बताया गया एक कार्यक्रम भी शामिल करने का निश्चय किया गया। उसका कहना था—"भारतवर्ष में जितने धर्म प्रचलित

हैं उनमें एक भी उन्नत नहीं। ईसाई धर्म इन सबमें श्रेष्ठ है। यह बात मैं सिद्ध कर दिखाऊँगा। इस बात पर आपके धर्म का कोई भी मनुष्य मुझ से वाद-विवाद कर सकता है।" राजा तथा अतिथियों के सामने यदि यह सिद्ध हो गया तो कोडग में उसे ईसाई मत के प्रचार और अपने गुरु की वाणी के प्रसार में सुविधा हो जायेगी। यह बात लक्ष्मीनारायण तथा बोपण्णा को जँची नहीं, पर राजा ने कहा कि यह होने दिया जाये। उनके हाँ कहने का कारण था कि वह मेघलिंग महादेव को प्रसन्न करके अपने शरीर के लिए ताकत की कोई अच्छी दवा प्राप्त करना चाहता था तथा दूसरे दोनों मत में अपना निष्पक्ष भाव दिखाकर अंग्रेजों को प्रसन्न करना चाहता था। तीसरा एक छोटा-सा उद्देश्य और भी था। मन्दिर के दीक्षित को यह अहंकार था कि इसकी बराबरी का कोई नहीं है। त्योहार के दिन चावल के लिए पल्ला पसारना, सोने के लिए हाथ पसारना ही इसका काम है। इसको भी मालूम हो जाय कि दूसरे मत के लोग अपने धर्म के लिए कितना कष्ट उठाते हैं। जरा अपने ज्ञान को सबके सामने प्रकट करे तो पता चले। अतः इसका भी प्रबन्ध हो गया। दीक्षित को भी सूचना दे दी गयी।

34

त्योहार का दिन आ पहुँचा। अतिथि जन भी आ पहुँचे। राजभवन का आतिथ्य बिना किसी रोक-टोक के चलने लगा।

रेजिडेंट और उसके साथियों के मडकेरी आने के दिन बसवय्या ने शहर के बड़े फाटक पर राजा की ओर से उनका स्वागत किया। जब वे राजभवन पहुँचे तो लक्ष्मीनारायण तथा बोपण्णा स्वागत करके उन्हें आदर के साथ भीतर ले गये। वीरराज ने अंग्रेज कर्नल के से वस्त्र धारण कर रखे थे। अपने ताऊ दोड्डवीरराज को कम्पनी द्वारा प्रदान की गयी तलवार बाँधकर बड़े से हीरे से सज्जित पगड़ी धारण करके उनका अपनी बैठक में स्वागत किया। कुशल-क्षेम पूछने के बाद बड़े राजा के द्वारा उनके ही लिए बनवाये गये दो मंजिले भवन में उन्हें ले जाया गया।

बेंगलूर से इनके पहुँचने के समय तक मंगलूर का कलेक्टर आ पहुँचा था। वीरराज की आज्ञानुसार बसव दोपहर को ही उससे मिला और बोला, "थाने से एक लड़की को कोई राजमहल में ले आया था। पता चला कि वह अपहरण कर लायी गयी है। तहकीकात करने पर मालूम हुआ यहाँ आने में उसकी सहमति नहीं थी तो सोचा गया कि उसे कुशलतापूर्वक वापस भेज देना चाहिए। यह बात लक्ष्मीनारायण मन्त्री के घर भी पहुँची तो उन्हें मालूम हुआ कि लड़की उन्हीं की जाति की है। इसलिए उनकी वृद्धा माता आकर उसे अपने घर लिवा ले गयी। थाने से उसे खोजते हुए आये उसके पति को सौंप दिया गया। फिलहाल इस

में जो मन-मुटाव चल रहा था वह खत्म हो गया। यह बात हमने पहले ही आपको निवेदन कर दी थी।" कलेक्टर ने कहा, "यह सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। यह बात मैंने मद्रास लिख दी है।"

दूसरे और चौथे दिन शिकार का प्रबन्ध था। स्वास्थ्य अभी ठीक न होने के कारण वीरराज शिकार पर नहीं गया। यदि सब ठीक-ठाक होता तो वोतन्ना जा सकता था। पर काम का बहाना बनाकर वह भी रुक गया। अतिथियों को जंगल में ले जाने और इधर-उधर घुमाने और वापस ले आने का काम समय पर ही आ पड़ा।

उसके दायें पाँव में मोच आ जाने से उसकी चाल में लंगड़ाहट थी, पर घोड़े पर सवार हो जाने के बाद किसी भी चतुर घुड़सवार से कम न था। उसकी देह राजा से भी मजबूत थी। पर स्वयं राजा न होने से उसके विलास की एक सीमा थी। इसलिए राजा से दो वर्ष बड़ा होने पर भी वह अब भी हट्टा-कट्टा था। शिकार का ऐसा प्रबन्ध किया गया था कि प्रत्येक को हर दिन एक शिकार मिल सके। पुरुषों के समान स्त्रियों को भी शिकार मारने का अवसर मिला। ऐसी व्यवस्था की गयी कि सबको कम-से-कम एक शिकार मिल जाए तथा सबको शिकार में सफलता प्राप्त हो। जिन तीन दिनों में शिकार पर नहीं जाना था उनमें पहले दिन रेजिडेंट ने राजा से, दूसरे दिन उसकी सम्मति लेकर मन्त्रियों से और तीसरे दिन दामाद चेन्नबसव से बातचीत की।

उन्हीं दिनों थोड़ा अवकाश मिलते ही अतिथियों ने राजा का शस्त्रागार, घुड़साल तथा शिकारी कुत्तों के दल को देखा। अतिथि स्त्रियाँ रानी से मिलीं और उनके गहने कपड़े देखकर बहुत प्रभावित हुईं।

85

त्योहार के दिनों में अपने देश के इतिहास का एक प्रसंग लेकर नाटक खेलने का रिवाज राजभवन में पहले से ही चला आ रहा था। इसका उद्देश्य अंग्रेज मित्रों को यह दिखाना था कि कोडग के राजा ने उनकी मित्रता कैसे प्राप्त की। इस बार पाँच दिन भोजनोपरान्त ऐसे नाटक खेले गये।

लक्ष्मीनारायण के भाई सुरप्पा को इस प्रकार के नाटकों को प्रस्तुत करने वालों का पता था। उसने उन सबको बुलाकर इकट्ठा किया और पता लगाया कि कौन-कौन व्यक्ति कैसा-कैसा दृश्य प्रस्तुत कर सकता है। इन सबको उसने एक दल में बाँध दिया। उसने इस बात की जिम्मेदारी ली कि वह निर्देशक के रूप में पर्दे के पीछे घटनाओं की पूर्व सूचना देगा तथा पात्रों का आवश्यक निर्देशन करेगा, साथ ही कथा-सूत्र भी जोड़ेगा।

कोडग की यह नाट्य शैली मंगलूर के यक्षगान तथा मलयाल की कथक की शैलियों का मिश्रित रूप थी।

पहले दिन कोडग राजाओं के मूल पुरुष के चरित्र का नाटक रूप प्रदर्शित किया गया। सर्वप्रथम शासक वंश का अन्तिम राजा बहुत दुष्ट था इसलिए जनता उसकी विरोधी हो गई और जनता के नेताओं ने उसका खून कर दिया। इक्केरी से एक संन्यासी आया और उसने उनकी वीरता की प्रशंसा करते हुए उनमें से एक को राजा बनने को कहा। उन्होंने यह बात स्वीकार नहीं की और संन्यासी को ही राजा बनाया गया। उस दिन के नाटक का सार था : उस राजा ने मालिक बनकर राज्य नहीं किया। जनता को राह दिखानेवाले गुरु के रूप में वह गद्दी पर बैठा। जनता उसकी सेवक न थी बल्कि उसी के परिवार के सदस्यों के समान थी। वह जो कर उसे देती वह राज-कर न था बल्कि गुरुदक्षिणा मात्र थी। इस नाटक के अनुसार अन्त में जो राजा बना उसने कहा : मैं और मेरे वंशज जनता को अपनी सन्तान के समान देखते हैं। इस वंश में जो ऐसा न करेगा उसे आप लोग वही दण्ड दे सकते हैं जो पिछले राजा को दिया था।

यह दृश्य चिक्कवीर पर लागू होता था। यह बात राजा, रानी, मन्त्री और अन्य दर्शकों ने महसूस की, परन्तु इसे उपस्थित करते हुए ऐसा प्रतीत नहीं हुआ कि सुरप्पा ने इसे किसी विशेष उद्देश्य से प्रस्तुत किया है। कथा के प्रवाह में वह बात स्वतः आ गयी थी।

किसी खास उद्देश्य से यह बात नहीं कही गयी यह समझकर किसी ने भी यह बात उठायी नहीं। छिपी बात को क्यों कोई उघाड़ेगा ?

अगले दिन के नाटक की कथावस्तु थी दोड्डवीर राजा का टीपू के विरोध में अंग्रेजों की सहायता करना। टीपू के मुसलमान सैनिकों का कोडग की जनता को तंग करना, दोड्डवीरराज का जेल से छूट जाना और जनता को एकत्रित कर टीपू के सेनापति फौजदार से लोहा लेना। उनको भगाकर कोडग को स्वाधीन करना, तलचेरी तथा मंगलूर से जब अंग्रेजी सेना जाती थी तब उन्हें सहायता देना; टीपू का दोड्डवीर राजा को यह कहकर बुलाना कि अंग्रेज विदेशी हैं, तुम अपने हो, आओ हम दोनों मिल उन्हें देश से भगा दें और जीते हुए राज्य का आधा-आधा बांट लें परन्तु वीरराज का यह कहकर उसके निमन्त्रण को ठुकरा देना कि अंग्रेज मेरे मित्र हैं और इसके अतिरिक्त तुमने पहले मेरे देश को तंग किया था; अंग्रेजों का इस पर प्रसन्न हो उसे सम्मान में एक तलवार प्रदान करना आदि पूरी कहानी प्रस्तुत की गयी। एक ने टीपू, एक ने अंग्रेज टेलर, एक ने वीरराज और एक ने मुसलमान सेनापति का अभिनय किया और दो अन्य कोडगी बने थे। इस सबका सुरप्पा पीछे से निर्देशन कर रहा था। नट प्रसंगों से परिचित थे। अंग्रेज अधिकारी का बोलना, यह बताते समय साहब का अभिनय करने वाला नट

उत्साह से याद किए हुए पार्ट मे कुछ अपनी ओर से जोड़कर फटाफट बोलता ही चला गया। इसके साथ-साथ सूरप्पा ने भी अपनी ओर से कुछ भरा। सभा ने प्रशंसा से शाबाशी दी। अंग्रेजों ने दुभाषियों से बात का अर्थ समझकर उस दृश्य को पसन्द किया। अन्त में कहा गया कि हमारे दोड्डवीर राजेन्द्र का नाम लेने ही अंग्रेज उनके सम्मान मे अपनी टोपी उतारते हैं। जनता ने 'हाँ' कहकर जोर से उसका समर्थन किया। दुभाषिए ने जब उसका अर्थ रेजिडेंट को बताया तब वह खड़ा होकर अपनी टोपी हाथ में लेकर सम्मान से सिर झुकाकर बोला, "सो वी डू साहिब" (हम भी ऐसा करते हैं)। उसके साथ के अंग्रेजों ने भी उठकर सम्मान प्रदर्शित किया। इससे जनता के संतोष की सीमा न रही। नाटक बड़े ही सन्तोष-जनक रूप से समाप्त हुआ।

अगले दिन की कथा मलाबार की मुसलमान रानी की थी। टीपू ने उसमें उसका राज्य छीनकर उसे वहाँ से भगा दिया था। रानी ने दोड्डवीरराज के पास सहायता के लिए दूत भेजे। वीरराज ने तलचेरी के टेलर साहब के पास खबर भेजी और अंग्रेजों की सहायता से टीपू की सेना को मलाबार से मार भगाया। वहाँ का राज्य रानी को वापस सौंप दिया। इस कथा में कोडग के राजा परस्त्री को अपनी बहिन के समान मानते हैं और शरणागत की रक्षा अपने प्राण देकर भी करते हैं। एक बार मित्र बन जाने पर कभी धोखा नही देते। इस आदर्श की भावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई। यह नाटक अंग्रेज अतिथियों को बहुत ही पसन्द आया।

चौथे दिन का कथानक था लिंगराज की भूमि-व्यवस्था। उसमें दिखाया गया था कि पुराने राजाओं के समय मे किसान जब लगान देने आते तो राजा पूछते कि पैदावार कितनी हुई? उसके बताने पर उस पैदावार का केवल दशमाश लेकर शेष उसे ही छोड़ देते थे और कहते—आगे से यही व्यवस्था हमारे देश मे लागू होगी। किसानों के आकर यह शिकायत करने पर कि गाँव के गौड़ा (मुखिया) ने लगान अधिक लिया है और उसे बुलाकर तहकीकात करने पर बात सच निकलती तो उससे दुगना अनाज वापस दिलाते। एक साल सूखे के कारण जब फसल खराब हुई तो किसान के कम अनाज देने पर गौड़ ने उसे स्वीकार नहीं किया। किसान राजा के पास फरियाद लेकर आया। यह पता लगने पर कि उसने जो भी पैदा किया है उससे किसान का पेट नही भरेगा तो राजा ने कहा कि लगान देने की जरूरत नहीं। उलटे उसे जितनी और जरूरत हो राजभवन के भण्डार से उसे दे दिया जाये। किसान के 'मालिक का ऋण मुझ पर नही रहना चाहिए' कहने पर राजा ने कहा कि 'अगली फसल मे इसे दुगना बनाकर मुझे वापस कर देना।'

ये सब बातें कोडगियों को पता थी ही, पर इतने विस्तार से अंग्रेज अतिथि न

जानते थे। जब इसका अर्थ बताया गया तो उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि इस देश का राजधर्म कितना उन्नत था।

86

शिकार के पहले दिन अतिथियों के साथ बसव अकेला ही था। सदा बोपण्णा शिकार के लिए जाया करता था, पर इस बार इस आतिथ्य का भार उसने अपने ऊपर नहीं लिया। अतिथि संख्या में अधिक थे। सबकी सुविधा को एक अकेले के लिए देख पाना असाध्य हो गया। लूसी पार्कर शिकार में निपुण थी। उसने बसव से पूछा, "अच्छे बढ़िया शिकारी आपके यहाँ अवश्य होंगे ना ?"

बसव ने मन में सोचा कि उसे हमारे आदमियों में से कोई साथी चाहिए। वह बोला, "मैं बुलवाता हूँ।" राजभवन लौटकर बसव ने राजा से यह बात बताकर पूछा,"महाराज, उत्तय्या तक्क और गुल्म नायक उत्तय्या को बुलवाऊँ ?"

राजा भी बसव की भाँति औरत के बारे में ओछी बात सोचने वाला आदमी था। वह बोला, "बूढ़े का वह क्या करेगी ? तुझे इतनी भी समझ नहीं ?" बसव हँसकर बोला, "इसलिए जवान को बुलाना चाहता हूँ, महाराज।"

"यहाँ पहरे पर जो था उसी के बारे में तुम कह रहे हो ना ?"

"हाँ महाराज।"

"अगर वह आ गया तो वह तुझे सूँघेगी भी नहीं।"

"तरह-तरह का स्वाद चखने वाली जीभ एक ही चीज से सन्तुष्ट नहीं होती।"

"हाँ रे लँगड़े, ऐसी बातों में तू पूरा घाघ है।"

"दोनों को साथ ले जाने से बुड्ढा बात करने को रहेगा और लड़का शिकार को। ठीक होगा न महाराज !"

"जो तेरे मन में आये सो कर, राँड के। तू ही कोडग का राजा है।"

"अपने शब्द वापस लीजिए महाराज, यह बात ठीक नहीं है।"

बसव ने तुरन्त उन दोनों शिकारियों को बुलवा भेजा। बुड्ढा उत्तय्या उत्सव में भाग लेने मडकेरी आया ही हुआ था। जवान उत्तय्या खबर पाने के दूसरे दिन पहुँच गया। दूसरे दिन का शिकार बहुत अच्छा रहा। बुड्ढा तक्क बुजुर्गों के साथ रहकर भाग-दौड़ करके अपने कारनामे सुनाकर आप सन्तुष्ट हुआ ही, उन लोगों को भी खुश करता रहा। जवान उत्तय्या जवानों के साथ रहा और उसने लूसी पार्कर को पसन्द आने योग्य चातुर्य का प्रदर्शन किया।

लूसी पार्कर ने उसकी 'माई रोबिन हुड' (मेरे रॉबिन हुड) कहकर प्रशंसा की। उस दिन के शिकार में इन लोगों ने जिस शेर का पीछा किया था, वह इनके

हाथ न पड़कर घने जंगल में घुस गया। लूसी और हॉकर दोनों उसका पीछा करते-करते घने जंगल में पहुँच गये। बसव ने उन्हें पुकारकर रोका। झट से अपना घोड़ा भगाता हुआ वह उनसे जा मिला और बोला, "इससे आगे जाकर शिकार करना गलत होगा। यह भगवती का जंगल है।"

शिकार खत्म होने पर जब सभी लौट रहे थे तब उन्हें भगवती के आश्रम के सामने से गुजरना पड़ा। भगवती द्वार पर खड़ी थी। उसे देखकर बसव कुछ दूर से घोड़े से उतर पड़ा और लँगड़ाता हुआ घोड़ों की लगाम थामे आश्रम के द्वार तक पहुँचा।

बड़े साहब ने पूछा, "यह कौन है?" बसव बोला, "इन्होंने यहाँ आश्रम बना रखा है। ये भगवती की उपासिका हैं। इन्हीं भगवती के नाम यह जंगल अर्पण है। यहाँ कोई शिकार नहीं करता।"

साहब : "आप जिस-जिस जगह को सम्मान देते हैं उसका हम भी सम्मान करेंगे। भगवान तो सभी के एक हैं।" यह कहकर उसने घोड़े से उतरकर टोपी उतारकर सिर झुकाकर आश्रम का द्वार पार किया। उसके साथियों ने भी वैसा ही किया। भगवती बिना कुछ कहे प्रसन्नवदना इन्हें देखती हुई खड़ी रही। आश्रम पार करने के बाद बड़ा साहब घोड़े पर चढ़ा। बसव ने भगवती से कहा, "देवता के वन में हमने कदम नहीं रखा, माँ।" भगवती बोली, "अच्छा"। बसव भी चार कदम और चलकर घोड़े पर चढ़कर अतिथियों से जा मिला।

सब की ही तरह घोड़े से उतरकर उत्तय्या तक्क ने भगवती की ओर देखकर सोचा, "यह चेहरा कहीं पहले देखा हुआ लगता है। 'हाँ या नहीं' कुछ ठीक कहा नहीं जा सकता। शायद 'नहीं' ही ज्यादा ठीक लगता है। चालीस साल पहले देखे चेहरे की आज पहचान मिलना मुश्किल ही है।"

बड़ा साहब बोला, "ह्वाट ए मेगनीफिसेंट क्रीचर! इफ दा गॉडेस इज एनीथिंग लाइक हर वोटरी सो डिज़र्व्स हर प्लेस" (कितना भव्य सौंदर्य है! देवी अपनी उपासिका के अनुरूप है तभी तो वह उसके स्थान की अधिकारिणी है।)

लूसी हँसते हुए बोली, "इन दा विल्डरनेस यू मीन?" (क्या तुम्हारा अभिप्राय निर्जनता से है?) साहब ने उत्तर दिया, "इन पारनेसस, माई डियर" (प्रिय, देव-स्थान।)

डेरे पर पहुँचने पर भी अंग्रेज अतिथि भगवती के रूप-निखार, खड़े होने के ढंग की बार-बार याद करके प्रशंसा कर रहे थे।

उत्तया तक्क सारी बातें बोपण्णा को बताते हुए बोला, "यह गोरे बहुत अच्छे लोग हैं। लँगड़े के पूजा की जगह कहने पर बड़ा साहब झट से घोड़े से कूद पड़ा। देखो तो, उन्होंने कहा, "तुम्हारे भगवान और हमारे भगवान में कोई अन्तर नहीं। हमारा भगवान बड़ा है ऐसा कोई अहंकार हम में नहीं है। वह घोड़े

से डरता ही नहीं, बल्कि टोपी उतार कर सिर झुकाकर भी चला। गोरे लोग बड़े लोग हैं।"

बोपण्णा चुपचाप सुनता रहा, उसने कोई उत्तर न दिया। क्षण भर बाद उत्तय्या तक्क ने फिर पूछा, "यह भगवती कौन है? क्या आप इसे जानते हैं?"

"पता नहीं तक्कजी, लोग कहते हैं मलयाल की है। जादू-मन्त्र करती है। इतना ही सुनने में आया है।"

उत्तय्या तक्क ने "ऐसी बात है क्या!" कहकर बात और आगे नहीं चलायी। यह पापा ही है उसने मन में सोच लिया। चौंतीस वर्ष पूर्व लिंगराज ने इसे देश-निकाला दिया था, यह बात उसे याद आ गयी।

87

जिन दिनों शिकार का कार्यक्रम न था, उनमें पहले दिन बड़े साहब ने राजा से भेंट की और उनसे कोडग के शासन के विषय में बातचीत की। उस दिन राजा ने सामान्य से कुछ कम पी कर अपने को वश में रखा था। उसने जो प्रश्न पूछे उनका ढंग से जवाब दिया। साहब ने पूछा, "आपकी प्रजा ने चेन्नवीरय्या नाम का एक अपराधी आपके पास भेजा था। उसका क्या हुआ? इस बारे में हमने कई पत्र आपको भेजे पर आपकी ओर से कोई उत्तर नहीं मिला।" तब राजा ने उत्तर दिया, "यह छोटी-मोटी बातें हैं। हम जैसे भी चाहे निपट लेते हैं। आपको यह सब पूछना नहीं चाहिए।"

"आप अब स्वयं आमने-सामने हैं तो बता सकते हैं न?"

"बसव बता देगा, पूछ लीजिए।"

"सुनने में आया था, मंगलूर के इलाके से कुछ नालायक मिलकर एक लड़की का अपहरण कर लाये थे और यह बात बसवय्या मन्त्री पर टाल दी गई थी। आपको जब पता चला कि इसमें लड़की की अनिच्छा है तो आपने तुरन्त उसे वापस भिजवा दिया। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। लोग बेकार में आप पर इल्जाम नहीं लगायेंगे। यह एक अच्छी बात हुई।"

"जी। हमारी यह आज्ञा है कि जो भी हमारे परिवार में न रहना चाहे उसे जबर्दस्ती न रखा जाए।"

"बड़ी खुशी की बात है। हमें यह शिकायत पहुँची थी कि आपने अपनी बहिन को उनके पति के घर जाने से रोक रखा था। बसवय्याजी ने बताया कि हाल ही में उनको आपने उनके पति के घर भिजवा दिया है। यह भी एक बहुत अच्छी बात हुई।"

"कुछ अच्छा तो नहीं हुआ, छोड़िए। बहिन हमारे महल में ही रहती, यही

अच्छा था। हमें जो दामाद मिला वह कुछ योग्य नहीं। राजघराने का दामाद बनने के कारण बड़ा आदमी कहलाता है। हम लोगों में एक कहावत है, 'बिना नमक की भी मांड पीकर घर का बेटा चुप रहता है और घड़े भर घी पीकर भी दामाद गाँव के घूरे पर खड़ा होकर निंदा करता है।' चेन्नबसव की सारी शिकायतें आप सही मत मानियेगा।"

"हमारा यह कर्त्तव्य है कि हमारे पास ऐसी जो भी बातें आती हैं उसे इस कम्पनी सरकार के आप जैसे मित्रों से निवेदन कर देते हैं। इसी कारण यह बात आपके ध्यान में लायी जा रही है। जब तक हम विवश नहीं हो जाते तब तक हम कोई कदम आगे नहीं रखते। यही कम्पनी बहादुर का अभिप्राय है। भारत के गवर्नर जनरल तथा मद्रास गवर्नर की यही आज्ञा है। कैसी भी शिकायत क्यों न हो, हम न उसे सच कहते हैं और न झूठ, हम तटस्थ रहते हैं। आप हमारे मित्र हैं, इसलिए आपका ध्यान आकर्षित किया जा रहा है।"

"आपके कहने में कोई गलती नहीं है। वास्तव में शिकायत भेजने वालों को अक्ल नहीं है। आकर अगर बसव से कह देते तो वही ठीक कर देता है। वह बुड्ढा आया, वसीका नहीं मिल रहा है। हमने दिला दिया। लोग आते भी नहीं, कहते भी नहीं। राहगीरों से शिकायत करते हैं।"

"बात राहगीरों की नहीं है। आपका पद ऊँचा है। आपके सामने आकर उन्हें बात करने में डर लगता है। आपके मित्र होने के नाते वे हमसे आसानी से मिल सकते हैं। वे यह सोचकर हमारे पास आते हैं कि आप हमारी कही बात को टालेंगे नहीं।"

"इसमें कोई बात नहीं है। छोड़िए। बसव में और आपमें क्या फर्क है?"

"आपकी प्रजा में से किसी ने हमारी प्रजा के द्वारा यह शिकायत पहुँचाई है कि उसका कुछ रुपया आपके यहाँ से दिया जाना है जो नहीं दिया गया है। हमें विश्वास है कि ऐसी कोई बात न होगी।"

"राजमहल के प्रबन्ध की हज़ारों बातें रहती हैं। आज उधार कल नगद। लाने वाले लाते हैं। राजमहल को डुबाने के लिए सदाव्रत और भगवान् की पूजा ही काफी है। इसके अतिरिक्त हमारे लाखों रुपये कम्पनी सरकार हड़प करके डकार भी लेती है। ऐसे साहूकारों के हाथ पकड़कर हम कर्जदार नहीं तो और क्या होंगे?"

"तो आप दोड्डवीरराज की बेटी के लिए रखी गयी निधि की बात कर रहे हैं।"

"जी हाँ।"

"उस पर बातचीत हो रही है। फैसला होते ही आपको वह मिल जायेगी।"

"जल्दी से दिलवा दीजिए न!"

"कई कारणों से असन्तुष्ट होकर कई लोग हम से यह कह रहे हैं कि हम आपसे कहें कि गद्दी दूसरों के लिए छोड़ दीजिए। हमारे ऊपर के अधिकारियों ने यह निश्चय किया है कि अब ऐसा करने का कोई कारण नहीं दीखता।"

"आपके उच्च अधिकारी समझदार हैं। वास्तव में उनका यही कहना उचित होगा कि इस बात का उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है।"

"हमने ऐसा ही कहा है। पर लगता है, जनता यह समझती है कि हमने मैसूर के राजा को अधिकार से हटाया, उसी प्रकार कोडग के राजा को भी हटा सकते हैं।"

"मैसूर के राजा की बात कुछ और थी। गद्दी पर बिठाने वाले गद्दी से उतार भी सकते हैं। हमें कम्पनी के बाप ने इस गद्दी पर लाकर नहीं बिठाया।"

"यह बात लोग नहीं समझते। वे जानते हैं कि हम अगर बिठा नहीं सकते हैं तो उतार तो सकते हैं। वे इतना ही सोचते हैं कि मुसीबत में कौन उनकी रक्षा कर सकता है। वह यह नहीं सोचते कि दूसरों से पूछना चाहिए या नहीं। इसीलिए कम्पनी कई बार दुविधा में पड़ जाती है। कष्ट में फँसे लोगों को देख उन्हें दया आती है, आपकी दोस्ती का लिहाज भी करना पड़ता है। समझ में नहीं आता कि क्या किया जाये।"

"जन्म देने वाले बाप से ज्यादा बाहर वालों को तकलीफ होती है। अपने देश की जनता को हम सोने-चांदी के समान मानते हैं। आपकी कम्पनी को इस बात में आने की जरूरत नहीं है।"

"ठीक है। हम आपसे जो बात कर रहे हैं उसकी रिपोर्ट अपने उच्च अधिकारियों को दे देंगे और साथ में आपकी यह बात भी कह देंगे। अब एक ही बात रह गई है कि हमें आपके राज्य से आई हुई अर्जियों से ही पता चला है कि आपका एक भाई भी है जिसे राजा बनना था। उसे हटाकर आप राजा बने। यदि आप गद्दी छोड़कर उसे गद्दी दे दें तो यह न्याय होगा। आपको राज्य-भार का कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा और जनता को भी तसल्ली होगी। परन्तु हमें आज तक पता नहीं था कि आपका कोई भाई भी है।"

"यह तो हमें भी पता नहीं है। अर्जी देने और अर्जी सुनने वाले हमारे भाई को तो क्या बाप को भी पैदा कर सकते हैं।"

साहब हँस पड़ा। "आपकी बात बड़ी मजेदार है, महाराज। आप सचमुच कितने चतुर हैं, यह ऐसे मौकों पर ही पता चलता है। आपने कृपा करके हमसे बातचीत करना स्वीकार किया। हम आपके बड़े आभारी हैं। मैं यह कहना चाहूँगा कि बातचीत बड़े ही स्नेहपूर्ण ढंग से हुई है। आपने हमें और हमारे साथियों को बुलाकर जो आतिथ्य दिया उसे हम कभी नहीं भूलेंगे। जाने से पहले फिर यह बात निवेदन करता हूँ।"

"अच्छा।"

"ये बातें पत्र द्वारा इतने स्पष्ट रूप से नहीं हो सकती थीं। इसीलिए आपसे मुलाकात होने से इस अवसर का हमने स्वागत किया। अब आपको और कष्ट नहीं दूंगा। अगर आज्ञा हो तो कल-परसों हम आपके मन्त्री और दामाद से भी दो बातें करना चाहेंगे।"

"कोई बात नहीं, कीजिये। आप सबके आने से हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। सम्मान देना और सम्मान पाना यही हमारा सिद्धान्त है। हम सदा सम्मान देने को तैयार हैं। आप भी हमें इसी प्रकार सम्मान से देखिये। अगर सब ठीक-ठाक रहे तो हम बड़प्पन में अपने लामा से कम नहीं।"

साहब उठ खड़ा हुआ। बाहर खड़ा बसव सेवक के हाथ फूल-फलों की थालियाँ लिवा लाया। साहब को स्वयं हार पहनाया और उसे देने को राजा के हाथ में गुलदस्ता दिया। राजा ने गुलदस्ता साहब के हाथ में देकर इत्र लगाया। साहब उससे हाथ मिलाकर विदा ले बाहर चला आया।

88

इसके तीसरे दिन साहब ने सुबह-सुबह बोपण्णा, लक्ष्मीनारायण और चेन्नबसव को बुलाकर बातचीत की। "बाहर के लोगों को इस प्रकार अपने लोगों से मिलने देना ठीक नहीं होगा।" बसव ने राजा को सूचना दी।

राजा बोला, "मिलने दो, जानकर ये क्या कर लेंगे? न मिलने दें तो सोचेंगे कि मालूम नहीं क्या छिपा रहे हैं। उनसे मिलकर हमारा बिगाड़ क्या लेंगे।"

साहब को लक्ष्मीनारायण और बोपण्णा से अलग-अलग बात करने की इच्छा थी। इसके लिए न तो बोपण्णा तैयार हुआ और न लक्ष्मीनारायण। अत. दोनों से एक-साथ ही मिलना पड़ा।

इनके आने पर कुशलक्षेम पूछकर सम्मानपूर्वक बिठाकर साहब बोला, "मन्त्री-पद पर रहकर आप दोनों का एक मत होना बड़ी प्रसन्नता की बात है। अधिकारी वर्ग का इस प्रकार एकमत होने से बढ़कर अच्छी बात राज्य के लिए और क्या हो सकती है।"

बोपण्णा बोला, "पण्डितजी हमारे बुजुर्ग हैं, वे हमारी रक्षा करना जानते हैं। हम उनके सदा साथ हैं। हममें भेदभाव का कोई कारण ही नहीं है।"

"बड़ी खुशी की बात है। शायद आपको यह पता न होगा कि हम आपसे सीधे क्यों मिलना चाहते थे। हमारे पास इधर कुछ शिकायतें आयी हैं। उनके बारे में हमने मोटे तौर से आपके महाराज साहब से निवेदन कर दिया है। परन्तु कुछ बातों को विस्तार से जानने के लिए अधिकारियों से बात करना जरूरी है।

क्योंकि महाराज साहब को ऐसी बातों का विस्तार से पता भी नहीं रहता। इस-लिए हमने आपके महाराज से उचित ढंग से निवेदन करके उनकी आज्ञा लेकर आपको बुलाया है।"

बोपण्णा : "महाराजा साहब के वैयक्तिक मन्त्री ने यह बात हमें बतायी है।"

"महाराजा साहब के यह वैयक्तिक मन्त्री बसवय्याजी छोटी जाति के हैं। महाराज के दुर्भाग्य से ऐसा व्यक्ति उनका मन्त्री बन गया है। राजा की बुरी आदतों का यही प्रेरक और पोषक है। यह बात कइयों के द्वारा हम तक पहुँची है। इसमें कितनी सच्चाई है, यह हम जानना चाहते हैं।"

बोपण्णा ने लक्ष्मीनारायण की ओर मुड़कर पूछा, "क्या कहते हैं पण्डित-जी ?" लक्ष्मीनारायण ने कहा, "पता लगाकर क्या किया जायेगा ?"

बोपण्णा ने साहब से पूछा, "यह जानकर आप क्या कीजियेगा ?"

साहब एक तरह की हँसी से उनकी ओर देखकर बोला, "हमारी इच्छा यह जानने की है कि इस बात में कितना सत्य और कितना झूठ है।"

बोपण्णा, "अगर कहा जाये 'सच है' तो क्या कीजियेगा ?"

"तो हम इसकी रिपोर्ट अपने उच्च अधिकारियों को देंगे।"

"वे क्या करेंगे ?"

"वे क्या करेंगे हम कह नहीं सकते।"

"आप यह तो नहीं कह सकते कि ऐसे ही करेंगे। फिर भी ऐसा कर सकते हैं ऐसा नहीं, यह तो बता सकते हैं। रास्ते तो कई हैं न।"

"यह भी कह सकना कठिन है।"

"आपके उच्च अधिकारी क्या-क्या कर सकते हैं ? यह जाने बिना हम अपना मत देकर झूठे जाल में फँसना नहीं चाहते।"

"हमने किसी का बुरा नहीं सोचा। आप शासन चला रहे हैं। हमें यह पता है आप पर लोगों को बड़ा विश्वास है। उनकी सारी शिकायतें महाराज और उनके वैयक्तिक मन्त्री बसवय्याजी के बारे में हैं। हम बाहरी आदमी हैं। हमें यही अच्छा लगता है कि किसी पर कोई शिकायत न रहे। जनता सुखी रहे, शासन ठीक रहे। इससे ज्यादा हमें और क्या चाहिए।"

"आप हमसे ऐसी-ऐसी बातें पूछेंगे, क्या यह बात आपने महाराज को कही थी ?"

"हमने उन्हें बताया है कि हम शासन सम्बन्धी बातें पूछेंगे ?"

"हमारे महाराज आपकी कम्पनी के मित्र हैं और मित्र के शासन के बारे में इस तरह की बातों की चर्चा उठनी ही नहीं चाहिए।"

"बात बिल्कुल ठीक है। हमें आपके शासन के बारे में जानने की जरूरत नहीं। परन्तु यदि यहाँ अशान्ति हो तो उसका प्रभाव सीमा पार के क्षेत्रों पर भी

पड़ता है। कोडग में चलने वाली खराब हवा का असर हमारे शासित प्रान्तों पर भी पड़ सकता है। वहाँ की शान्ति के लिए यहाँ भी सब ठीक-ठाक होना ही चाहिए। हमें यही चिन्ता है।"

"यदि वास्तव में यहाँ के शासन में गड़बडी हो तो आप क्या करेंगे ?"

"यदि वास्तव मे परिस्थिति खराब हो जाये तो हमारे उच्च अधिकारी क्या करेंगे यह नही कहा जा सकता। उनमें ऐसा विचार रखने वाले भी हैं कि मैसूर का शासन जैसे अपने हाथ में ले लिया गया था उसी तरह कोडग के शासन को भी थोड़े समय के लिए ले लेना अच्छा रहेगा। कम्पनी सरकार को भूमि की इच्छा नही। अभी तक जितना हाथ में है उसका शासन चलाना ही काफी है। वे लोग भी लाचार होकर हमारे अधीन हुए। ये लोग भी लाचार होकर ऐसा कर सकते हैं। इतना भार हम कैसे उठा सकेंगे इस बात में कुछ लोगों को सन्देह है। कुछ ऐसा भी कहते हैं, 'चाहे हमें सुख हो या दुख, पर जनता की भलाई मुख्य है।' अतः कोडग की प्रजा सुखी रहे इससे कम्पनी को कोई दु ख नही परन्तु कोडग की जनता दुखी होकर शिकायत करे तो कैसे सहन किया जा सकता है ? कम्पनी को इसी बात की चिन्ता है।"

"बोपण्णा ने धीमे-से लक्ष्मीनारायण से कहा, "पण्डितजी, 'अच्छा' कहकर बात समाप्त करता हूँ।"

लक्ष्मीनारायणय्या बोला, "उनसे कहिए यदि जनता की भलाई हो तो हम आवश्यक सहायता माँग लेंगे। पर कम्पनी कोडग को दूसरा मैसूर न समझे।"

बोपण्णा ने साहब से यह बात कह दी। साहब बोला, "आप निःसंकोच होकर जो इतनी बात कह रहे हैं वह हमें बड़ी पसन्द आयी। सभी मन्त्री लोग यदि इसी प्रकार व्यवहार करें तो राज्य का कार्य कितना सुचारु रूप से चले। यह बात नही है कि कम्पनी ने मैसूर मे कुछ जबर्दस्ती की। आज भी आप जैसे दक्ष तथा सत्यवादी मन्त्री यदि शासन की जिम्मेदारी लेने को तैयार हो और राजा यह वचन दे कि मन्त्रियों की सलाह को यह मानेगा तो कम्पनी कल ही राज्य उस राजा को लौटाकर उन मन्त्रियो के अधिकार में दे देगी। आप दोनों एक स्वर से यदि यह वचन दें कि जनता को कोई कष्ट दिये बिना शासन चलायेंगे तो कम्पनी सरकार यहाँ की किसी बात मे दखल नही देगी। हम तो यही कहेंगे कि आप अपनी सुविधा से राज्य चलाइये। कम्पनी को सिर्फ इसी बात का डर है कि यहाँ की अशान्ति के परिणामस्वरूप हमारे अधीनस्थ समीपवर्ती प्रदेशों मे भी अशान्ति फैल सकती है।"

बोपण्णा ने लक्ष्मीनारायण से कहा, "मैं इनसे यही कहता हूँ कि अवसर आने पर आपको सूचित करेंगे।"

लक्ष्मीनारायण ने सहमति में सिर हिलाया।

बोपण्णा साहब से बोला, "फिलहाल कोडग में ऐसी कोई स्थिति नहीं है जैसा कि आपने संकेत दिया। यदि ऐसी कोई बात हो जाये और जनता आपसे प्रार्थना करे तो आप सहायता दे सकते हैं। पर हम इस बात पर सहमति नहीं दे सकते हैं कि आप अपने-आप ही इस विषय में दखल दें। इस बारे में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रहना चाहिए।"

"आपकी बात हमें फिर पसन्द आयी। इस प्रकार की निष्ठा और दृढ़ता एक जाति की रक्षा कर सकती है। हमसे इतने निष्कपट रूप से बात करने के लिए हमारा आभार स्वीकार कीजिए।"

यह कह उसने द्वार पर खड़े सेवक को इशारा किया। उसके द्वारा लाये पान-सुपारी, फूल-गुलदस्ते की थाली अपने पास रखकर पहले लक्ष्मीनारायणय्या को और बाद में बोपण्णा को पान-सुपारी तथा गुलदस्ते भेंट किये। दोनों मंत्री प्रसन्नता से सब स्वीकार कर उसे हाथ जोड़कर नमस्कार करके उनकी आज्ञा लेकर बाहर आ गये।

89

जिस दिन चेन्नबसव आया उस दिन साहब ने उसका राज्योचित मर्यादा से स्वागत किया और अत्यन्त आत्मीयता से उससे बातें कीं। "हमने सुना है कि आप कोडग के उच्च वंश से सम्बन्ध रखते हैं। इसीलिए महाराजा लिंगराज ने खोजकर आप ही को दामाद बनाया।"

"जी हां साहब, हमारा वंश कोडगियों में सबसे ऊंचा है। मन्त्री बोपण्णा से भी हमारा वंश ऊंचा है।"

"यही बात हमने भी सुनी है। जबसे हम बेंगलूर आये, तभी से हमें आपसे मिलने की इच्छा थी, वह अब पूरी हुई। यह हमारे लिए बड़ी खुशी की बात है।"

"हमें भी आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई साहब। आपसे पहले के बड़े साहब से हम मिल चुके हैं। उन्हें हमने दो-एक बार अर्जी भी भेजी थी। आपको भी एक ऐसी ही चिट्ठी भेजी थी।"

"जी हां, आपके लिखे प्रत्येक पत्र को हमने ध्यान से पढ़ा है। हमें यह भी पता चला है कि आप में और राजा साहब में कुछ मनमुटाव है। रिस्तेदारी में थोड़ी-बहुत ऊंच-नीच होती ही रहती है। अब तो सब ठीक हो गया है यह प्रसन्नता की बात है।"

'क्या ठीक हो गया, साहब। हमने आपको जो पत्र लिखा था उसके कारण आपने उनसे कुछ कहा होगा। वे उनसे घबरा गये इसीलिए अपनी बहिन को हमारे पास भेज दिया। सब कहां ठीक हो गया?"

"ऐसा है तो और कौन-सी बात रह गयी है? वैसे हम बाहर के ही हैं। आपके घर की बात में टाँग अड़ाना हमारे लिए उचित नहीं। परन्तु राजा हमारे मित्र हैं। उनके दामाद होने के नाते आप भी हमारे लिए मान्य हैं। इस कारण दोनों पक्षों के हित में एक मित्र की भाँति यदि हम कुछ सहायता कर सकें तो उसके लिए तैयार हैं। दोस्तों मे मनमुटाव रहे यह हमें अच्छा नहीं लगता। हमें पता है कि उस वैमनस्य को ठीक करना हमारा कर्त्तव्य है, चाहे उसमे कितना भी कष्ट क्यों न हो।"

"छोड़िये साहब, यह किसी के हाथ से ठीक होने वाला रोग नहीं है। मेरा और राजा का एक होना सपने की-सी बात है।"

"आपकी यह निराशा देख हमे दुख होता है। ऐसा क्या झगड़ा है, हमें बता सकते हैं तो बताइये।"

"बताने ही तो आये हैं, सुनिये। पहली बात तो यह कि हमारे ससुर ने बेटी को गहने दिये थे, उसमें आधे इन्होंने महल में ही रख लिये हैं। हमें नहीं दिये। कहते हैं, हम उन्हें बदनाम करते हैं, इसलिए नहीं देंगे।"

"ठीक।"

"पिता ने पुत्री को अप्पगोलं के आस-पास के दस गाँव जागीर मे दिये थे। उनके रहने तक चार दिन यह व्यवस्था चली। उनकी आँख बन्द होते ही जागीर खत्म हो गयी। राजा की बेटी और दामाद दोनों साधारण जमींदार मात्र रह गए। दस साल ऐसे ही बीत गए। साल भर मे मिलने वाले हज़ार रुपये महल को ही गए।"

"समझा।"

पहले चार और अब के दो वर्ष बहिन को महल मे ही जेल मे रहना पड़ा। राजा नाम भर के शिवाचारी हैं। उसके किसी भी नियम का उन्हे पता नहीं। शिवाचार में और इनके आचरण मे बड़ा अन्तर है। कहना कठिन है कि पीकर उन्होंने अपनी बहिन के साथ कैसा व्यवहार किया होगा। उन्हें तो न बहिन चाहिए और न बहिन का घरवाला। हमारे भी अपने आदमी है। इसलिए अब तक हम बचे है। नहीं तो हम इस जमीन पर चलते-फिरते भी नजर न आते।"

"आपने जैसा कहा उससे पता लगता है कि यह परिस्थिति ठीक होना कठिन ही है। अब आपने आगे क्या सोचा है?"

"आपको विचार बताने से पहले हम आपसे सहायता करने का वचन चाहेंगे। कहीं ऐसा न हो कि हम आप पर विश्वास करके आपसे अपने मन की बात कह दें और राजा की मित्रता बनाये रखने के लिए आप उन्हे वह सब बता दें। ऐसा हुआ तो छाती तक चढा विष सिर पर चढ़ जायेगा। और, हम बरबाद हो जायेंगे।"

"आप इस बात की तिल भर शंका न करें। हम जब पद ग्रहण करते हैं तब एक शपथ लेते हैं—पद पर रहते जिस बात का हमें पता चलेगा वह हम तक ही रहेगी, आगे नहीं जायेगी। विरोधी होने वाले को भी हम ऐसी बात नहीं बताते। इस ढंग से अगर हम चलें तो जनता के कष्ट में सहायता कैसे पहुंचा सकते हैं? आपने अब तक जो बातें कही हैं और जो कहेंगे वे सब हमारे और आपके बीच ही रहेंगी। हमारे मातहत व्यक्तियों ने भी गोपनीयता की शपथ ली है। हमारे बीच हुई बात तनिक भी बाहर जाये तो यह लोग एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर पायेंगे। यह बात आप निश्चित रूप से याद रखिए।"

"अच्छी बात है साहब, तो बताता हूँ, सुनिए। हमारे ससुर ने अपने इस बेटे को गद्दी पर बिठाना चाहा तो जनता ने इन्कार किया। उनका कहना था राजा की सन्तान ही राजा होनी चाहिए तो बेटी को गद्दी दीजिये। भाई के रहते बहिन गद्दी पर बैठे यह बात उन्हें नहीं जंची। तब लोगों को एकत्रित कर उनसे बात करके यह फैसला किया कि एकाध साल देखिए, बाद में आवश्यकता हो तो मेरी बेटी को रानी बना दीजियेगा। इसे लोगों ने स्वीकार किया। इतने में उनकी आँखें बन्द हो गयीं। यह स्त्री होकर पैदा होने के बावजूद मेरी बराबरी में आकर मेरी गद्दी छुड़वाने वाली हो गयी, यह सोचकर भाई शुरू से ही बहिन से खार खाये बैठा है। उसके खार खाने का हम पर क्या असर? उसे जलन हुई तो हो। अब क्या हो रहा है? जनता तंग आ गयी है, राजा मर भी जाये तो उन्हें दुख न होगा। इससे छुड़वाकर बहिन रानी हो तो सब लोग अच्छा ही कहेंगे। परन्तु देश में रहकर झगड़ा करने की हमें इच्छा नहीं है। चार आदमी इधर के और चार आदमी उधर के मरेंगे। बेकार में खून की नदी बहाने से क्या लाभ? इसीलिए हम आपसे यह बात कह रहे हैं। कोडग की जनता की इच्छा है कि इस राजा का राज्य खतम हो जाये। कम्पनी सरकार शक्तिशाली है। मैसूर आपके हाथ में है। आप राजा से कहिए कि 'तुम चौदह वर्ष राज्य कर चुके हो। गद्दी छोड़ दो। तुम्हारे पिता की इच्छानुसार कुछ दिन तुम्हारी बहिन भी राज्य करे।' यह राजा आपकी बात नहीं टाल सकता। गद्दी छोड़ देगा। उसकी बहिन गद्दी पर बैठेगी और आप लोगों का भी ध्यान रखेगी। जैसे दोड्डवीरराज तीस वर्ष तक आपके दाहिने हाथ की तरह रहे वैसे यह भी रहेगी। आपके हाथ में जैसे मैसूर वैसे ही कोडग। आप उन्हें गद्दी पर बिठाकर देख लीजिए।"

आपने बड़ी स्पष्टता तथा साहस से बात की है, हमें इस बात की बड़ी खुशी है। परन्तु हमें इस बारे में अभी कुछ और भी सोचना है। आपकी पत्नी को रानी बनाने की सूचना हमारी ओर से अगर राजा को मिले तो वे आपको हानि पहुँचा सकते हैं न।"

"हाँ, यह हो सकता है।"

"इसे कैसे रोक सकते हैं ?"

"हमारे भी आदमी हैं, साहब। इतना डरने की बात नही।"

"आप साहसी हैं, इस बात में सन्देह नही है। पर आप ही ने कहा न, बेकार का रक्तपात नही होना चाहिए। हमसे सूचना पाते ही वे आपको दण्ड देने आयें तो आपको उसे रोकना तो पड़ेगा। इसमे झगड़ा होगा, सिर कटेंगे। यह बात आसानी से निबटेगी नही।"

"आपकी सूचना क्या होगी ?"

"हम तिल भर भी बताने वाले नही। आप पास ही रहेंगे तो वह आपको दण्ड देने का प्रयास कर सकते हैं। इससे बचने के लिए क्या करना चाहिए यह बात ज़रा सोचिए।"

"पास रहना ही नही चाहिए।'

"तो क्या करेंगे ?"

"एकाध महीने कोडग छोड़कर बाहर जा सकते हैं।"

"आप निर्भय होकर कहाँ रह सकते हैं ? सोचा है ?"

"हम नजनगूड हो आने की सोच रहे है।"

"नंजनगूड में क्या पर्याप्त रक्षा का प्रबन्ध हो सकेगा ?"

"सुरक्षा की बात हो तो हम बंगलूर आ सकते हैं ?"

"अवश्य आइए। हम आपकी देखभाल करेंगे। वहाँ रहकर आपको निश्चित कार्यक्रम को पूरा करने में भी सुविधा होगी।"

"यह सच है, साहब ?"

"यह सब सोच-विचार कर आप जो फैसला करेंगे वह हमें बता दीजियेगा। अभी चार-छह रोज तो हम यहाँ अतिथि है। हमें अपने यहाँ पहुँचने मे अभी कुछ दिन लगेंगे। आपको हमसे जो भी मदद चाहिए, हम खुशी से देंगे।"

"बहुत अच्छा साहब।"

"इस समय हम दोनो में जो बातें हुई उसको जैसे हम गुप्त रखेंगे वैसे ही आप भी गुप्त रखेंगे, इसका ध्यान रखें।"

"रखेंगे।"

"कोडग की जनता का मनचाहा आदमी कोडग का राजा बने और कोडग खुशहाल रहे यही हमारी इच्छा है। बिना किसी झगडे और असन्तोष के यह काम हो जाये, यही हम चाहते है। इसे पूरा करने का काम आपके जिम्मे है।"

"अच्छा साहब।"

साहब ने सेवक को संकेत करके ताम्बूल और सुगन्धित इत्रादि मँगाकर स्वय अपने हाथ से चेन्नबसवय्या को देकर बडे आदर से उसे विदा दी। चेन्नबसवय्या ने घर लौटते हुए सोचा कि कुछ ही दिनों में मेरी पत्नी गद्दी पर बैठेगी और

उनके नाम से मैं कोडग पर शासन कर सकूंगा।

90

पांचवें दिन राजभवन में कैलू का त्योहार था। कोडगियों के हिसाब से कैलू आयुध पूजा के लिए मनाया जाने वाला त्योहार है। अलग-अलग प्रदेश में यह अलग-अलग दिन मनाया जाता है। राजभवन में दस विभिन्न प्रदेशों के दक्ष लोगों को बुलाकर बाहरी आंगन में अन्य उत्सवों की भांति इसे भी मनाया जाता था।

सदा की भांति दसों प्रदेशों से आदमी मडकेरीनाड के मन्दिर में एकत्रित हुए और पण्डित से पूछकर आयुध पूजा मुहूर्त निश्चित किया। कौन-सी दिशा में शिकार करना चाहिए, किस नक्षत्र में जन्मे व्यक्ति को वह फलेगा, शमी वृक्ष को किस मुहूर्त में काटा जाये, आदि बातों का पण्डित से पूछकर निश्चय किया।

प्रातः होते ही हर किसी ने बन्दूक, तलवार, कटार, बर्छी, भाला, जो भी घर में आयुध था उनको निकाल साफ किया, धोया-मांजा। किसी ने इन्हें घर के कोने में और किसी ने धान-अनाज के भण्डार में रख दिया।

खाना तैयार होते ही सबसे पहले आयुधों को नैवेद्य चढ़ाया गया। वीर बालकों ने अपने आयुधों के सामने खड़े हो धूप-दीप किया। उन्हें चन्दन के टीके लगाये। अक्षत केले के पत्तों पर भोजन परोसकर आयुध देवता को अर्पण किया।

इसके बाद ही घर के लोगों को खाना मिला। कुछ आराम करके वीर नये वस्त्र धारण कर राजभवन के बाहरी आंगन में आयुधों के सम्मुख आकर खड़े हुए। हर घर के बड़ों ने एक-एक बन्दूक लेकर पूर्व प्रचलित वाक्यों का उच्चारण करते हुए अपने हाथ से घर में आयु में सबसे बड़े को पकड़ाया। उसने उनके चरण-स्पर्श तथा प्रणाम करके बन्दूक हाथ में ली। बाद में आयु के अनुसार शेष लोगों ने भी अपने-अपने बड़ों से एक-एक बन्दूक पायी। सौ गज की दूरी पर एक रस्सी थी। उस पर एक-एक गज के अन्तर पर बीस नारियल लटका दिये गये थे। बन्दूकचियों को इन नारियलों पर निशाना लगाना था। यह स्पर्धा बड़ी अच्छी रही।

सौ में से नब्बे लोगों ने सही निशाने लगाये। जो सही न लगा पाये उनमें या तो कम अभ्यास वाले बच्चे थे या बहुत उमर वाले बुड्ढे।

उनमें एक जो अब भी ज्यादा बुड्ढा नहीं था लड़कों की जबरदस्ती से बन्दूक उठाकर निशाना लगाने आया और बोला, "अरे लड़को, तुम मेरा मखौल उड़ाना चाहते हो? तुम लोग कहते हो कि शेर मारा था, जरा नारियल मारकर दिखा दे। ऐसा मत कहना। तुम्हारी उमर में मैं भी इस तरह बुड्ढों का मजाक उड़ाया करता था। सूखे पत्तों को देखकर कोंपल हँसा करती है।"

बन्दूक उठाते समय कांपते हाथों वाले उत्तय्या ने जब संभलकर निशाना लगाते हुए बन्दूक के हत्थे को छाती से सटाया तो वह फौलाद के सांचे में ढाली गई मूर्ति के सदृश्य दिखाई देने लगा। उसने तीन बार निशाना लगाकर अलग-अलग नारियल तोड़े। इस पर उसके पीछे खड़ी जनता ने और दाईं ओर खड़े राजमहल के लोगों व अतिथियों ने उसकी दक्षता पर जयघोष किया। बुड्ढा, "यह मूछें दिखावे की नहीं बढ़ायीं, मैं पुराना हो गया हूं, बन्दूक की तरह," कहकर हँस पड़ा। लड़के भी हँस पड़े। "देखो तुम्हारी बन्दूक मेरी बन्दूक जैसी अच्छी नहीं है," कहकर बुड्ढे ने पास खड़े एक जवान से बन्दूक लेकर बिना निशाना लगाये ही दो नारियलों के बीचों बीच मारकर बन्दूक लौटा दी। उसके खेल को देखकर जब जनता हँस रही थी तब वह बोला, "नजर न लग जाये इसलिए ऐसा भी निशाना लगाना चाहिए। अगर सारे निशाने सही लगे तो नजर लग जायेगी और मेरे जैसे बुड्ढे हो जाओगे। बाल सफेद हो जायेंगे। ध्यान रखना," यह कहकर स्वयं अपनी बात पर आप ही खुश होता हुआ फिर अपने साथी वृद्धों में आ मिला।

दुभाषिये ने बसव के पास खड़े होकर सब समझकर अतिथियों को सारा खेल समझाया। बड़े साहब ने कहा, "यह बात बड़ी अच्छी है कि बड़े छोटों का ध्यान रखें और छोटे बड़ों को साथ लेकर चलें।" उत्तय्या तक्क की भी उसने प्रशंसा की।

इसके बाद सौ गज के अन्तर पर दो रस्से बांधे गए। एक रस्सी के पास खड़े होकर दूसरी की ओर भागने की प्रतियोगिता हुई। फिर दूर तक गोला फेंकने का खेल हुआ। फिर लाठी चलाने की होड़ हुई। सभी प्रतियोगिताओं में सबसे अधिक जयघोषों का अधिकारी गुल्म नायक उत्तय्या ही था।

शिकार में उसका कौशल देखकर अतिथि प्रसन्न हुए थे। उसी युवक को अब निशानेबाजी में, गोला फेंकने में, लाठी चलाने आदि में प्रथम देखकर बड़ी प्रशंसा की।

उत्तय्या तक्क बोला, "भैय्या उत्तय्या, तुम इतने दक्ष कैसे हो गये, मालूम है?"

"कहिए बाबा, समझ जाऊँगा।" तरुण ने कहा।

"तुझे मेरा नाम दिया गया है।"

"हां बाबा।"

"इसीलिए तो। नहीं तो इतना अच्छा निशाना लगा नहीं सकते थे।"

इनके इस हँसी-मजाक का मतलब भी अतिथियों को बताया गया तो बड़े साहब ने बसव से कहा, "यह वृद्ध और तरुण दोनों ही बड़े निपुण हैं और साथ ही सज्जन भी। इन्हें हम कुछ इनाम देना चाहते हैं। क्या दे सकते हैं? राजा से

जरा पूछ लीजिए।

जब वकब ने राजा से यह बात कही तब राजा बड़े असन्तोष से बोला, "इन रांड के ने ऐसा क्या कारनामा कर दिखाया। ये दोनों के दोनों मस्त सांड हैं। दोनों को चर्बी चढ़ी है।"

वकब ने राजा से कहा, 'दे देने दीजिए, मालिक। दूसरे क्यों कहें कि हमने मना किया।"

राजा ने उससे कहा, "जो चाहे वो करें, हमारी बला से।"

साहब ने उसी समय इनाम दिये। इसके बाद बड़े साहब ने पूछा, "हमारे आदमियों की निशानेबाजी भी क्या महाराज थोड़ा देख सकेंगे?" राजा बोला, "जरूर"। बड़े साहब ने दो बार निशाना लगाया। एक बार तो नारियल को लगा, दूसरी बार चूक गया। हाकर तथा पार्कर ने भी दो-दो बार निशाने लगाये। एक-एक लगा और एक-एक चूक गया। कप्तान साहब ने तीन बार निशाना लगाया। तीनों बार सफल रहा। सबने स्वीकार किया कि वह कुशल निशानेबाज है।

इनके बाद कोडग के तरुणों ने अखाड़े में जोर-आजमाई की। जोड़ों-जोड़ों में आकर पांच-पांच मिनट के लिए इनकी कुश्ती हुई। यह देखने में बड़ी अच्छी लगी। इनकी कुश्ती में हार-जीत मुख्य बात न थी बल्कि दांव-पेंच ही मुख्य था। एक-दूसरे को दबोचकर गिराने पर भी अखाड़े से निकलते हुए एक-दूसरे का हाथ पकड़कर निकलते थे। यह बात बड़े साहब को बहुत पसन्द आयी।

कोडगियों को इस बात की बड़ी प्रसन्नता हुई कि गोरे लोगों ने उन्हें पसन्द किया। शेष जनता को भी इस बात का गर्व ही रहा कि विदेशियों ने यहां के लोगों को कुशल माना। जो भी हो, बाकी सब कार्यक्रमों की अपेक्षा अतिथियों को कैलू के त्योहार का यह कार्यक्रम अधिक पसन्द आया और उनसे वे सन्तुष्ट भी हुए।

91

उस दिन रात को प्रीति भोज था। जब अतिथि आये तब रानी ने अपनी बेटी समेत राजा की बैठक के द्वार पर उनका स्वागत किया। बैठक में एक ओर अंग्रेजी ढंग से दो मेजें लगा उनके चारों ओर कुर्सियां लगाकर खाने का प्रबन्ध किया गया था। रानी ने अतिथियों को बैठने के लिए कहकर, जहां स्त्रियां बैठी थीं वहां जाकर थोड़ी देर बैठकर, दुभाषिये के द्वारा राजघराने की तरफ से उनका स्वागत किया। तब तक राजा पहुंच गया। अतिथियों की देखभाल करने के लिए उसे वहां छोड़कर, बेटी को थोड़ी देर पिता के साथ रहने के बाद भीतर आने को कहकर वह अन्दर चली गयी।

थोड़ी देर अतिथि जन शिकार और खेल के बारे में बातें करते रहे। पार्कर ने राजा की ओर देखकर पूछा, "सुना है आप पिस्तौल से बड़ा अच्छा निशाना लगाते हैं।"

राजा बोला, "वह सब पुरानी कहानी हो गयी, जवानी में हमने दो सौ हाथी मारे और दो सौ पकड़े थे।"

सबको बहुत आश्चर्य हुआ। लूसी ने पूछा, "आप भी तो थोड़ी दक्षता दिखाइए न!"

राजा ने थोड़ी दूर पर खड़े बसव को देखकर पूछा, "क्यों रे निशाना दिखाऊँ?" बसव बोला, "हाथ में दर्द न हो तो दिखा दीजिए, मालिक।"

राजा ने एक थाल दिखाते हुए बसव से कहा, "वह थाल यहाँ ले आ।" बसव के थाल लाने पर उन्होंने कहा, "यहाँ, यहाँ, कोयले से चार निशान लगा दे और मेरी पिस्तौल में चार कारतूस भरकर ले आ।"

थाली में किनारे के पास-पास तीन तथा बीच में एक गोल निशान कोयले से बनाकर लाया गया। पिस्तौल लाई गयी। राजा ने थाली को दस गज दूरी पर रखने की आज्ञा दी। फिर अपनी कुर्सी को ज़रा पीछे सरकाकर बैठा। तीन मिनट तक निशाना साधकर ज़रा शरीर सिकोड़कर गोली चलाई। गोली ठीक ऊपर के निशान पर जा लगी।

थाल को फिर से ठीक दीवार से सटाने को कहकर राजा ने दूसरी बार दूसरे निशान पर, तीसरी बार बाईं ओर के निशान पर और चौथी बार बीच के निशान पर सही गोली चलायी। अतिथियों के आश्चर्य की सीमा न थी। वीरराज को देखने पर ऐसा प्रतीत नहीं होता था कि उसके हाथों में ऐसी शक्ति और आँखों में ऐसा बढ़िया निशाना भी हो सकता है।

बड़ा साहब बोला, "दिस बीट्स एनीथिंग आई कुड हेव थाट." (यह तो मेरी कल्पना से दूर की बात है।)

राजा बसव से बोला, "क्यों रे कोई जादू-मन्त्र फेरा था, राँड के। चारों के चारों निशाने सही बैठे!" बसव बोला, "वह तो आपके हाथ का जादू-मन्त्र था, मालिक।"

पार्कर ने बड़े साहब से कहा, "लूसी कह रही है कि आज शाम उनके राबिन हुड ने बहुत बढ़िया कुश्ती की थी। हमारे कप्तान साहब को भी कुश्ती का अच्छा अभ्यास है। इन दोनों का जोड़ कराया जाये तो बहुत बढ़िया रहेगा।"

हाकर बोला, "गुल्म उत्तय्या को बुलवाया जाये तो यह प्रबन्ध किया जा सकता है।" बड़े साहब के मानने पर तुरन्त उत्तय्या को बुलवाया गया।

उत्तय्या आया, कुश्ती हुई। कप्तान साहब ने पश्चिमी ढंग से कुश्ती का अभ्यास किया था। उत्तय्या भारतीय दक्षिणी ढंग से सीखा हुआ पहलवान था।

फिर भी कुश्ती बहुत अच्छी रही। राजा ने बसव से कहा, "अरे, उसे कहना कि साहब को चित न करे।" उत्तय्या यह बात समझ गया। उसने अपने को चित्त होने से बचाने भर की ताकत लगायी। कप्तान तथा उत्तय्या दोनों के ही शरीर का गठन देखते ही बनता था। कोई ज्यादा या कम न था। कुश्ती करने का ढंग अलग-अलग ज़रूर था पर जोड़ बराबर का था इसलिए कुश्ती देखने लायक थी।

बड़ा साहब बोला, "अगर महाराजा साहब मान लें तो इन दोनों को एक-एक इनाम दिया जा सकता है।"

"ठीक है।" राजा ने कहा।

"ऐसे अवसरों पर हमारे यहाँ उपस्थित स्त्रियों में से प्रमुख के हाथ से इनाम दिलाने की प्रथा है। अगर आप स्वीकार करें तो महारानी साहिबा अथवा राजकुमारीजी के हाथ से इनाम दिलाया जा सकता है।"

राजा ने कुछ सोचकर कहा, "राजकुमारी ही यह काम करेगी।"

"इसी अवसर पर हम भी महाराज साहब को एक भेंट देना चाहते हैं।"

राजा ने उसकी भी सहमति दे दी। स्त्रियों में से राजकुमारी उठी और उसने उत्तय्या, कप्तान तथा राजा साहब को पारितोषिक दिये। लड़की अभी नादान थी और ऐसे कामों में अभ्यस्त भी न थी। तरुण उसको आकर्षित कर सकते थे। लड़की में उन्हें पारितोषिक देते समय संकोच व लज्जा की भावना थी।

उत्तय्या के मन में बहुत दिन से उसके लिए कुछ उत्सुकता थी। कप्तान ने मन में सोचा यदि इससे विवाह हो तो कितना अच्छा हो! राजा को भी अपनी बेटी का खड़े होने का ढंग और संकोच बड़ा प्यारा लगा।

92

दूसरे दिन प्रातःकाल अतिथियों में से छोटी आयु के लोग राजघराने के गहने आदि देखकर तृप्त हुए।

मडकेरी के राजघराने की आभूषणशाला पहले से ही अपूर्व रत्नों का आगार प्रसिद्ध रही है। हालेरी और होरमले के दोनों वंशों के राजाओं द्वारा अपनी-अपनी रानियों के लिए लूटमार करके एकत्रित किये गये सैकड़ों आभूषण उसमें थे। इनमें से कुछ होरमले घराने के पतन होने पर हालेरी घराने को मिले थे। ऐसे लोग भी थे जो यह जानते थे कि इन गहनों में से कौन-सा गहना कहाँ से आया है। हालेरी वंश जब हैदर से हार गया और उस राजा के पुत्र कैद हो गये तब उस वंश के गहनों की मंजूषा चिनकण्णा शेट्टी के ताक के पास सुरक्षित रखी गयी। दोड्डवीरराज जब राजा बना तब वह उसे मिल गयी। दोड्डवीरराज के शासन में और भी आभूषण उसमें मिला दिये गये। दोड्डवीरराज की बेटी

देवम्माजी के पास अनेक आभूषण थे जो उसने अपने चाचा लिंगराज को नहीं दिये थे, अपने पास ही रख लिये थे। चिक्कवीरराज के राजा बनते ही वे भी राजभण्डार में जमा करा दिये जाने के लिए कहला भेजा। पर वह नहीं मानी। लिंगराज की मृत्यु के बाद राजा ने सभी आभूषण अपने अधिकार में ले लिये।

चिक्कवीर के पिता लिंगराज ने इसकी बहिन देवम्मा को जो गहने दहेज में दिये थे उनमें से अधिकांश को भी बलपूर्वक छीनकर राजमहल में रख लिया।

गहने को पसन्द करने वाले अतिथियों में किसी ने भी यह नहीं सोचा कि ये आभूषण किस-किस के शरीर की शोभा बने और किस-किस के मन में इनके लिए दुराशा उत्पन्न हुई और पहनने वालों में कितनों के इन्होंने प्राण ले लिये।

राजवंश के इन आभूषणों के अतिरिक्त अतिथियों ने रानी तथा राजकुमारी के खुद के आभूषणों को भी देखा और पसन्द किया।

स्वभावतः पुरुषों की अपेक्षा लूसी तथा हेलन गहने देखकर अधिक चकित हुईं, साथ ही प्रसन्न भी। उन्होंने हाकर के कान में धीरे से कहा, "महाराज से कहने पर इन हारों में से एक एक हमें मिल सकेगा ?" हाकर बोला, "तरीके से कहकर देखूंगा, शायद दे दें। अभी जरा चुप रहो।"

उस दिन रात को भोजन के बाद नृत्य का कार्यक्रम था। निश्चित कार्यक्रम समाप्त होने के बाद बड़े साहब अपने शिविर में जाने के लिए अन्य लोगों सहित उठे। हाकर बोला, "महाराजा साहब हमारी तरफ के और दो नृत्य देखना चाहते हैं। लूसी, हेलन और मैं उन नृत्यों को दिखाने के बाद आ सकते हैं।" बड़े साहब ने 'अच्छा' कहा। इसके बाद इनके अतिरिक्त सभी लोग चले गये।

पिछली बार जब ये लोग आये थे तब लूसी और हाकर ने इन नृत्यों का प्रदर्शन किया था। ये अंग्रेजों में प्रचलित ग्रामीण नृत्य थे। इनमें कुछ अश्लीलता का पुट रहता था इसलिए वे इस रुचि के लोगों को बहुत ही भाते थे।

राजा तथा बसव बैठे थे। हाकर-लूसी, हाकर-हेलन तथा लूसी-हेलन ने नृत्य जोड़ों में दो-दो बार नाचकर राजा को प्रसन्न किया।

इन नृत्यों का वर्णन करना उचित न होगा। संक्षेप इतना ही है कि उनमें राजा के सन्तोष का आर-पार न था। जाने से पूर्व हाकर ने बसव के कान में धीरे से कहा, "लूसी और हेलन को यदि महाराज एक-एक गहना दें तो वे बड़ी कृतज्ञ होंगी।" राजा तुरन्त समझ गया कि बात क्या है। वह बोला, "राँडें कितना अच्छी नाचती हैं! हमारे देश की वेश्याएँ इतनी निःसंकोच होकर नहीं नाचतीं। इन्हें बाद में आने को कहो। जो माँगेंगी वह दूँगा।"

छठे दिन पहले से किये प्रबन्ध के अनुसार पादरी मेघलिंग महोदय का सभा में ईसाई मत की श्रेष्ठता को सिद्ध करने के लिए वाद-विवाद हुआ। दीक्षित ने पहले ही इस वाद-विवाद के लिए अपनी अनिच्छा प्रकट कर दी थी। राजा ने उसे नहीं माना था। दीक्षित ने प्रार्थना की थी कि मैसूर से किसी विद्वान को बुलाया जाये तो राजा ने कहा था कि अगली बार देखा जायेगा, इस बार दीक्षितजी ही भाग लें।

सभा के समय बहुत से लोग आकर चारों ओर इकट्ठे हो गये थे। खेल की ही भाँति वाद-विवाद सुनने के लिए भी लोगों में उत्साह था।

सब अतिथियों के आने के बाद राजा भी आया। मेघलिंग और दीक्षित पहले से ही आकर मंच पर आमने-सामने बैठ गये थे। पादरी ने वाद-विवाद शुरू किया।

"हमारा कहना है कि हमारे गुरु ईसा मसीह द्वारा चलाया गया मत आपके मत से श्रेष्ठ है। यह बात अगर आप मान लें तो कोई बहस ही नहीं। आपको इस पर क्या कहना है?"

दीक्षित : "हमने अपने मत के बारे में वाद-विवाद करने का अभ्यास नहीं किया है। आप यदि अपने मत को श्रेष्ठ कहते हैं तो यह आपकी इच्छा है। इसमें हमारी ओर से कोई बाधा नहीं है। हमारा विश्वास है कि हमारा मत श्रेष्ठ है। उसी पर हम चलते हैं। इसमें आपको कोई बाधा नहीं डालनी चाहिए।"

"हमारा मत श्रेष्ठ है, यह कहने का अभिप्राय यह है कि आप से यह बात मनवा कर हम आपको अपने धर्म में दीक्षित करेंगे। आपके लिए यही रास्ता है। आप यदि हमारे मत को स्वीकार कर लें तो सारी जनता भी उसे स्वीकार कर लेगी। ईसा मसीह की कृपा से सबका उद्धार हो सकता है।"

"हम हों या यह जनता हो, किसी को भी अपना रास्ता छोड़कर दूसरा मार्ग पकड़ने की ज़रूरत नहीं। जो-जो जिस-जिस रास्ते पर चल रहा है उसी में उसका उद्धार हो सकता है।"

"लोकेश्वर भगवान् को छोड़ कर आप लोग छोटे-मोटे देवताओं की पूजा करते हैं। इससे आपका उद्धार होना असम्भव है। हमारे प्रभु को मानने से ही आपका उद्धार हो सकेगा।"

"आपने भगवान् को लोकेश्वर कह कर वर्णन किया है। हम भी भगवान् का इसी प्रकार वर्णन करते हैं। भगवान् एक है। परब्रह्म एक ही है। उसका लोग अपनी-अपनी समझ के अनुसार वर्णन करते हैं और अपनी-अपनी भाषा में उसको

नाम देकर पूजा करते हैं। आप चाहे जिस नाम से पूजा करें, सभी उसी लोकेश्वर भगवान् को मिलती है। ऐसा कोई देश नही जहाँ भगवान् नही है। ऐसी कोई भाषा नही जिसे भगवान् नही समझता। सब उसकी सन्तान हैं। वह सबकी रक्षा करता है।"

"ओंकारेश्वर, इगुलप्पा, मंतूरप्पा, करिगांली ये सब एक ही हैं?"

"इसमे कोई गलती नही है। यह सब देखने वालों की भावनाएँ हैं।"

"ओंकारेश्वर को आप केवल फल-फूल चढाते हैं पर दूसरे देवताओं को जीव-बलि देते हैं। ओंकारेश्वर जीव-बलि ग्रहण करते हैं?"

"आदमी जिस वस्तु को पैदा करता है और जिसे खाता है वही भगवान् को अर्पित करता है। भगवान् को भोजन की आवश्यकता नही है। उसके लिए भूख जैसी कोई चीज़ नही है।"

"करिगांली का भक्त ओंकारेश्वर को मांस अर्पित कर सकता है?"

"यदि वह स्वयं पूजा कर रहा हो, कर सकता है।"

"आप उसे छूना स्वीकार नहीं करेंगे?"

"नही।"

"क्यों? आप और वह दोनों एक ही भगवान् की सन्तान हैं, तो भी उसे छूते नही, उसके भोजन को नही छूते हैं। उसकी लायी पूजा की सामग्री को नही छूते और अपने को श्रेष्ठ मानते हैं यह गलत नही?"

"यह व्यवस्था पहले से चली आ रही है। एक धर्म के मानने वाले अनेक तरह से आचरण करते है। आचार विभिन्न रहने से समुदाय भी अलग होने चाहिए।"

"आप ब्राह्मण हैं न?"

"जी हाँ।"

"आप अपने को दूसरी जातियों से श्रेष्ठ मानते हैं न?"

"हम यह नही कहते हैं, वेद कहते हैं, यह बात हमारी जनता ने स्वीकार कर ली है।"

"आप कहते हैं कि आपका जन्म भगवान् के सिर से हुआ है और शूद्र पाद से पैदा हुए हैं।"

"वेदों में यह बात कही गयी है।"

"इसीलिए आप श्रेष्ठ हैं।"

"भगवान् के विराट स्वरूप की कल्पना करके उसके विभिन्न अंगो से विभिन्न प्रकार की वृत्तियों की जीवों से उत्पत्ति की बात वेदों में कही गयी है। वृत्ति श्रेष्ठ रहने से जाति भी श्रेष्ठ मानी गयी है।"

"हमारे मत मे किसी से किसी को श्रेष्ठ नही कहा गया है। कहा गया है कि

सब भगवान् की सन्तान हैं, सभी समान हैं। क्या आपको यही सबसे उचित नहीं लगता है ?"

"आप लोग दूसरे देश के हैं। आपको यही व्यवस्था ठीक है। यह देश कर्म-भूमि है। इस देश में मनुष्य को कैसे चलना चाहिए, कैसे जीवन बिताना चाहिए, कैसे अनेक जन्म लेकर ज्ञान, भक्ति तथा कर्म से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है, इन सबकी व्यवस्था है। हमारे लिए यही व्यवस्था ठीक है।"

"ओंकारेश्वर और करिगोली को आप भगवान् के ही दो रूप मानते हैं न ?"

"ओंकारेश्वर भगवान् हैं, उमादेवी उसकी पत्नी, लोकमाता हैं, काली लोक-माता का संहार रूप है, करिगोली का अर्थ काले रंग की काली देवी है। शास्त्रों में कहा है कि काले रंग की देवी काली है। करिगोली की पूजा ओंकारेश्वर की पत्नी की पूजा है। ओंकारेश्वर की समस्त शक्ति उसकी पत्नी में है। माँ प्रसन्न हों तो पिता स्वतः प्रसन्न हो जाते हैं।"

"भगवान् को एक पत्नी भी चाहिए क्या ?"

"परब्रह्म न स्त्री है न पुरुष। उसके स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। वह संसार की सृष्टि, रक्षा और संहार के लिए तीन रूप धारण करता है। इसी प्रकार तीनों देवताओं के स्वरूपों के साथ शक्तियों की कल्पना की गयी है। नाथ की शक्ति को पत्नी कहा गया है। मानव-मन को समझाने के लिए यह सम्बन्ध बताना पड़ता है।"

"इतना ही नहीं, आप इनकी मूर्तियां बना कर सामने रख कर पूजा करते हैं। कहते हैं भगवान् अवतार लेकर मनुष्य रूप धारण करता है। उसने सुअर और मत्स्य का रूप धारण किया। बन्दरों को भगवान् का सेवक बनाया। बन्दर सौ योजन समुद्र लांघ गया। इसी तरह आप कपोलकल्पित कहानियां गढ़ कर लोगों को भ्रम में डालते हैं। यह सब गलत है।"

"मनुष्य शक्ति के अनुरूप भगवान् की कल्पना करता है। योगी ब्रह्म का अन्तस् में ही दर्शन कर लेते हैं। हम जैसे साधारण मनुष्यों के लिए ही मूर्ति की आवश्यकता पड़ती है। भगवान् को हमारी रक्षा हेतु हमारे सामने आना चाहिए ना। इसलिए हम कहते हैं कि भगवान् अवतार लेता है। मत्स्य और सुअर मनुष्य से निम्न स्तर के दिखाई देते हैं। लेकिन भगवान् को जीवों में कोई भेदभाव नहीं है। ऐसा कोई रूप नहीं जो भगवान् ने न धारण किया हो या न कर सकते हों। अणु, रेणु, तृण और काष्ठ में भी वह सम्पूर्ण रूप से बना है। उसके सेवक भी इसी प्रकार हैं। केवल मनुष्य ही नहीं, कुत्ता और सुअर भी भगवान् की सेवा कर सकते हैं, वह उनकी सेवा स्वीकार करेगा। बन्दर का समुद्र लांघना हमारे लिए आश्चर्य की बात नहीं। भगवान् की भक्ति यदि निश्चल मन से करे तो बन्दर भी सौ योजन समुद्र लांघ सकता है। आप जिस बात को गलत कह रहे हैं हमारे पूर्वजों

ने उसे सही कहा है। आप यदि पसन्द नहीं करते हैं तो उसे नहीं स्वीकारें। उसी प्रकार आपकी कही बात भी हमें स्वीकार्य नहीं। आप अपने ढंग से चलिये हम अपने मत के अनुसार चलेंगे।"

"यह कैसे ? दोनों ही मत तो सही हो नहीं सकते। अगर यह सही है तो वह गलत है। अगर वह सही है तो यह गलत है।"

"मतों का सही-गलत जांचना तत्त्वज्ञों का विषय है। सही रास्ते को दिखाने वाला धर्म ही सही धर्म है। वास्तव में सत्यवादी होना चाहिए, परोपकारी होना चाहिए और मर्यादापूर्वक जीवन बिताना चाहिए। यही सब बताने वाला धर्म सच्चा धर्म है। आपका मत भी आपको यही सिखाता है। तो एक मत बड़ा और दूसरा छोटा कहने का कोई कारण नहीं।"

इस प्रकार इन दोनों की बात बढ़ती गयी। कहीं खत्म होती दिखाई नहीं देती थी। शुरू में थोड़ी देर तक तो यह वाद-विवाद सुनने में अच्छा लगा पर बाद में सब ऊब गये।

94

उसी समय स्त्री-समुदाय में से शुभ्र श्वेत साड़ी पहने एक मूर्ति उठ खड़ी हुई। झट से सारी-की-सारी सभा की आँखें उस ओर घूम गयीं।

खड़ी होनेवाली स्त्री और कोई नहीं, वही भगवती थी। वह हाथ जोड़कर बोली, "दीक्षितजी महाराज, यदि आज्ञा दें तो मैं पादरी महोदय से दो बातें पूछ लूं ?"

दीक्षित को थोड़ा विस्मय तो हुआ ही, उससे कहीं अधिक भय हुआ। वृद्ध के मन में यह शंका हुई कि मालूम नहीं यह क्या पूछ बैठे ? उसने राजा की ओर देखा। उसके मुख पर कोई भाव न था। फिर उनके साहब की ओर देखा तब दुभाषिया साहब को बात समझा रहा था।

एक क्षण रुककर साहब बोला, "राजा साहब अगर अनुमति दें तो वे पादरी के साथ विवाद कर सकती हैं।" दुभाषिये ने यह बात राजा से निवेदन की। तब राजा ने 'होने दीजिए' कहकर आज्ञा दी।"

साहब ने कहा, "दिस इज़ दा लेडी वी सा एट दा हरमीटेज थ्री डेज़ अगो।" (यह वही स्त्री है जिसे हमने आश्रम में तीन दिन पहले देखा था।)

लूसी बोली, "यस।" (हाँ।)

भगवती के साथ विवाद करने के लिए पादरी तैयार था। उससे कहा, "यहाँ आइये, सामने बैठिये। जो भी पूछना हो पूछिये।"

भगवती मंच पर आयी। दीक्षित के सामने भूमि छूकर नमस्कार करके बोली,

"हमारे गुरु ने बड़ी शान्ति से आपको हमारे धर्म के बारे में समझाया, पर आप उनका अभिप्राय न समझ कर गलत बात कहे जा रहे हैं। आप हमारे धर्म के बारे में तो इतनी बातें कहे जा रहे हैं, जरा अपने धर्म के बारे में भी कुछ कहिये। सभा को पता तो चले।"

मेंवलिग पादरी ने कहा, "जरूर, जो चाहे पूछिये।"

"आप भगवान् को पिता कहते हैं, माता नहीं।"

"हाँ, भगवान् पिता है।"

"माता नहीं?"

"माता नहीं कहते हैं।"

"भगवान के साथ उनका बेटा भी मिला है।"

"जी हाँ। भगवान् में; भगवान्, भगवान् का बेटा और पवित्र आत्मा तीनों मिले हुए हैं।"

"भगवान की पत्नी नहीं है?"

"नहीं।"

"पत्नी के बिना पुत्र कैसे आया?"

"भगवान की शक्ति की कोई सीमा नहीं है।"

"तो फिर बिना पत्नी के बच्चा प्राप्त कर सकने वाला भगवान बन्दर बनकर समुद्र लांघ नहीं सकता?"

"इन बातों का आपस में कोई सम्बन्ध नहीं।"

"आप कहते हैं भगवान की अद्भुत शक्ति से सभी संभव है। हम वही कहते हैं तो आप उसे स्वीकार नहीं करते हैं! आपने स्वयं जो बातें कहीं उनमें सम्बन्ध कहाँ है?"

"आप हमारे धर्म को जानती नहीं। यह विवाद कहीं से सुनकर यहाँ तोते की तरह दोहरा रही हैं। आपका यह कहना ठीक नहीं।"

"आपको यह गलत दिखाई देना स्वाभाविक है, पर उसे सही या गलत कहने वाले आप भी नहीं और हम भी नहीं। सभा में उपस्थित बुजुर्ग ही इस बात को बताएँगे। उन्हें यह सही लगता है या गलत उन्हें ही कहने दीजिए।"

दुभाषिये ने साहब को इस बात की पूरी व्याख्या करके समझाया। वह बोला, "आई डु नाट नो अबाउट दा आर्गुमेंट बट दा आब्जेक्शन इज सर्टेन्ली क्लेवर।" (मैं इस तर्क के बारे में नहीं जानता किन्तु आपत्ति निःसन्देह चातुर्यपूर्ण है।) दुभाषिये ने जब इस बात को कन्नड़ में कहा तो जनता 'वाह वाह' कहने लगी। राजा बसव से धीरे-से बोला, "तेरी यह भगवती बड़ी तेज है रे।"

भगवती ने विवाद को आगे बढ़ाया, "आपके गुरु ने प्रतिदिन प्रार्थना करने के लिए कुछ वाक्य रटाकर दिये हैं, ये सही हैं?"

"जी हाँ।"

"उसमें भगवान को स्वर्ग में रहने वाले पिता कहकर संबोधित किया गया है ना?"

"जी हाँ।"

"तो इसका मतलब यह हुआ कि भगवान पृथ्वी पर नहीं रहता।"

"इस बारे में आपको जो कहना है उसे कह दीजिये। अन्त में हम उसका जवाब देंगे।"

"अच्छी बात है। 'स्वर्ग में रहने वाला पिता' कहने का अर्थ है कि भगवान धरती पर नहीं रहता। 'तेरा नाम पवित्र हो' तो अब तक वह अपवित्र था। 'तेरे साम्राज्य का निर्माण हो', तो अब तक वह उसका मालिक नहीं है। 'तेरा संकल्प स्वर्ग में चलता रहा, वैसा ही अब धरती पर चले' इसका अर्थ यह हुआ कि अब तक नहीं था। अब चले अर्थात् इस बात का भक्त आशीर्वाद दे रहा है। 'आज मुझे रोटी दो' भगवान के राज्य को पृथ्वी पर आने के लिए आशीर्वाद देने वाला दूसरे ही क्षण में रोटी का टुकड़ा माँगता है। 'हम जैसे अपने शत्रुओं के अपराधों को क्षमा करते हैं उसी प्रकार आप हमारे अपराधों को क्षमा करें' मतलब यह हुआ कि केवल यह कहना पर्याप्त नहीं है कि हमारे अपराधों को क्षमा करें। भगवान के लिए एक आदर्श दिखाने की आवश्यकता होती है। हमें आशा दिखाकर धोखा देना नहीं हुआ? भगवान के पास और कोई काम नहीं? 'हमारी संकटों से रक्षा करो' यही एक बात ठीक लगती है, 'रक्षा करो', क्योंकि राज्य तुम्हारा, शक्ति तुम्हारी, कीर्ति तुम्हारी, क्या इस प्रार्थना में कोई सामंजस्य है?"

"आपको प्रार्थना का अर्थ ठीक से समझ में नहीं आया।"

"हो सकता है। हम अपने धर्म को ही ठीक से समझ नहीं पाये हैं और आपके धर्म को समझने का समय ही कहाँ है? आपकी कही हुई बातें ही हम आपसे कह रहे हैं कि आपने भी हमारे धर्म का अर्थ ठीक से नहीं समझा।"

सभा की जनता खुशी से 'बहुत ठीक! बहुत ठीक!' एक स्वर में बोल पड़ी। दुभाषिये ने साहब को यह भी समझाया। वह बोला, "सी इज़ सर्टेन्ली ए क्लेवर वूमेन। शी नोज़ देट अटैक इज़ दा बैस्ट डिफेंस।" (वास्तव में वह एक चतुर स्त्री है। वह जानती है कि आक्रमण ही सबसे अच्छा बचाव है।)

इसे सभा के सामने बताने की कोई आवश्यकता न थी परन्तु दुभाषिया हिन्दू था। अपने धर्म की मान-रक्षा की बात सभा को बताने में उसे एक सन्तोष मिला। अत: साहब के विचार को जनता के सम्मुख कन्नड़ में बताया। सभा ने भी 'हाँ साहब' का नारा लगाया।

भगवती ने पादरी से पूछा, "और पूछूँ या काफी है?"

पादरी : "एकाध और पूछ लीजिए उसके बाद आज विराम देंगे और फिर

बाद में इसे आगे बढ़ाएँगे।"

"हम कहते हैं कि भगवान अवतार लेता है तो आप यह बात नहीं मानते। परन्तु आप लोग कहते हैं कि भगवान के पुत्र ईसा मसीह ने गुरु के रूप में अवतार लिया! हमारी अवतार की बात आप मानते नहीं, पर आप स्वयं वही बात कहते हैं? यह बात कैसी?"

"भगवान के पुत्र ने मनुष्य का रूप धारण किया इसमें मात्र इतनी ही बात है कि उसने मनुष्य से जन्म नहीं लिया। वह भगवान से पैदा हुआ था।"

"मेरी कही बात पर आप गुस्सा नहीं हों। आपकी बात ईसा की माँ 'मेरी' को बदनाम करती है। क्या आपको ऐसा नहीं लगता?"

"उसने भगवान की कृपा से उस शिशु को गर्भ में धारण किया। उसमें कोई कलंक की बात नहीं है।"

"एक पुरुष के सहवास से यदि गर्भ धारण करती तो कलंक होता न?"

"जी हाँ।"

"स्त्री पुरुष के सम्बन्ध को आप बुरा समझते हैं। यह तो ईश्वर का बनाया नियम है। इसमें बुरा क्या है? किसी के जाने बिना चोरी से मिलें तो वह बुरा है। शादी-शुदा स्त्री पति के साथ रहकर यदि एक बच्चा पैदा करे तो कलंक है?"

"भगवान के पुत्र ने जन्म लेने के लिए एक अद्भुत ढंग अपनाया। इसलिए उसे भगवान का पुत्र कहा गया।"

"आपका देश हो या हमारा, यदि अविवाहिता एक बच्चे को जन्म देकर यह कह दे कि इसका पिता भगवान है तो क्या आप स्वीकार कर लेंगे?"

"देवी 'मेरी' का चरित्र धर्म ग्रन्थों में आया है इसलिए हम उस पर विश्वास करते हैं।"

"इसके आधार पर यदि हम एक शास्त्र लिख दें तो?"

"वह आपका लिखा शास्त्र होगा जनता उसे स्वीकार नहीं करेगी।"

"उस जमाने में भी यह शास्त्र किसी ने तो लिखा होगा। इसे आपने स्वीकार कर लिया। हमारे आज के लिखे शास्त्र को सौ साल बाद जनता मानेगी। अब हम यह विश्वास नहीं कर सकते कि यह लड़की अजीब ढंग से गर्भवती हुई। आगे के पादरी इसका समर्थन भले ही करेंगे। इस पर विश्वास करने को ही धर्म कहेंगे।"

सभा में पीछे बैठा उत्सुक तरुण बोला, "खूब कहा माँ। पादरी की ही बात सब लोग कहने लगें तो देश का सत्यानाश हो जायेगा।" सभा खिलखिलाकर हँस पड़ी।

"लगता है आप किसी ऐसे वाद-विवाद में सुनी गयी दो-चार बातों को सीख कर यहाँ दोहराने आ रही हैं। यह धर्म की चर्चा नहीं हुई। धर्म का रहस्य ही

कुछ और है। वह तो आत्मा का स्वरूप, ईश्वर का स्वरूप, तथा मुक्ति का स्वरूप : कहता है और जनता को बताता है। आप जो कुछ कह रही हैं वह तो सभा को हँसाने के लिए वितंडा-भर है।"

"आपने हिंदू धर्म के बारे में जो कुछ कहा था वह भी कुछ ऐसा ही था। हिंदू धर्म भी जीवात्मा, परमात्मा, पुरुषार्थ और नीति आदि की बात कहता है। उसे छोड़कर आपने हँसी उड़ाने के लिए वितंडा का आश्रय लिया। हमारे वृद्ध गुरुजी ने शान्ति से मर्यादापूर्वक जो उत्तर दिये उन्हें स्वीकार किये बिना आपने अपनी बुद्धिमत्ता को दिखाने का प्रयास किया। आपकी तरह के ही बुद्धिमानी के उत्तर मैंने आपको दे दिये। आपका धर्म आपके पास और हमारा हमारे पास। सब सच्चे बनें और सुखी रहें यह कहें तो हम आपके टंटे में नहीं पड़ेंगे।"

सभा 'हाँ ठीक है, ठीक है' पुकार उठी। दुभाषिया साहब को धीरे-धीरे सब बतलाता जा रहा था। उसने अंतिम अंश को जब बताया तो साहब बोला, "व्हाट डू दे काल दिस लेडी? भगवती—दैट मीन्स गाडेस, डज इट नाट?" (इस महिला को किस नाम से पुकारते हैं? भगवती—जिसका अभिप्राय होता है देवी। ऐसा नहीं?) जब उसे बताया गया कि ये भगवती की उपासिका हैं तो वह बोला, "यस सर्टेन्ली दी इज़ मोस्ट सेंसीबल वूमेन, शी हेज़ डन बैटर दैन आइदर दा पादरी आर हर ओन टीचर, दीक्षित, लेट अस स्टाप नाउ। दा डिस्कसन केन कन्टीन्यु आन सम अदर अकेजन इफ हिज़ हाइनेस एग्रीज़।" (जी हां, निश्चय ही वह बहुत समझदार स्त्री है। उसने पादरी अथवा अपने गुरु, दीक्षित से भी अधिक अच्छा शास्त्रार्थ किया। अब हमें यह समाप्त करना चाहिए। यदि महाराज चाहें तो किसी अन्य अवसर पर यह वाद-विवाद हो सकता है।)

राजा की अनुमति से सभा समाप्त हो गयी।

95

दूसरे दिन सूरप्पा ने कहला भेजा, "चार दिन लगातार बोलते रहने से मेरा गला बैठ गया है, थोड़ा बुखार भी हो गया है। जो नाटक तैयार किया था, वह खेला नहीं जा सकेगा।" राजा ने कोई दूसरा खेल दिखाने को कहा। पाणे सूर्यनारायण वीरराज की प्रशंसा में एक प्रहसन प्रस्तुत करने को तैयार हो गया। इन चार मास से यह पिरिया पटण में रहकर यहां आता-जाता रहता था। उसने चेन्नवसवय्या से जान-पहचान बना ली थी। चेन्नवसवय्या ने नाटक की कथा सुनकर यह कहा था कि यह खेला जा सकता है। सूर्यनारायण ऐसे आशु नाटक प्रस्तुत करने में दक्ष था इसलिए उसने स्वयं नाटक प्रस्तुत करना स्वीकार कर लिया था।

सभा में सबके आ जाने के बाद सूर्यनारायण भुजकीर्ति का मुकुट पहने, पीछे

एक लम्बी-सी दुम लगाये, कमर पर फेंटा बांधे रंगमंच पर आ उपस्थित हुआ। मैसूर की ओर बड़े-बड़े नाटकों में राजा का अभिनय करने वाला व्यक्ति जिस प्रकार छित्ततॅग्ग, तकथैय्या कहते हुए अभिनय करता है उसी प्रकार इसने एक अलग प्रकार से पद विन्यास के साथ नृत्य किया। 'अहा! राजा बना, राजसभा में आकर इतना कष्ट उठाया और नृत्य किया। लेकिन 'तुम कौन हो' यह पूछने के लिए एक सारथी तक नहीं है? मैं कौन हूँ?' कह चिंतित मुद्रा में खड़ा हो गया। बाद में बोला, "अहा! अब समझ में आया कि बुद्धिमान जनों को कौन-सा विषय समझ में नहीं आता। इस पर भी मेरे जैसे बुद्धिमान को ऐसा कौन-सा विषय समझ में नहीं आयेगा? मैंने अभी कहा न, सारथी भी नहीं है। एक सारथी नियुक्त कर लिया जाये तो बस हो गया काम।"

इसके छित्ततॅग्ग तक थैतॅय्या नृत्य, इसकी खड़ी होने की भंगिमा, बोलने का ढंग, एक सारथी के लिए इच्छा, चिंता की मुद्रा, स्वयं को बुद्धिमान कहना आदि देखकर एकत्रित जनता हँसी के मारे लोटपोट हो गयी। सामने बैठे राजघराने के लोग उनका अर्थ समझकर बड़े प्रसन्न हुए। बड़ा साहब बोला—

"यह नट बड़ी अच्छी तरह अभिनय कर रहा है। उसकी भंगिमा हास्यजनक है।"

'सारथी नियुक्त करूँगा' कहने वाला अभिनेता दर्शकों की ओर देखकर बोला, "उपस्थित सभासदो, आप में से कोई दया करके रंगमंच पर आइए और मेरा सारथी बनिये। मैं वेतन दूँगा। मैं वेषधारी राजा नहीं। घोखेबड़ी का राजा नहीं हूँ।"

सभा से एक आदमी आकर उसके सामने खड़ा हो गया। बोला, "मैंने सारथी का वार्तालाप नहीं सीखा?" राजा बोला, "अरे हमारे राज्य में अभिनय करने वाले हम अकेले हैं। कोई आदमी हमारे सामने पूँछ तक नहीं हिला सकता। देखी यह पूँछ?" कहकर उसने पूँछ खींचकर दिखायी।

"देखी।"

"जब राजा की पूँछ ऐसी हो सकती है तो दूसरी पूँछों का क्या कहना! क्षण भर बाद अब ना मत कहना। पता है, कहते हो न कि सारथी का वार्तालाप नहीं सीखा? अभी सिखा देता हूँ, समझो। मैं जब कहूँ कि अमुक बात ऐसी है तो तुम 'ठीक है महाप्रभु' कहना। यदि मैं कहूँ 'क्यों रे! यह ऐसे नहीं है?' तो तुम कहना, 'हाँ महाप्रभु'। हमारे देश में मात्र हमारी पूँछ ही हिल सकती है दूसरों की नहीं। हमारी जबान ही चल सकती है दूसरों की नहीं।"

सारथी बनकर आने वाला व्यक्ति बोला, "इतना ही काम है तो उसके लिए हमारा लड़का ही काफी है। हमसे नहीं हो सकता है।" इतना कहकर, "ओ ननरा इधर आ। यहाँ आकर सारथी बन।" कहते हुए उसने आवाज़ दी। पीछे

खड़े लोगों के झुण्ड में से एक लंगड़ा रंगमंच पर आया। पहले वाला "लीजिए इसे सारथी बना लीजिए" राजा से कहकर चला गया और दर्शकों में बैठ गया।

96

नाटक के राजा ने नये व्यक्ति का सिर से पाँव तक निरीक्षण किया। उसके लंगड़े पाँव को विशेष रूप से देखा। झट से उसके पास जाकर बैठ गया और उसके लंगड़े पाँव को इधर-उधर घुमाकर, अच्छी तरह देखकर सभा की ओर घूम गया। फिर राजा के पीछे खड़े बन्दर पर एक नजर डालकर चार बार सिर हिलाया और नये सारथी के सामने खड़े होकर बोला, "क्यों रे, तू मेरा सारथी बनेगा ?"

"हाँ मालिक।"

"तुझे बुलाने वाले उस बन्दर ने जो बात कही थी वह तूने सुनी थी न ? तुझे दो ही बातें बोलनी होंगी। हम यदि किसी बात के बारे में पूछें तो 'अच्छा महाप्रभु' कहना। हम यदि कहें कि यह बात ऐसी है तो तुझे 'हाँ' कहना होगा। समझा !"

"हाँ महाप्रभु।"

"समझ गया। खेल के समय ऐसा कहना। अभी तो ठीक से बोल।"

"तो उस समय ठीक से नहीं बोलना चाहिए महाराज ?"

"बकवास न कर, हमने जो बातें सिखाईं उन्हीं दो बातों को कहना।"

"अच्छा महाप्रभु।"

"यहाँ खड़े रहो। हम राजा हैं। नाचते हैं। देखो।" इतना कहकर नाटक के राजा ने छित्ततॆंग, तकथैय्या कह ताल-बेताल चार पाँव इधर-उधर मारकर नृत्य समाप्त किया। यह ऊटपटांग नृत्य जनता को हँसाने के लिए था। सारी सभा हँस पड़ी। "अरे सारथी ! तू पूछ रहा है न, हम कौन हैं ?" यह जोर से कहकर फिर धीरे से सबको सुनाई देने वाले स्वर में बोला, 'हाँ महाप्रभु' बोल रांड के।"

सामने वाला बोला, "यह क्या भई जो तुम कहते हो ? यदि यही तुझे कहना है तो तुम्हीं कह लो न।"

"ऐसा है तो तू ही बोल।"

"बोलूँ ?"

"ठीक है, बोल !"

"तुम कौन हो जो इस प्रकार ऊटपटांग नाच रहे हो ?"

"ओय, राजा को तुम कहता है ?"

"तुझे क्या पता कि तुम राजा हो।"

राजा ने उसे ध्यान से देखा और बोला, "तुझे दिखाई नहीं देता कि मैं कौन हूं?"

"दिखाई नहीं देता। मैं क्या करूं। कुछ और दीख रहा है।"

"क्या दीख रहा है?"

पास जाकर उसकी पूंछ छू कर आश्चर्य से बोला, "यह दीख रही है।"

"ओह हो! तो तुम्हें दीख रही है!"

"आंखों के सामने हो तो बिना दिखे कैसे रहेगी? क्या यह सचमुच की पूंछ है?"

"तो तुमने क्या समझ रखा है?"

"यह अपने-आप हिलती है या हाथ से हिलानी पड़ती है?"

"ओय! बकवासी सारथी ज्यादा बकवास न कर। चुपचाप यही पूछ कि आप कौन हैं? तू बुद्धू की तरह पूंछ पकड़ कर खड़ा रहेगा तो खेल आगे नहीं बढ़ सकेगा।"

"अच्छा बताओ आप कौन हैं?"

"यह हुई न बात। अच्छा सारथी, तुम भक्तिपूर्वक यह पूछ रहे हो न कि मैं कौन हूं!" फिर मूंछों पर हाथ फेर कर नृत्य करता हुआ बोला, "हम कौन हैं? यह हम बड़ी खुशी से बताते हैं ताकि तुम प्रसन्न हो जाओ। समस्त भू-मण्डल में शोभायमान कोडग नाम का एक देश है, क्या तुम यह जानते हो सारथी?"

"कोडग, कोडग···यह क्या चीज है?"

"अरे मूर्ख! यदि मैं अपने को कोडग का राजा कहूं तो ये लोग मुझे जीने देंगे क्या? सामने पीठ पर विराजमान चिक्कवीरराजेन्द्र महाराज कोडग के राजा हैं। हम कोडग देश के हैं, क्या यह पूछते हो कि वह कहां है?"

"हां बताइये।"

"सुनो सारथी। उस देश के राजा पहले उसे किष्किंधा कहते थे।"

"अहो हो! तो तुम बन्दर हो।"

"अरे सारथी, तेरी बुद्धि कितनी तेज है यह तो इसीसे पता लग गया कि तुमने हमें बन्दर बनाया। इसलिए तेरा आगे सारथी बने रहना ठीक नहीं। अब तो तुम मेरे मित्र बन गये। तेरा नाम क्या है?"

"बसव वह नो।"

"अहा कैसा आश्चर्य! लगता है कि इस नाम वाले आदमी ही बुद्धिमान होते हैं। इसी समय कोई तुझसे तेरा नाम पूछे तो 'मंत्री बसवय्या' कहना।"

"मंत्री तो ठीक है, पर कोई पूछे 'राजा कौन है' तो कहूं कि वही पूंछवाले वानर महाराज?"

"बताइये।"

"हम कोडग के राजा की भाँति नहीं।"

"ऐसा!"

"क्यों? कारण बताता हूँ। तुम सुनने वाले बनो। कोडग के राजा चिक्कवीर राजेन्द्र ओडेयर हैं। देखो वे सामने बैठे हैं।"

रंगमंच के चारों ओर बैठे हुए लोगों में से एक आवाज़ सुनाई दी, "सावधान, कहीं हँसी रोने में न बदल जाये।"

सबने वक्ता की ओर देखा। वह उत्तय्या तक्क था। वह फिर से बोला, "अरे भैया तुम्हारी बकवास का शिकार हमें न होना पड़े।"

नाटक का राजा उत्तर में 'नहीं तक्कजी' बोला। उस समय तक उसकी ज़बान इस उपहास की रुचि से परच गई थी और वह उसे रोक पाने की स्थिति में न था। यक्षगान में वेष धारण कर लम्बी-चौड़ी बातें कहने का अभ्यस्त उसका मन इस समय अपने असंतोष को उगलने का अवसर चूकना नहीं चाहता था। उसने बात के प्रवाह में अपने को रोका नहीं। "सुनते हो मन्त्री? चिक्कवीर राजेन्द्र ओडेयर सत्यवादी हैं। कोडग देश में सत्य की बड़ी आवश्यकता है। हमें सत्य की गन्ध तक का पता नहीं। कोडग देश में उसकी जरूरत नहीं। चिक्कवीर राजेन्द्र धर्मनिष्ठ हैं। कोडग देश में धर्म की आवश्यकता है। हम धर्म की खुशबू भी नहीं सह पाते। कोडग में उससे कोई काम चलने वाला नहीं। चिक्कवीर राजेन्द्र अपने परदादा, पड़दादा, दादा, ताऊ तथा पिता लिंगराज के समान अपनी प्रजा को सन्तान की तरह पालते हैं। वे पर-स्त्री को बहिन की भाँति देखते हैं। देश की सब स्त्रियों को माँ की भाँति इज्जत से देखते हैं। कोडग देश में इसकी जरूरत है। पर हमारे कोडग देश में सभी स्त्रियाँ हमारी पत्नियाँ हैं। उसी प्रकार सबके बच्चे हमारे बच्चे हैं।"

97

सभा खूब ज़ोर से खिलखिलाकर हँस पड़ी। सामने बैठे राजा को यह व्यंग्य ऐसा जान पड़ा मानो किसी ने उनके मुँह पर थूक दिया हो। वह बड़े गुस्से से गरजा, "कौन है वह। दो हाथ जमाओ उसे। राजा के पीछे खड़ा बसव एक कदम आगे बढ़ा और पास खड़े माचा से बोला, "उसे रोको।"

माचा एक कदम बढ़ा ही था कि जन-समुदाय में हो-हो की आवाज गूंज उठी। नाटक का राजा, 'कावेरी मक्कनु' चिल्लाया। चारों ओर से 'मक्कन्न तायी' की प्रतिध्वनि हुई। जंगल में बहने वाले अनेकों नाले मिलकर जैसे एक नदी का रूप धारण करते हैं उसी प्रकार जन-समुदाय ने उसे चारों ओर से घेर लिया।

पीछे वालों ने उसके भागने के लिए मार्ग बना दिया। दस सिपाहियों को साथ लेकर माचा के वहाँ तक पहुँचने तक नाटक का राजा वहाँ से खिसक गया था।

उस सन्ध्या का मनोरंजन ऐसे खत्म हुआ।

अंग्रेज़ अतिथियों के पास खड़ा दुभाषिया उन्हें नाटक का अर्थ बता रहा था। उसने नाटक के इस प्रकार रोकने का कारण भी बताया। राजा का एक बड़ा विरोधी वर्ग भी इस देश में है। यह जानकर अतिथि वर्ग में एक संतोष की भावना पैदा हुई, परन्तु उन्होंने उसे प्रकट नहीं किया।

98

अगले दिन सदा की भाँति अतिथियों की विदाई हुई।

इसके बाद ही राजा ने बसव से कहा, "उस दामाद के बच्चे को बुला तो सही, बसव। उसने ऐसा नाटक क्यों खिलवाया? जरा पूछँ तो। ठीक से बात नहीं कहेगा तो उसका सिर उतरवा देंगे।"

इस बात की आशंका सभी को थी। चेन्नबसव ने कहा, "मेरी तबियत ठीक नहीं, ठीक होते ही महाराज की सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा। इस बीच जो गड़बड़ हुई है उसका कारण सूरप्पा जानता है। उसे बुला कर पूछ लें।"

राजा के सम्मुख जाकर सही बातें बताकर डाँट खाने तथा अपमानित होने की इच्छा सूरप्पा को भी न थी। पर वह राजघराने के दामाद की भाँति टाल सकने की स्थिति में न था। इच्छा न होते हुए भी बसव के साथ जाकर राजा के सम्मुख खड़ा हो गया।

राजा ने उससे सीधे बात नहीं की। वह बसव से बोला, "वह ब्राह्मण क्या बकता है रे?" बसव ने सूरप्पा से कहा, "महाराज से निवेदन करो, इस नाटक का प्रबन्ध किसने किया था?"

सूरप्पा: "उस दिन सभा में क्या हुआ, मैं नहीं जानता। मेरा गला बैठ गया था। मैं अपने घर में पड़ा था। हम लोग इसी सोच में थे कि खेल न होगा तो क्या होगा कि तभी पाणे सूर्यनारायण ने कहा, "महाराज की प्रशंसा में वह बैलाट जा एक अच्छा यक्षगान प्रस्तुत कर देगा।" हम लोगों के यह पूछने पर कि कहानी क्या होगी उसने बताया था कि कोडग एक अच्छा देश है, महाराज बहुत अच्छे हैं, मन्त्री महोदय बड़े बुद्धिमान हैं, दूसरे देशों की भाँति नहीं है, आदि-आदि। बड़े महाराज की कहानी प्रस्तुत की जा चुकी थी। लिंगराज की कहानी भी दिखाई जा चुकी थी। अब वर्तमान महाराज की कहानी प्रस्तुत करना चाहते थे किन्तु वैसा हो नहीं पाया था, तब सूर्यनारायण ने बताया तो हम सबने इस बात की यह सोचकर स्वीकृति दे दी कि चलो अच्छा ही हुआ। वह यक्षगान में बड़ा दक्ष है।

समय के अनुसार तत्काल कहानी गढ़ लेता है। सुना, उस दिन मज़ाक कुछ अधिक हो गया। वह हँसाता था लोग हँसते थे इसलिए इसका दिमाग खराब हो गया। ऊटपटाँग बका, पता नहीं और क्या कुछ बकता कि भगवान की दया से आपने रोक दिया। यह हमने जानबूझकर नहीं कराया, महाराज। मुझे क्षमा करें और मुझ पर दया करें। यह बात सुनते ही मैंने सूर्यनारायण को बहुत बुरी तरह लताड़ा।" इस प्रकार सूरप्पा ने बड़ी विनय से सब बात कह दी।

राजा : "क्यों रे लँगड़े, इस ब्राह्मण की बात सच है?"

बसव : "देखना पड़ेगा, महाराज। उस सूर्यनारायण को बुलाकर दो-चार जमानी पड़ेंगी।"

"बुला भेजो।"

सूरप्पा : "बात बिगड़ जाने पर जब मैंने उसे लताड़ा तो वह यह समझकर कि बात उसी के सिर पड़ेगी वह भाग गया। अब वह पिरियापट्टण में है।"

राजा : "उसे बुला दे नहीं तो तेरा सिर उतर जायेगा।"

"मैं तो कहला भेजूं। पर क्या वह आ जायेगा महाराज? महाराज के गुस्से को देखकर किसका दिल नहीं काँपता। आज्ञा हो तो स्वयं ही हो आता हूँ।"

"चला तो जा लेकिन फिर वापस भी आयेगा? चोर कहीं के!"

"जब आप ही मुझे चोर समझते हैं तो मेरे न कहने से क्या होगा महाराज। गलती हो गई। आपको लगता है कि मैंने ही सब कराया है। जब तक यह सिद्ध न हो जाये कि इसमें मेरा हाथ नहीं था, मैं चोर ही हूँ।

"ठीक है, ऐसा ही समझो। तीसरे दिन सिर कटवा दूंगा।"

"जो हुक्म मालिक। आप जो भी सजा दें मैं भुगतने को तैयार हूँ। दया करेंगे तो बच जाऊँगा। मारेंगे तो मर जाऊँगा। यह प्राण आप ही के हैं।"

राजा ने आज्ञा दी : चेन्नबसव की तबियत ठीक हो जाये तो उससे पूछकर निश्चय करेंगे कि दण्ड किसे दिया जाये। तब तक सूरप्पा को अपने घर पर ही नजरबन्द रखा जाये।

93

चेन्नबसवय्या को पक्का पता था कि सूरप्पा से राजा का क्रोध शान्त न होगा। उसने सोचा कि क्या करना चाहिए। वास्तव में उसे कोई बीमारी न थी। सूर्यनारायण का स्वयं स्वतन्त्र रूप से कहानी गढ़कर नाटक करने की सूरप्पा को उसने स्वीकृति दी थी। सूरप्पा को पता था कि सूर्यनारायण समयानुकूल बात गढ़ लेने में समर्थ यक्षगान नाटककार है। चेन्नबसवय्या ने सूर्यनारायण को इशारा कर दिया था कि बात विनोदपूर्ण रहे। हाँ, और दोनों ढंग से रहे तो जनता की रुचि

ध्वनी रहती है। लेकिन इस बात को संकेत के रूप में न रखकर सूर्यनारायण अति कर बैठा। उसे मन में यह शंका थी कि कुछ लोगों को बुरा लग सकता है। इसीलिए उसने दीक्षित के भाजे नारायण को इसकी सूचना देकर रंगमच के चारों ओर लोगों के खड़े रहने का प्रबन्ध कर दिया था। सूर्यनारायण को ही स्वयं जब यह पता न था कि वह क्या कहेगा तो चेन्नबसवय्या को कैसे हो सकता था? परन्तु उसने राज-परिवार के सामने और राजा के पीछे बैठकर राजा के बारे में मजाक को बहुत पसन्द किया था। उन बातों को सुनते हुए सबके साथ कहकहे लगाकर भी हँसा। उस समय उसका व्यवहार ऐसा था मानो वह सब राजद्रोह नहीं है। गड़बड़ होते ही उसे लगा कि इसकी चर्चा होगी। अतः उसने सोच लिया था कि उसे क्या करना है।

उसे राजा से मिलने नहीं जाना चाहिए। एक-न-एक बहाना बनाकर दूर ही रहना चाहिए। फिर भी यदि हठ ही पकड़ते हैं तो उसे पत्नी और बच्चे सहित कोडग छोड़कर बंगलूर चले जाना चाहिए। यह बात बड़े साहब से बातचीत करते समय उठी थी। सारी जनता कहती है कि यह राजा हमें नहीं चाहिए। इसे गद्दी से उतारने को अंग्रेज तैयार हैं। लिंगराज के पुत्र को गद्दी से उतारकर लिंगराज की भतीजी को गद्दी पर बिठाना सरल है और अनिवार्य है। सूर्यनारायण से इस झगड़े का आरम्भ एक शुभ शकुन ही होना चाहिए। अब यदि भगवान की मर्जी है तो यह हो ही जाये। यही उसका निश्चय था।

मन में यह निश्चय करके बसव के सूरप्पा को लेकर जाते ही यह अप्पगोल चल पड़ा। जाते समय उसने रानी को कहला भेजा, "हमारा आज या कल में नंजनगूड जाना ठीक रहेगा। कृपया इसका प्रबन्ध करा दें।"

सूरप्पा से निबटने के बाद, पुनः चेन्नबसवय्या के पास राजा से मिलने की आज्ञा पहुँची तो पता चला कि वह अप्पगोल चला गया है। राजा क्रोध से उबल पड़ा, "इस हरामजादे ने अप्पगोल को अपना राजमहल समझ लिया है। बस चूहाखोर है साला। देख लूँगा राँड के को। हाथ-पैर बँधवा दूँगा साले के। उस दिन हँसते-हँसते पेट दर्द करने लगा था न! चर्बी पिघलवा दूँगा। खाया-पिया निकलवा दूँगा सारा, हरामजादे का।"

क्रोध से वह इस प्रकार बहुत देर तक बड़बड़ाता रहा।

इन सारी बातों की भनक राजमहल में सबको लग गयी। रानी को इस बात का गुस्सा था कि महल के दामाद ने ही इस प्रकार राजा को अपमानित करने वाला नाटक कराया, पर उससे भी ज्यादा उसे इस बात का डर था कि कहीं राजा बहिन, बहनोई तथा उसके बच्चे को खत्म ही न करा डालें। उसने मन में सोचा, "यह साल किसी भी रूप में कट जाये तो अगले वर्ष वैसा कोई संकट नहीं रहेगा।

भगवान की कृपा से सब ठीक हो जायेगा। उसने तब बसव को आज्ञा दी, "महाराज को निवेदन कर देना कि ये लोग नंजनगूड जाना चाहते हैं।"

स्वार्थ के कारण भविष्य को न समझते हुए चेन्नबसवय्या अपने स्वार्थ को ही ईश्वर की इच्छा समझ बैठा। स्वार्थ रहित रानी को दूसरों की भलाई के लिए भगवान से प्रार्थना करनी थी। वास्तव में भविष्य का न स्वार्थी को ही पता होता है और न परमार्थी को। एक व्यक्ति के जीवन में, एक जनता के जीवन में, एक राष्ट्र के जीवन में सभी की दशा ऐसी ही है। कल की बात आज कोई भी निश्चित रूप से नहीं बता सकता।

100

अंग्रेज अतिथि ठीक समय पर बंगलूर पहुँच गये। रेजिडेंट ने मद्रास के गवर्नर को वहाँ की स्थिति के बारे में यह रिपोर्ट भेजी और गवर्नर जनरल महोदय को उसकी प्रतिलिपि भिजवा दी :

"मैंने आपको पहले ही सूचना भेजी थी, उसके अनुसार कोडग के राजा के निमन्त्रण पर इस बार नवरात्रि के समय मैं मडकेरी गया था। वहाँ से कल लौट कर आया हूँ। वहाँ की परिस्थिति से आपको अवगत कराने के लिए यह पत्र लिख रहा हूँ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कोडग के राजा ने जनता को बहुत विरोध में कर लिया है। दोड्डवीर राजा ने अपने शासन के अन्तिम दिनों में आधे पागलपन के कारण जो अत्याचार किये थे इसने उतने अपने यौवन में ही कर लिये हैं। इस कारण जनता के मन में आक्रोश है।

हम जिन दिनों मडकेरी में थे, रोज गाँव की नाटक मण्डली ने शासन की हालत बताने वाले कुछ छोटे नाटक दिखलाये। उनमें पिछले राजाओं की प्रशंसा के साथ-साथ इस राजा की दुष्टता भी दिखाई। यह जानना कठिन है कि इस प्रकार राजा के सम्मुख ही ऐसा प्रहसन दिखाना कैसे सम्भव हो सका ? राजा अत्यन्त दुर्बल हो चुका है। जनता स्पष्ट रूप से उसका विरोध कर रही है।

"मन्त्रियों ने प्रकट में कोई विरोध नहीं दिखाया, पर उनके व्यवहार से पता लगता है कि उनमें भी राजा के प्रति वह श्रद्धा और भक्ति नहीं है। इनमें वरिष्ठ लक्ष्मीनारायण है (यह ब्राह्मण है) जो किसी भी बात को स्पष्ट रूप से कहने वाले स्वभाव का आदमी नहीं है। बोपण्णा कोडगी है, स्पष्टवादी है। ठीक समय पर यदि इसे हाथ में ले लिया जाये तो यह जनता की ओर से हमें सहायता कर सकता है।

तीसरा मन्त्री बसवय्या है। यह अपने राजा का साथ छोड़ने वाला आदमी

नहीं है। वास्तव में ये दोनों राजा और मन्त्री कम और दोस्त अधिक हैं। इनके परस्पर सम्बन्धों को जनता कई तरह से बताती है। इनके सम्बन्ध के स्वरूप को बताने में मुझे भी थोड़ा सकोच होता है। साराश यही है: राजा बचपन से इसके साथ पलकर बड़ा होने के कारण सभी बुराइयों मे पड गया है। दूसरे लोग जब स्त्री क्या है यह भी मुश्किल से समझ पाते हैं उसी आयु में यह इतना दुराचार कर चुका था कि अब यह बिलकुल निशक्त हो चुका है। अब यह मन्त्री राजा की सब बुराइयों का साथी है और उसे सब प्रकार का सुख उपलब्ध कराता है। जनता में यह बात फैली है कि जिस सुख को राजा स्वयं भोग नहीं पाता वह इसे भोगते देख कर सुखी होता है।

यह ऐसी बात नहीं कि जनता हमें प्रत्यक्ष रूप से बता सके। हमारे लोगों ने तरकीब से बातचीत करके शिविर में आने-जाने वालों से यह सब पता लगाया है।

जो सुख अब उसके वश से बाहर है उसकी पूर्ति राजा शराब पीकर कर लेता है। हमारे वहाँ रहते हुए उसने अवश्य ही बेहोश होने की सीमा तक नहीं पी थी। शायद इसका कारण हमारी वहाँ उपस्थिति हो सकती है।

रानी बहुत साध्वी और गम्भीर स्वभाव की महिला है। राजमहल की प्रतिष्ठा, जो भी थोड़ी बहुत बची है, वह उसीके बड़प्पन के कारण है।

इसकी बेटी ने अभी युवावस्था में कदम रखा है। दुलार से पलने के कारण अभी भी व्यवहार में बचपना है। रानी के बारे में जनता में जो आदर और गौरव है, वह अभी इस राजकुमारी के प्रति उत्पन्न नहीं हुआ।

सारांश यह कि उचित समय पाकर हम राजा को गद्दी से उतारना चाहें तो उसमें कोई बाधा न होगी। इसका विरोध करने वाले सदा कुछ लोग रहते ही हैं। परन्तु हमारे प्रयास में साथ देने वालों की संख्या भी पर्याप्त होगी।

मौका पाते ही हमें पहल करनी चाहिए। बेमौके यदि कदम उठाया तो शायद पर्याप्त सहायता न मिले और वह बुद्धिमत्ता भी न होगी। इस कार्य में जल्दबाजी न करना ही मुख्य बात है।

इसका अभिप्राय यह नहीं कि हमें बहुत दिन तक चुप बैठना पड़ेगा। राजा ने चारों तरफ शत्रु बना रखे हैं। उसका एक ताऊ है। उसने ही हमसे निवेदन कर रखा है कि यदि राजा को गद्दी से उतारना पड़े तो उसके पुत्र को राजा बनाया जाये। लोग मानते हैं कि राजा का एक ताऊ है। बहुत दिन से राज्य से दूर होने के कारण उसे पहचानने वाले कम हैं। यदि हम चाहें तो यह आदमी अपने पक्ष के लोगों को तैयार कर सकता है और हमारी सहायता माँग सकता है।

हमें ऐसे भी पत्र मिले हैं जिनमें लिखा गया है कि राजा का एक सगा बड़ा भाई भी है। इन पत्रों का प्रेषक कौन है यह जानने का प्रयास मैंने किया पर पता

भगवान की कृपा से सब ठीक हो जायेगा। उसने तब बसव को आज्ञा दी, "महाराज को निवेदन कर देना कि ये लोग नंजनगूड जाना चाहते हैं।"

स्वार्थ के कारण भविष्य को न समझते हुए चेन्नबसवय्या अपने स्वार्थ को ही ईश्वर की इच्छा समझ बैठा। स्वार्थ रहित रानी को दूसरों की भलाई के लिए भगवान से प्रार्थना करनी थी। वास्तव में भविष्य का न स्वार्थी को ही पता होता है और न परमार्थी को। एक व्यक्ति के जीवन में, एक जनता के जीवन में, एक राष्ट्र के जीवन में सभी की दशा ऐसी ही है। कल की बात आज कोई भी निश्चित रूप से नहीं बता सकता।

100

अंग्रेज अतिथि ठीक समय पर बेंगलूर पहुँच गये। रेजिडेंट ने मद्रास के गवर्नर को वहाँ की स्थिति के बारे में यह रिपोर्ट भेजी और गवर्नर जनरल महोदय को उसकी प्रतिलिपि भिजवा दी :

"मैंने आपको पहले ही सूचना भेजी थी, उसके अनुसार कोडग के राजा के निमन्त्रण पर इस बार नवरात्रि के समय मैं मडकेरी गया था। वहाँ से कल लौट कर आया हूँ। वहाँ की परिस्थिति से आपको अवगत कराने के लिए यह पत्र लिख रहा हूँ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कोडग के राजा ने जनता को बहुत विरोध में कर लिया है। दोड्डवीर राजा ने अपने शासन के अन्तिम दिनों में आधे पागलपन के कारण जो अत्याचार किये थे इसने उतने अपने यौवन में ही कर लिये हैं। इस कारण जनता के मन में आक्रोश है।

हम जिन दिनों मडकेरी में थे, रोज गाँव की नाटक मण्डली ने शासन की हालत बताने वाले कुछ छोटे नाटक दिखलाये। उनमें पिछले राजाओं की प्रशंसा के साथ-साथ इस राजा की दुष्टता भी दिखाई। यह जानना कठिन है कि इस प्रकार राजा के सम्मुख ही ऐसा प्रहसन दिखाना कैसे सम्भव हो सका? राजा अत्यन्त दुर्बल हो चुका है। जनता स्पष्ट रूप से उसका विरोध कर रही है।

"मन्त्रियों ने प्रकट में कोई विरोध नहीं दिखाया, पर उनके व्यवहार से पता चलता है कि उनमें भी राजा के प्रति वह श्रद्धा और भक्ति नहीं है। इनमें वरिष्ठ लक्ष्मीनारायण है (यह ब्राह्मण है) जो किसी भी बात को स्पष्ट रूप से कहने वाले स्वभाव का आदमी नहीं है। बोपण्णा कोडगी है, स्पष्टवादी है। ठीक समय पर यदि इसे हाथ में ले लिया जाये तो यह जनता की ओर से हमें सहायता कर सकता है।

तीसरा मन्त्री बसवय्या है। यह अपने राजा का साथ छोड़ने वाला आदमी

नहीं है। वास्तव में ये दोनों राजा और मन्त्री कम और दोस्त अधिक हैं। इनके परस्पर सम्बन्धों को जनता कई तरह से बताती है। इनके सम्बन्ध के स्वरूप को बताने में मुझे भी थोड़ा संकोच होता है। साराश यही है: राजा बचपन से इसके साथ पलकर बड़ा होने के कारण सभी बुराइयों में पड गया है। दूसरे लोग जब स्त्री क्या है यह भी मुश्किल से समझ पाते हैं उसी आयु में यह इतना दुराचार कर चुका था कि अब यह बिलकुल निशक्त हो चुका है। अब यह मन्त्री राजा की सब बुराइयों का साथी है और उसे सब प्रकार का सुख उपलब्ध कराता है। जनता में यह बात फैली है कि जिस सुख को राजा स्वयं भोग नहीं पाता वह इसे भोगते देख कर सुखी होता है।

यह ऐसी बात नहीं कि जनता हमें प्रत्यक्ष रूप से बता सके। हमारे लोगों ने तरकीब से बातचीत करके शिविर में आने-जाने वालों से यह सब पता लगाया है।

जो सुख अब उसके वश से बाहर है उसकी पूर्ति राजा शराब पीकर कर लेता है। हमारे वहाँ रहते हुए उसने अवश्य ही बेहोश होने की सीमा तक नहीं पी थी। शायद इसका कारण हमारी वहाँ उपस्थिति हो सकती है।

रानी बहुत साध्वी और गम्भीर स्वभाव की महिला है। राजमहल की प्रतिष्ठा, जो भी थोड़ी बहुत बची है, वह उसीके बड़प्पन के कारण है।

इसकी बेटी ने अभी युवावस्था में कदम रखा है। दुलार से पलने के कारण अभी भी व्यवहार में बचपना है। रानी के बारे में जनता में जो आदर और गौरव है, वह अभी इस राजकुमारी के प्रति उत्पन्न नहीं हुआ।

साराश यह कि उचित समय पाकर हम राजा को गद्दी से उतारना चाहें तो उसमें कोई बाधा न होगी। इसका विरोध करने वाले सदा कुछ लोग रहते ही हैं। परन्तु हमारे प्रयास में साथ देने वालों की संख्या भी पर्याप्त होगी।

मौका पाते ही हमें पहल करनी चाहिए। बेमौके यदि कदम उठाया तो शायद पर्याप्त सहायता न मिले और वह बुद्धिमत्ता भी न होगी। इस कार्य में जल्दबाजी न करना ही मुख्य बात है।

इसका अभिप्राय यह नहीं कि हमें बहुत दिन तक चुप बैठना पड़ेगा। राजा ने चारों तरफ शत्रु बना रखे हैं। उसका एक ताऊ है। उसने ही हमसे निवेदन कर रखा है कि यदि राजा को गद्दी से उतारना पड़े तो उसके पुत्र को राजा बनाया जाये। लोग मानते हैं कि राजा का एक ताऊ है। बहुत दिन से राज्य से दूर होने के कारण उसे पहचानने वाले कम हैं। यदि हम चाहें तो यह आदमी अपने पक्ष के लोगों को तैयार कर सकता है और हमारी सहायता माँग सकता है।

हमें ऐसे भी पत्र मिले हैं जिनमें लिखा गया है कि राजा का एक सगा बड़ा भाई भी है। इन पत्रों का प्रेषक कौन है यह जानने का प्रयास मैंने किया पर पता

नहीं चल सका। वह कौन है, यह समय पर पता चल सकेगा। इसी कारण देश में बगावत शुरू हो जाये तो कोई आश्चर्य नहीं।

यह सब तो एक तरफ है पर राजा ने अपने बहनोई को भी विरोधी बना रखा है। उससे जल्दी ही राजा को हानि हो सकती है। यह व्यक्ति चेन्नबसवय्या है जो कोडगी है। राजघराने की लड़की से विवाह करने के लिए उसने उनके मत को अपनाया है। वह सोचता है कि उसने राजघराने की बेटी से विवाह करके राजा का बड़ा उपकार किया है। वह स्वभाव से घमण्डी व्यक्ति है। राजघराने का दामाद होने पर उसका घमण्ड और बढ़ गया है। दामाद बेटों से भी बढ़कर होता है यह इस देश की प्रथा है। अतः चेन्नबसव अपने-आप को राजा से बड़ा माने तो कोई आश्चर्य नहीं है।

मेरे बताये हुए इन चार-पाँच प्रसंगों में से किसी एक के कारण बगावत शुरू हो जाये तो उसे दबाने के लिए हम आगे बढ़ सकते हैं। तब हम इस बदनामी से बच सकते हैं कि हम राज्य विस्तार के लालच से सेना लेकर गये।

बगावत को स्वयं उभारने में राजा का क्रोधी स्वभाव बड़ा सहायक हो सकता है। निरंकुश रूप से चलना ही कोडग के राजघराने की आदत है। इस राजा में यह आदत खूब पनपी है। राजा समझे बैठा है कि जिस समय जो बात मन में आती है उसे बक देना ही कर्तव्य है। वह यह नहीं जानता कि वह एक छोटे-से प्रदेश कोडग का राजा है। वह समझता है कि उसके सामने रेजिडेंट, गवर्नर-जनरल ही क्या इंग्लैंड की रानी तक भी कुछ नहीं हैं। उसकी बातचीत में अहंकार की कोई सीमा ही नहीं।

ऐसे व्यक्ति के अविवेक के कारण आग भड़कने में देर नहीं लगेगी।

कोडग के राजा का हम पर सदा विश्वास रहा है। इस विश्वास का आधार अँग्रेज़ सरकार का भय है। अब यह सोचने की बात है कि मित्र राजा के साथ हम विरोधी के रूप में कैसे व्यवहार कर सकते हैं। यह शंका जितनी स्पष्ट है उसका समाधान भी उतना ही स्पष्ट है। वे मित्र हैं। यदि वे अत्याचार करें और जनता हमें उनके अत्याचारों से बचाने की बात कहे तो हमारे सम्मुख एक ही कर्तव्य रह जाता है। वह है दुष्ट राजा की सहायता न करके पीड़ित जनता की सहायता करना। यह कम्पनी की पहले की अपनायी गयी नीतियों से स्पष्ट हो जाता है।

मैसूर का राजा हमारा मित्र था और अब भी हमारा मित्र है। परन्तु उसका शासन खराब होने से हमने मैसूर की जनता के सुख के लिए उस मित्र को गद्दी से उतारा।

यदि ऐसी समस्या उत्पन्न हो जाये तो कोडग का भी यही समाधान है। मैं यह नहीं चाहता कि ऐसी समस्याएँ उत्पन्न हों। यदि हो ही जायें तो उन्हें हल

करने में मैं हिचकिचाऊँगा नहीं।

"राजा ने हमारी बड़े प्रेम से देखभाल की। आदर और अतिथि-सत्कार में इस देश की जनता उदार है। कोडग में जो हम छह दिन रहे वे सुरलोक के निवास के समान थे। उस सुख में बस एक ही कमी थी : आपकी अनुपस्थिति। सदा आपका।" अन्त में रेजिडेंट के हस्ताक्षर थे।

101

अप्पगोल पहुँचते ही चेन्नबसवय्या जल्दी-से-जल्दी देश छोड़कर बेंगलूर की यात्रा की तैयारी में जुट गया। महल में पहुँचते ही एकान्त में देवम्माजी से अपनी योजना बतायी और कहा, "आज या कल ही चल देना है। तैयार हो जाओ।"

"बेंगलूर चलेंगे?"

"हाँ। साहब से कहा था। वे हमारी ओर से वार्ता करेंगे। तुम्हारे भैया ने ठीक से व्यवहार करने का वचन दिया तो लौट आयेंगे। यदि हठ किया तो उसे गद्दी से उतरवाकर आप गद्दी पर बैठ सकती हैं।"

"यदि सब ठीक ढँग से हो गया तो अच्छा है, नहीं तो संकट में पड़ जायेंगे।"

"अभी जैसी हालत है इससे ज्यादा बुरा और क्या होगा? यहाँ तो प्राण हर क्षण सूली पर चढ़े रहते हैं। इससे तो वही अच्छा है।"

"हाँ। ऐसा होने पर भी सबके सामने भैया के अपमान की बात कर दी गई? सूरप्पा ने ऐसा क्यों किया?"

"उसकी कहानी बहुत लम्बी है। सूरप्पा ही नहीं उसका बाप भी स्वर्ग से उतर आता तो उस पाणे के ब्राह्मण की जबान रोकना सभव नहीं था। उसकी पत्नी को ये चुरा लाये थे। किसी तरह उसने उसे छुड़ा लिया। खेल ही खेल में एक शैतान ने दूसरे शैतान के मुँह पर थूक कर अपनी जलन मिटा ली।"

"उसकी तो जलन मिट गई पर हमारी तो जान पर आ बनी।"

"अरे चार दिन की बात ही तो है, फिर तो आप ही रानी बन जायेंगी।"

"अपने भाग्य में यह नहीं लिखा है।"

"छोड़िये, यह सब किसने देखा है? यह हमारे हाथ की बात नहीं। पर यदि आपके भैया की अकल ठिकाने न लगाई तो मेरा नाम चेन्नबसव नहीं।"

"ठीक है, चार गहने-कपड़े ही तो बाँधने हैं। तैयारी में कितनी देर लगती है। जब चलना है, चल पड़ूँगी। प्रबन्ध आप कर लीजिये।"

चेन्नबसव के परिवार में काफी नौकर-चाकर थे। सब विश्वसनीय आदमी थे। वे अपने स्वामी की आज्ञा प्राणों की बाजी लगाकर पूरा करने वाले थे। चेन्नबसव ने चोमा को बुलाया और कहा, "तुम छह आदमियों को आज या कल

में किसी काम पर जाना पड़ेगा। घोड़े तैयार रखो।" चोमा ने 'जो आज्ञा' कहकर सिर झुकाया।

परन्तु चेन्नवसवय्या ने यह काम जितना आसान समझा था उतना आसान नहीं था। उसी शाम मडकेरी से वसव के भेजे सिपाही अप्पगोल के पहरे के लिए आ पहुँचे।

इनके आने की सूचना मिलते ही चेन्नबसवय्या समझ गया कि राजा ने इन्हें भेजा है। अव वह, उसकी पत्नी तथा बच्चा बन्दी हैं। देवम्माजी भी यह बात समझ गयी। राजमहल की कैद से छूटे मुश्किल से चार महीने नहीं हुए थे। अव उनके साथ उसका पति और बच्चा भी बन्दी हो गए। यह सोच-सोचकर वह दुखी होने लगी। उसकी आँखों से आँसू की धार बहने लगी। ऐसे दिन देखने को यह बच्चा क्यों पैदा हुआ ? यह सोचकर उसका गला भर आया।

रात को चेन्नवसवय्या ने कहा, "कल या परसों नौकरों के लिए कैलू के त्योहार का आयोजन करो। रात सब भोज मनाएँ। आगे बात मैं बताऊँगा।" चोमा को भी बात समझाई।

उस दिन राजमहल में कैलू का त्योहार मनाया गया। दोपहर के खेलकूद में महल के लोगों के साथ मडकेरी से आये हुए लोग भी सम्मिलित हुए।

रात को इन सबके लिए त्योहार का भोज था। चेन्नवसवय्या ने वसव के पहरे के आदमियों को एक पंक्ति में बिठाया और उनकी खीर में काफी अफीम घोट कर मिला दी। देवम्माजी को तैयार रहने को कहा और चोमा को योजना का संकेत दे दिया।

अफीम और ऐसी नशीली वस्तुएँ उन दिनों महलों में पर्याप्त मात्रा में रहती थीं। राजमहल के जीवन में जितना अन्न का महत्त्व था उतना ही विष का। जीवन की सही सीमा लाँघ कर जीवन विताने वाले के लिए अन्न से अधिक विष प्रिय होता है।

उस समय आधी रात तक दो व्यक्तियों को और बाद की आधी रात में दूसरे दो व्यक्तियों को पहरा देना था। चार आदमी तो सो गए। दो पहरे पर आये और उन्होंने एक दो चक्कर लगाये। दोनों ऊँघ रहे थे। एक ने दूसरे से पूछा, "आज क्यों आँखें ऐसे मुँदी जाती हैं ?" फिर थोड़ी देर बाद उनमें से बड़ा बोला, "मैं ज़रा लेट लगाता हूँ, थोड़ी देर में उठा देना," यह कहकर वह चबूतरे पर पड़ गया। उसको जगाते-जगाते छोटा भी आधे घण्टे बाद नींद न रोक पाने से सो गया।

इन सबको तन बदन की सुध भूल कर सोने की स्थिति में छोड़कर चोमा ने चेन्नवसवय्या से कहा, "अब चलिए, मालिक।" देवम्माजी तैयार बैठी थी। चोमा ने सोये हुए बच्चे का पालना उठा लिया।

घोड़े महल के सामने की ढलान के आगे पेड़ों की ओट में खड़े थे। ये लोग महल के पिछवाड़े से निकलकर चुपके से चक्कर काटते हुए नाला लांघ कर उनके पास जा पहुँचे।

चेन्नवसवय्या एक घोड़े पर सवार हो गया। देवम्माजी उसके पीछे उसकी कमर पकड़ कर बैठ गयी। चोमा एक घोड़े पर सवार हुआ, साथी तुक्र को घोड़े पर सवार होने को कहकर पालना उसे थमाया और आप एक सफ़ेद घोड़े को साथ-साथ चलाते हुए आगे बढ़ा। इसके पीछे उग्री जो उससे छोटा था, एक घोड़े पर चढ़कर और एक खाली घोड़े को लेकर चल पड़ा।

अब सतर्कता की आवश्यकता नहीं थी, फिर भी सौ-एक गज दूरी तक रास्ता धीरे-धीरे पार करके, बाद में तेजी से सामने घाटी की ओर से बढ़ गये।

कथा पूर्ण

102

अप्पगोलं को सिपाही भेजकर राजा ने वसव से कहा, "ओय लँगड़े, खेल के समय वह वसीके वाला वूढ़ा वहाँ खड़ा-खड़ा उस ब्राह्मण के छोकरे को वढ़ावा दे रहा था। उसे पकड़ मँगवा तो ज़रा पूछताछ करूँ!"

उन्हें इतना भर पता था कि वूढ़े ने वहाँ कुछ कहा था, पर उन्हें यह नहीं पता था कि वह उनके विरोध में नहीं वोला था। वसव ने कहा, "उसे वुलाने की क्या ज़रूरत है मालिक ? मैं तहकीक़ात कर लेता हूँ।"

साथ-ही-साथ, वसव को इस लँगड़े भिखारी पर भी क्रोध था जिसने भंगी का अभिनय करते समय झूठमूठ में ही अपना नाम वसव वताकर उसे उपहास का पात्र वनाया था। उसने उस को पकड़वाकर अच्छी ठुकाई कराने का निश्चय किया।

यह दूसरा काम उसी समय किया जा सकता था। भिक्षुक को पकड़ने के लिए दो आदमी भेजे गये।

लँगड़ा भिखारी लक्का नाटक खत्म होते समय ही समझ गया था कि अव उसकी शामत आयेगी। खेल में हिस्सा लेने को जव लोगों ने उससे कहा तव उसे पता न था कि क्या खेल होगा! उसने सपने में भी न सोचा था कि इस खेल में राजा और लँगड़े मन्त्री का मज़ाक वनाया जायेगा। उससे कहा गया था: जो तेरी समझ में आये वही कहना। सूर्यनारायणय्या उसी से काम चला लेगा और साथ ही यह भी वता देगा कि तुझे आगे क्या कहना है। नाम पूछने पर वसव वताना है।

उसे इस वात की खुशी थी कि राजा तथा दूर से आये हुए अंग्रेज़ अतिथियों के सामने उसे अभिनय करने का मौक़ा मिलेगा।

वह इसी खुशी में रंगमंच पर आया था। सूर्यनारायण राजा और वसव का उपहास कर रहा है, यह उसकी समझ में नहीं आया। परन्तु राजा जव गरजा

ओर बसव उठा तथा भागा उसकी ओर बढ़ा तो लक्का को लगा कि कुछ गड़बड़ हो गई है। लोगों के झुण्ड ने सब तरफ़ से घेरकर उसे और सूर्यनारायण को पार करा दिया। राजमहल की हद पार करते ही उसे गली में घुमाते हुए कहा, "इस वक़्त यहीं छिप जा, बाकी कल देख लेंगे।"

लक्का को यह अच्छी तरह पता था कि राजा कुपित हो जावें तो बचाने वाला कोई नहीं। अब मडकेरी से अन्न-जल उठ गया। मैसूर चले जाना ही ठीक रहेगा। यह सोचकर बड़ी निराशा से वह सुबह होने से पूर्व ही कुशालनगर की ओर चल पड़ा था।

बसव के इसे पकड़ने को भेजे गए आदमियों ने जब उसे उसके सदा बैठने वाले चौक पर नहीं पाया तो यह पूछताछ की कि वह कहाँ जा सकता है। एक बुढ़िया ने यह न समझते हुए कि लक्का को क्यों खोजा जा रहा है इन्हें बताया कि वह फ्लां तरफ़ गया है। भिखारी एक गाँव में भिक्षा माँग रहा था। बसव का आदमी उसके सिर पर यमदूत की तरह पहुँच गया। उसने उसके एक लात इतने ज़ोर से लगाई कि सारा खाया-पिया निकल गया। उसके हाथों को रस्सी से बाँधकर वापस मडकेरी लाकर बसव के सामने खड़ा किया गया।

बसव कुत्तों के बाड़े की देखभाल कर रहा था। उसी समय वह उसके सामने आ पड़ा। मन्त्री ने उस ग़रीब को बहुत गालियाँ दीं।

वह गरजा, "हमारा मज़ाक उड़ाने लायक चर्बी चढ़ गई, भीख का अन्न खा-खा के, सूअर के बच्चे!" डर के मारे भिखारी की ज़बान न खुली। बसव के हाथ से खाना खाते हुए दसेक कुत्ते उसकी ओर शेर की तरह देख रहे थे। बसव का मुख और कुत्तों की आँखें उसे यमलोक की भाँति दिखाई दे रही थीं। डर के मारे हकलाते हुए वह बोला, "हाय राम! नहीं मालिक! उन्होंने कहा था राजा और मन्त्री की प्रशंसा में खेल खेलेंगे। तू मन्त्री का अभिनय कर, इनाम देंगे।"

"मैं लँगड़ा हूँ। और मेरा मज़ाक उड़ाने उन्होंने तुझे बुलाया तो तेरी इतनी हिम्मत कि तू आकर खड़ा हो गया?"

"अय्यो मेरे अन्नदाता, मुझे क्या पता? बुलाया, चला गया। गड़बड़ हो गई।"

"लँगड़ेपन की बात तो तूने जाने-अनजाने में कर दी। पर जब तेरा नाम पूछा तो तूने 'बसव' बताया। तेरा नाम बसव है?"

"अय्यो मेरे प्रभु, मुझे बसव कहने को माँ-बाप कहाँ थे? मैं तो एक यतीम हूँ। किसी ने मुझे लँगड़ा लक्का कह दिया। बस वही बन गया। मैं बसव कैसे बन सकता हूँ?"

"तो अपना नाम बसव क्यों बताया?"

"मन्त्री बसवय्या बड़े बुद्धिमान हैं यह दिखाना था। मन्त्री का अर्थ बसवय्या है। दूसरा नाम मन्त्री-योग्य नहीं। इसलिए उन्होंने जो कुछ सिखाया वही मैंने कह

दिया, मेरे भगवान। बात थी सो खत्म हो गई। अब उदार मन करके माफ़ कर दीजिए।"

"ओय गधे के बच्चे! न खेलने वाले खेल को खेलकर अब गिड़गिड़ा रहा है हरामजादे!" कहकर बसव ने चार कदम आगे बढ़कर अपने हाथ के चाबुक से उसके सिर और कन्धों पर ताड़-ताड़ जमा दी। दूसरे ही क्षण, पता नहीं कैसे, बसव के इशारे पर मालिक का गुस्सा पहचान कर कुत्ता उछलकर आगे आया। उसने भिखारी की गर्दन नोच डाली। चिल्लाकर उसके नीचे गिरते ही फिर मुँह खोलकर उस पर झपटा।

मालिक की इच्छा ठीक से न समझने के कारण नौकर भी चुपचाप खड़े रहे। कुत्ते ने भिखारी की नाक चबा डाली। बसव ने जब "ओय, इधर आओ" कहा तो नौकरों ने आगे बढ़कर उसे थाम लिया।

इस आघात से भिखारी अधमरा होकर रोता हुआ जहाँ गिरा था वहीं पड़ा रहा। बसव बोला, "इस भिखमंगे, कुत्ते के पिल्ले को बाहर निकालो, कहीं यहीं न मर जाये साला। यहाँ मर गया तो इसका क्रियाकर्म कौन करेगा? नौकर लक्का को बाहर उठाकर ले गये। घावों से खून बह-बहकर उसका शरीर लथपथ हो गया था। शरीर पर पड़े चिथड़े खून से सन गये थे। पीड़ा से व्याकुल वह चिल्ला रहा था। नौकर उसे उसी तरह कुत्तों की बाड़ी से बाहर घसीटकर ले गये और एक ओर फेंककर लौट आये।

नौकरों को बसव का किया अन्याय या अपनी क्रूरता खटकी नहीं।

बाहर रास्ते में तड़पते पड़े हुए भिखारी के पास कोई आकर पूछने लगा, "क्यों रे क्या हो गया?"

"मन्त्री बसवय्या ने मुझ पर कुत्ता छोड़ दिया। उसने मेरी नाक चबा डाली।" भिक्षुक बोला।

आगंतुक अपरंपर स्वामी था। उसने भिखारी को उठाया और बोला, "ज़रा उस घर तक चल और मुंह धो डाल।"

भिखारी का मुख देखकर स्वामी को दया की जगह डर ही अधिक लगा। कुत्ते ने उसकी नाक की हड्डी को छोड़ बाकी मांस चबा डाला था।

स्वामी भिखारी को सहारा देकर समीप के घर तक ले गया और घरवालों को बुलाकर 'ज़रा पानी तो दीजिए' कहा। घरवालों के लाये पानी के लोटे को लेकर भिखारी का मुंह बड़ी आहिस्ता से धोया। 'ज़रा सिंदूर देंगे' कहने पर घर-वालों ने मुट्ठी में सिंदूर ला दिया। स्वामी ने उसे घाव में भर दिया। अपनी धोती से पट्टी फाड़कर उसे घाव पर कसकर बाँध दिया। बाद में उसने उस भिखारी से मन्त्री बोपण्णा के पास जाकर सारी बात बताकर सहायता मांगने के लिए कहा। भिक्षुक उस असहनीय पीड़ा को किसी प्रकार सहते हुए, 'अय्यय्यो! बाप रे!'

कहता हुआ बोपण्णा के घर की ओर चल पड़ा।

स्वामी घर वालों का वर्तन वापस करते हुए "कोडग के लोग शिकार के जानवर बन गये हैं", कहकर मन-ही-मन दुखी होता हुआ अपने रास्ते चला गया।

103

बसवय्या अपने को अपमानित करने वाले भिक्षुक को दण्ड देने के कार्य से निवृत्त होकर मालिक की आज्ञा का पालन करने के लिए उत्तय्या तक्क की तहकीकात करने चल पड़ा।

ऐसे कामों में इसका हाथ बँटाने के लिए नगर में सौ से भी अधिक गुण्डे थे। उनमें चार सरदार थे। एक-एक के बीस-तीस अनुयायी थे।

इन सरदारों में किसी को यदि बसव कहलवा भेजता तो महल के सभी नौकर यह समझ जाते थे कि कुछ खास बात है। यह खबर फैलते ही इनको शंका हो जाती कि शहर के किसी संभ्रात व्यक्ति पर आफत आ गयी है। आज जब बसव ने गुण्डों के सरदार मालिगा को बुलवा भेजा तो पहरे के माचा ने बात का पता लगा लिया।

राजमहल के सभी प्रकार के सेवकों की टोली में उसके एक-दो अपने आदमी थे। बसव ने मालिगा को जब बुलवा भेजा तो उस बात को उन्होंने माचा तक पहुँचा दिया।

"राजमहल से वसीका पानेवाला उत्तय्या तक्क बोपण्णा मन्त्री के घर ठहरा हुआ है। उसने राजा का अपमान करने के लिए नाटक मे नटों को उत्साहित किया था। उसके अकेले-दुकेले कहीं जाते समय तुम्हारे दो-चार आदमी उसकी ज़रा अच्छी ठुकाई कर दें। जान लेने की जरूरत नहीं, हाथ-पैर तोड़ देना ही काफी होगा।" मालिगा को यह आज्ञा मिली थी।

यह बात पता चलते ही माचय्या ने दीक्षित नारायण को सूचना दे दी। दीक्षित ने यह सारी बात किसी को न बताकर अपने कूट (संघ) के एक व्यक्ति को तक्क की सुरक्षा के लिए पीछे लगा दिया और यह आदेश दिया, 'तक्क कहीं भी अकेले-दुकेले जायें तो तुम उनके पीछे रहो। कोई उन पर हाथ उठाये तो इनका बचाव करना है।'

तक्क को सतर्क करने की किसी को ज़रूरत न थी। हमारा दल है उसके कुछ संकेत शब्द हैं यह बताने का समय न था। अपना काम पूरा होना चाहिए और दल की बात गुप्त ही रहनी चाहिए—उनका फिलहाल यही उद्देश्य था।

'कावेरी मक्कल कूट' फिलहाल और आगे बढ़कर कार्य करने की स्थिति में न था, क्योंकि बूढ़े दीक्षित ने वीरण्णा के हाथ यह कहकर बाँध दिये कि धर्म की

राह नहीं छोड़ना। गुल्म नायक उत्तय्या को कहीं नुकसान न पहुँचे इसलिए स्वामी और भी सतर्क हो गया था।

बसव से आज्ञा पाने के बाद मालिगा ने उसे कार्यान्वित करने में अधिक समय बेकार नहीं जाने दिया। उसी शाम को तक्क जब अपने साहूकार की दुकान पर जाने के लिए बाज़ार से गुज़र रहा था तो एक आदमी वहाँ आकर खड़ा हो गया जहाँ आदमी कम थे और बोला, "अरे वाह, यह शेर जैसी मूंछें!"

"कौन है रे मूंछ की बात कहने वाला!" कहते हुए तक्क उधर घूमा।

यह आदमी बोला, "क्यों बाबा मैंने कही थी।"

तक्क: "क्या थी मूंछ की बात?"

"कुछ भी हो आपको क्या?"

"मुझे देखकर ही तो कहा ना?"

"ओह हो, बाबा शहर भर में तुम्हारी ही मूंछें हैं?"

"शहर में तो बहुतेरी मूंछें हैं। यहाँ तुमने किसकी देख लीं शेरवाली मूंछ?"

"आपकी ही सही, क्या यह भी न कहें कि अच्छी हैं?"

"नहीं कहना चाहिए बेटे—ए—! बाल सफेद हो जाने से क्या गुस्सा ठण्डा हो गया मेरा? बकवास की तो दगवा दूंगा।"

"चलो, चलो, मूंछें लम्बी क्या हो गयीं, राजा ही बन गये। दगवा देंगे!"

इन दोनों के इतने बतियाने पर इधर-उधर से दो-दो चार-चार करके आठ-दस आदमी इकट्ठे हो गये। बूढ़े की बात और उस आदमी की बात को सुन कोई 'हूँ' बोला कोई 'हाँ' और कोई हँस पड़ा। सब कोई गली में झगड़ा देखने का मजा लेना चाहते थे। नारायण दीक्षित का आदमी भी आकर एक कोने में खड़ा हो गया और यह सब देखने लगा।

तक्क: "क्यों बेटा, गुण्डों को दागने राजा आयेगा क्या? अकड़ दिखा रहा है?"

गुण्डे का साथी बोला, "यह बूढ़ा कौन है? क्या बढ़-चढ़ कर बोल रहा है। ज़रा दो लगाओ तो अकल ठिकाने आ जाये।"

तक्क: "कौन है लगाने वाला? ज़रा देखूं तो, लगा के तो बता?" कहते हुए उसने अपने हाथ की लाठी ऊपर उठायी। बूढ़े के हाथ उठाते ही गुण्डों में से कोई 'अय्यो' चिल्ला पड़ा, दूसरा कोई बोला, "अरे पकड़ो तो इस बूढ़े को।" कोई दो और बूढ़े पर टूट पड़े। एक ने उसकी बाहें पकड़ीं, दूसरे ने फौरन कमर पकड़ ली। बूढ़े के हाथ की लाठी छीनते हुए पहला गुण्डा उसके हाथ पर लाठी जमाने को ही था कि पीछे खड़े दीक्षित के आदमी ने लाठी उसके हाथ से खींच ली और बोला, "क्यों भाई, बाबा को मारते हो? उनको अपने रास्ते जाने दो।"

गुण्डे ने अपने इस कार्यक्रम में इस अड़चन की कल्पना नहीं की थी। वह इस

नये आदमी की तरफ मुड़कर "ये कौन है ? लगाओ इसे भी दो" कहते हुए उस पर टूट पड़ा। तक्क को घेरकर खड़े होने वाले कुछ उस तरफ घूम गये। दीक्षित का आदमी लाठी घुमाते हुए, 'कावेरी मक्कलु, कावेरी मक्कलु' चिल्लाया। गुण्डे उस पर टूट पड़े। वह लाठी घुमाते हुए और जोर से चिल्लाया। वहाँ किसी घर से 'मक्कल तायी' की आवाज़ आई। उसी क्षण एक ओर से एक आदमी हाथ में लाठी लिये आता दिखाई दिया। वह भी 'कावेरी मक्कलु' चिल्ला रहा था। इतने में 'मक्कल तायी ! मक्कल तायी' कहते हुए बाज़ार की ओर से गली में से आठ-दस आदमी लाठियाँ लिये आ धमके।

इतने आदमियों के साथ उलझने की कल्पना मालिगा के गुण्डों ने न की थी। वह और उसके साथी दुम दबाकर भाग निकले। दूसरे लोग तक्क को घेर-कर खड़े हो गये। दीक्षित का आदमी बोला, "कहाँ जाओगे बाबा ! हम दो जने आप के साथ चलेंगे।"

तक्क बोला, "यह कौन हैं भाई ? बिना बात के छेड़खानी करने आये थे !"

दीक्षित का आदमी बोला, "कोई गली के गुण्डे थे। झगड़ा शुरू किया कि हम लोग आ गये। कहीं मार-पीट न हो जाये इसलिए हमने और लोगों को बुला लिया।"

तक्क : "भगवान की तरह आये और भगवान की तरह ही रक्षा की भैया तुमने। आप कौन हो ?"

"हम कौन हैं यह बात जाने दीजिये। मेरी आवाज़ सुनकर ये लोग भागे आये। आपको कहाँ जाना है यह बताइये। साथ में दो आदमी चलेंगे।"

"तुम अपना काम छोड़ मेरे साथ क्यों आते हो ? मुझे ऐसी क्या जरूरत है ? आप लोग अपने काम पर जाइये। मैं बोपण्णा मन्त्री के घर जा रहा हूँ।"

"यह बात है, मुझे भी उसी तरफ जाना था। आइये साथ ही चलेंगे।"

"शहर में साथ की जरूरत है क्या ? मैं चला जाऊँगा।"

"शहर के बीच में ही इसने झगड़ा किया कि नहीं ? कोई और भी ऐसे कर डाले तो ? मुझे कोई और काम नहीं। साथ ही चलेंगे।"

"ठीक ही है भैया। जंगल में चलते शेर भी मेरा रास्ता छोड़ देता था। अब शहर में राह चलते गुण्डे झगड़ा करते हैं। शहर जंगल से भी घटिया हो गया है।" यह कहते-कहते बूढ़ा दीक्षित के आदमी के साथ बोपण्णा के घर की ओर मुड़ गया। एकत्रित 'कावेरी मक्कलु' के सदस्यों ने उसे हाथ जोड़कर नमस्कार किया और बिखर गये।

तक्क ठिकाने पर पहुँचकर अपने को बचाने वाले व्यक्ति से धन्यवाद के दो शब्द कहने को मुड़ा तो देखा कि वहाँ कोई न था। बूढ़े ने भीतर जाकर घर वालों को सारी बात बतायी।

अप्पगोलं से चलकर राह में चेन्नवसवय्या ने चोमा से कहा, "संपाजे जाना है, चोमा।" चोमा, चेन्नवसव, तुक्र, उग्री इस क्रम में चलते हुए इन लोगों ने एक फर्लांग की दूरी बड़ी तेजी से तय की। इतने में बच्चा जागकर रो पड़ा। चेन्नवसवय्या ने घोड़ा रोका। माँ ने बच्चे को उठाकर दूध पिलाया। हाथ फेरकर बिस्तर ठीक किया, फिर से पालने में सुला दिया।

घोड़े के चलने के धक्के से बच्चा पालने से बाहर न गिर जाये इसलिए उसने पालने पर आड़े में एक पट्टी बाँध दी थी। बच्चे को पालने में सुलाकर देवम्माजी ने तुक्र से पट्टी ठीक से बाँधने को कहा। "अच्छा माँ" कह उसने पट्टी फिर से बाँध दी।

पूर्णिमा बीते दो दिन हुए थे। चाँदनी पेड़ों से छनकर आधा प्रकाश आधा अँधेरे का खेल खेल रही थी। चोमा इस प्रदेश के चप्पे-चप्पे से परिचित था। आँख पर पट्टी बाँधकर भी ठीक जगह पर पहुँच सकता था।

अधिकांश रास्ता पहाड़ की तलहटी में उतार-चढ़ाव के साथ था। जहाँ निचाई थी वहाँ कहीं-कहीं छोटे-छोटे नाले थे। घोड़े उसे आसानी से लाँघ जाते थे। केवल दो स्थानों पर नाले चौड़े और गहरे थे। वहाँ चोमा बोला, "मालिक, इस नाले पर से घोड़ा कुदाना पड़ेगा। मेरा घोड़ा कूद जायेगा, आप लोगों का भी। ज़रा मजबूती से बैठिये।"

आगे वाले आदमी ने जैसे घोड़े को कुदाया बाकी घोड़े भी उसी तरह लाँघते चले गये। सब मजबूती से बैठे थे। यात्रा आगे बढ़ी।

रास्ते में जहाँ-तहाँ दो-दो चार-चार झोंपड़ियाँ थीं। उनमें सोये हुए लोग आने-जाने वालों की सहायता देने वाले चौकीदार थे। दो-तीन जगह चौकीदारों ने पूछा, "कौन है भाई घुड़सवार?" चोमा ने कहा, "राजमहल के सेवक हैं। संपाजे जा रहे हैं।" चौकीदारों ने पूछा, "साथ की ज़रूरत है?" "कोई ज़रूरत नहीं हम ही चार-पाँच हैं," चोमा बोला।

चौकीदारों ने फिर कुछ नहीं पूछा! किसी ने बाहर आकर देखा भी नहीं। ऐसी रात की यात्राएँ रोज ही की थीं। रास्ता भी सुरक्षित ही था। कभी-कभार साल में किसी यात्री को कष्ट हो तो घटना किस गाँव की सीमा में हुई पता लगा कर उस गाँव का गौडा अपने नौकरों को उन गुण्डों को पकड़ने की आज्ञा देता। अगर वे पकड़ में न आते तो गाँव वालों को यात्रियों की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती।

इस व्यवस्था के कारण गाँव के गुण्डे तथा शोहदे भी आगे कोडग के बाहर चले जाते। अपने देश में वे बदमाशी नहीं कर पाते थे।

चोमा को पता था कि रास्ते मे चौकीदार इतनी पूछताछ करेंगे ही। अधिकाश लोग इसको जानते भी थे। संपाजे के पास तो सीमा के चौकीदार यात्रियों को रोककर पूछताछ करते ही थे। यदि वहाँ से किसी प्रकार भी आगे चले जायें तो तीन मील के बाद सीमा पार की जा सकती थी। चोमा ने चेन्नबसव से कहा, "मालिक, संपाजे के पास चौकी से होकर गुजरना पड़ता है। आपके घोड़े नीचे वाले रास्ते से चलें, उग्री रास्ता दिखायेगा। चौकीवालों के आवाज़ देने पर मैं उन्हे बातो में लगाऊँगा। आप धीरे से खिसक जाइयेगा। उन्हे समझाकर आपसे आ मिलूंगा।"

चेन्नबसवय्या बोला, "ऐसे ही सही।"

संपाजे की चौकी आयी। निचले रास्ते पर उग्री का घोड़ा आगे चल दिया। चेन्नबसवय्या का बीच मे और तुरु का आखिर में। चौकी के सामने वाली सड़क पर चोमा चल दिया।

चौकी के द्वार पर बैठे ऊंघते हुए पहरेदार को चोमा से पहले नीचे के रास्ते पर चलने वाले घोडे दिखायी दिये। "कौन है ?" उसने आवाज़ दी। चोमा आगे बढ़कर बोला, "मैं हूँ, राजमहल का नौकर।"

"निचले रास्ते पर कौन जा रहा है ?" पहरेदार ने पुकारा, "आप कौन जा रहे है ?" वह फिर बोला। वहाँ से कोई उत्तर नही मिला, "साथ चाहिए क्या ?" उसने फिर पूछा। इस बात का भी जवाब नहीं मिला। "अरे भाई यह कौन चोरी से चले जा रहे है ! नायक को बुलाना पडेगा ?" वह बोला।

चोमा : "तुम्हारी आवाज़ उन्हे सुनाई भी दी या नही। छिपकर जाने वाले घुड़सवार कौन हो सकते हैं ?"

"तो फिर वे कौन थे पता ही नहीं चला ना ! कल पूछा जाये तो जवाब देना पड़ेगा ना ?"

"मैं जाकर पता लगाऊँ ?"

"इतना कर दीजिये महाराज, नहीं तो हमारी शामत आ जायेगी। मैं भी साथ चलता हूँ।"

चोमा ने घोड़ा आगे बढ़ाया। पहरेदार उसके पीछे-पीछे आया। निचला रास्ता सौ गज बाद बड़े रास्ते से मिल जाता था। चोमा घोड़ा थोड़ा दौड़ाकर बोला, "घोड़ा किसका है ? पीछा करूँगा रोको मत, बढो।" चेन्नबसवय्या इसका अर्थ समझ गया। उसने तुरु को आज्ञा दी, "सीमा पार तक घोड़ों को दौड़ने दो, रुको मत।"

पहरेदार के हाथ पड़ने के डर से ये लोग चौकड़ियाँ भरते तीन मील का रास्ता मिनटों में पार करके सीमा पार जा पहुँचे।

इधर चोमा ने कहा, "मालूम पड़ता है कि मेरी आवाज़ उन्होंने सुनी नहीं

अप्पगोल से चलकर राह में चेन्नवसवय्या ने चोमा से कहा, "संपाजे जाना है, चोमा।" चोमा, चेन्नवसव, तुक्र, उग्री इस क्रम में चलते हुए इन लोगों ने एक फर्लांग की दूरी बड़ी तेजी से तय की। इतने में बच्चा जागकर रो पड़ा। चेन्नवसवय्या ने घोड़ा रोका। माँ ने बच्चे को उठाकर दूध पिलाया। हाथ फेरकर बिस्तर ठीक किया, फिर से पालने में सुला दिया।

घोड़े के चलने के धक्के से बच्चा पालने से बाहर न गिर जाये इसलिए उसने पालने पर आड़े में एक पट्टी बाँध दी थी। बच्चे को पालने में सुलाकर देवम्माजी ने तुक्र से पट्टी ठीक से बाँधने को कहा। "अच्छा माँ" कह उसने पट्टी फिर से बाँध दी।

पूर्णिमा बीते दो दिन हुए थे। चाँदनी पेड़ों से छनकर आधा प्रकाश आधा अँधेरे का खेल खेल रही थी। चोमा इस प्रदेश के चप्पे-चप्पे से परिचित था। आँख पर पट्टी बाँधकर भी ठीक जगह पर पहुँच सकता था।

अधिकांश रास्ता पहाड़ की तलहटी में उतार-चढ़ाव के साथ था। जहाँ निचाई थी वहाँ कहीं-कहीं छोटे-छोटे नाले थे। घोड़े उसे आसानी से लाँघ जाते थे। केवल दो स्थानों पर नाले चौड़े और गहरे थे। वहाँ चोमा बोला, "मालिक, इस नाले पर से घोड़ा कुदाना पड़ेगा। मेरा घोड़ा कूद जायेगा, आप लोगों का भी। ज़रा मजबूती से बैठिये।"

आगे वाले आदमी ने जैसे घोड़े को कुदाया बाकी घोड़े भी उसी तरह लाँघते चले गये। सब मजबूती से बैठे थे। यात्रा आगे बढ़ी।

रास्ते में जहाँ-तहाँ दो-दो चार-चार झोंपड़ियाँ थीं। उनमें सोये हुए लोग आने-जाने वालों की सहायता देने वाले चौकीदार थे। दो-तीन जगह चौकीदारों ने पूछा, "कौन है भाई घुड़सवार?" चोमा ने कहा, "राजमहल के सेवक हैं। संपाजे जा रहे हैं।" चौकीदारों ने पूछा, "साथ की जरूरत है?" "कोई ज़रूरत नहीं हम ही चार-पाँच हैं," चोमा बोला।

चौकीदारों ने फिर कुछ नहीं पूछा! किसी ने बाहर आकर देखा भी नहीं। ऐसी रात की यात्राएँ रोज ही की थीं। रास्ता भी सुरक्षित ही था। कभी-कभार साल में किसी यात्री को कष्ट हो तो घटना किस गाँव की सीमा में हुई पता लगा कर उस गाँव का गौंडा अपने नौकरों को उन गुण्डों को पकड़ने की आज्ञा देता। अगर वे पकड़ में न आते तो गाँव वालों को यात्रियों की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती।

इस व्यवस्था के कारण गाँव के गुण्डे तथा शोहदे भी आगे कोडग के बाहर चले जाते। अपने देश में वे बदमाशी नहीं कर पाते थे।

चोमा को पता था कि रास्ते में चौकीदार इतनी पूछताछ करेंगे ही। अधिकांश लोग इसको जानते भी थे। संपाजे के पास तो सीमा के चौकीदार यात्रियों को रोककर पूछताछ करते ही थे। यदि वहां से किसी प्रकार भी आगे चले जायें तो तीन मील के बाद सीमा पार की जा सकती थी। चोमा ने चेन्नबसव से कहा, "मालिक, संपाजे के पास चौकी से होकर गुजरना पड़ता है। आपके घोड़े नीचे वाले रास्ते से चलें, उग्री रास्ता दिखायेगा। चौकीवालों के आवाज़ देने पर मैं उन्हें बातों में लगाऊँगा। आप धीरे से खिसक जाइयेगा। उन्हें समझाकर आपसे आ मिलूंगा।"

चेन्नबसवय्या बोला, "ऐसे ही सही।"

संपाजे की चौकी आयी। निचले रास्ते पर उग्री का घोड़ा आगे चल दिया। चेन्नबसवय्या का बीच में और तुक्र का आखिर में। चौकी के सामने वाली सड़क पर चोमा चल दिया।

चौकी के द्वार पर बैठे ऊंघते हुए पहरेदार को चोमा से पहले नीचे के रास्ते पर चलने वाले घोड़े दिखायी दिये। "कौन है?" उसने आवाज़ दी। चोमा आगे बढ़कर बोला, "मैं हूँ, राजमहल का नौकर।"

"निचले रास्ते पर कौन जा रहा है?" पहरेदार ने पुकारा, "आप कौन जा रहे हैं?" वह फिर बोला। वहाँ से कोई उत्तर नहीं मिला, "साथ चाहिए क्या?" उसने फिर पूछा। इस बात का भी जवाब नहीं मिला। "अरे भाई यह कौन चोरी से चले जा रहे हैं! नायक को बुलाना पड़ेगा?" वह बोला।

चोमा : "तुम्हारी आवाज़ उन्हें सुनाई भी दी या नहीं। छिपकर जाने वाले घुड़सवार कौन हो सकते हैं?"

"तो फिर वे कौन थे पता ही नहीं चला ना! कल पूछा जाये तो जवाब देना पड़ेगा ना?"

"मैं जाकर पता लगाऊँ?"

"इतना कर दीजिये महाराज, नहीं तो हमारी शामत आ जायेगी। मैं भी साथ चलता हूँ।"

चोमा ने घोड़ा आगे बढ़ाया। पहरेदार उसके पीछे-पीछे आया। निचला रास्ता सौ गज बाद बड़े रास्ते से मिल जाता था। चोमा थोड़ा थोड़ा दौड़ाकर बोला, "घोड़ा किसका है? पीछा करूँगा रोको मत, बढ़ो।" चेन्नबसवय्या इसका अर्थ समझ गया। उसने तुक्र को आज्ञा दी, "सीमा पार तक घोड़ों को दौड़ने दो, रुको मत।"

पहरेदार के हाथ पड़ने के डर से ये लोग चौकड़ियां भरते तीन मील का रास्ता मिनटों में पार करके सीमा पार जा पहुँचे।

इधर चोमा ने कहा, "मालूम पड़ता है कि मेरी आवाज उन्होंने सुनी नहीं,

इसीलिए जवाब ही नहीं दिया। तुम कहाँ तक दौड़ोगे। मैं पूछकर आता हूँ; यहीं ठहरो," कहते हुए उनके पीछे ही घोड़ा दौड़ा दिया। कहने की जरूरत नहीं कि चौकीदार की तसल्ली के लिए ही उसने ऐसा कहा था। चोमा ने सोचा, पहरेदार के नायक को बताने और नायक के घोड़े पर चढ़कर आने में आधा घण्टा चाहिए। आधा घण्टे में हम सीमा पार कर जायेंगे। बाद में कोई डर नहीं। चेन्नबसवय्या तुक्र व उग्री ने सीमा पार करके घोड़ों को रोका ही था कि चोमा भी घोड़ा दौड़ाते हुए वहाँ आ मिला।

चेन्नबसवय्या ने पूछा, "किसी ने पीछा तो नहीं किया ?"

चोमा : "कौन पीछा करता ? घोड़े लेना, जीन कसना और सवार होकर आना कोई मिनट भर का काम है ? थोड़ा चलकर आँखों से ओझल हो जाने पर, वे लोग इधर आकर हमें नहीं पकड़ सकते।"

इस समय तक मुर्गों के बाँग देने का वक़्त हो चुका था। चन्द्रमा की चाँदनी के साथ फटती हुई पौ का प्रकाश मिल गया था और सूर्य उदय होने को था।

चोमा की बात ख़त्म होते ही तुक्र घोड़े पर से ही चिल्लाया, "अय्यो, यह क्या हो गया !" और अपने सामने पालने को एकटक देखने लगा।

कोई उनका पीछा करने को आ गया सोचकर उसकी भयपूर्ण आवाज़ सुनते ही सब रास्ते की ओर देखने लगे। वहाँ कोई न दिखा। इसके डर का कारण जानने को सब उसकी ओर मुड़े तो वह फिर चीख पड़ा, "पालने में बच्चा नहीं है।"

105

तुक्र की चीख इन सबके हृदयों को चीरती चली गयी। देवम्माजी 'अय्यय्यो' कहकर बिलखती हुई पति की कमर छुड़ाकर कूदने को हुई कि पति के शरीर से धक्का लगने से भूमि पर गिर पड़ी।

इससे पहले ही तुक्र, चोमा, उग्री सब अपने-अपने घोड़ों से उतर पड़े थे। चोमा धीरे से 'माँ' कहता हुआ उसके पास आया। इतने में चेन्नबसवय्या ने घोड़े से उतरकर पत्नी को उठाकर खड़ा किया। फिर तुक्र की ओर मुड़कर बोला, "क्या कह रहा है रे, बच्चे का क्या किया ?"

तुक्र : "अय्यो, मैंने क्या किया सरकार ! नाला पर करने में या भागमभाग में कहीं उछलकर गिर गया होगा।"

"उछलकर कैसे गिर सकता है। पट्टी बँधी थी।" कहते हुए इन लोगों ने तुक्र के घोड़े के पास आकर पालने को देखा। पट्टी एक ओर से दूसरी ओर तक बँधी हुई न थी। एक ही ओर दो बार बँधी थी।

हुआ यह था कि देवम्माजी ने बच्चे को दूध पिलाकर पालने में सुलाते "यह पट्टी बाँध दो" कहकर पट्टी तुरु के हाथ में दे दी। तुरु ने जल्दबाजी में जिधर से पट्टी निकाली थी उधर एक ही ओर फिर से बाँध दी। बच्चे को घोड़े से उठान से बचाने में पट्टी बेकार रही।

दूध यात्रा के शुरू में ही पिला दिया। उसके बाद चार योजना से भी ज्यादा सफर तय हो गया था। इस बीच बच्चा कहीं पालने से उछलकर गिर गया यह बात सबकी समझ में आ गयी। चेन्नबसवय्या ने "अय्यो सुअर के बच्चे, घर घर का सत्यानाश कर डाला।" कहते हुए तुरु के गाल पर जोर से थप्पड़ जमा दिया।

"भगवान की कसम, मेरी गलती नहीं। अनजाने में ही हो गया है।" कहकर तुरु गिडगिड़ाया।

"क्यों पता नहीं चला!" कहकर चेन्नबसव फिर उसे मारने को दौड़ा तो देवम्माजी ने उसका हाथ पकड़ लिया। "हमारी किस्मत, इसमें कोई क्या कर सकता है। चलिये लौट चलें। मुन्ना जहाँ गिरा है उठा लेंगे। और देर लगायी तो शेर गीदड के मुँह में न पड़ जाये।"

किसी की समझ में न आया कि क्या किया जाये। माँ के मन में तो सिर्फ बच्चे की ही रक्षा की बात थी। बाकी लोग आसानी से वापस लौटने को तैयार न थे। संपाजे की चौकी के लोग पीछे आ ही रहे थे। सीमा के पार होने पर भी वे लोग इन्हें जबर्दस्ती पकड़ ही सकते थे। तो सीमा के भीतर मिलने पर छोड़ते क्या? पकड़े जाने पर इन सबकी एक ही हालत होनेवाली थी। वह थी फाँसी। बच्चा बच ही गया है इस भ्रम का भी कोई आधार नहीं था। शेर और गीदड के मुँह से बच जाने पर भी अगर किसी आदमी के हाथ पड़ गया हो तो वह राजा के हाथ लग जायेगा और तब तक इन पाँचों की आयु के साथ ही उसकी आयु भी खत्म ही समझनी चाहिए। अब क्या करना होगा? बच्चे के लाने तक एक कदम भी आगे न बढ़ने का देवम्माजी ने हठ किया। सूल्या तक पहुँचना चाहिए और वहाँ के अधिकारियों से सुरक्षा प्राप्त करनी होगी, नहीं तो न ये रहेंगे न बच्चा। यह बात बार-बार चेन्नबसवय्या तथा चोमा ने कही। अन्त में वे दूसरे निश्चय पर पहुँचे। जिस रास्ते से आये हैं चोमा उसी पर बच्चे को ढूँढ़ता हुआ वापस जाये। घोड़े कुदाने की जगह और दौड़ाने की जगह में बच्चे के मिलने की संभावना थी, या किसी राहगीर के हाथ पड़ गया होगा—इस बात का होशियारी से पता लगाकर उसे प्राप्त करके सूल्या पहुँच जाना है।

देवम्माजी की तसल्ली के लिए ही यह निश्चय किया गया था। मुँह से न कहने पर भी मन में चेन्नबसवय्या और चोमा दोनों यह समझते थे कि बच्चे की मृत्यु निश्चित-सी ही है। चेन्नबसवय्या का यह भी एक विचार था कि

यथाशीघ्र मंगलूर के कलैक्टर से मिलकर अंग्रेज़ों से सहायता की प्रार्थना करके आवश्यक रक्षा-दल को साथ लेकर बच्चे को ढूंढ़ने को लौटा जाये। इधर चोमा ने निश्चय कर लिया; कोशिश भर तो बच्चे को बचाया जाये फिर ईश्वर की मर्ज़ी। वह स्वयं तो अब बच नहीं पायेगा, पर उसके मालिक और मालकिन सुख से रहें यही काफ़ी है।

तुक्क चोमा के मन की बात समझ गया। उसकी गलती से वह क्यों मारा जाये। सोचकर बोला, "चोमा, मालिक के साथ तुम जाओ, बच्चे को मैं ढूंढ़ लाता हूँ।"

तो चोमा ने कहा, "तुममें और मुझमें क्या फ़र्क़ है? सुल्या में आकर मिल जाऊँगा, चलो।"

देवम्माजी को चोमा का जाना ही उचित लगा। चेन्नबसवय्या की भी यही इच्छा थी क्योंकि चोमा काम में दक्ष और बात करने में चतुर था। चेन्नबसवय्या, देवम्माजी, तुक्क, उग्गी आगे बढ़ चले। ख़ाली पालने को पीछे बाँधकर ख़ाली घोड़ों में से एक पर चढ़कर चोमा वापस लौटा।

सूर्योदय से संसार प्रकाशित हो गया था परन्तु इन सबके मन में अन्धकार छाया हुआ था।

106

थोड़ी दूर चलकर चोमा पीछे मुड़कर एक क्षण तक देखता रहा और साथियों के ओझल होते ही उसने पालने को घोड़े से उतारकर झाड़ी में फेंक दिया। आती बार चौकीवाले से वह एक झूठ बोलकर आया था। अब फिर उस झूठ को आगे बढ़ाना था। यह पालना उसमें बाधक होता। चौकीवाला अगर अपने अधिकारी को बुला चुका हो तो इसकी पूछताछ होगी ही। समय देखकर विश्वास उत्पन्न करने को जो चाहिए वह करना पड़ेगा। खोज में गड़बड़ हो जाये तो गर्दन कटवानी पड़े या सूली पर चढ़ना पड़े; जो भी भाग्य में बदा होगा भुगतना ही पड़ेगा।

उसने जैसा सोचा था वैसे ही जब वह चौकी से कुछ दूर पर ही था तभी 'देखिये वह घोड़े वाला आ रहा है' की आवाज़ सुनाई दी। यह आवाज़ ज़रूर चौकीवालों की ही होगी और वह अपने अधिकारी को बता रहा होगा—यह चोमा समझ गया। दूसरे ही क्षण उसने देखा, एक युवक चौक के बाहरी दरवाज़े पर खड़ा उसकी ओर देख रहा है। चोमा न ज़्यादा तेज़ी से न बहुत धीरे ही, बल्कि साधारण चाल से चौकी की ओर चलता आया।

चौकीदार : "क्यों भैया ऐसे भाग गये, मुझे गुरिकार[1] साहब की नींद खराब करनी पड़ी।

चौकीदार इस सोच में पड़ा था कि गुरिकार की पूछताछ का जवाब यदि इस आदमी को ठीक से न दिया तो गुरिकार मुझे ही डाटेंगे कि मैंने उनकी नींद क्यों हराम कर दी।

चोमा : "अरे रे काहे को उन्हें जगा दिया। तुम ही ने मुझे उनको रोकने को भेजा था। पता नहीं कौन थे? लगता है डर गये। दौड़ते-दौड़ते निकल गये। सीमा भी पार कर गये, अब क्या किया जाये? आपको बताने वापस चला आया।"

गुरिकार ने पूछा, "तुम कौन हो घुड़सवार? वह बोला, "अप्पगोलं का चोमा हूँ मैं। दामाद-राजा ने मन्जुनाथ भगवान की मनौती की पूजा की दो मोहरें दी थी; इनके लिये जा रहा था। चौकीदार ने उन घोड़ों को देखा और आवाज दी। मैं घोड़े पर था इसलिए मैंने उनका पीछा किया।"

"अरे भैया यह क्या! तुमने उन्हें रुको मत, भागो-भागो कहा था।"

चोमा : "ऐसा भी कहीं हो सकता है? मैंने तो रुको, मत भागो, मत भागो कहा था। रुको मत, भागो भला मैं क्यों कहता? वह मेरे क्या लगते थे?"

गुरिकार इतनी देर तक उसे घूरता रहा। वैसे चोमा बहुत ही सहज ढंग से बात कर रहा था। परन्तु उसे इस पर विश्वास नहीं हुआ इसलिए पूछने लगा, "दामाद साहब ने कोई पत्र दिया है? कहाँ है?"

चोमा मोहरें निकालने को हाथ कमर तक ले गया और वहाँ बार-बार टटोल कर न मिलने का बहाना करते हुए, "अरे इस भाग-दौड़ में वह तो कहीं गिर गयीं। अब तो अप्पगोलं वापस जाकर राजा के पाँव पड़ना पड़ेंगे। अब क्या करूँ? मेरा नसीब!" कहकर मोहरें खोने का नाटक करने लगा।

गुरिकार को उसकी बात झूठी है यह विश्वास हो गया। अब उसे वास्तव में चोमा को पहरे में रखकर बाकी पूछताछ करनी थी। लेकिन उसे एक डर भी था कि कहीं सचमुच ही दामाद साहब ने इसे भेजा हो और इसे रोक लिया जाये तो वे इसे अपना अपमान न समझ बैठें? सारा देश उनके जिद्दीपन से वाकिफ़ था। वह इसके लिए गुरिकार से कड़ा बदला लिये बिना न रहेगा। यह समस्या कैसे हल हो?

क्या यह राजमहल से भागकर घोड़ा चुराकर मंगलूर भाग रहा था? ऐसा नहीं हो सकता। चोरी में भागनेवाला वापस क्यों आने लगा? क्या वह सचमुच चौकीदार को यही बताने आया है कि घुड़सवार भाग गये? शायद यही

---

1. गाँव का मुखिया।

सच हो। चिट्ठी और मोहरें गिर जाने की बात? वह भी सच हो सकती है, असंभव नहीं इतना सोचकर गुरिकार ने निश्चय किया कि वह स्वयं इसके साथ अप्पगोलं जायेगा। यदि चोमा की बात सच निकली तो चेन्नवसवय्या से क्षमा माँगकर लौट आयेगा।

यह सोचकर चौकीदार से घोड़ा लाने के लिए कहने को ही था कि उस चौकी के दाईं ओर कुछ दूर ऊँचाई पर गौडा के घर के पास दस-पांच मिनट की बात-चीत सुनायी पड़ी। गुरिकार ने चौकीदार से कहा, "वहाँ क्या है देख के आ!" चौकीदार उधर भागा गया। गुरिकार ने चोमा से पूछा, "तुमने अपना नाम चोमा बताया था क्या?"

"जी हाँ सरकार।"

"अपना घोड़ा इस खम्भे से बाँध दो। हम भी तुम्हारे साथ अप्पगोलं चलेंगे।"

"अच्छा सरकार।"

"चोमा ने घोड़े को उसकी लगाम से खम्भे से बाँधकर गुरिकार से कहा, "इसे जरा घास पानी देने को चौकीदार को कह दूं?" गुरिकार ने स्वीकृति में सिर हिलाया।

गौडा के घर को गया चौकीदार वापस आकर बोला, "कपड़ों के रखवाले कोग्गा की झोंपड़ी के सामने कोई एक बच्चा फेंक गया है। कोग्गा और उसकी पत्नी उसे गौडा के पास ले आये हैं।"

गुरिकार के मुँह से निकला, "बच्चा!"

"लड़का छह महीने का होगा।"

"तुम यहाँ रुको। मैं देखकर आता हूँ।" फिर चोमा की ओर मुड़कर बोला, "ऐ चोमा, तुम भी मेरे साथ आओ।"

चोमा को सन्तोष हुआ कि मालिक का बच्चा बच गया है और लोगों के हाथ में है। अब सोचने लगा कि इसे यहाँ से छुड़ाकर मंगलूर कैसे पहुँचाया जाय। "मैं क्या कर सकता हूँ, करिगाली माँ। तुम्हें ही रास्ता दिखाना होगा। मैं उसी पर चल सकूंगा। बच्चे को बच्चा दे दो। दो बकरे की बलि दूंगा।" मन-ही-मन देवता से कुछ ऐसी ही प्रार्थना करता हुआ चौकी के गुरिकार के साथ गौडा के घर की ओर चलने लगा।

107

गुरिकार और चोमा के गौडा के घर पहुँचने तक वहाँ और भी लोग इकट्ठे हो गये थे जिससे वहाँ हाट जैसी लगी दीखती थी। गौडा घर में नहीं था। उसकी पत्नी

और उसकी पुत्रवधू दोनों बाहर के दरवाजे के सामने खड़ी होकर कोग्गा से बात-चीत कर रही थी। कोग्गा की पत्नी बच्चे को अपनी गोद में लिये उसके पास खड़ी थी। गुरिकार को आते देखकर झुण्ड में से एक बोला, "रास्ता भाई, गुरिकार साहब आ रहे हैं।" जिम्मेदार व्यक्ति आया देख सबने खुशी से रास्ता दे दिया। गुरिकार झुण्ड के भीतर घुसकर गौडती के पास ही कुछ दूर पर खड़ा हो गया।

गौड्ती ने कोग्गा को आज्ञा दी, "गुरिकार साहब को सब बता।"

कोग्गा ने बताया, "मुर्गा बाँग दे चुका था सरकार, मेरी बुढ़िया उठने ही वाली थी कि नीचाई में एक बच्चे के ऊँआ-ऊँआ रोने की आवाज सुनायी दी। बुढ़िया बोली, 'ये क्या, बच्चे की तरह रो रहा है!' 'हाँ ऐसा ही लगता है।' मैंने कहा। वह बोली, 'कोई भूत होगा।' मैंने कहा, 'मुर्गा बोलने के बाद भूत कैसा?' वह बोली, 'चलो ज़रा देखें तो। इस समय क्या डर।' 'चल, आता हूँ,' कह मैं भी उठा। इतने में वह चल पड़ी।"

कोग्गा की पत्नी ने कहानी आगे बढ़ायी, 'भूत नहीं है तो फिर क्या है,' कहकर अकेली चल पड़ी, माँजी। आपको पता है, मर्दों के निकलने में सदा देर लगती है। चार ही कदम गयी थी कि मन में आया अब भी भूत हो सकता है, दिल में धक् होने से खड़ी हो गयी। बच्चा फिर ऊँआ-ऊँआ किये जा रहा था। कलेजा फटने लगा। ज्यों ही भागी, नीचाईवाली सड़क के किनारे जूही की झाड़ी में सोने के कपड़ों में पड़ा मुन्ना रो रहा था। राजकुमार की-सी चमचमाती आँखें, कुंकुम लगे से लाल होंठ। भूत हो या पिशाच मैंने तो उठा लिया। हाथ में आ गया। भूत नहीं, भगवान ही मान उठा कर झोंपड़ी की ओर चल दी।"

कोग्गा बोला, "मैं उठकर बाहर आया। जिधर वह गयी थी उधर ही चला, सरकार। दस कदम भी नहीं गया कि वह मुन्ने को लिये इधर आ रही थी। मैंने कहा, 'भगवान जैसा बच्चा है।' वह बोली, 'यह यहाँ कैसे आ गया?' मैंने कहा, 'यह किसी का नाजायज बच्चा होगा।' वह बोली, 'यह तो कुछ ही महीनों का है।' मैंने कहा, 'हाँ अगर नाजायज होता तो पैदा होते ही कब्र देख लेता।' 'तो यह क्या हो सकता है, यह बोली। 'कपड़े देखकर तो राजमहल का राजकुमार-सा दिखता है। ऐसा लगता है किसी चोर ने चुरा लिया होगा, गहने उतारकर फेंक दिया है' मैंने कहा। 'ऐसा है तो मैं इसे पाल नहीं सकती?' यह बोली। तो मैंने कहा, "तेरे पालने लायक बच्चा है यह! तेरी अकल कितनी है री!"

कोग्गा की पत्नी बोली, "मर्द की बात ठीक लगी मुझे। नाजायज बच्चा होता तो पाल लेती। चुराए हुए बच्चे को माँ-बाप तक पहुँचा देना चाहिए। इसलिए कहा "चलो गौड़ा के हाथों में दे आयें। तब इसे यहाँ ले आये, माँजी।"

गुरिकार ने बच्चे को ड्योढ़ी पर रखने की आज्ञा दी। कोग्गा की पत्नी ने

वच्चे को कपड़ों सहित ड्योढ़ी पर लिटा दिया। गौडती और उसकी वहू और चार ऊँचे घर की औरतों ने उसे घेर लिया। गौडती वोली, "सचमुच ही यह तो राज-कुमार है।" उसकी वहू "मेरा मुन्ना भी ऐसा ही था। मेरे भाग्य में उसे पालना नहीं लिखा था," कहती हुई आँसू गिराने लगी। चार मास पूर्व एक वच्चे को जन्म देकर खो वैठी थी। इस युवा माता के मन में आया कि यदि इस वच्चे को पाल ले तो कितना अच्छा होगा! पेट के वच्चे को तो भगवान ले ही गया था अब इस रूप में उसे वापस कर देना चाहिए था उसे!

वाक़ी औरतों में कोई उसकी भौहें, कोई आँख, कोई उसकी नाक और कोई चिवुक वखानने लगी। एक वुढ़िया वच्चे के पास आकर वच्चे के माथे पर हाथ रख कर उसे चूमकर नज़र उतारने लगी।

चोमा सारी कहानी सुनकर अपने मालिक के दुर्भाग्य को देखकर दुखी हुआ। तीन मील पर सीमा थी, उतनी दूर भर वच्चा पालने में रहा आता तो कोई चिन्ता न होती। दौड़ में जीत होने ही वाली थी कि पाँव फिसलना था। अब क्या किया जाय? आगे क्या होगा? यह सोचकर व्यथित हुआ। मन-ही-मन करिगाली को फिर मनौती मनायी।

तभी गौडा घर लौटा। सारी वातें उसे वता दी गयीं। वह वोला, "कपड़े देखने से तो यह राजघराने का ही वच्चा लगता है। अप्पगोलं के वच्चे को कोई चुरा कर ले आया है।"

गुरिकार गौडा से वोला, "अच्छा तो आपका यह कहना है!" फिर चोमा की ओर घूमकर वोला, "ओय तू कहता है कि तू अप्पगोलं का है। यह वच्चा तुम्हारे महल का है क्या? पहचान सकता है?"

उसके मन में यह सन्देह जड़ पकड़ रहा था कि यह वच्चे को चुरा लाया है। गहने उतारकर इस वच्चे को कहीं फेंकने के लिए भागा है। रास्ते में वच्चा गिर जाने से उसे फिर से ढूंढ़ने वापस आया है। इसलिए उसने मन में निश्चय कर लिया कि इसे और वच्चे को लेकर वह अप्पगोलं जायेगा।

चोमा को उस समय यह न सूझा कि वह क्या कहे। फिर भी वोला, "कपड़े तो राजमहल के-से ही दिखते हैं; मालिक का वच्चा हो सकता है।"

इतने में गौडा की पुत्रवधू ने भीतर से आकर अपने पति से अपने मन की वात कही। उसने अपनी माँ को वह वात वतायी। गौडती अपने पति से वोली, "जव तक वच्चे के वारे में कोई वात पक्की तरह पता न लग जाये तव तक उसे हमारी वहू पालेगी। उसका दूध जो दूसरे वच्चे पी रहे हैं यह भी पी लेगा।"

गौडा: "अगर भगवान को यह मंजूर होता कि हमारे घर में एक वच्चा रहे तो वह हमारे वच्चे को क्यों ले जाता। चुराया हुआ वच्चा क्या हमें मिल सकता है? अभी तो वह पूछताछ होनी है कि गहने गोटे क्या थे। किसने उतारे, क्या

हुए? अगर हम कहें कि हमारे पास रहने दिया जाये तो शक होगा कि हमने ही चुराकर मँगवाया है। हमारे गौडपन पर मिट्टी उछलेगी।" बाद में अपने बेटे को बुलाकर बोला, "बेटा, नौकर के हाथ में बच्चा उठवाकर अप्पगोलं जाओ। और पूछो कि यह महल का ही है। उनके न कहने पर मडकेरी ले जाकर रानी साहिबा को दिखाओ और उनकी आज्ञा लो। यदि वे कहें कि हमारा नहीं तो खुशी से वापस ले आओ और बहू को दे दो।" गुरिकार ने लोगों को आज्ञा दी, "हम गौडा से दो बातें करना चाहते हैं आप लोग ज़रा दूर ही रहिए।" लोग दूर हट गये। गुरिकार ने कोग्गा और उसकी पत्नी को भी "ज़रा वहीं रहो," कहकर चोमा को पास ठहरने को कहा। फिर गौडा से बोला, "कोग्गा और उसकी पत्नी ने सबसे पहले बच्चे को देखा वही उसको अप्पगोलं ले जायें। सब बात बताने में आसानी होगी। आपके बेटे भी चलें, मैं भी साथ चलता हूँ। यह अपने को राजमहल का सेवक बताता है और भी बहुत कुछ कह रहा है। यह भी साथ चलेगा, इसके बारे में भी पता लगाकर आऊँगा।"

गौडा बात मान गया। बच्चा उसे नहीं मिल सकेगा देख गौडा की पुत्रवधू फफक-फफककर रोने लगी। उसकी सास बोली, "यदि बच्चा उनका न निकला तो उसे वापस ले आयेगा। तू ही पाल लेना। अब शान्त हो जा।" बहू बोली, "पालना नसीब में होता तो पेट का ही न रहता।" वह और जोर से रोती हुई भीतर चली गयी।

देवम्माजी के बच्चे को एक पालने में लिटाकर कोग्गा के सिर पर उठवा दिया तथा चोमा, गुरिकार और गौडा के बेटे की देखभाल में वह फिर अपने जन्मस्थान अप्पगोलं के राजमहल की ओर चल पड़ा।

108

इधर अप्पगोलं के राजमहल में अफीम के प्रभाव में नींद में पड़े पहरेदारों में से नायक की मुर्गे बोलने के समय ज़रा नींद खुली। उसे आधी रात को उठकर पहरे का निरीक्षण करना था। नौकरों को उसे जगाना चाहिए था। नायक तनिक डरा, अब भी उसकी आँखें खुल नहीं पा रही थीं। उसे लगा यह नींद सदा जैसी नहीं। गुड़ से ज़रा परहेज ही था, जब खीर परोसी गयी तो उसने दूसरों की तरह छककर नहीं खायी थी। अगले दिन सिर दर्द के डर से आधी खीर ऐसे ही छोड़ दी थी। इसलिए उसकी इतनी देर होने पर भी सबसे पहले आँख खुल गयी। उसने सोचा, खाने में कोई नशीली चीज़ तो नहीं मिलायी होगी? कुछ अस्वाभाविक बात अवश्य हुई होगी। ऊँघ के कारण उसकी बुद्धि में यह सब बातें धीरे-धीरे आने लगी। कुछ अस्वाभाविक बात अवश्य हुई होगी—सोचते ही

बच्चे को कपड़ों सहित ड्योढ़ी पर लिटा दिया। गौडती और उसकी बहू और चार ऊँचे घर की औरतों ने उसे घेर लिया। गौडती बोली, "सचमुच ही यह तो राजकुमार है।" उसकी बहू "मेरा मुन्ना भी ऐसा ही था। मेरे भाग्य में उसे पालना नहीं लिखा था," कहती हुई आँसू गिराने लगी। चार मास पूर्व एक बच्चे को जन्म देकर खो बैठी थी। इस युवा माता के मन में आया कि यदि इस बच्चे को पाल ले तो कितना अच्छा होगा ! पेट के बच्चे को तो भगवान ले ही गया था अब इस रूप में उसे वापस कर देना चाहिए था उसे !

बाक़ी औरतों में कोई उसकी भौहें, कोई आँख, कोई उसकी नाक और कोई चिबुक बखानने लगी। एक बुढ़िया बच्चे के पास आकर बच्चे के माथे पर हाथ रख कर उसे चूमकर नज़र उतारने लगी।

चोमा सारी कहानी सुनकर अपने मालिक के दुर्भाग्य को देखकर दुखी हुआ। तीन मील पर सीमा थी, उतनी दूर भर बच्चा पालने में रहा आता तो कोई चिन्ता न होती। दौड़ में जीत होने ही वाली थी कि पाँव फिसलना था। अब क्या किया जाय ? आगे क्या होगा ? यह सोचकर व्यथित हुआ। मन-ही-मन करिंगाली को फिर मनौती मनायी।

तभी गौडा घर लौटा। सारी बातें उसे बता दी गयीं। वह बोला, "कपड़े देखने से तो यह राजघराने का ही बच्चा लगता है। अप्पगोलं के बच्चे को कोई चुरा कर ले आया है।"

गुरिकार गौडा से बोला, "अच्छा तो आपका यह कहना है !" फिर चोमा की ओर घूमकर बोला, "ओय तू कहता है कि तू अप्पगोलं का है। यह बच्चा तुम्हारे महल का है क्या ? पहचान सकता है ?"

उसके मन में यह सन्देह जड़ पकड़ रहा था कि यह बच्चे को चुरा लाया है। गहने उतारकर इस बच्चे को कहीं फेंकने के लिए भागा है। रास्ते में बच्चा गिर जाने से उसे फिर से ढूंढ़ने वापस आया है। इसलिए उसने मन में निश्चय कर लिया कि इसे और बच्चे को लेकर वह अप्पगोलं जायेगा।

चोमा को उस समय यह न सूझा कि वह क्या कहे। फिर भी बोला, "कपड़े तो राजमहल के-से ही दिखते हैं; मालिक का बच्चा हो सकता है।"

इतने में गौडा की पुत्रवधू ने भीतर से आकर अपने पति से अपने मन की बात कही। उसने अपनी माँ को वह बात बतायी। गौडती अपने पति से बोली, "जब तक बच्चे के बारे में कोई बात पक्की तरह पता न लग जाये तब तक उसे हमारी बहू पालेगी। उसका दूध जो दूसरे बच्चे पी रहे हैं यह भी पी लेगा।"

गौडा : "अगर भगवान को यह मंजूर होता कि हमारे घर में एक बच्चा रहे तो वह हमारे बच्चे को क्यों ले जाता। चुराया हुआ बच्चा क्या हमें मिल सकता है ? अभी तो वह पूछताछ होनी है कि गहने गोटे क्या थे। किसने उतारे, क्या

हुए ? अगर हम कहें कि हमारे पास रहने दिया जाये तो शक होगा कि हमने ही चुराकर मँगवाया है। हमारे गौडपन पर मिट्टी उछलेगी।" बाद में अपने बेटे को बुलाकर बोला, "बेटा, नौकर के हाथ से बच्चा उठवाकर अप्पगोलं जाओ। और पूछो कि यह महल का ही है। उनके न कहने पर मडकेरी ले जाकर रानी साहिबा को दिखाओ और उनकी आज्ञा लो। यदि वे कहें कि हमारा नहीं तो खुशी से वापस ले आओ और बहू को दे दो।" गुरिकार ने लोगों को आज्ञा दी, "हम गौडा से दो बातें करना चाहते हैं आप लोग जरा दूर ही रहिए।" लोग दूर हट गये। गुरिकार ने कोग्गा और उसकी पत्नी को भी "जरा वहीं रहो," कहकर चोमा को पास ठहरने को कहा। फिर गौडा से बोला, "कोग्गा और उसकी पत्नी ने सबसे पहले बच्चे को देखा वही उसको अप्पगोलं ले जायें। सब बात बताने में आसानी होगी। आपके बेटे भी चलें, मैं भी साथ चलता हूँ। यह अपने को राजमहल का सेवक बताता है और भी बहुत कुछ कह रहा है। यह भी साथ चलेगा, इसके बारे में भी पता लगाकर आऊँगा।"

गौडा बात मान गया। बच्चा उसे नहीं मिल सकेगा देख गौडा की पुत्रवधू फफक-फफककर रोने लगी। उसकी सास बोली, "यदि बच्चा उनका न निकला तो उसे वापस ले आयेगा। तू ही पाल लेना। अब शान्त हो जा।" बहू बोली, "पालना नसीब में होता तो पेट का ही न रहता।" वह और जोर से रोती हुई भीतर चली गयी।

देवम्माजी के बच्चे को एक पालने में लिटाकर कोग्गा के सिर पर उठवा दिया तथा चोमा, गुरिकार और गौडा के बेटे की देखभाल में वह फिर अपने जन्मस्थान अप्पगोलं के राजमहल की ओर चल पड़ा।

108

इधर अप्पगोलं के राजमहल में अफीम के प्रभाव से नींद में पड़े पहरेदारों में से नायक की मुर्गे बोलने के समय जरा नींद खुली। उसे आधी रात को उठकर पहरे का निरीक्षण करना था। नौकरों को उसे जगाना चाहिए था। नायक तनिक डरा, अब भी उसकी आँखें खुल नहीं पा रही थीं। उसे लगा यह नींद सदा जैसी नहीं। गुड़ से जरा परहेज ही था, जब खीर परोसी गयी तो उसने दूसरों की तरह छककर नहीं खायी थी। अगले दिन सिर दर्द के डर से आधी खीर ऐसे ही छोड़ दी थी। इसलिए उसकी इतनी देर होने पर भी सबसे पहले आँख खुल गयी। उसने सोचा, खाने में कोई नशीली चीज तो नहीं मिलायी होगी ? कुछ अस्वाभाविक बात अवश्य हुई होगी। ऊँघ के कारण उसकी बुद्धि में यह सब बातें धीरे-धीरे आने लगीं। कुछ अस्वाभाविक बात अवश्य हुई होगी—सोचते ही

बच्चे को कपड़ों सहित ड्योढ़ी पर लिटा दिया। गौडती और उसकी बहू और चार ऊँचे घर की औरतों ने उसे घेर लिया। गौडती बोली, "सचमुच ही यह तो राजकुमार है।" उसकी बहू "मेरा मुन्ना भी ऐसा ही था। मेरे भाग्य में उसे पालना नहीं लिखा था," कहती हुई आँसू गिराने लगी। चार मास पूर्व एक बच्चे को जन्म देकर खो बैठी थी। इस युवा माता के मन में आया कि यदि इस बच्चे को पाल ले तो कितना अच्छा होगा! पेट के बच्चे को तो भगवान ले ही गया था अब इस रूप में उसे वापस कर देना चाहिए था उसे!

बाक़ी औरतों में कोई उसकी भौहें, कोई आँख, कोई उसकी नाक और कोई चिबुक बखानने लगी। एक बुढ़िया बच्चे के पास आकर बच्चे के माथे पर हाथ रख कर उसे चूमकर नजर उतारने लगी।

चोमा सारी कहानी सुनकर अपने मालिक के दुर्भाग्य को देखकर दुखी हुआ। तीन मील पर सीमा थी, उतनी दूर भर बच्चा पालने में रहा आता तो कोई चिन्ता न होती। दौड़ में जीत होने ही वाली थी कि पाँव फिसलना था। अब क्या किया जाय? आगे क्या होगा? यह सोचकर व्यथित हुआ। मन-ही-मन करिंगाली को फिर मनौती मनायी।

तभी गौडा घर लौटा। सारी बातें उसे बता दी गयीं। वह बोला, "कपड़े देखने से तो यह राजघराने का ही बच्चा लगता है। अप्पगोलं के बच्चे को कोई चुरा कर ले आया है।"

गुरिकार गौडा से बोला, "अच्छा तो आपका यह कहना है!" फिर चोमा की ओर घूमकर बोला, "ओय तू कहता है कि तू अप्पगोलं का है। यह बच्चा तुम्हारे महल का है क्या? पहचान सकता है?"

उसके मन में यह सन्देह जड़ पकड़ रहा था कि यह बच्चे को चुरा लाया है। गहने उतारकर इस बच्चे को कहीं फेंकने के लिए भागा है। रास्ते में बच्चा गिर जाने से उसे फिर से ढूंढ़ने वापस आया है। इसलिए उसने मन में निश्चय कर लिया कि इसे और बच्चे को लेकर वह अप्पगोलं जायेगा।

चोमा को उस समय यह न सूझा कि वह क्या कहे। फिर भी बोला, "कपड़े तो राजमहल के-से ही दिखते हैं; मालिक का बच्चा हो सकता है।"

इतने में गौडा की पुत्रवधू ने भीतर से आकर अपने पति से अपने मन की बात कही। उसने अपनी माँ को वह बात बतायी। गौडती अपने पति से बोली, "जब तक बच्चे के बारे में कोई बात पक्की तरह पता न लग जाये तब तक उसे हमारी बहू पालेगी। उसका दूध जो दूसरे बच्चे पी रहे हैं यह भी पी लेगा।"

गौडा: "अगर भगवान को यह मंजूर होता कि हमारे घर में एक बच्चा रहे तो वह हमारे बच्चे को क्यों ले जाता। चुराया हुआ बच्चा क्या हमें मिल सकता है? अभी तो वह पूछताछ होनी है कि गहने गोटे क्या थे। किसने उतारे, क्या

हुए? अगर हम कहें कि हमारे पास रहने दिया जाये तो शक होगा कि हमने ही चुराकर मँगवाया है। हमारे गौडपन पर मिट्टी उछलेगी।" बाद में अपने बेटे को बुलाकर बोला, "बेटा, नौकर के हाथ से बच्चा उठवाकर अप्पगोलं जाओ। और पूछो कि यह महल का ही है। उनके न कहने पर मडकेरी से जाकर रानी साहिबा को दिखाओ और उनकी आज्ञा लो। यदि वे कहें कि हमारा नहीं तो रानी से वापस ले आओ और बहू को दे दो।" गुरिकार ने लोगों को आज्ञा दी, "हम गौडा से दो बातें करना चाहते हैं आप लोग ज़रा दूर ही रहिए।" लोग दूर हट गये। गुरिकार ने कोग्गा और उसकी पत्नी को भी "ज़रा वहीं रहो," कहकर चोमा को पास ठहरने को कहा। फिर गौडा से बोला, "कोग्गा और उसकी पत्नी ने सबसे पहले बच्चे को देखा वहीं उसको अप्पगोलं ले जायें। सब बात बताने में आसानी होगी। आपके बेटे भी चलें, मैं भी साथ चलता हूँ। यह अपने को राज-महल का सेवक बताता है और भी बहुत कुछ कह रहा है। यह भी साथ चलेगा, इसके बारे में भी पता लगाकर आऊँगा।"

गौडा बात मान गया। बच्चा उसे नहीं मिल सकेगा देख गौडा की पुत्रवधू फफक-फफककर रोने लगी। उसकी सास बोली, "यदि बच्चा उनका न निकला तो उसे वापस ले आयेगा। तू ही पाल लेना। अब शान्त हो जा।" बहू बोली, "पालना नसीब में होता तो पेट का ही न रहता।" वह और ज़ोर से रोती हुई भीतर चली गयी।

देवम्माजी के बच्चे को एक पालने में लिटाकर कोग्गा के सिर पर उठवा दिया तथा चोमा, गुरिकार और गौडा के बेटे की देखभाल में वह फिर अपने जन्मस्थान अप्पगोल के राजमहल की ओर चल पड़ा।

108

इधर अप्पगोलं के राजमहल में अफीम के प्रभाव से नींद में पड़े पहरेदारों में से नायक की मुर्गे बोलने के समय ज़रा नींद खुली। उसे आधी रात को उठकर पहरे का निरीक्षण करना था। नौकरों को उसे जगाना चाहिए था। नायक तनिक डरा, अब भी उसकी आँखें खुल नहीं पा रही थीं। उसे लगा यह नींद सदा जैसी नहीं। गुड़ से ज़रा परहेज़ ही था, जब खीर परोसी गयी तो उसने दूसरों की तरह छककर नहीं खायी थी। अगले दिन सिर दर्द के डर से आधी खीर तेन ही छोड़ दी थी। इसलिए उसकी इतनी देर होने पर भी सबसे पहले आँख खुल गयी। उसने सोचा, खाने में कोई नशीली चीज़ तो नहीं मिलायी होगी? कुछ अस्वाभाविक बात अवश्य हुई होगी। ऊँघ के कारण उसकी बुद्धि में यह सब बातें धीरे-धीरे आने लगीं। कुछ अस्वाभाविक बात अवश्य हुई होगी—सोचते हुए

वच्चे को कपड़ों सहित ड्योढ़ी पर लिटा दिया। गौडती और उसकी बहू और चार ऊँचे घर की औरतों ने उसे घेर लिया। गौडती बोली, "सचमुच ही यह तो राज-कुमार है।" उसकी वहू "मेरा मुन्ना भी ऐसा ही था। मेरे भाग्य में उसे पालना नहीं लिखा था," कहती हुई आँसू गिराने लगी। चार मास पूर्व एक वच्चे को जन्म देकर खो वैठी थी। इस युवा माता के मन में आया कि यदि इस वच्चे को पाल ले तो कितना अच्छा होगा ! पेट के वच्चे को तो भगवान ले ही गया था अव इस रूप में उसे वापस कर देना चाहिए था उसे !

वाक़ी औरतों में कोई उसकी भौहें, कोई आँख, कोई उसकी नाक और कोई चिवुक वखानने लगी। एक वुढ़िया बच्चे के पास आकर बच्चे के माथे पर हाथ रख कर उसे चूमकर नज़र उतारने लगी।

चोमा सारी कहानी सुनकर अपने मालिक के दुर्भाग्य को देखकर दुखी हुआ। तीन मील पर सीमा थी, उतनी दूर भर वच्चा पालने में रहा आता तो कोई चिन्ता न होती। दौड़ में जीत होने ही वाली थी कि पाँव फिसलना था। अव क्या किया जाय ? आगे क्या होगा ? यह सोचकर व्यथित हुआ। मन-ही-मन करिगाली को फिर मनौती मनायी।

तभी गौडा घर लौटा। सारी वातें उसे वता दी गयीं। वह वोला, "कपड़े देखने से तो यह राजघराने का ही वच्चा लगता है। अप्पगोलं के वच्चे को कोई चुरा कर ले आया है।"

गुरिकार गौडा से वोला, "अच्छा तो आपका यह कहना है !" फिर चोमा की ओर घूमकर वोला, "ओय तू कहता है कि तू अप्पगोलं का है। यह वच्चा तुम्हारे महल का है क्या ? पहचान सकता है ?"

उसके मन में यह सन्देह जड़ पकड़ रहा था कि यह वच्चे को चुरा लाया है। गहने उतारकर इस वच्चे को कहीं फेंकने के लिए भागा है। रास्ते में वच्चा गिर जाने से उसे फिर से ढूंढ़ने वापस आया है। इसलिए उसने मन में निश्चय कर लिया कि इसे और वच्चे को लेकर वह अप्पगोलं जायेगा।

चोमा को उस समय यह न सूझा कि वह क्या कहे। फिर भी वोला, "कपड़े तो राजमहल के-से ही दिखते हैं; मालिक का वच्चा हो सकता है।"

इतने में गौडा की पुत्रवधू ने भीतर से आकर अपने पति से अपने मन की वात कही। उसने अपनी माँ को वह वात वतायी। गौडती अपने पति से वोली, "जव तक वच्चे के वारे में कोई वात पक्की तरह पता न लग जाये तव तक उसे हमारी वहू पालेगी। उसका दूध जो दूसरे वच्चे पी रहे है यह भी पी लेगा।"

गौडा : "अगर भगवान को यह मंजूर होता कि हमारे घर में एक वच्चा रहे तो वह हमारे वच्चे को क्यों ले जाता। चुराया हुआ वच्चा क्या हमें मिल सकता है ? अभी तो वह पूछताछ होनी है कि गहने गोटे क्या थे। किसने उतारे, क्या

हुए ? अगर हम कहें कि हमारे पास रहने दिया जाये तो शक होगा कि हमने ही चुराकर मँगवाया है। हमारे गौडपन पर मिट्टी उछलेगी।" बाद में अपने बेटे को बुलाकर बोला, "बेटा, नौकर के हाथ से बच्चा उठवाकर अप्पगोल जाओ। और पूछो कि यह महल का ही है। उनके न कहने पर मडकेरी ले जाकर रानी साहिबा को दिखाओ और उनकी आज्ञा लो। यदि वे कहें कि हमारा नहीं तो खुशी से वापस ले आओ और बहू को दे दो।" गुरिकार ने लोगों को आज्ञा दी, "हम गौडा से दो बातें करना चाहते है आप लोग जरा दूर ही रहिए।" लोग दूर हट गये। गुरिकार ने कोग्गा और उसकी पत्नी को भी "जरा वहीं रहो," कहकर चोमा को पास ठहरने को कहा। फिर गौडा से बोला, "कोग्गा और उसकी पत्नी ने सबसे पहले बच्चे को देखा वही उसको अप्पगोल ले जायें। सब बात बताने में आसानी होगी। आपके बेटे भी चलें, मैं भी साथ चलता हूँ। यह अपने को राजमहल का सेवक बताता है और भी बहुत कुछ कह रहा है। यह भी साथ चलेगा, इसके बारे में भी पता लगाकर आऊँगा।"

गौडा बात मान गया। बच्चा उसे नहीं मिल सकेगा देख गौडा की पुत्रवधू फफक-फफककर रोने लगी। उसकी सास बोली, "यदि बच्चा उनका न निकला तो उसे वापस ले आयेगा। तू ही पाल लेना। अब शान्त हो जा।" बहू बोली, "पालना नसीब में होता तो पेट का ही न रहता।" वह और जोर से रोती हुई भीतर चली गयी।

देवम्माजी के बच्चे को एक पालने में लिटाकर कोग्गा के सिर पर उठवा दिया तथा चोमा, गुरिकार और गौडा के बेटे की देखभाल में वह फिर अपने जन्मस्थान अप्पगोल के राजमहल की ओर चल पड़ा।

108

इधर अप्पगोल के राजमहल में अफीम के प्रभाव से नींद में पड़े पहरेदारों में से नायक की मुर्गे बोलने के समय जरा नींद खुली। उसे आधी रात को उठकर पहरे का निरीक्षण करना था। नौकरों को उसे जगाना चाहिए था। नायक तनिक डरा, अब भी उसकी आँखें खुल नहीं पा रही थीं। उसे लगा यह नींद सदा जैसी नहीं। गुड़ से जरा परहेज ही था, जब खीर परोसी गयी तो उसने दूसरों की तरह छककर नहीं खायी थी। अगले दिन सिर दर्द के डर से आधी खीर ऐसे ही छोड़ दी थी। इसलिए उसकी इतनी देर होने पर भी सबसे पहले आँख खुल गयी। उसने सोचा, खाने में कोई नशीली चीज तो नहीं मिलायी होगी ? कुछ अस्वाभाविक बात अवश्य हुई होगी। ऊँघ के कारण उसकी बुद्धि में यह सब बातें धीरे-धीरे आने लगीं। कुछ अस्वाभाविक बात अवश्य हुई होगी—सोचते ही

डर के मारे उसकी बुद्धि तेजी से काम करने लगी। पास सोये पहरेदारों को जोर से झकझोरते हुए उसने पुकारा, "यह कैसे सोये हुए हो ? यह कैसी पहरेदारी ?" एक पहरेदार बोला, "पता नही कैसी नींद है ? बड़ी जोर से आ रही है।" दूसरा ऊँ-ऊँ करके फिर सो गया, उठा ही नहीं।

नायक उठकर महल के सामनेवाले तालाब तक गया और मुंह धोकर वापस आया। फिर अपनी लाठी लेकर राजमहल की प्रदक्षिणा की।

राजमहल निःशब्द था। मालिक और मालकिन के सोने के कमरे दूसरी मंजिल पर थे। उनमें भी सदा की भाँति छोटे दीये जलते दिख रहे थे। घर के पिछवाड़े में जाने पर आखिरी कमरे में दो सेविकाओं की वातचीत सुनाई पड़ी। पर वह साफ़ सुनाई नहीं दी। वह चक्कर लगाकर पुनः बैठक के सामने की झगली पर आ गया था। चौकीदारों को फिर से जगाने का यत्न किया, वे जागे नही, मामला क्या है ? सोचता नायक वाहर पड़े एक पत्थर पर बैठकर दीवार से टिक गया।

तब उसे याद आया। रात उसने पहरे के नियम के अनुसार चेन्नवसवय्या देवम्माजी को सामने जाकर नमस्कार नहीं किया था।

सवेरे एक बार मिलना और रात्रि को अन्त में मिलना इसके पहरे का एक अनिवार्य अंग था। यह याद आते ही उसका दिल धक्-धक् करने लगा। रात अन्तिम नमस्कार करने के कितनी ही देर वाद तक इसको उनकी आवाज़ सुनाई दी थी। परन्तु इसने अपना काम ठीक नहीं किया था। यह वात यदि बसव को पता चल जाये तो वह इसे आसानी से नहीं छोड़ेगा।

दो घड़ी वाद पहरे के लोग भी उठे। तब तक महल के कुछ सेवकों को उठ ही जाना चाहिए था। पर आज कोई नहीं जागा।

मुर्गे के बांग देने के समय तक पिछले दो दिन से बच्चा उठ जाया करता था। नायक को आज उसकी आवाज़ भी सुनाई नहीं दी। नायक को यह सब देखकर डर लगने लगा पर उसे विश्वास नहीं हुआ कि कोई गलत वात हो गयी है। परसों ही तो यह पहरा लगाया गया है, नजनगूड जाने की व्यवस्था करने को कल ही तो कहला भेजा था। ऊपर से अब तक रुका हुआ कैलू का त्योहार भी तो कल ही मना डाला। ऐसी शंका का कारण क्या है ?

खूब दिन चढ़ आया। ऐसा जान पड़ता था, राजमहल में सब लोग जाग गये।...पर किसी ने दरवाजा नहीं खोला !

नायक ने वाहर का दरवाज़ा खटखटाया। भीतर से एक सेविका आयी।

नायक ने पूछा, "आज क्या वात है ? इतनी देर कर रही है ? इतनी देर होने पर भी दरवाज़ा ही नहीं खुला ?" उस लड़की के कुछ भी उत्तर देने से पूर्व ही सेविकाओं की प्रधान वहाँ आयी और वोली, "रात को त्योहार का भोज था ना, नायक साहब। मालिक-मालकिन को भोजन करने तथा सबको भोजन कराने में

ही आधी रात से ऊपर हो गयी थी।" नायक ने कहा, "ठीक है, मालिक और मालकिन के जागते ही बताना। उनसे मिलकर उन्हें नमस्कार करके मुझे मडकेरी आदमी भेजना है।"

दोनों सेविकाएँ भीतर चली गयीं। वह बाहर खड़ा रहा। काफी देर हो जाने पर भी किसी ने उसे भीतर नहीं बुलाया। उसने धीरे-से दरवाजा धकेलकर जरा जोर से कहा, "अन्दर कौन है? जरा इधर तो आना।" सेविका भीतर से आयी। नायक उससे बोला, "आदमी भेजने का वक्त हो गया। मालिक और मालकिन के दर्शन मिल जाते तो अच्छा था।" वह, "वे अभी उठे ही नहीं भाई। दरवाजा बन्द ही है," कहते हुए भीतर वापस चली गयी।

क्या करें और क्या न करें—यह समझ में न आने पर नायक सोचता खड़ा रह गया। इनका लिहाज किया तो बसव जीने नहीं देगा। उसकी बात पूरी करने के लिए यहाँ सख्ती के बिना काम नहीं चलेगा। उसने चार बार सोचा पर चारों बार भी किसी निश्चय पर नहीं पहुँच सका। पाँचवीं बार चाहे जो हो, यदि नौकर नहीं जगाते तो मैं ही जगा दूँगा और नमस्कार करने के बहाने क्षमा-याचना माँग लूँगा। मडकेरी आदमी भेजना है, नहीं तो बात सिर आ जायेगी। यह निश्चय करके भीतर घुस गया। वहाँ जाकर बोला, "कौन है अन्दर, मालिक से निवेदन करो हम दर्शन करना चाहते हैं।" वह फिर आयी और बोली, "रात को देर हो गयी थी ना, भैया। अभी वे उठे ही नहीं, क्या करें?"

"जाकर जरा उठा देना, बहिन। और देर हुई तो वहाँ सुनवाई न होगी।"

"हाय रे यह कैसे हो सकता है? सब नौकरों-चाकरों को खिला-पिला आधी रात बाद सोने गये मालिकों को कैसे जगाऊँ?"

"तो ठीक है। मालिक सोये हुए हैं इतना ही देखना मेरे लिए काफ़ी है; जगाने की ज़रूरत नहीं।"

सेविका: "आपकी मर्जी, नायक साहब। आप घर के नौकर नहीं, आपके दाता दूसरे हैं। आपको जो ठीक लगे वही करियें।"

"तो चलो बहिन," कहकर उसके पीछे-पीछे चला। वह उसे ऊपरवाली मंजिल में ले गयी। नायक चेन्नबसवय्या के कमरे के दरवाजे पर खड़ा हो गया। कोई अन्दर है या नहीं यह जानने को कान लगाये। कुछ सुनाई न दिया। धीरे-से दरवाजा खटखटाकर देखा। किसी के बिस्तर पर करवट लेने की भी आहट नहीं। दरवाजा धीरे-से धकेला। जरा-सा खोलकर भीतर झाँका, बिस्तर पर कोई न था। वह बाहर आकर सेविका से बोला, "मालिक तो बिस्तर में ही नहीं हैं।" सेविका बोली, "भीतर होंगे।" अति कर्तव्यपरायण होने पर भी नायक का मन पति-पत्नी कमरे में हैं या नहीं, यह खोजने में हिचकिचा गया। वह थोड़ी देर वहीं खड़ा होकर देवम्माजी के कमरे की आहट लेने लगा। वहाँ भी कुछ सुनाई नहीं दिया।

उसने फिर से धीमी आवाज़ में सेविका से पूछा, "बच्चा कहाँ सोता है?" वह बोली, "पालना आजकल मालकिन के ही कमरे में रहता है।"

नीचे सब नौकर-चाकर उठकर अपने-अपने काम में लग गये। नायक ने सोचा थोड़ी देर और रुका जाये और वह नीचे उतर आया।

109

नायक ने बड़ी मुश्किल से एक घड़ी और किसी तरह प्रतीक्षा की। फिर यह सोचकर कि और देर करना संभव नहीं, वह फिर ऊपर गया। चेन्नबसवय्या और देवम्माजी के कमरों के सामने वह यथासंभव ज़ोर से चला और ज़ोर से बात की। चेन्नबसवय्या के कमरे के सामने खड़े होकर 'मालिक-मालिक' पुकारकर ज़ोर से दरवाजा खटखटाया परन्तु वहाँ से कोई उत्तर न मिला। फिर कमरे के भीतर जाकर भीतरी कमरे के दरवाज़े पर खाँसते हुए दरवाज़ा खटखटाया और 'मालिक-मालिक' की आवाज़ें लगायीं। वहाँ से भी कोई उत्तर न मिला। उसने किवाड़ धकेले। वे ज़रा खुल गये, भीतर झाँककर देखा, वहाँ भी कोई न था। पालना एक ओर रखा था, परन्तु उसमें बच्चा न था। अन्तिम आशा से वह तीसरे कमरे में घुसा। वहाँ देवम्माजी की साड़ियाँ, दुशाले और कंचुकियाँ आदि पड़े थे। ज़मीन पर पेटियाँ रखी थीं। पर आदमी का नाम-निशान भी न था।

उसके पहरे में उसकी असावधानी के कारण राजा का दामाद, बहिन अपने बच्चे को उठाकर भाग गये—यह बात नायक के दिमाग़ में तुरन्त कौंध गयी। उसका भय से पसीना छूट पड़ा, वह वहीं गिरने को हुआ। डर-से थर-थर काँपते हुए उसने तीनों कमरे पार करके बाहर आकर सेविका से पूछा, "क्यों बहिन, आपने कैसा धोखा दिया? मालिक और मालकिन बच्चे को लेकर भाग गये हैं!"

"अरे भैया, यह क्या कह रहे हो," कहती हुई, उसकी बात सच है मानो यह जानने के लिए वह कमरों में गयी।

110

चेन्नबसवय्या तथा देवम्माजी के बच्चे को लेकर घर छोड़कर चले जाने की बात राजमहल के सेवकों में बहुतों को पता न थी। यह बात केवल मुख्य सेविका और उसकी साथिनों-भर को पता थी। लेकिन उन्होंने ऐसा दिखाया जैसे उन्हें पता ही नहीं। इसी कारण उसने इतना नाटक किया था। पहरे के नायक ने सभी सेवकों और सेविकाओं को बुलाकर जांच-पड़ताल की। उसे पता था कि जब तक यह बात किसी के मत्थे मढ़ी नहीं जायेगी तब तक वह बसव के ग़ुस्से की बलि चढ़ने से बच

नहीं पायेगा। मालिक-मालकिन के साथ घर के कुछ नौकर अवश्य गये होंगे। यह पता लगाने के लिए उसे और भी ज्यादा पड़ताल करनी पड़ी।

यह सब कर लेने के बाद मडकेरी जाकर मन्त्री बसवय्या तक खबर पहुँचाने के लिए तैनात पहरेदार को भेजना था। तैनात पहरेदार बोला, "मैं अकेला यह समाचार कैसे दे पाऊँगा? आप ही कृपा करके चलें तो उनके सभी प्रश्नों का सही उत्तर दिया जा सकेगा।"

उसकी बात में एक और भी अर्थ छिपा था जिसे सब समझते थे। नायक भी उसे समझता था। खबर पाते ही राजा और मन्त्री दोनों को बड़ा गुस्सा आयेगा। वह गुस्सा उस समय खबर देनेवाले पर ही उतरेगा। अकेला नौकर ही क्यों उसका शिकार बने? नायक को ही उसका दायित्व उठाना ठीक है। नायक को ही यह खबर पहुँचना उचित है।

नायक: "ठीक है, चलो," कहते हुए बाकी आदमियों को यह आदेश देकर कि इस राजमहल का कोई भी नौकर भागने न पाये, इस बात का ध्यान रखना। तैनात पहरेदार के साथ वह स्वयं मडकेरी चल पड़ा।

111

मडकेरी के राजमहल में उस दिन प्रातः राजा हमेशा से जरा देर से उठा। पिछली शाम चेन्नबसव को नजंनगूड जाने की अनुमति माँगने का पता बसव को मिला था। राजा उस पत्र को सुनकर कुछ भी आज्ञा देने की स्थिति में न था। अब राजा के सुबह उठकर नित्य क्रियाओं से निवृत्त हो बैठक में आने पर बसव ने नमस्कार किया। उसने चेन्नबसव के पत्र के बारे में निवेदन किया।

राजा ने पूछा, "क्यों रे, पहरेदार इतनी जल्दी आ गया?"

"नहीं मालिक, पत्र कल शाम आया था।"

"उसे आने दो, जब दूसरा आदमी आयेगा तब बतायेंगे।"

बसव अपने दूसरे कामों के लिए चला गया। अप्पगोलं से आदमी आने का समय बीत चला था। एक घड़ी बीती, दो घड़ियाँ बीतीं पर आने वाले का नाम-निशान न था। ऐसा क्यों हुआ? उसे चिन्ता होने लगी। एक सेवक को बुलाकर आज्ञा दी, "अप्पगोलं से पहरेवाला नहीं आया। क्या बात है? एक घुड़सवार को बुलाओ, जाकर पता लगाकर आये।" फिर वीरराज के पास आकर उसने यह बात भी निवेदन कर दी।

"यह तेरा कैसा प्रबन्ध है रे? अभी-अभी आकर बताया था नजनगूड जाना चाहते हैं। अब बता रहे हो वहाँ से कोई खबर नहीं आयी। हमारे हामी मरने से पहले ही चल दिये क्या?"

"ऐसा हो सकता है मालिक ? ऐसा सिर उतर जाने वाला काम कर सकते हैं ? पहरे का आदमी आने दीजिए, निवेदन होगा ।"

राजा कुछ न बोला । बसव ने बाहर आकर आये हुए घुड़सवार को आज्ञा दी । "अप्पगोल से पहरेवाला अभी तक नहीं आया, क्या बात है जाकर देखकर आओ । रास्ते में न मिले तो राजमहल जाकर पहरे के नायक को बुलाकर ले आओ ।"

घुड़सवार ने मडकेरी की सीमा लाँघते ही कुछ दूरी पर अप्पगोल के पहरे का नायक और उसका मातहत पहरेदार सामने आते दीख पड़े । उसने अपने आने की बात उन्हें बतायी ।

नायक की आधी जान वहीं निकल गयी । वह और उसका साथी पहरेदार उस घुड़सवार के साथ तेज़ी से घोड़े दौड़ाकर महल पहुँचे ।

बसव दरवाज़े पर इन्तज़ार कर रहा था । नायक दौड़कर उसके पाँवों पर गिरा और बोला, "काम बिगड़ गया मालिक, मेरी रक्षा कीजिये ।"

बसव : "क्यों रे क्या हुआ ?"

"दामाद साहब और बहिनजी, बच्चा सभी चोरी से भाग निकले । सुबह ही इसका मुश्किल से पता चला ।"

बसव को अत्यन्त आश्चर्य हुआ और बेहद ग़ुस्सा आया ।

"तू होश में है या नहीं ? ये चोरी से भाग गये तो तुम और पहरेवाले क्या कर रहे थे ?"

"मालिक, ऐसा लगता है कि खाने में कुछ मिला दिया गया था । पहरेवाले बेहोश होकर सो गये थे । सुबह उठना भी मुश्किल हो गया था । उठकर देखने तक वे उड़ गये थे ।"

"वे तो उड़ गये, तेरा सिर भी उड़ जायेगा यह नहीं जानता है ?"

"मालिक की मर्ज़ी । असावधानी हो गयी । सिर ही लेना हो तो ले लीजिये।"

बसव : "अच्छा साथ चल," कहकर उसे साथ लेकर राजा के पास पहुँचा और कहा, "क्या हुआ है निवेदन करो ?"

वीरराज ने बसव से पूछा, "क्या निवेदन है रे ?"

"दामाद साहब और बहिनजी बच्चे को लेकर भाग गये हैं, मालिक ।"

"भाग गये चोरी से ! तब तू क्या कर रहा था, लंगड़े के बच्चे ? पता नहीं था कि तेरा ही सिर चला जायेगा ।"

"चोरी से भागनेवाले मिल जायें तो सिर जाने की भी चिंता नहीं, मालिक ।"

"ओय लंगड़े, ऐसी बातों से तू मुझे फुसला नहीं सकता । यह सब तेरा ही किया धरा है । नजंनगूड गिजनगूड के नाम से धोखा देकर अपनी जान बचाने की

सोच रहा है। यहाँ यह सब नही चलेगा। पहले तुझे खतम करके दूसरी बात सोचूँगा यह समझ ले।"

"अच्छी बात है महाराज, इस समय वे किधर गये यह पता लगाने को आदमी भेजता हूँ।"

"जिधर नही गये उधर आदमी भेज देगा, यह खेल छोटा-मोटा नही है तेरा। बहुत बड़ा होगा। इसके लिए तेरी आँतो को सूली का स्वाद चखायेंगे।"

बसव ने इसका जवाब नही दिया। बाहर खड़े सेवक को बुलाकर आज्ञा दी, "पहरे के नायक का ध्यान रखो और आदमियो को बुलाओ, उन्हे चारों ओर जाना होगा।" आदमियों के आते ही सोमवारपेटे, कुशालनगर, सिद्धापुर, संपाजे, हेग्गुलपाजे, पाँच दिशाओ मे जाने के लिए आदेश दिये। "इन्ही रास्तों मे किसी मे वे लोग छिपकर गये हैं। अगर वे मिले तो कोई बात नही, उनकी खबर अवश्य लानी है। सीमा तक जाना होगा या उन जैसे कोई भी गये हों उनकी ख़बर लाना। साँझ को सूर्य डूबने तक यहाँ आकर ख़बर देनी होगी। कोई खबर न मिले तो कोई बात नही। पर वापस आना जरूरी है। नही तो सिर उतरवा लिया जायेगा, सावधान।" उनके जाने के बाद राजा के पास आकर बोला, "चोरी से चले तो गये, गहना कपडा नही ले जा पाये होंगे। जाकर उनकी पेटी-पिटारी सब उठा लाता हूँ, मालिक।"

"हाँ रे, राड के। बाप का दिया सामान सोच वह दासी सब लेकर भाग गयी होगी। चल हम भी साथ चलते हैं।"

बसव ने उसे धोखा दिया होगा यह सन्देह वास्तव मे राजा को न था। लेकिन वह यह जानता था कि किसी व्यक्ति का भी धोखा देना कोई अनहोनी बात नहीं। बसव की यह इच्छा थी कि राजा यह समझे कि वह उनकी भलाई की ही चिन्ता करता है। इस कारण राजा का उस पर सदा विश्वास रहेगा यह उसका विचार था। जो भी हो, आधी घड़ी मे ही मालिक और सेवक दोनो, घोड़ो पर सवार हो चार हरकारो को आगे और चार पीछे साथ लेकर अप्पगोलं की ओर चल पडे।

यहाँ प्रयाण की तैयारी हो रही थी उधर रनिवास में रानी को आभास हो गया कि कुछ ऊँच-नीच जरूर हो गयी है। उसने, "मामला क्या है? जरा चुपके से पता लगाकर आओ," कहकर एक चेटी को भेजा। चेटी बाहर गयी और वहाँ के आदमियों से पता लगाकर रानी से निवेदन किया। रानी ने चेटी से कहा, "जरा बसवय्या से एक मिनट के लिए इधर से होकर जाने को कहो।" राजा जब घोड़े पर चढ़ने को तैयार होने लगा तब बसव रानी के पास भागा-भागा आया। रानी ने पूछा, "खबर सच है क्या बसवय्या?"

"हाँ ठीक ही लगती है, माँ।"

"तो नजंनगूड जाने की वात झूठी थी ?"

"आँखों में धूल झोंकी है। नजंनगूड जाने की वात कहने से पहरा हल्का हो जायेगा। यह योजना वनायी होगी।"

"हो सकता है। अव क्या किया जा रहा है ?"

"मालिक स्वयं अप्पगोलं जा रहे हैं, मैं भी साथ जा रहा हूँ।"

"घुड़सवारी का अभ्यास छूट गया है, जरा ध्यान रखना।"

वसव "अच्छी वात माँ," कहकर झुककर नमस्कार करके राजा की वैठक की ओर भागा।

पति के इतनी उपेक्षा करने पर भी अपने कर्त्तव्य को इतनी श्रद्धा से निभाने वाली इस अपनी मालकिन के प्रति, वसव को अपूर्व श्रद्धा उत्पन्न हुई।

रानी मन में सोचने लगी : चोरी से भागना गलती है, परन्तु फिलहाल उस वच्चे का राजा के हाथ से दूर चले जाना अच्छा ही हुआ। यह वर्ष समाप्त होने तक यह वहिन तथा साला और वहनोई दूर-दूर रहें तो भगवान राजा की रक्षा करेंगे।

112

वीरराज के महल से वाहर निकलने पर सारी मडकेरी को आश्चर्य हुआ। इसके अतिरिक्त वह घोड़े पर सवार था। पता नहीं कैसे यह ख़वर सर्वत्र में फैल गयी। शहर के लोग भाग-भाग कर रास्ते पर एकत्रित हो गये जैसे कोई जलूस देखने आये हों। राजा के तुरहीवादक ने राजा के निकलते ही तुरही वजायी। वाद में साथ चलनेवाले उसके चार साथियों ने भी एक के वाद एक तुरही बजायी। उन्हीं के साथ ढोलचियों ने ढोल वजाये।

वसव ने राजा के पीछे चलते हुए प्रथा के अनुसार गरीवों के लिए पैसों की वौछार की। गरीवों ने पैसे वीनते हुए, "जुग-जुग जिये हमारा राजा" के नारे लगाये। भीड़ में से कुछ लोगों ने इसे दोहराया। एक जमाने में जव राजा की सवारी निकला करती थी तव शहर के स्त्री-पुरुष रास्ते के दोनों ओर खड़े हुआ करते थे। इसकी आँखें खराव हैं, इसका दिल पत्थर है—यह जानते हुए भी कुछ वर्ष तक लोग राजा के प्रति प्रेम ही दिखाते रहे। उसने जनता के प्रेम की परवाह न करके ग़लत रास्ते पर चलकर उनका प्रेम खो दिया था। जय-जयकार पहले जितना नहीं था। यह वात वसव ने अनुभव की। सेवक ने जिस वात का अनुभव किया वह वात मालिक के मन में न आ सकी!

शहर की सीमा लाँघकर राजा अप्पगोलं की ओर द्रुत गति से चल पड़ा। उसके आने का समाचार पाते ही महल के सेवक जिधर मुँह उठा, उधर भाग

निकले। चारों पहरेदारों ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया, पर पकड़ते-पकड़ते दम आदमी बच कर निकल ही गये। राजा के द्वार पर पहुँचते-पहुँचते वहाँ केवल मुख्य सेविका और उसकी साथी दो सेविकाएं और दो सेवक खड़े थे।

राजा के फाटक पर आकर घोड़े से उतरने से पूर्व ही सेविका दौड़कर धरती पर लोट गयी और, "मेरे मालिक, मेरी रक्षा कीजिए, मेरा कोई कसूर नहीं," कहकर गिड़गिड़ायी।

'मैं क्या रक्षा करूँ। तू ही कइयों की रक्षा कर रही है," कहकर राजा ने हँसते हुए बसव से पूछा, "ठीक है न रे लंगड़े?"

यह उसका मजाक था। इससे किसी को प्रसन्नता न हुई, फिर भी मालिक के मजाक में हाँ मिलाना गरीबों का कर्तव्य होता है। आगे-पीछे खड़े कुछ लोगों ने उसकी हँसी में हँसी मिलायी। बसव राजा के अधिक निकट था इसलिए उसके लिए ऐसी दिखावे की आवश्यकता न थी। वह हँसा नहीं। गम्भीरता से, "हाँ मालिक!" बोला और सेविका से कहा, "मालिक उठने को कह रहे है, उठो। भीतर पधारेंगे। रास्ता दिखाओ।"

सेविका उठी, उसकी टाँगें काँप रही थी। हाथ जोड़े-जोड़े पीछे-पीछे गयी। पीछे सीढ़ी न देख पाने से ठोकर खाकर गिर पड़ी। लोग ठहाका लगाकर हँस पड़े और रुक गये। राजा भी हो-हो करके हँस पड़ा, फिर अंगरक्षक का सहारा लेकर घोड़े से उतरा।

सेविका उठकर रास्ता दिखाती आगे-आगे चली। पहले राजा, उसके पीछे बसव और उसके पीछे पहरे का नायक इस क्रम से वे अन्दर गये।

राजा ने जाँच की, उसके विवरण की यहाँ आवश्यकता नहीं। वास्तव में उसने क्या, बसव ने ही जाँच की।

पिछले दिन के कैलू के त्यौहार का प्रबन्ध, उसमें जीतनेवालों को दिये गये इनाम की बात, रात्रि भोज इन सब बातों का विस्तार से सेविका से पता चला। साथ ही नौकर, पहरे के नायक और उसके मातहत पहरेदारों से भी सारा ब्योरा मिला। प्रातः सेविका के द्वारा नायक को दिया चक्कर भी था—राजा को पता चला। उसने बसव को आज्ञा दी, "इस राँड को गधे पर बिठाकर इसका मडकेरी में जलूस निकालो, चमारों के यहाँ भेज दो और इस सुअर के बच्चे को सूली पर चढ़ा दो।" बसव बोला, "अच्छा मालिक!" इसके बाद उन्होंने महल के प्रत्येक कमरे की जाँच की और उनमें क्या-क्या सामान है, पता लगाकर ताला मुहर लगा दी। देवम्माजी के भीतरी कमरे में पड़े कपड़ों को एक सन्दूक में भरवाकर उसे और दूसरे सन्दूकों को ताला-मुहर लगाकर उन्हें नौकर द्वारा भिजवाने की आज्ञा देकर मडकेरी जाने के लिए घोड़ों पर सवार हुए।

अप्पंगोल से मडकेरी जाने का रास्ता बीच में सपाजे जानेवाले रास्ते से

मिलता था। वहाँ जब ये पहुँचे तो सामने से एक आदमी, एक मजदूरनी और उनके पीछे घोड़ों पर दो व्यक्ति आते दिखायी पड़े।

राजा के चोबदारों ने आवाज़ लगायी, "ओय ओ, घोड़ों से उतरो, रास्ता छोड़ो, महाराज पधार रहे हैं।"

एक मिनट को लगा कि उन लोगों को यह बात समझ में नहीं आयी। उन सबने इस ओर घूमकर देखा और फिर सामने घोड़े पर सवार राजा को पहचान लिया।

दोनों घुड़वार उसी क्षण ज़मीन पर कूद पड़े। वहीं सिर झुकाकर हाथ जोड़कर बोले, "नमस्कार करते हैं, महाराज।"

ये संपाजे के गौडा का लड़का और गुरिकार थे। आगे चलता हुआ चोमा राजा के सामने साष्टांग दण्डवत करने को धरती पर लेट गया। कोग्गा भी पालना धरती पर रखकर चोमा के समान दण्डवत करने लगा। उसकी पत्नी भी ज़मीन पर लेट गयी।

113

राजा और बसव का इन लोगों को मिलना एक अपूर्व योग था—यह कैसे कहा जा सकता है? उन्होंने समझा कि चोबदार ने किन्हीं राहगीरों को रोक लिया है। राजा ने घोड़ा आगे बढ़ाया।

गुरिकार ने आगे आकर बसव से कहा, "मालिक से निवेदन करने की एक बात थी, यह बच्चा दिखाना था।"

"बच्चा ? कौन-सा बच्चा ?"

"यह अप्पगोलं के महल का बच्चा दिखता है। दामाद राजा और बहिनजी को दिखाने जा रहे थे।" इस प्रकार की बातें करते हुए ये लोग साथ चल रहे थे। इनकी बातें राजा को सुनायी दीं। 'अप्पागोलं का बच्चा' शब्द कान में पड़ते ही राजा झट से घोड़ा रोककर पीछे की ओर घूम गया। बसव भी अपने घोड़े को रोक, लगाम खींचकर पीछे को हटा।

बसव ने गुरिकार से पूछा, "आप लोग कौन हैं ?" गुरिकार बोला, "मैं संपाजे की चौकी का गुरिकार हूँ, मालिक। सुबह होने से पहले-पहले कोई पाँच आदमी घोड़ों पर चोरी से निचले रास्ते से भाग रहे थे। एक घुड़सवार ऊपरवाले रास्ते से आया। 'उन्हें पकड़कर लाता हूँ' कहकर वह भी उनके पीछे गया, पर 'नहीं मिल सके,' कहकर लौट आया। उसे पकड़ रखा है। एक बच्चा मिला है, यह कोग्गा और उसकी पत्नी मुन्ने को लेकर गौडा के घर आये। कपड़ों से राजघराने

का दिख रहा था। यह आदमी अपने को अप्पगोल का बताता है। मुझे लगा कि इसने और इसके साथियों ने बच्चा चुराया और बच्चे के गहने उतारकर बच्चे को फेंक दिया। अप्पगोल में दिखाने के लिए बच्चे को उठवाकर इसे साथ लेकर चले आये।"

राजा, वसव, पहरे का नायक और पीछे आनेवाले अप्पगोल के सेवकों को एक ही साथ ऐसा लगा कि उन चार-पाँच घोड़ों पर चोरी से जानेवाला चेन्नबसव और देवम्माजी का परिवार ही होगा। यदि यह बच्चा उनका है तो उसे सपाजे के पास क्यों छोड़ गये? अप्पगोल के सेवक ने उन्हें क्यों मना किया? अगर इसने उन्हें चोरी से भागने में सहायता दी है तो वह वापस क्यों आया?

राजा ने वसव से पूछा, "बच्चा अप्पगोल का है क्या? पहचान सकता है देख?"

वसव इससे पहले ही घोड़े से उतर गया था। उसने पालने के पास जाकर बच्चे को देखा। यहाँ आने से पहले कोग्गा की पत्नी उसे किसी स्त्री से उसका दूध पिलवा लायी थी। बच्चा सुख से सो रहा था। वसव ने मुँह से कपड़ा हटाया। मुँह पर धूप पड़ते ही बच्चे ने मुँह सिकोड़ा। कोग्गा की पत्नी ने, "अय्यो धूप पड़ रही है, मालिक" कहते हुए, झुककर स्वयं को ही पूरा न होनेवाले पल्लू को आगे बढ़ाया ताकि धूप बच्चे पर न पड़े। वसव ने बच्चे का मुँह देखा, कपड़ा देखा, फिर राजा की ओर मुड़कर बोला, "राजमहल का ही बच्चा है, मालिक।"

राजा: "भागनेवाले माँ-बाप ही होंगे। यह उनका नौकर होगा। पूछो उससे क्या बात है।"

वसव ने चोमा की ओर मुड़कर पूछा, "तू अप्पगोल का नौकर है?"

114

जब यह सब हो रहा था तब चोमा की बुद्धि लट्टू की तरह घूम रही थी। इस तिराहे के आते-आते वह सोच रहा था, "अप्पगोल जा रहे हैं। वहाँ किसी को न पाकर वे लौटकर मडकेरी जायेंगे। मैं भी साथ ही रहूँ? अप्पगोल में या रास्ते में किसी झाड़ी में घुसकर छुपते-छुपाते मगलूर जाकर बच्चे की खबर मालिक और मालकिन को देनी है," सोच-सोचकर अन्त में निश्चय किया, "करिगाली की दया से ही राह में गिर गया। बच्चा और मैं एक साथ हो गये। इसलिए जहाँ तक संभव हो मुझे बच्चे के साथ ही रहने का प्रयास करना चाहिए। मडकेरी जाने पर रानी बच्चे पर दया करेंगी। शायद मुझे भी किसी तरह बचा ले। देखें करिगाली क्या करेगी। इस निश्चय से उसे कुछ शान्ति मिली ही थी कि उछलता हिरन का

बच्चा शेर के मुंह में आ गिरा। ये लोग राजा के सामने आ पड़े। चोमा को पता था कि दो-चार बातें होने के बाद इसकी जाँच होगी। उसका उत्तर क्या दे? झूठ बोलना ठीक नहीं। हां अगर और दस वर्ष जीने की बात पक्की हो तो कल करिगाली के सामने प्रायश्चित किया जा सकता है। राजा का दिल पत्थर है और बसब का हृदय—वह तो पत्थर से भी कठोर! बिना बात लोगों को मौत के घाट उतरवा देते हैं। मुझे भी आज या कल में ख़त्म कर डालेंगे। ऐसे में झूठ नहीं बोलना चाहिए। सही बात कह दूं तो उस मालिक और मालकिन को धोखा देना होगा जिसका अब तक नमक खाया है। ये मंगलूर जायेंगे, और राजा को पत्र लिखवायेंगे। यह सब तो ठीक है। वे यह सब करने को स्वतन्त्र हैं। परन्तु उनके ही अन्न पर पली इस जबान को वे चोरी से चले गये कहने का क्या अधिकार है? कुछ भी कहने से कुछ-न-कुछ गड़बड़ी हो जायेगी इसलिए चुप रहना उचित है। ये मेरा कुछ-न-कुछ तो करेंगे ही। अब जो भगवान की मर्जी होगी वही होगा, परन्तु मेरे मुंह से अपने मालिक और मालकिन को कष्ट पहुँचनेवाली बात नहीं निकलेगी।" बसब के प्रश्न पूछने से पहले ही चोमा यह निश्चय कर चुका था इसलिए उसने उत्तर दिया, "अय्यो मालिक, अब मेरा क्या वास्ता?"

संपाजे का गुरिकार, "क्यों रे यह क्या कह रहा है? तूने ही तो कहा मैं अप्पगोलं का सेवक चोमा हूं?"

चोमा : "छोटे मालिक के सामने कही बात बड़े मालिक के सामने भी चल सकती है क्या?"

पीछे खड़े अप्पगोलं के नौकर हँस पड़े। पहरे के नायक ने इसे पहचान लिया और बोला, "मालिक, यह तो अप्पगोलं का ही नौकर है।"

राजा ने बसब से कहा, "क्यों रे यह तो बड़ी चालाकी भरी बातें करता है।"

बसब : "मालिक यह नौकर जात ऐसे होते जा रहे हैं। इनकी होशियारी पर राजा हँस पड़ें तो इनकी हिम्मत और बढ़ जाती है। इन लोगों की चमड़ी उधेड़नी चाहिए।"

राजा ने चोमा से कहा, "ऐ सूअर के बच्चे, झूठ मत बोल नहीं तो जबान खिंचवा देंगे। संपाजे में भागनेवाले तुम्हारे मालिक-मालकिन थे क्या?"

"वह कैसे कहूँ मालिक!"

"क्या मतलब है, तुझे पता नहीं?"

बसब : "मालिक, इसका कहना है कि मालूम होने पर भी बता नहीं सकता।" यह निवेदन करते हुए चोमा से पूछा, "क्यों रे यही बात है ना?"

"आप स्वयं जानते हैं, मालिक।"

"यदि वे भाग गये हैं तो बच्चा यहां कैसे रह गया?"

"भगवान की मर्जी, इसे कौन समझ सकता है !"

"यह उन्हीं का बच्चा है क्या ?"

"यह बात मेरे कहने की नहीं । जन्म देनेवाले या पालनेवाले ही कह सकते हैं ।"

राजा बहुत ऊब गया । उसने कहा, "इस कुत्ते को तो डर ही नहीं है । सच बता दे तो ठीक, नहीं तो सूली पर चढ़ा देंगे ।"

चोमा झट बसव के पाँव पर गिर पड़ा, "मालिक, आपके पाँव पड़ता हूँ । मुझे सूली पर चढ़ा दीजिये मैं मना नहीं करता, पर मालिक और मालकिन के बच्चे को बचा लीजिए, मैं खुशी से मर जाऊँगा ।"

राजा : "खुशी से नहीं तो रोकर मरना । तेरे मालिक और मालकिन के बच्चे का क्या करूँगा यह मत पूछ । जो बात पूछते हैं उसका सही जवाब दे।"

"झूठ कहने पर मरना है, सच कहने पर भी । इसमें मैं क्या कर सकता हूँ ? जो आपको समझ में आये, कीजिये । मैं भुगतने को तैयार हूँ," कहकर चोमा पीछे हटकर खड़ा हो गया ।

राजा को इसका साहस देख आश्चर्य हुआ, पसन्द भी आया । अपने सेवकों मे इतना प्रेम उत्पन्न करने के लिए उसे अपने बहनोई से ईर्ष्या हुई । लेकिन तभी उसे इस बात पर बहुत क्रोध आया कि एक नौकर, एक नाचीज कीड़ा उसे छोटा बना रहा है । बचकर भाग गये बहिन और बहनोई पर गुस्से को उतारने के लिए यही दुष्ट मिला । उसने बसव से कहा, "एक बल्ली गाड़कर इसे यहीं सूली चढ़ा दो ।" तुरन्त बसव बोला, "आप महल में पधारिये । मैं इससे निपटकर आता हूँ ।"

राजा बोला, "मेरी आज्ञा का तुमने कितनी अच्छी तरह पालन किया यह देख लिया है । यह हमारे सामने ही होना चाहिए ।"

आगे की घटना का विवरण देना आवश्यक नहीं । पास के ही पेड़ का एक तना काटकर दो हाथ लम्बी एक नोकीली बल्ली तैयार करायी गयी । उसे तिराहे के एक ओर गड़वा दिया गया । बसव, पहरे के नायक, और अप्पगोल के नौकरों ने चोमा को पकड़कर बल्ली की नोक पर उसके पेट को धँसाकर छाती में उतार दिया । चोमा नोक पेट में धँसते समय चीखा, "कोरिगाली मेरी माँ, तेरी यही इच्छा थी; माँ, अब मेरे मालिक और मालकिन की रक्षा करना । उनके बच्चे की रक्षा करना ।" दूसरे क्षण ही उसके प्राण शरीर को छोड़कर उड़ गये । उसके मुँह, नाक और आँखों से रक्त की धारा बह निकली ।

इस कृत्य को करते हुए यदि किन्हीं का मन खराब नहीं हुआ तो वह मात्र दो व्यक्ति थे—राजा तथा बसव । चोमा को सूली चढ़ानेवाले नौकर ने भी चढ़ाते समय आँखें जरूर खोल रखी थीं पर तुरन्त ही मूँद लीं । सूली पर चढ़ी वह देह

देख पाना किसी के बस की बात न थी ।

"लंगड़े, पालना अपने सामने रखवा ले ।" राजा ने बसव से कहा और बसव के उसे हाथ में लेते ही उसने अपना घोड़ा शहर की ओर घुमा दिया। दो क़दम चलकर फट से घूमकर बसव से बोला, "ओ बसव, इस हरामखोर की लाश तीन दिन सूली पर ही टँगी रहे। यहाँ पहरा लगवा दो । इसकी चर्बी को चील और कौवों को नोचने दो। सूअर के बच्चे की लाश सड़ने दो।"

"जो आज्ञा मालिक ।"

राजा ने घोड़ा फिर शहर की ओर घुमा दिया।

अप्पगोलं से आये चार लोगों को वहाँ पहरे पर रखकर बसव पहरे के नायक और दूसरे नौकरों के साथ राजा के पीछे चल पड़ा।

राजा और उसके साथियों के दस कदम जाने के बाद संपाजे के गोडा का बेटा चौकी के गुरिकार से बोला, "अब क्या रह गया, अब तो लौट सकते हैं ना ?" गुरिकार बोला, "और क्या ।"

"इसको चोर समझ हम लेकर आये थे। वास्तव में कैसा वफ़ादार आदमी था !"

"हाँ वफ़ा हो तो ऐसी। इसमें गोडा क्या, कोडगी क्या ?"

कोग्गा और उसकी पत्नी भी यह बातें सुन रहे थे। कोग्गा ने अपनी पत्नी से कहा, "गोडा साहब की बात सुनी ?" वह बोली, "कहने दो हमें क्या ? ऊँचे कुल के लोग वफ़ा छोड़ सकते हैं। हमारे पास केवल वफ़ादारी ही तो है।"

वे लोग वहीं से वापस गाँव को लौट पड़े।

115

बहुत समय से घुड़सवारी का अभ्यास छूट जाने के बाद राजा के पुनः घोड़े पर अप्पगोलं जाने से रानी को कुछ चिन्ता हुई। काफ़ी देर बाद, ऊपर की मंज़िल के गवाक्ष से दो-तीन बार झाँककर देखने पर भी जब उनके आने का कोई चिह्न न दिखाई दिया तो यह चिन्ता और बढ़ गयी। अन्त में, जब राजा आता दिखाई दिया तो उसे तसल्ली हुई।

रानी के साथ ही पीछे खड़ी राजकुमारी ने पिता के पीछे आते बसव को एक पालना लाते देखा तो बोली, "अम्माजी, मुन्ने को लेकर आ रहे हैं मालूम पड़ता है।"

यह कैसे संभव है ? रानी की समझ में नहीं आया। तो क्या चेन्नबसवय्या और देवम्माजी की चोरी से भागने की बात झूठी है ? बच्चा अलग कैसे हो गया ? उसने पूछा, "दामाद भी पीछे दिखाई दे रहे हैं, बिटिया ?"

"दिखाई तो नहीं देते, अम्माजी।"

"तो इसका मतलब ? वहाँ कोई ऐसी बात तो नहीं हो गयी जिससे उन्हें भागने से रोकने के लिए बन्धक के रूप में बच्चा लेते आये हों ? अब क्या किया जाये ? यह गति ही बलवान हो गयी क्या ? क्या भगवान मदद नहीं करेंगे ?"

राजा के महल पहुँचते ही रानी बड़ी व्याकुल होकर सामने आयीं। बच्चे के आने की खुशी से राजकुमारी माँ के पीछे ही तेजी से उतरती हुई उससे भी पहले जाकर पिता से, "पिताजी मुन्ने को ले आये," कहते हुए आगे दौड़कर आतुरता से बसव के पास पालने के सामने जा खड़ी हुई।

पीछे खड़ा एक नौकर दौड़कर बसव के पास आया। उसने उससे पालना उतारने को कहा और उसके उतार लेने पर घोड़े से उतर पड़ा।

राजकुमारी ने नौकर के हाथ से पालना खींचा। उसके नीचे उतारने पर बच्चे को उठाकर प्यार-दुलार किया और "अम्माजी, हमारा सोना" कहते हुए नौकर को आदेश दिया, "पालना भीतर ले आओ।"

बेटी की यह खुशी राजा को एकदम पसन्द न आयी। उसने नाक-भौं चढ़ाकर बेटी से कहा, "जाओ तुम अन्दर जाओ, पालना अन्दर जाने की जरूरत नहीं।" उसे डाँटकर फिर बसव से बोला, "ओ लंगड़े, इसे दासी-बाड़ी में भिजवा दो। उस दोड्डी से इसका ख़्याल रखने को कहो।"

बसव, "जो आज्ञा, महाराज," बोला। राजा ने आगे कहा, "ख़बरदार, बच्चे को कोई चुरा न ले जाये ! चोरी से भागे हुए हरामज़ादे आकर पाँव पड़ें तब उन्हें हम वापस देंगे। तब तक इसके पास कोई फटकने न पावे। नहीं तो सिर उतरवा लिया जायेगा, सिर, ख़बरदार !"

"जो आज्ञा, मालिक।"

रानी ने बसव से पूछा, "यह बहिनजी का बच्चा है ना बसवय्या ?"

"हाँ माँ।"

"वे और दामाद साहब चले गये क्या ?"

"हो सकता है, माँ।"

"वे छोड़ गये समझकर क्या हम भी छोड़ दें ? पालना भीतर मँगाओ।"

राजा को यह पसन्द नहीं आया। पर वह जानता था कि जब रानी दूसरी तरह की बात करती है तो उसी की चलती है। ज्यादा से ज्यादा वह गुस्से में चार गालियाँ बक सकता था।

राजा बोला, "वह बच्चे को छोड़ गयी है कि उसकी भाभी पाले। देखो भला कैसी बात करती है ! इनका रिश्ता, इनकी ममता, इनका अपनापन क्या कहना है !"

रानी : "यह सब हमारा दुर्भाग्य है। हमने उनके साथ क्या कसर रखी थी ?

फिर भी उनकी समझ में नहीं आयी।"

राजा : "आप तो समझती हैं ना ! आप ही समझा दीजिये" कहकर पाँव पटकता हुआ अपनी बैठक में चला गया ।

रानी की कही बात में राजा की सहमति है। यही समझते हुए बसव ने नौकर से कहा, "पालना रनिवास में ले जाओ।"

रानी और राजकुमारी उसे साथ लिवा ले गयीं।

तब राजा ने अपनी बैठक से आवाज़ दी, "ओ लंगड़े !" सुनते ही बसव उसके पास दौड़ा आया।

राजा : "देखो, दोड्डी के लिए जो कुछ कहा था वही अपनी मालकिन को भी सुना दो। यह समझा जाये कि बच्चा कैद में है। कोई न फटके। जो दूध दोड्डी पिलाती वह यह लोग पिलायें। कपड़े पहनायें, देखभाल करें। जब हम मँगवायें तब हमारे पास आना चाहिए। अगर इसके लिए तैयार हैं तो बच्चे को वहाँ छोड़ो; नहीं तो अभी बाहर ले आओ।"

रानी के सामने राजा हठ करके जीत नहीं सकता था परन्तु पीछे से विरोध कर सकता था। सेवक द्वारा काम पूरा करा सकता था। राजा की आज्ञा पूरी किये बिना बसव वापस लौटनेवाला नहीं यह राजा को पूर्ण विश्वास था। बसव ने 'जो आज्ञा मालिक' कहा और रनिवास में जाकर राजा की बात रानी से निवेदन की।

उस समय राजकुमारी बच्चे को पलंग पर लिटा स्वयं धरती पर घुटने टेके उसे खिला रही थी। बच्चा अभी छोटा था परन्तु उसे पता था यह मुख उसे स्नेह करता है। वह उसके स्नेह को अपनाकर उसे प्रसन्नता से देख रहा था।

रानी ने बसव से कहा, "दामाद के साथ राजा जो चाहें करें। राजा के कारण हमारा उनसे सम्बन्ध है। नौकरों के पास वह क्यों रहे ? हमारा कहना तो बस यही है कि राजमहल का बच्चा राजमहल में पले।" बसव "जो आज्ञा माँ," बोला। उसने राजा की ओर जाने के लिए कदम बढ़ाया ही था कि रानी ने पूछा, "क्या हुआ बसवय्या, वे लोग बच्चे को छोड़कर चले गये !" तब बसव ने कोग्गा, कोग्गा की पत्नी, गुरिकार और दूसरे लोगों की कही सब बातें रानी को संक्षेप में बतायीं। साथ ही उसने चोना के बारे में अपना अनुमान भी बताया कि उसने धोखा देकर बच्चे को पीछे रख लिया, पर वह उसे मिल नहीं सका।

यह कहानी सुनकर रानी ने अनुमान लगाया कि क्या हो सकता है। चोना अपने मालिक और मालकिन के साथ विश्वासघात करनेवाला आदमी न था। बच्चा उठानेवाले के हाथ से निचाईवाले रास्ते में गिर गया होगा। कुछ दूर जाने के बाद पालने में बच्चे को न देखकर उसे ढूँढ़ने के लिए चोना वापस आया होगा यह बात मन में पक्की करके उसने पूछा, "चोना ने क्या कहा ?"

फिर भी उनकी समझ में नहीं आयी।"

राजा : "आप तो समझती हैं ना ! आप ही समझा दीजिये" कहकर पाँव पटकता हुआ अपनी बैठक में चला गया।

रानी की कही बात में राजा की सहमति है। यही समझते हुए बसव ने नौकर से कहा, "पालना रनिवास में ले जाओ।"

रानी और राजकुमारी उसे साथ लिवा ले गयीं।

तब राजा ने अपनी बैठक से आवाज दी, "ओ लंगड़े !" सुनते ही बसव उसके पास दौड़ा आया।

राजा : "देखो, दोड्डी के लिए जो कुछ कहा था वही अपनी मालकिन को भी सुना दो। यह समझा जाये कि बच्चा कैद में है। कोई न फटके। जो दूध दोड्डी पिलाती वह यह लोग पिलायें। कपड़े पहनायें, देखभाल करें। जब हम मँगवायें तब हमारे पास आना चाहिए। अगर इसके लिए तैयार हैं तो बच्चे को वहाँ छोड़ो; नहीं तो अभी बाहर ले आओ।"

रानी के सामने राजा हठ करके जीत नहीं सकता था परन्तु पीछे से विरोध कर सकता था। सेवक द्वारा काम पूरा करा सकता था। राजा की आज्ञा पूरी किये बिना बसव वापस लौटनेवाला नहीं यह राजा को पूर्ण विश्वास था। बसव ने 'जो आज्ञा मालिक' कहा और रनिवास में जाकर राजा की बात रानी से निवेदन की।

उस समय राजकुमारी बच्चे को पलंग पर लिटा स्वयं धरती पर घुटने टेके उसे खिला रही थी। बच्चा अभी छोटा था परन्तु उसे पता था यह मुख उसे स्नेह करता है। वह उसके स्नेह को अपनाकर उसे प्रसन्नता से देख रहा था।

रानी ने बसव से कहा, "दामाद के साथ राजा जो चाहें करें। राजा के कारण हमारा उनसे सम्बन्ध है। नौकरों के पास वह क्यों रहे ? हमारा कहना तो बस यही है कि राजमहल का बच्चा राजमहल में पले।" बसव "जो आज्ञा माँ," बोला। उसने राजा की ओर जाने के लिए कदम बढ़ाया ही था कि रानी ने पूछा, "क्या हुआ बसवय्या, वे लोग बच्चे को छोड़कर चले गये !" तब बसव ने कोम्गा, कोम्गा की पत्नी, गुरिकार और दूसरे लोगों की कही सब बातें रानी को संक्षेप में बतायीं। साथ ही उसने चोमा के बारे में अपना अनुमान भी बताया कि उसने धोखा देकर बच्चे को पीछे रख लिया, पर वह उसे मिल नहीं सका।

यह कहानी सुनकर रानी ने अनुमान लगाया कि क्या हो सकता है। चोमा अपने मालिक और मालकिन के साथ विश्वासघात करनेवाला आदमी न था। बच्चा उठानेवाले के हाथ से निचाईवाले रास्ते में गिर गया होगा। कुछ दूर जाने के बाद पालने में बच्चे को न देखकर उसे ढूंढ़ने के लिए चोमा वापस आया होगा यह बात मन में पक्की करके उसने पूछा, "चोमा ने क्या कहा ?"

"उसने 'मालिक और मालकिन चोरी से भाग गये यह बात मैं कैसे कह सकता हूँ' कहा। "यह बच्चा उनका है, पूछने पर उसने हामी नहीं भरी। महाराज को बहुत ही गुस्सा दिला दिया, माँ।"

"वह कहाँ है?"

"बहुत गुस्सा आने पर महाराज ने उसे वहीं सूली चढ़वा दिया।"

"चोमा को!"

"हाँ अम्माजी।"

रानी अम्मो बहकर दुखित हुई। उसे लगा यह गति बलवान है। खिन्न होती हुई फिर सोचने लगी—एक जान तो चली गयी अब और किसी को कुछ न हो, कहकर मन-ही-मन प्रार्थना कर बेटी के साथ खेलते हुए छोटे बच्चे की ओर मुड़ी। बसव राजा की बैठक की ओर चला गया।

116

चोमा को बच्चे को खोजकर लाने के लिए मपाजे की ओर भेजकर चेन्नबसवय्या ठीक समय गून्या पहुँच गया। इतनी यात्रा पूरी होने तक देवम्माजी थककर चूर हो गयी थीं। अप्पगोल से रातोंरात मीलों चलकर सीमा पार करके यहाँ तक आने की थकावट और दूसरी ओर बच्चे के खो जाने का अप्रत्याशित दुख, इन दोनों ने उसे तोड़ दिया था। इस कारण से और यह सोचकर कि सम्भवतः जल्दी में यदि बच्चा चोमा को मिल जाये तो वह उन्हें यहाँ आकर मिल सके, चेन्नबसवय्या ने उस दिन शाम तक वहीं ठहरने का निश्चय किया।

गाँव के गौड़ा के घर का पता लगाकर उसे गुप्त रूप से अपनी पहचान बताकर चेन्नबसव ने ठहरने का प्रबन्ध किया। चोमा यदि आये तो उसे रोकने के लिए उसी और कुरु को बारी-बारी से रास्ते में प्रतीक्षा करते रहने का आदेश भी दिया।

बहुत देर होने पर भी चोमा नहीं आया। परन्तु मपाजे से आये बैल के व्यापारियों द्वारा लाया समाचार गाँव भर में फैल गया। बात इनके कान तक भी पहुँची।

समाचार इस प्रकार था। सुबह मपाजे के सीमा मार्ग के पास की झाड़ी में बोम्मा की पत्नी को एक बच्चा मिला, वह और बोम्मा उसे गौड़ा के पास ले गये, ठीक उसी समय चोरों के गुरिकार को अप्पगोल का एक नौकर मिला। बच्चा अप्पगोल का हो सकता है और वह उसे चुराकर लाया होगा सोचकर गौड़ा और गुरिकार उसे और बच्चे को अप्पगोल ले गये।

गून्या के लोग यह बात आपस में मजे ले-लेकर कर रहे थे। मगर कुछ

ख़ास थीं इसलिए लोगों ने उसमें बड़ी रुचि दिखायी। यह क्या है ? सहज उत्सुकता से चेन्नवसवय्या ने पूछा और विवरण जान लिया।

बच्चा हमारा है, अप्पगोलं का कहा जाने वाला नौकर ही हमारा चोमा है। संपाजे का गौडा और गुरिकार के साथ गया बच्चा और चोमा राजा के पहरेदारों के हाथ लग गया होगा। इस समय तक हमारे चोरी से भाग जाने का समाचार फैल चुका होगा। पहरेवाले बच्चे और चोमा को मडकेरी ले जायेंगे। राजा को सौंप देंगे। राजा बच्चे और चोमा को बिना मारे छोड़ सकता है क्या ? छोड़े भी क्यों ?

यह सोचकर चेन्नवसवय्या कांप उठा। यह बात जाकर देवम्माजी को बतायी जाये या नहीं। बहुत सोच-विचार के बाद वह इस निश्चय पर पहुँचा कि यह सब बातें उसे बता देनी हैं और आगे का सारा कार्यक्रम उसकी राय से ही तय करना ठीक होगा। इसलिए जो समाचार उसे मिला था उसने देवम्माजी को कह सुनाया।

जब बच्चा पालने में न मिला तभी देवम्माजी का मन बैठ गया था। थोड़ी बहुत आशा जो अटकी थी, समाचार पाने के बाद वह भी टूट गयी। क्या यही दिन दिखाने के लिए भगवान ने क़ैद में रहते पति को चोरी से लाकर नौ महीने का भार उठवाया था। संसार में इतना अन्याय, इतना पाप ! इस कड़वाहट को पीकर रहनेवाले मेरे जैसे ज्यादा नहीं। मेरे जैसा असहनीय दुख करोड़ों में एक को भी न होगा। हमारा पूर्व-जन्म का कर्म ही हमको खाये जा रहा है। उसने अपने दुख में अपनी दुखी कल्पना को मिलाकर मन को और अधिक कड़वा कर लिया। अपने दुख के भार से वह बुरी तरह दब गयी।

बच्चे और चोमा का आगे क्या हुआ यह जानने को क्या किया जाये—चेन्नवसवय्या को यही चिन्ता सताने लगी। किसी भी बात के लिए अब मंगलूर पहुँचकर वहाँ के अंग्रेज़ अधिकारियों से मिलकर उनकी सहायता लेना ही उचित होगा। इस समय पत्नी यात्रा कर पाने की स्थिति में नहीं है। अगले दिन शायद संभव हो सके। घोड़े पर जाने में अगर कठिनाई हो तो देवम्माजी को एक पालकी में बैठाकर ले जाया जा सकता है। मंगलूर पहुँचकर किसी को मडकेरी भेजकर बच्चे का समाचार मँगाया जा सकता है।

पर बच्चे का समाचार पाने के लिए उसे इतने प्रबन्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। देवम्माजी को उस दिन बुखार आ गया। वह सूल्या से आगे पालकी में भी यात्रा करने की स्थिति में न रही। चेन्नवसवय्या को भी उसके सिरहाने बैठना पड़ा।

गौडा की सहायता से पत्नी की सुश्रुषा करते हुए उसे दूसरा दिन भी सूल्या में बिताना पड़ा।

मंपाजे के गौडा का लड़का चौकी का मुखिया, बोम्मा और उसकी पत्नी सन्ध्या तक गाँव पहुँचे और उन्होंने सारी बातें गाँव के दस लोगों को बतायीं। दूसरे व्यापारियों के द्वारा यह समाचार भी मूल्दा पहुँचा और चेन्नबसवय्या के कान में पड़ा। बच्चा राजा के हाथ पड़ गया। बोमा उसके गुस्से का पहला शिकार बना, राजा से पीछा छुड़ाने में उसके प्रयत्न उल्टे पड़े। यह बात चेन्नबसवय्या ने समझ ली। यह समाचार उसने उसी समय देवम्माजी को नहीं दिया। दो दिन बाद बताने का निश्चय किया।

अगले दिन देवम्माजी का बुखार उतरा। चेन्नबसवय्या ने मूल्दा के गौडा से आवश्यक सहायता लेकर मंगलूर के लिए प्रस्थान किया। एक बक्त पुत्तूर में ठहर कर दूसरे दिन मंगलूर जा पहुँचे।

चेन्नबसवय्या ने एक पत्र के द्वारा अपने पहुँचने की बात और कलेक्टर से मिलने की इच्छा व्यक्त की।

117

पत्र देखकर कलेक्टर को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने चेन्नबसवय्या को बुलाया और सारी बात का पता लगाया। उसे इस बात की प्रसन्नता हुई कि कम्पनी सरकार के वरिष्ठ अधिकारियों की इच्छा को इतना शीघ्र पूरी होने का अवकाश मिल रहा है। उसने चेन्नबसवय्या से कहा, "अप्पगोलं में रहना संकटपूर्ण देखकर आपका तुरन्त इधर चला आना अच्छा हुआ। आपके और आपके साले महाराज के बीच के झगड़े को रेजिडेंट साहब बड़ी प्रसन्नता से सुलझायेंगे। आप चिन्ता न करें। बच्चे को बैंगलूर भेजने के लिए हम महाराज को फौरन पत्र भेजते हैं। *आप बैंगलूर जाकर बच्चे की प्रतीक्षा करें।*" उसने चेन्नबसव, देवम्माजी और नौकरों को एक दिन मंगलूर में ठहराने के लिए उचित प्रबन्ध कराया और बीर-राज, मद्रास के गवर्नर, तथा बैंगलूर के चीफ कमिश्नर को एक-एक पत्र भिजवाया। तीसरे दिन उसने चेन्नबसवय्या तथा देवम्माजी को उचित सहायता देकर बैंगलूर भेज दिया।

उसके द्वारा भेजे गये पत्र का सार इस प्रकार था :

"कोडग के महाराज कम्पनी सरकार के अभिन्न मित्र श्री चिक्कवीर-राजेन्द्र ओडेयर के समक्ष मंगलूर में स्थित कम्पनी के कलेक्टर का आदरपूर्वक नमस्कार।

कुछ दिन पहले प्रत्यक्ष रूप से आपके दिये अतिथि सत्कार को आज तक हम बराबर याद कर रहे हैं। हम आशा करते हैं कि इसके बारे में हम सब की ओर से हमारे नेता रेजिडेंट महाशय ने आपकी सेवा में धन्यवाद का पत्र भेज

दिया होगा। आपकी सेवा में हम व्यक्तिगत रूप में अपना धन्यवाद भेजते हैं।

इसीके साथ मैं एक विषय की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। यह बात मुझे एक-दो घण्टे पूर्व ही पता चली है। पर उसके बहुत महत्त्वपूर्ण होने के कारण अविलम्ब यह पत्र आपकी सेवा में भेज रहा हूं।

आपकी सहोदरा देवम्माजी तथा उनके पति श्रीमान् चेन्नवसवय्याजी आज यहाँ आ पहुंचे हैं। श्री चेन्नवसवय्या अभी हम से मिलकर अपने निवास को गये हैं। वे और आपकी वहिन कल यहाँ आयेंगे। परसों बैंगलूर जायेंगे।

आपके दामाद साहब ने बताया कि तीन दिन पूर्व जब वे इधर आ रहे थे तब रात्रि के समय उनका बच्चा—आपका सगा भाँजा रास्ते में पालने से उछल कर झाड़ी में गिर गया था। वह दूसरे दिन संपाजे गौडा साहब द्वारा सुरक्षित रूप से मडकेरी में आपके महल भिजवा दिया गया। अब वह महल में है। बच्चे के पालने में से गिरने के कारण चिन्तित माता-पिता की व्याकुलता यह जानकर कि वह आपके आश्रय में सुरक्षित है कुछ शान्त हुई। इससे हमें भी थोड़ी सांत्वना हुई।

आपकी वहिन चाहती हैं कि बच्चा शीघ्र उन्हें मिल जाये, पर हम यह भी जानते हैं कि आप यह सोच सकते हैं कि जब आपका अपने दामाद पर अत्यन्त स्नेह है तो बच्चे के वहाँ रहने में क्या बुराई है। पर बच्चे के लिहाज से तथा माँ के लिहाज से बच्चे का यथाशीघ्र माँ से मिलना ही उचित है—यह आप जानते ही हैं। इसलिए हम उस बच्चे के माता-पिता की ओर से प्रार्थना करते हैं कि यह पत्र देखते ही उसे आप बैंगलूर भिजवा दें। ये लोग बैंगलूर में रेजिडेंट महोदय के अतिथि रहेंगे। बच्चे को लानेवाले यदि रेजिडेंट महाशय से मिल लें तो सारी बातें सुविधा से हल हो जायेंगी। हमारी प्रार्थना है कि इस पत्र का उत्तर अवश्य भिजवाने की कृपा करें।

आपका विनम्र सेवक"

बैंगलूर रेजिडेंट महोदय को लिखा पत्र था : "प्रिय महोदय, यह पत्र आपकी व्यक्तिगत जानकारी के लिए लिख रहा हूँ। फिलहाल ये सभी बातें अत्यन्त गोपनीय रहनी चाहिए।

जब हम मडकेरी में थे तब अन्तिम दिन खेले गये नाटक में हुई गड़बड़ की बात आपको पता ही है। राजा ने अपने उस अपमान को, दामाद श्रीमान् चेन्न-वसवय्या द्वारा उद्देश्यपूर्वक कराया गया, यह अनुमान लगाकर उन्हें नज़रबन्द कर रखा था। वे उनसे बचकर पत्नी और बच्चे सहित इधर भागे। आते हुए बच्चा रास्ते में उछलकर गिर गया। ये दोनों ही यहाँ आ पहुंचे हैं। बच्चा किसी के हाथ पड़कर राजमहल पहुंच गया। अब वह राजा के पास है।

चेन्नवसवय्या बैंगलूर के लिए चले थे। प्रातः होने से पूर्व सीमा पार करने

की जल्दी के कारण इस रास्ते से आये हैं। कल यहाँ ठहरकर परसों यहाँ से बैंगलूर रवानगी का प्रबन्ध मैं कर दूंगा।

मैंने राजा को पत्र लिखा है कि बच्चा रेजिडेंट साहब के पास बैंगलूर भिजवा दें ताकि बच्चे को माँ-बाप के पास पहुँचा दिया जा सके। यह पत्र आपको पहुँचते ही आप भी वीरराज को इस आशय का एक पत्र भेज दीजिए।

मुझे यह आशा नहीं कि राजा बच्चे को भेज देंगे। शायद आपको भी ऐसा ही लगे। हम उनके स्वभाव को जानते हैं। सम्भवतः वे हमारी बात की उपेक्षा करेंगे। वे इस बात का हठ करेंगे कि बच्चे को नहीं भेजा जायेगा, इसके उलटे बहिन और बहनोई को ही मडकेरी भेज दिया जाय।

इन लोगों को जान का डर है, ये तैयार न होंगे। आगे क्या होगा कहा नहीं जा सकता। और फिर यह मेरे सोचने की बात भी नहीं है, मामला आपके सुदक्ष हाथों में है, उसे आप सही ढंग से संभाल लेंगे।

मैंने इन सभी बातों को विस्तार से लिखकर मद्रास के गवर्नर महाशय को एक पत्र भेज दिया है।

आपका विश्वसनीय"

मद्रास के गवर्नर को लिखा पत्र था:

"मान्यवर की सेवा में निवेदन।

कोडग के राजा की बहिन और उसके पति यहाँ आये हुए हैं। उस सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण के रूप में मैसूर के रेजिडेंट महोदय को लिखे पत्र को भी इस पत्र के साथ आपके अवलोकनार्थ संलग्न कर रहा हूँ।

मुझे लगता है कि इस बारे में महाराजा शान्ति से काम नहीं लेंगे। शायद वे कठोरता का व्यवहार करें। यदि ऐसा हुआ तो हमें उचित कार्यवाही करनी होगी। इस बारे में बैंगलूर को तैयार रहने का आदेश देना ठीक रहेगा। क्या करना चाहिए यह आपको मुझ से ज्यादा अच्छी तरह पता है फिर भी मुझे जो इस परिस्थिति में दिखता है उसे आप तक पहुँचाने के लिए दो वाक्य लिखने का साहस कर रहा हूँ। कृपया क्षमा करें।

मैंने रेजिडेंट महोदय से निवेदन कर दिया है कि फिलहाल ये सभी बातें मुख्याधिकारियों के बीच में ही रहें।

आपका विश्वसनीय"

....

118

भांजे को रनिवास में रानी के पास छोड़कर वीरराज ने अपनी बैठक में आने के

बाद यह निश्चय किया : मुझे धोखा देकर भागनेवाले इस बहिन और बहनोई को वापस लौटना ही चाहिए, नहीं तो इस बच्चे का काम तमाम कर डालना है। जिस समय जो मन में आया वही कर डालने की तथा अपने विरोध का ध्यान न रखने की प्रवृत्ति से ही वीरराज के चरित्र का विकास हुआ था। उसे कोई रोकने टोकनेवाला न था। इसलिए उसकी निरंकुश प्रवृत्ति क्रूरता की सीमा लांघ चुकी थी। अपनी नस बेटी मात्र को छोड़कर वह किसी के भी प्राण लेने में हिचकिचाता न था। उसने सोचा : बहिन और बहनोई को कहलवाना पड़ेगा—तुरन्त लौट आओ, नहीं तो तुम्हारा बेटा जीवित नहीं रह सकेगा। पर इसके लिए उनके ठिकाने का पता लगाना ज़रूरी है। क्या ये मंगलूर में ठहरेंगे या चक्कर काटकर नजंनगूड पहुँचेंगे ?"

बाद में बसव के पास आने पर पूछा, "ये हरामजादे मंगलूर गये होंगे। क्यों रे ?"

"हाँ मालिक, और कहीं जाना भी हो तो वहाँ होकर ही जायेंगे।"

"नजंनगूड नहीं जा सकेंगे ?"

"वहाँ क्या धरा है मालिक, वह तो बहाना था।"

"भगवान के दर्शन के लिए ?"

"यही तो बहाना था, मालिक। हमें धोखा देने को नजंनगूड का नाम लिया, मन में कुछ और ही बात थी।"

"देखा इस हरामजादे का धोखा ! मन में कुछ और दिखावा कुछ और।"

"और क्या हो सकता है मालिक, सभी ऐसे हैं। अपना ही सोचते हैं दूसरों की उन्हें क्या ?"

"जो भी हो, इस राजमहल का नमक खानेवाले कोई वफ़ादार नहीं निकले, लंगड़े।"

"हाँ मालिक !"

"ठीक है। अब किसी को मंगलूर भेजकर यह पता लगवाओ कि ये गये कहाँ।"

"जो हुक्म, मालिक।"

यह कहकर बसव अपने अन्य काम देखने के लिए चला गया। उस रात उसने मंगलूर जानेवाले व्यापारियों के साथ अपने भी दो आदमी भेजने का प्रबन्ध किया।

इन आदमियों को मंगलूर जाकर सब बात पता लगाकर वापस आने के लिए कम-से-कम एक सप्ताह चाहिए, परन्तु इसी बीच कलेक्टर के पत्र के द्वारा इनको वह समाचार मिल गया जिसकी इनको आवश्यकता थी।

कलेक्टर का पत्र देखकर वीरराज के तन-बदन में आग ही लग गयी। वह

गरजा बरसा, "बच्चे को भेजूँगा इन हराम की औलादों के पास ! इनके कहने पर तुमने मुझे पत्र लिखा ! इस हराम की औलाद अंग्रेज की हिम्मत तो देखो ! चार आदमी भेजो, पकड़कर लायें इस रांड के को। घोड़े पर जाते हुए नीचे गिरा दिया हम उठाकर ले आये। उसे बुलाओ जरा लातें लगायेंगे। हफ्ते भर तक हमारा ही खाकर हमसे ही ऐसी बात करता है !..."

बसव ने तुरन्त कोई उत्तर नहीं दिया। उसे पता था कि मंगलूर के कलेक्टर को विरोधी बनाकर वीरराज कोई अच्छा काम नहीं कर रहा है। कलेक्टर का पत्र पढ़ते-पढ़ते ही बसव ने उसके उत्तर की रूपरेखा मन में बना ली। मालिक का क्रोधित होना स्वाभाविक था। उसने सोचा क्रोध का उबाल कम होने पर वह इस पत्र का उत्तर क्या होना चाहिए यह राजा को सुझा सकेगा।

वीरराज बहुत देर चीख-चिल्लाकर बीच-बीच में और दो बार शराब गले में उड़ेलकर थोड़ा शान्त होकर बैठ गया। तब बसव पास बैठकर बोला, "दामाद साहब राजमहल से धोखा देकर भाग निकले हैं। मालिक की बहिन को वे जबर्दस्ती ले गये हैं। भागने की जल्दबाजी में इन्हें बच्चे का क्या हुआ, यह होश तक नहीं रहा। भगवान बहुत बड़ा है। बच्चा हमारे हाथ लग गया। उसे वापस ऐसे गैरजिम्मेदार पिता के हाथों में सौंपना ठीक न होगा। बच्चे के पालने की इच्छा यदि उनमें हो तो अविलम्ब उन्हें लौटना चाहिए और यहाँ हमारी देखभाल में रहकर बच्चे का पालन-पोषण करना चाहिए। आप एक सप्ताह हमारे यहाँ रहे, हमारा आतिथ्य स्वीकार किया। हमारे बारे में आपको विश्वास के साथ चलना चाहिए। हमारी बहिन और बहनोई को बंगलूर जाने की भी जरूरत नहीं है। उन्हें वापस लौटा दीजिये। हमारे और कम्पनी के सम्बन्धों को और दृढ़ कीजिए।" उसने राजा को सुझाया कि इस प्रकार का पत्र मंगलूर के साहब के पास भेजना ठीक होगा। "आज्ञा हो तो ऐसा पत्र लिखाकर ले आऊँ ?" उसने पूछा।

"क्यों रे रांड के, उनसे डर गया ? जरा-सा धमकाते ही पाँव पर गिरने लगा ?"

"बातों में नम्रता लाने से कोई किसी के पाँव पर नहीं गिर जाता, मालिक। नर्मी से काम न चला तो सख्ती करेंगे। पहले यह तो करके देख लें।"

"तू तो पूरा मन्त्री बन गया रे, लंगड़े। मन्त्र से ही बन्दर पकड़ेगा ?"

"बन्दर ही तो है न मालिक, मन्त्र से काबू में न आये तो [illegible]"

"चल ऐसा ही कर ले। उनके लिए [illegible] बैठना।"

"मछली और [illegible] मालिक ?"

"काँटे के लिए [illegible]"

"इन गोरों के लायक फन्दे हमारे पास बहुतेरे हैं। दामाद साहब के पास है ही क्या ?"

"हाँ। एक बार और दावत को बुलाया जाये तो वहीं से मुँह बाये चले आयेंगे रांड के। जो तूने बताया है लिखो, देखो क्या जवाब आता है।"

"जो हुक्म, मालिक।"

"वह सुअर का बच्चा जिसे तू दामाद कह रहा था यदि इधर आ जाये तो उसी दिन उसका सिर उड़ा देना है, बसव। याद रखना कहीं छोड़ न देना, ख़बरदार !"

"आने दीजिये, मालिक।"

"इस नालायक के साथ मिलकर अपने ही मायके की थाली में छेद करने-वाली उस कुतिया को भी उसके पति के पीछे मरना पड़ेगा।"

"अच्छा मालिक।"

बहिन और बहनोई अगर वापस आ जायें तो उनको क्या-क्या कष्ट दिये जा सकते हैं उसकी कल्पना करते हुए वीरराज चुप हो गया।

119

बसव ने अपने बताये हुए ढंग से एक बड़ी सतर्क भाषा में पत्र कलेक्टर को लिखवा कर लाकर राजा को पढ़कर सुनाया, और उसकी आज्ञा लेकर मंगलूर भिजवा दिया। यह पत्र कलेक्टर तक पहुँचने से पूर्व ही चेन्नबसवय्या तथा देवम्माजी बैंगलूर के लिए रवाना हो चुके थे। यदि ऐसा न भी होता तो भी वे पीछे लौटने-वाले न थे, वापस लौटने को कलेक्टर भी उनसे कहनेवाला न था। जो भी हो, कलेक्टर को इस पत्र का क्या जवाब देना होगा यह चिन्ता न थी। उसने बहुत संक्षेप में वीरराज को उत्तर भेजा : "आपका पत्र मिला, पर उसके हम तक पहुँचने से पहले ही, आपकी इच्छा से पहले ही, आपकी बहिन और बहनोई बैंगलूर रवाना हो चुके थे। इस कारण आपकी इच्छा पूरी करने के लिए हम कुछ भी कर नहीं सके। आपका यह पत्र रेजिडेंट साहब को भिजवाये दे रहा हूँ। आगे से इस विषय में उन्हीं से पत्र-व्यवहार करें।"

यह उत्तर पहुँचने पर वीरराज बहुत चीख़ा-चिल्लाया और गरजा और हमेशा से अधिक पी। अगले दिन रेजिडेंट महोदय को एक पत्र लिखवाया—"हमारे दामाद यहाँ अपराध करके क़ैद से भागकर आपके यहाँ पहुँच गये हैं। साथ हमारी बहिन को भी ले गये हैं। उन्हें यहाँ भेज दीजिये।" यह उस पत्र का सारांश था। इस पत्र के चीफ कमीश्नर के पास पहुँचने के दिन ही देवम्माजी तथा चेन्नबसवय्या बैंगलूर जा पहुँचे।

रेजिडेंट ने यह नहीं सोचा था कि कोडग के बारे में अपने उच्चाधिकारियों में उसकी की गयी भविष्यवाणी इतनी शीघ्र ही यह रूप ले लेगी। मंगलूर के कलेक्टर का चेन्नवसवय्या तथा देवम्माजी के बारे में लिखा पत्र उनके बेंगलूर पहुँचने से तीन दिन पहले ही उसे मिल गया। उसने तुरन्त ही इस विषय को मद्रास तथा कलकत्ता पत्र द्वारा लिख भेजा। चेन्नवसवय्या तथा देवम्माजी का स्वागत करने के लिए दस अंगरक्षक भेजे गये। बेंगलूर में उनके ठहरने का भी अच्छा प्रबन्ध किया गया। उसने यह निश्चय कर लिया कि कोडग का राजा यदि ठीक तरह से रहे तो उसका राज्य उसके हाथ में रह सकता है नहीं तो गद्दी से उतारना पड़ेगा, परन्तु इस कार्य में किसी को ऐसा नहीं लगना चाहिए कि उसके साथ अन्याय हुआ।

चेन्नवसवय्या तथा देवम्माजी के बेंगलूर पहुँचने पर रेजिडेंट तथा चीफ कमिश्नर के प्रतिनिधि उनसे मिले और उन्हें ठहराने के स्थान पर ले गये। उनको राजसी सत्कार देते हुए कहा, "आपकी यात्रा की थकावट दूर हो जाये तो आप अपनी सुविधानुसार बड़े साहब से मिल सकते हैं।" चेन्नवसवय्या तथा देवम्माजी को इस आदर-सत्कार से आश्चर्य हुआ। इससे वे यह सोच सकते थे कि उन्हें स्वर्ग का सुख प्राप्त हुआ। पर इस सुख में एक ही काँटा था कि उनका बच्चा नरक में फँसा हुआ था। दोनों के मन को यही चिन्ता जलाये जा रही थी। चेन्न-वसवय्या की अपेक्षा देवम्माजी इस यातना को अधिक अनुभव कर रही थी।

एक दिन विश्राम करके चेन्नवसवय्या रेजिडेंट साहब से मिलने उनके निवास पर गया।

साहब ने उसे बहुत आदर दिया। मडकेरी से भी चौगुना मान देते हुए उसे पहले बैठने को कहकर स्वयं बैठा। फिर कुशल क्षेम पूछने के उपरान्त बोला, "जब हम मडकेरी में आपसे मिले थे तब हमें लगा था कि आपके और राजा के बीच सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं, पर यह सम्बन्ध इतने शीघ्र इतने खराब हो जायेंगे यह हमने नहीं सोचा था। राजा का अपने इतने समीप के सम्बन्धियों से ऐसा अनुचित व्यवहार देखकर हमें अत्यन्त अश्चर्य और विषाद हुआ।"

चेन्नवसवय्या : "हाँ साहब, यह तो उनकी आदत हो गयी है। उन्हें कोई रोकने-टोकनेवाला नहीं है। इसलिए राजा इतने अहंकारी हो गये हैं। उस अहंकार को ही कुचलने के लिए हम आपसे सहायता माँगने आये है।"

"देशी राजाओं की क्रूरता से पीडित प्रजा की रक्षा करके उचित शासन प्रबन्ध कम्पनी का दृढ़ कर्तव्य है।" आपको इस बारे में चिन्ता करने की आव-

श्यकता नहीं। इस विषय में आवश्यक सभी कार्यवाही करने के लिए हम अपने वरिष्ठ अधिकारियों से आज्ञा ले लेंगे और उचित समय पर सभी आवश्यक प्रवन्ध करेंगे।"

"राजा को गद्दी से उतारकर शासन अपने हाथ में न लीजिये। कोडग को एक और मैसूर न वनाइये।"

"अव यह वात असंगत है। आपने जो वात सोची है वह अनुचित है। कोडग को राजा के हाथ से छुड़ाना पहला क़दम है, उसके वाद क्या प्रवंध होना चाहिए सोचेंगे।"

"यह कैसे हो सकता है साहव ? राजा को गद्दी से उतारने से पहले ही यह निश्चय हो जाना चाहिए कि उसके वाद कौन राजा होगा। पहले यह और वाद में वह कहने को समय ही कहाँ है ?"

"अच्छी वात है, इस वारे में वाद में विचार किया जा सकता है। फिलहाल तो आप यहां निर्भय होकर रह सकते हैं। आपकी सुरक्षा का प्रवन्ध करना हमारा पहला कर्त्तव्य है।"

"हमारा वच्चा यहाँ मँगवा दीजिये, यही पहला काम है।"

"मँगवाते हैं, वच्चे को जान का ख़तरा तो नहीं ना ?"

"कह नहीं सकते। राजा का कहना है, वहिन, हमारे ऊपर आये ग़ुस्से में वे कुछ भी कर सकते हैं।"

"राजा की वहिन···देवम्माजी ना ?"

"जी हाँ।"

"उनका डर स्वाभाविक है, पर हमें ऐसा नहीं लगता कि राजा वच्चे को किसी तरह की हानि पहुँचा सकते हैं।"

"यह भी पक्की तरह कहा नहीं जा सकता।"

"अच्छी वात हम उन्हें लिखेंगे कि वच्चे को तुरन्त भेजा जाये। उसे उसके माँ-वाप तक पहुँचाना हमारा काम है।"

"ऐसे में आपसे चिढ़कर राजा वच्चे को कुछ कर डालें तो ?"

"हमसे चिढ़कर राजा रह सकता है क्या ? कम्पनी सरकार के साथ ऐसी वातें नहीं चल सकतीं।"

इस प्रकार तसल्ली देकर रेजिडेंट वोला, "देवम्माजी के साथ रहने के लिए लूसी को भेज देंगे। आप अपनी पत्नी को वता दीजिये।" यह कहते हुए उसने चेन्नवसवय्या को विदा किया। उसी दिन वीरराज को एक पत्र लिखा और उसे एक डाकिया-घुड़सवार के हाथ भिजवा दिया। वह पत्र इस प्रकार था :

"आपकी वहिन तथा उनके पति के वारे में आपका भेजा हुआ पत्र हमें मिला।

आपके यहाँ हम आकर रहे और आपका आदरपूर्ण आतिथ्य पाकर वापस

आने के पन्द्रह दिन के भीतर ही इस प्रकार का पत्र-व्यवहार करने में हम बड़ा दुख अनुभव कर रहे हैं परन्तु अब ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाने के कारण आपसे इस प्रकार का पत्र-व्यवहार करना पड़ रहा है। इसे आप झगड़े की बात न मान कर मात्र समस्या सुलझाने के रूप मे ही लें। यह मेरी प्रार्थना है।

हमें नही मालूम कि आपके बहनोई साहब का क्या अपराध है। हो सकता है आपका उनको कैद मे रखना उचित हो। इस बारे में हमें कुछ नही कहना है। वास्तव में इस बात का हमसे कोई सम्बन्ध भी नही है। वे क़ैद से भागकर कम्पनी सरकार की शरण आये हैं। सारी बात का पता लगाकर ही उन्हें आपके पास भेजा जा सकता है परन्तु उन्हें ऐसे भिजवाना सभव नही। कम्पनी सरकार अपनी शरण आये हुए लोगों को कभी असुरक्षित नही छोड़ती।

इसलिए श्रीमान् चेन्नबसवय्या का क्या अपराध है, उन पर अभियोग कैसे साबित हुआ ? हो सकता है वे परिस्थितिवश अपराधी मान लिये गये हो। इस बारे में आपसे पूर्ण जानकारी देने की प्रार्थना की जाती है।

क़ैद से भागते हुए असावधानीवश ये लोग अपने बच्चे को खो आये। वह आपके पास पहुँच गया है। आपके और उनके मन-मुटाव दूर होने में कुछ समय लग सकता है। इस बीच बच्चे को माँ-बाप से दूर, आपके पास रहने की कोई वजह नही दिखाई देती। इसलिए आप उदार मन होकर बच्चे को हमारे पास भेज दें। यह हमारी आपसे प्रार्थना है। आपकी बहिन को बिना अपने बच्चे से मिलाये हम अपने कर्तव्य को पूरा नही समझते। इसलिए और किसी कारण से न सही, कम-से-कम हमारे लिए, बच्चे को अविलम्ब हमारे पास भेज दें।"

121

मंगलूर से कलेक्टर और बैंगलूर से रेजिडेंट के पत्रों को एक साथ पाते ही मद्रास के गवर्नर ने सोचा कि कोडग का इतिहास उसकी मनचाही करवट ले रहा है। गवर्नर जनरल बैंटिक महोदय को उसने अपने विचार प्रकट करते हुए एक पत्र लिखा। वह इस प्रकार था :

"हम ठीक-ठीक अनुमान नही लगा सकते कि राजा का व्यवहार कैसा रहेगा। परन्तु यह निश्चित ही है कि वे आपको ठीक ढग से उत्तर नही देंगे। यदि वे ऐसा करे तो उनको दण्ड देना अनिवार्य हो जाता है। उस समय सारी बातें आपको बताकर आपसे आज्ञा लेकर कार्यवाही करने के लिए समय नही रह जायेगा। इसलिए इसी समय मद्रास सरकार को आज्ञा दे दें कि समय पर आगे वे जो कार्यवाही उचित समझें उसे कर सकते हैं। परिस्थिति के अनुकूल कार्यवाही करने में हमें सुविधा होगी। इसके अतिरिक्त इस समय बैंगलूर मे स्थित अधिकारी

इससे पूर्व राजा से मिल चुके हैं और उनका आतिथ्य स्वीकार कर चुके हैं। उनमें किसी को कोडग पर सेना लेकर जाना पसन्द न आयेगा अतः बैंगलूर को एक नया मुख्य सेना अधिकारी भेजना होगा। तीसरी बात यह है कि अब यह बात शुरू हुई है। इसमें आवश्यक पत्र-व्यवहार होने में और सही रूप उभरने में तीन-चार मास लग सकते हैं। उस समय तक आप यदि मद्रास के दौरे पर आ सकें तो सारी बातें स्वयं प्रत्यक्ष जान सकेंगे, और सभी अपेक्षित आज्ञाएँ प्रत्यक्ष रूप से दे सकेंगे यह मेरा आपसे निवेदन है।"

मंगलूर के कलेक्टर और बैंगलूर को इसी प्रकार आदेशात्मक उत्तर गवर्नर ने भिजवाये : "कोडग को निगलने में अंग्रेजों ने जल्दबाजी की, ऐसी कोई कार्यवाही हमारी तरफ से नहीं होनी चाहिए। परन्तु राजा के अविवेकपूर्ण व्यवहार को हमने अपने नाम की खातिर सहन किया यह बात भी नहीं आनी चाहिए। यह बात स्पष्ट दिखाई देनी चाहिए कि हम देश की जनता की भलाई के लिए इस अधिकार को स्वीकार कर रहे हैं। इस नीति को ध्यान में रखकर आप आवश्यक क़दम उठाने में स्वतन्त्र हैं। यदि पहले सूचित करने का समय न हो तो कार्यवाही करने के उपरान्त सूचना दे सकते हैं। इन सब बातों के लिए मेरी अनुमति है।"

उन दिनों कम्पनी सरकार के ऐसे पत्र-व्यवहार जहाँ सुविधा हो वहाँ जहाजों द्वारा अथवा अन्य स्थानों पर घुड़सवार-डाकियों के द्वारा हमेशा चलता रहता था। ऐसे पत्र आवश्यकता पड़ने पर एक दिन में सौ मील तक पहुँच जाया करते थे। कोडग से सम्बन्धित पत्र मद्रास, कलकत्ता और बैंगलूर जाते-आते रहे। गवर्नर जनरल, गवर्नर तथा रेजिडेंट इन तीनों ने एक यन्त्र के तीन पुर्जों की तरह कार्य किया।

गवर्नर जनरल बैंटिक महोदय ने मद्रास गवर्नर तथा बैंगलूर के रेजिडेंट को यथासमय उत्तर भिजवा दिये : "मैसूर के राजा ने चाहे जो गलती की हो, पर वह कोडग के राजा की भाँति ख़ूनी और दुराचारी न था। ऐसे आदमी को ही जब हमने जनता की भलाई के लिए गद्दी से उतार दिया और इसे कोडग का राज्य करने को छोड़ दें तो देश की जनता के प्रति यह पक्षपात होगा। इसके पूर्वजों को हमने मित्रता का आश्वासन दिया था। परन्तु इस करार का अर्थ यह नहीं है कि राजा चाहे जैसा बुरा व्यवहार करे हम उसे सहन करते रहें, और उनके मित्र बने रहें। हमारे आश्रय में आये राजबन्धुओं को वापस करने के लिए कहना राजा की अनुचित बात है। अतः इस विषय में सभी आवश्यक कार्यवाही आप कर सकते हैं। इस बारे में हमारी पूर्ण सहमति है। मैसूर सेना के मुख्याधिकारी के रूप में हमने लैफ्टिनेंट कर्नल फ्रेसर को नियुक्त कर दिया है, और राजा के साथ बातचीत करने के लिए नागपुर में स्थित ग्राहम महोदय को नियुक्त किया

है। ग्राहम ने ही इससे पूर्व कोडग के महाराज से भेंट और चर्चा की थी। ये नये व्यक्ति की अपेक्षा हमारे विचारों को अच्छी तरह राजा के सम्मुख रख सकेंगे। इस बात के आगे बढ़ने और एक रूप लेने तक हम मद्रास का दौरा अवश्य करेंगे।"

एक मास के भीतर लेफ्टिनेंट कर्नल फ्रेसर ने बंगलूर जाकर सेना का कार्य भार संभाला। उसके दस दिन बाद ग्राहम भी नागपुर से आ पहुँचा।

122

इस बीच रेजिडेंट ने वीरराज को और वीरराज ने रेजिडेंट को तीन-तीन पत्र लिखे थे।

उन सबका सार इस प्रकार था :

बीरराज ने लिखा : "अपनी बहिन और बहनोई के साथ इस प्रकार के व्यवहार के बारे में मैं पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हूँ। आप बार-बार यह दोहराते हैं कि आप मेरे मित्र हैं। मेरे भांजे को भेजने को लिख रहे हैं। आपको ऐसा कहने का यह अधिकार है? सीधी तरह से देवम्माजी तथा चेन्नबसवय्या को यहाँ भेज दीजिये, बच्चा उनको दे दिया जायेगा। यदि आपने उन्हें यहाँ नहीं भेजा तो इस बच्चे को खतम कर दूंगा, सावधान। यह बात आपके आश्रय में पहुँचे आपके दास चेन्नबसवय्या को भी बता दीजिये। आप अपने अहंकार के कारण उन्हें न भी भेजना चाहें पर वे अपने बच्चे की रक्षा के लिए अपने आप लौटना चाहेंगे। अगर आप हमारी बात पर कान नहीं देंगे तो आपको सज़ा देने के लिए हम उनके बच्चे को कत्ल करा देंगे और तब उसकी जिम्मेदारी आपकी होगी, उनकी होगी, हमारी नहीं। ध्यान रहे।"

रेजिडेंट ने उत्तर दिया : "आपकी बहिन और बहनोई को वापस भेजने में हमारी तनिक भी बाधा नहीं है। परन्तु वे लौटने को तैयार हों तभी ना। उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें यहाँ से भेज देना आश्रयदाता के कर्त्तव्य की दृष्टि से अधर्म होगा। वे आपके पास लौटने मे हिचकिचाते हैं। उनका कहना है कि बच्चा पहले आ जाये तो बाद मे सभी लौट आयेंगे। इस परिस्थिति मे आपकी इच्छा-नुसार उन्हें आपके पास भेजना असंभव है। इस बात से हमने आपकी मैत्री मे किसी प्रकार की कमी नहीं की है। आपका नाम बदनाम न हो और आपके विरोधियों की संख्या न बढ़े इसी दृष्टि से ऐसा किया जा रहा है। हमारी प्रार्थना है कि आप इसे सच मानकर अपने भांजे को यहाँ भिजवा दें नहीं तो हम समझेंगे कि आप अपने हठ से इस मैत्री को खो रहे हैं। आपने लिखा है कि यदि संक्रांति से पूर्व आपकी बात पूरी न हुई तो बच्चे को खतरा है। हमारा विश्वास है कि

आप ऐसा अमानुषिक कार्य नहीं करेंगे। फिर भी आप गुस्से में आकर बच्चे को हानि पहुँचायें तो कम्पनी सरकार को इस कुकृत्य के अनुकूल प्रतिक्रिया के रूप में कार्यवाही करनी पड़ेगी। अब यह बात हम आपको सूचित कर रहे हैं। बात अभी आपको स्पष्ट कर दी गई है कि बाद में आप यह न कहें कि आपको कम्पनी सरकार के उद्देश्यों का पता न था। यह पत्र पर्याप्त विस्तृत है फिर भी इस बात को प्रत्यक्ष रूप में जताने के लिए हम अपने प्रतिनिधियों को भेज रहे हैं ताकि किसी प्रकार का सन्देह न रहे। हमारी विनती है कि आप हमारे प्रतिनिधियों की बातें सुनें और ऐसे ढंग से चलें कि जिससे हमारी और आपकी मैत्री को कोई ठस न पहुँचे, आपके बन्धुओं को दुख न पहुँचे तथा आपके नाम को धब्बा न लगे।"

123

इस पत्र और प्रत्युत्तरों के आने-जाने के सिलसिले में एक ही बात विशेष हुई कि वीरराज के मन की कटुता सीमा लाँघ गयी। देवम्माजी और चेन्नवसवय्या यदि समीप होते तो वह उनको खटमल जैसे मसल-मसलकर मार डालता।

रेजिडेंट या उसकी ओर का कोई भी आदमी उसके हाथ पड़ जाता तो वह उसके गुस्से की बलि चढ़ जाता। पर कोई भी उसकी पकड़ में न थे। पकड में था तो केवल बहिन का बच्चा। राजा के क्रोध की सारी तीव्रता गोल काँच को पार करके आनेवाली सूर्य किरण के समान उस निरीह निरपराध बालक पर केन्द्रित हो गयी। "इस रांड के को ठीक से सबक सिखाना पड़ेगा" बार-बार यही सोचकर अपने भाँजे के प्राण लेने को तैयार होने लगा।

इस समय तक ग्राहम महाशय की सूचना के आधार पर रेजिडेंट ने मंगलूर कलेक्टर को पत्र लिखा और अपनी ओर से राजा से बातचीत करने के लिए तलचेरि के फारसी व्यापारी दारा सेठ और मलबार कलेक्टर के रिस्तेदार कुल-पति करुणाकार मेनन को मडकेरी भेजा। पहले तो वीरराज इनसे मिलने को तैयार न हुआ। लेकिन बसव के बहुत कुछ समझाने के बाद उसने मिलने की स्वीकृति दे दी। उनसे मिलने पर उन्हें बोलने का अवकाश न देकर बोला, "हमारे देश के होने पर भी आप अंग्रेजों के टुकड़े खाकर कुत्ते के समान हो गये हैं। कोडग के राजा से बात करने के लिए आप कौन से बड़े आदमी हैं? ऐसे बड़े काम करने की योग्यता हममें नहीं है यह अपने मालिकों से न कहकर, अपने घर रहना छोड़कर, यहाँ आने की आपको हिम्मत कैसे हुई? अगर बात ही करनी थी तो आपके रेजिडेंट, तुम्हारे ग्राहम साहब या कलेक्टर को आना

चाहिए था। आपको भेजकर अविवेक दिखाया। हमारा अपमान किया। इसलिए हमें आपको दण्ड देना पड़ेगा। अब इसी क्षण से आप अपने को हमारे बन्दी समझिये।"

दारा सेठ ने राजा से कहा, "हम लोग अंग्रेज़ों का स्वार्थ सिद्ध करने आपकी सेवा में नहीं आये हैं; बल्कि आप कोडग के राजा बने रहें इस आशा से इस काम के दायित्व को लेकर आये हैं। अंग्रेज अत्यन्त शक्तिशाली हैं। हैदर से बढ़कर सेनापति तो नहीं हुआ पर उसे उन्होंने हरा दिया। टीपू से बढ़कर साहसी तो नहीं, पर वह भी उनका मुकाबला नहीं कर सका। उनका मुकाबला करके हम एक के बाद एक राज्य हारते चले जा रहे हैं। हमारी जनता अंग्रेज़ों की प्रजा बन गयी है। आप शूरवीर हैं, आपकी प्रजा आपके साथ लड़ भी सकती है। पर यह बात बहुत दिन नहीं चल सकती। दो चार साल में अंग्रेज सेना इस प्रदेश को इस कोने से उस कोने तक पदाक्रान्त कर डालेगी। हैदर की सेना ने भी ऐसे ही एक दिन इस प्रदेश को इसी तरह नापा था। जनता ने असहनीय कष्ट उठाया था। आपके दादा को राज्य से हाथ धोकर क़ैद काटनी पड़ी। हो सकता है आप अंग्रेज़ों से हारें नहीं पर सर्दैव उनसे बचने को चौकन्ना रहना पड़ेगा। हमारे यहाँ ऐसे विरोध को बलबद्ध विरोध कहते हैं। आपको ऐसा विरोध नहीं रखना चाहिए हमारी आपसे यही प्रार्थना है। हमारी इच्छा यही है कि आपकी गद्दी स्थिर रहे।"

वीरराज: "यह हमारे पक्ष की बात है क्या? शत्रु की बड़ाई करके हमें छोटा बताकर तुम हमारे ही बने रहोगे? तुम तो टुकड़ा खिलानेवाले के हाथ को चाटते हो और हम पर भी भौंकते हो। तुम्हारे खसमों की सेना कोडग में पाँव रखेगी यह सपना तुमने कब देखा? कोडग बैंगलूर नहीं है, मंगलूर भी नहीं, जिसका जी चाहा मुँह उठाकर चला आया। आने दो तुम्हारे खसमों को, देख लेंगे। पहले तुम्हें तो छुड़ा ले जायें, कहला भेजो अपने मालिकों को।"

करुणाकर मेनन ने राजा को शान्त करने के ढंग से बात की, "सेठजी अंग्रेज़ों की बड़ाई करके आपको नीचा दिखानेवालों में नहीं हैं। वास्तव में उन्हें और मुझे बात कुछ ऐसी दिखाई पड़ती है। आपके अंग्रेज़ों के मित्र बने रहने में ही सब तरह की भलाई है। कोडग में पाँव रखना आसान नहीं, हम दस वर्ष तक भी मुकाबला कर सकते हैं। यह बात ठीक होने पर भी अनावश्यक लड़ाई क्यों? और अंग्रेज माँगते भी क्या हैं? आपकी बहिन के बच्चे को उसकी माँ के पास भेजने ही को तो कह रहे हैं। आपके कहने की देर है। यह तो आप भी चाहते हैं। आपकी बहिन और बहनोई डर से अंग्रेज़ों के पास चले गये। बच्चे को भेजकर यदि यह कहें कि डरो मत वापस आ जाओ तो वे सिर के बल आयेंगे। बच्चे को भेज देना ही आपकी दया का साक्षी है। बच्चे के मिल जाने पर बहिन और

वहनोई सोचेंगे कि राजा हमसे क्रुद्ध नहीं हैं, वह हमें अपनी छाया में लेकर हमारी रक्षा करेंगे। जब ये लोग लौट आयेंगे तो अंग्रेज़ों के साथ वैमनस्य भी समाप्त हो जायेगा।"

यह सब बातें राजा ने सुनी या नहीं, कहा नहीं जा सकता, परन्तु सब बातें समाप्त हो जाने के वाद भी कुछ देर तक वह चुप रहा, फिर उनकी ओर घूमकर वोला, "तुम्हारी हिम्मत कि तुम कोडग के राजा के साथ बराबरी से वात करो! इतना अहंकार! दूसरों के टुकड़े खाने से तुम्हें चर्वी बढ़ गयी है इसलिए तुम्हारी गर्दन उतरवा देनी चाहिए।···सिर तो नहीं उतारते पर तुम्हें बन्दी ज़रूर कर लेंगे। अब तुम्हारे मालिक जब अपनी गलती को मानें तभी तुम्हें छोड़ेंगे। अभी वह स्थिति नहीं आयी कि तुम अपने को कोडग के राजा को अपने बराबर समझो।"

वसव ने इन दोनों को, "वस वात काफ़ी हो गयी आप वाहर आ जाइये", कहकर इशारा किया। वे दोनों उसके साथ वाहर आ गये। वसव उनसे वोला, "महाराज को अंग्रेजों से चिढ़ हो गयी है। उन्हें इस वात का क्रोध है कि अंग्रेज स्वयं को मित्र बताकर शत्रुवत् व्यवहार कर रहे हैं। आप पर उन्हें कोई क्रोध नहीं। उनकी वहिन और वहनोई यहाँ आ जायें तो कोई झगड़ा नहीं। उन्हें यहाँ भेजने के लिए आप अपने मालिकों को एक पत्र लिखिये। यह मैं उनके पास भिजवा देता हूँ।"

प्रतिनिधियों को मन में यह वात अच्छी तरह पता थी कि राजा की वहिन तथा चेन्नवसवय्या का लौट आना इतना आसान नहीं। यदि राजा यह कहे कि जब तक वे नहीं आते आप नहीं जा सकते तो इनकी दशा कितनी ख़राब होगी यह भी इन्हें पता था। वीरराज दुराग्राही और दुराहंकारी व्यक्ति है। अंग्रेज़ों पर गुस्सा उतारने के लिए उनका सिर भी कटवाना चाहे तो कटवा सकता है। अब यहाँ से कैसे छूटकर जाया जा सकता है? यह उनके सोचने की वात थी।

एक क्षण भर वाद मेनन ने वसव से पूछा, "इस वारे में क्या हम आपके साथी मन्त्रियों से कुछ वात कर सकते हैं?" वसव ने कहा, "इसमें कोई वाधा ं। पर वे इस वारे में कुछ भी कर नहीं सकते। यह राजा की विलकुल त वात है। उनकी वहिन और वहनोई की वात में दूसरे क्या कर सकते

मेनन में सलाह की और फिर वसव से वोला, "अच्छी करते हुए हम अपने मालिकों को पत्र लिखे देते प्रवन्ध कीजिए। जवाव आने तक हम यहीं अपना पत्र राजा को दिखाना होगा।" मेनन

इस बीच देश के लोगों का मन राजा के बारे में बिलकुल बिगड़ गया था। ऐसी बात न थी कि देवम्माजी तथा चेन्नबसवय्या को जनता बहुत प्यार करती थी, पर जनता को पता था कि राजा का व्यवहार देवम्माजी से अच्छा नहीं। त्योहार में खेले गये नाटकों में राजा का जो मज़ाक उड़ा उसमें कुछ लोग सन्तुष्ट थे और कुछ को यह बात पसन्द नहीं आयी। परन्तु चेन्नबसवय्या और देवम्माजी के महल पर पहरा लगाकर उन्हें नज़रबन्दियों के रूप में रखना किसी को पसन्द नहीं था। इसके इस अन्याय के कारण ही देवम्माजी तथा चेन्नबसवय्या को छिपकर भागना पड़ा। उनका देश छोड़कर भाग जाना न्यायसंगत था। उनके दुर्भाग्य से बच्चा रास्ते में गिरकर इस मामा के हाथ पड़ गया। उसे बहिन के पास न भेजकर इसने उसे बन्धक के रूप में रख छोड़ा है। यह राजा कभी भी ठीक रास्ते पर नहीं चला पर यह तो इसने पहले से ज़्यादा अन्याय कर डाला। यह क्या इसका कसाईपन? अपने अन्नदाता मालिक और मालकिन के प्रति वफ़ादार रहनेवाले चोमा को इसने सूली पर चढ़ा दिया! वह सूली चढ़ाना भी कैसा? सूली लाकर गाड़ने तक भी रोक नहीं सका अपने को! वहीं पर एक तना कटवाकर नुकीला कराकर उसके प्राण ले लिये! तीन दिन तक उसी सूली पर उसके शव को सड़ाने की आज्ञा दी। ऐसे भले आदमी का मांस चील तथा कौवों ने नोचकर अपना पेट भरा। उसका अपने स्वामी के प्रति वफ़ादार रहना यदि अपराध था, तो सेवक इसके साथ कैसे वफ़ादार रह सकते हैं? इसका राजत्व दिन-पर-दिन खराब होता जा रहा है। इससे तो यह किसी तरह समाप्त ही हो जाये तो अच्छा है।

जनता में ऐसी भावना कैसे जन्म लेती है और कैसे फैलती है, यह वर्णन करना संभव नहीं। इस प्रसंग में चोमा की पत्नी और उसकी बहिन जनता में असन्तोष फैलाने में सहायक हुईं। चोमा के सूली पर चढ़ने की बात सुनते ही वे उस जगह दौड़ी गयी, उसके लिए वे छाती पीटने और बिलखने लगीं। 'उसे सूली चढ़ानेवालों का कुछ न रहे, सत्यानाश हो जाये' कहकर गालियाँ देने लगीं। वहाँ पहरे पर खड़े हुए सिपाहियों ने कहा, "यहाँ मत आओ, यहाँ से हट जाओ। देश छोड़कर चली जाओ। सूली पर किसने चढ़ाया है, महाराज ने ही तो। उनके सत्यानाश होने की बात कहती हो! सिर उतरवा लेंगे।" वे बोलीं, "ऐसा शूर भाई और पति चला गया, हम चली जायेंगी तो क्या हो जायेगा! बुला लो अपने पिशाच मालिक को, हमारी गर्दन काटकर हमारा भी खून पी लें।"

वे तीन दिन तक वहीं पड़ी रहकर शव को चील-कौओं से बचाने का प्रयास

करती रहीं और बचे-खुचे शव को लेकर दफ़ना आयीं[1]। उसके सारे संस्कार पूरे करके वे दोनों महल के सामने आकर, "तुम्हारा बेड़ा गर्क हो, मेरे पति को खा लिया, मेरे भाई को खा लिया, माँ करिंगाली तुझे भी इसी तरह सूली पर चढ़ाये, भूतप्पा तेरा वंश नाश कर दे। धरती पर तेरा नाम न रहे, सत्यानाशी," कहकर राजा को निर्भय हो गालियाँ देने लगीं। पहले राजा यह समझ न पाया। समझने पर आज्ञा दी, "इन रांडों को भी सूली पर चढ़ा दो।" नौकरों ने जाकर उन्हें दो-दो थप्पड़ लगाकर भगा दिया। वे जी भर राजा को गालियाँ देतीं, उसके वंश को शाप देती हुई, "माँ करिंगाली इसकी दशा कुत्ते से बदतर करना" कहती सारे मडकेरी में घूमती फिरीं।

इनके राजमहल के सामने रोने बिलखने पर उनका दुख देखकर रानी गौरम्मा को दुख तो हुआ, साथ ही उनके शापों से डर भी लगा। उसे लगा राजा का चोमा को मरवाना उचित न था। ज्यादा-से-ज्यादा उसे क़ैद में रखा जा सकता था, पीटा जा सकता था। यह सब न करके उसी समय उसकी जान लेना अपने आप कसाइयों की तरह सूली तैयार करवाकर और चोमा को वहीं सूली पर चढ़ाना यह सब बातें अति हो गयीं। राजा के ऐसा करने पर यह स्त्रियाँ बिना शाप दिये और कलपे रह सकती हैं? न जाने इन पर भी कोई अत्याचार न हो जाये सोचकर रानी तनिक डरी। भगवान की दया से ऐसा कुछ न हुआ। वे रोती पीटती वहाँ से चली गयीं। रानी ने चुपके से एक गुरिकार को बुलाकर आज्ञा दी, "ये स्त्रियाँ हमारी वजह से दुख का शिकार हुई हैं। उन्हें पता न चले कि हमारी आज्ञा है। उन्हें बुलाकर खाना खिलाओ और ढाढस देकर भेजो।" उसने यह सोचा, "कि इस धर्मात्मा स्त्री के कारण ही यह अभी टिका है।" बाद में अपने आदमियों को बुलाकर गुप्त रूप से इस बात का प्रबन्ध कराया। शाम को आकर उसने रानी को यह सूचना दी कि वे स्त्रियाँ शहर छोड़कर चली गयीं। अब चिन्ता की कोई बात नहीं।

छोटे दीक्षित तथा लक्ष्मीनारायण के भतीजे सूरी ने उन्हें अपने लोगों के द्वारा सुझाया कि उन्हें बैंगलूर जाकर गोरे साहबों के सामने शिकायत करनी चाहिए। उन स्त्रियों को यह जँच गयी और वे अरकलगूड जा पहुँचीं। वहाँ से रास्ता पूछती-पाछती बैंगलूर पहुँच गयीं। रेजिडेण्ड के निवास के सामने खड़े होकर छाती पीटने लगीं। सेवकों के पूछने पर उन्हें अपना परिचय दिया।

चेन्नबसवय्या ने अपनी कहानी बताकर सहायता माँगते समय चोमा का क्या हुआ यह विशेष रूप से नहीं बताया था। वह सब वृत्तान्त रेजिडेण्ट को तब पता चला जब चोमा की पत्नी तथा बहिन ने रो-रोकर बताया। उनकी सारी बातें सुनकर रेजिडेण्ट केवल राजा पर ही नहीं, चेन्नबसवय्या पर भी बहुत बिगड़ा। फिर उन

---

1. दक्षिण में कुछ हिन्दू भी शव को दफ़नाते हैं।

स्त्रियों से बोला, "आप पर अन्याय हुआ है। हम आपके महाराज से इस बारे में पूछताछ करेंगे। तब तक आप लोग अगर यहाँ रहना चाहती हैं तो रहिये। हम आपकी देखभाल करेंगे।" और उनकी देखभाल करने का प्रबन्ध किया। दुबारा जब चेन्नबसवय्या उससे मिलने गया तब उन स्त्रियों के आने की बात बता उनके बारे में उसके द्वारा सही ढंग से बात न बताने का उसको उलाहना दिया।

125

"हम बच्चे को नहीं भेज रहे और साथ में आपके द्वारा भेजे गये प्रतिनिधियों को हमने यहीं रोक लिया है। आप हमारे बहिन-बहनोई को यहाँ भेज दीजिये। उनके यहाँ पहुँचते ही हम आपके आदमियों को लौटा देंगे।" इस आशय का वीरराज द्वारा भेजा गया पत्र जब बैंगलूर पहुँचा तो रेजिडेण्ट कैसमाइजर, सेनाध्यक्ष फ्रेसर तथा नागपुर के रेजिडेण्ट ग्राहम महोदय ने उस पत्र के बारे में विचार-विमर्श किया। पहले उन्होंने सोचा कि ग्राहम को मडकेरी जाकर बच्चे और प्रतिनिधियों को छुड़ा लाना चाहिए। ग्राहम मडकेरी जाने को तैयार था। उसे वहाँ किसी प्रकार का खतरा न हो इसलिए काफी सारे आदमियों को ले जाने की बात हुई और उसके साथ फ्रेसर स्वयं जाने को तैयार हुआ। परन्तु यह बात कैसमाइजर को जँची नहीं।

उसने पूछा, "यदि वीरराज दारा सेठ और मेनन की भाँति ग्राहम को रोक ले तो क्या किया जायेगा! इस राजा का हठ पागलपन की सीमा तक पहुँच गया है। यह वास्तव में हमसे झगड़ा करके रह सकेगा क्या? फिर भी वह अपने को बहुत बलशाली और हमें कमजोर समझकर बात कर रहा है। ग्राहम को कैद करके वह अगर हमारा अपमान करे तो हमें कोडग पर चढ़ाई करनी ही पड़ेगी। यदि वह उन्माद में ग्राहम को कत्ल कर ही डाले तो क्या होगा? इस सन्देह को भी अवकाश देने को मैं तैयार नहीं।"

इस प्रकार के साथ-ही-साथ उसके मन में एक और भी बात थी जिसे उसने विस्तार में नहीं बताया। मान लीजिये ग्राहम जायें और राजा उनकी बात मान लेता है तो झगड़ा समाप्त हो जायेगा। कल फिर उसके साथ संघर्ष ही है। हर बार ग्राहम को बुला पाना संभव है क्या? पुरानी मित्रता कुछ भी रही हो, पर अब राजा बिलकुल ही गलत रास्ते पर चल पड़ा है। इसको पदच्युत करने का यही समय है, इसे क्यों खोया जाये? इतिहास आगे बढ़े और कोडग हमारा हो जाये।"

इस मन्त्रणा के अनुसार यह निश्चित हुआ कि कोडग पर चढ़ाई करने के लिए सभी प्रकार की तैयारियाँ कर लेनी चाहिए।

इसी समय अप्पाजी रेजिडेण्ट के पास आया और उसने पहले चीफ़ कमिश्नर

ने जो प्रार्थना की थी उसे दोहराया। रेजिडेण्ट ने पुराने गुमनाम पत्रों को उठाकर देखा और पूछा, "आप कोडग का राजा बनना चाहते हैं पर आपने यहाँ लिखा है कि इस बात पर आप ज़ोर नहीं देंगे।" अप्पाजी ने उत्तर दिया, "यह बात सत्य है, हमने वचन दिया है कि हम गद्दी पर नहीं बैठेंगे। हम उस वचन को तोड़ नहीं सकते। इस राजा को गद्दी से हटा दें तो हमारा पुत्र वीरप्पा राज्य का अधिकारी हो सकता है। राज्य उसे मिलना चाहिए।"

"राजा की बेटी ? आपके पुत्र से अधिक अधिकारिणी नहीं क्या ?"

"राजा की बेटी क्या, हमारी बेटी क्या ? यदि वह बैठे तो भी ठीक है।"

"लोगों का क्या विचार है ?"

"यह पता लगाया जा सकता है।"

"आप हमारा साथ देंगे ? यदि इस झगड़े में अपनी शक्ति के अनुसार सहायता करें तो आपकी प्रार्थना को भरसक पूरा करने का प्रयास किया जायेगा।"

"अच्छी बात है।"

"आपकी यह सारी बातें चेन्नवसवय्या तथा देवम्माजी को बतायी जा सकती हैं ?"

"बताने में कोई दोष नहीं, पर फिर भी चार दिन रुकना अच्छा ही रहेगा।"

"ठीक है, यह निश्चय होने के बाद हमें क्या करना है हम आपको बतायेंगे, तब तक आप हमारे यहाँ ठहरिये।" यह कहकर रेजीडेण्ट ने अप्पाजी को बैंगलूर में रोक लिया। वह बचकर भागने न पाये इसके लिए पहरे का भी प्रबन्ध किया गया। इसी प्रकार देवम्माजी तथा चेन्नवसवय्या भी बिना उसके जाने बैंगलूर छोड़ने न पायें। इसके लिए भी पहरे का बन्दोबस्त किया।

उसने मद्रास के गवर्नर को एक पत्र में लिखा, "कोडग पर पन्द्रह दिन के भीतर चढ़ाई का प्रबन्ध किया है। चारों ओर से हमारे आदमी उस प्रान्त में घुसेंगे। मलाबार और मंगलूर के कलेक्टरों को पत्र भेज दिये हैं। कृपया आप भी उन्हें आज्ञा भेज दें।"

इस बीच मेनन का लिखा पत्र भी मिला। इससे और भी स्पष्ट हो गया कि कोडग पर चढ़ाई करने के सिवा और कोई रास्ता नहीं।

पन्द्रह दिन बीत गये। मद्रास और बैंगलूर से जवाब आ गये। इस बीच पर्याप्त संख्या में अंग्रेज़ों के भेजे चौकीदारों ने चारों ओर पहले से जाकर रास्ते में पड़नेवाले गाँवों के मुखियों को बताया कि सेना आ रही है, उसके लिए आवश्यक सभी सुविधाएँ देनी होंगी।

इस बीच मद्रास के दौरे पर आये गवर्नर जनरल बैंटिक ने वीरराज को नसीहत व चेतावनी भरा एक पत्र भेजा। वीरराज उसे पाकर और क्रुद्ध हुआ और एक विज्ञापन निकाला, "अंग्रेज़ विधर्मी हैं, परदेशी हैं, इन्हें हमारे भारत से भगा

देना चाहिए। उनके विरुद्ध विद्रोह करो।"

फाल्गुन मास के पहले सप्ताह में सेनापति फ्रेसर ने सेना की तीन टुकड़ियों को तीन नायकों के हाथ में देकर तीन ओर रवाना किया और स्वयं उप-सेनापति लिंडसे के साथ एक टुकड़ी को लेकर श्रीरंगपट्टण होते हुए पिरियापट्टन को रवाना हो गया।

126

जिस दिन बच्चा राजा के हाथ पड़ा और राजमहल लाया गया उसे अपने अधिकार में लेने के बाद रानी को ऐसा लगा मानो किसी विचित्र नाटक में वह अनिच्छा से एक कठपुतली की भाँति भाग ले रही हो।

यह सच है कि देवम्माजी जब क़ैद में थी और उसके पति को उससे मिलने के लिए इसकी ही स्वीकृति थी। इसका एकमात्र उद्देश्य राजा की क्रूरता को अपनी ओर से यथासम्भव कम करके ननद पर दया करना था। उसका यह उद्देश्य अब उसकी बेबसी से इस सारे घोटाले का कारण बन गया। "वे माँ-बाप बच्चे को बचाने की गरज से ही घर छोड़कर भागे थे पर केवल वे भाग ही सके। बच्चा खतरे से बच नहीं सका। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप बच्चा और अधिक खतरे में फँस गया। अब यह मेरे हाथ में आ गया है, अब मुझे इसकी रक्षा करनी है। करना संभव है? अब तक यह स्पष्ट हो गया है कि हम से भी बड़ी कोई शक्ति काम कर रही है। अगर आगे भी ऐसा ही रहा तो? हे ओंकार, हे अम्बा आप सब के दाता हैं। सब ग्रह आपके इशारे पर चलते हैं। इस बच्चे पर आपकी कृपा रहे। हम पर आपकी कृपा रहे। राजा पर कृपा रहे। उनसे इस बच्चे को कोई हानि न पहुँचे, यह एक-मात्र अनुग्रह करके इस घर की रक्षा करो। इस प्रकार रानी ने दीनभाव से भगवान से प्रार्थना की और यह निश्चय किया कि अधिक-से-अधिक सतर्कता से बच्चे की रक्षा करेगी।

बच्चा तो रनिवास में हँसता-हँसता बढ़ रहा था। जिस दिन वह आया उस दिन भी ऐसा नहीं लगा कि माँ के न होने से परेशान है। सम्भवतया राजघराने का बच्चा होने के कारण। गरीबों के घर में बच्चे के लिए माँ ही सब कुछ होती है और माँ के लिए बच्चा सर्वस्व होता है। अमीरों के घर में बच्चे का आधार माँ नहीं धाय है। अप्पगोल के महल में बच्चा तीन दासियों के हाथ में पल रहा था। यहाँ दूसरी तीनों के हाथों में पलने लगा, उसके लिए मडकेरी अप्पगोल ही था। उसकी नन्ही आँखें अपनी माँ के मुख को न पाकर यदि थोड़ा दुख मानती हों तो यहाँ वैसा ही एक मुख आकर उसे हँसा कर तृप्त कर देता था। देवम्माजी के स्थान

को राजकुमारी ने ले लिया था। उसने देवम्माजी से भी बढ़कर उसे प्यार दिया और खिलाया।

रनिवास में एक बच्चे को खेलते बहुत वर्ष हो गये थे। एक बच्चा जब असहाय स्वर में रोता है तो पूरा घर ही एक कोमल भाव से भर जाता है, इन्हीं अर्थों में आदमी का जैसा एक व्यक्तित्व होता है उसी प्रकार घर का अपना ही एक व्यक्तित्व होता है। वह बच्चे की हँसी से प्रसन्न होता है और उसके रुदन से दुख से भर जाता है। केवल बड़ी उमरवाले लोगों के रहनेवाले राजभवन में और साधारण घरों में कोई अन्तर नहीं होता। बहुत दिन बाद इस बच्चे के आगमन से राजमहल एक नवीन चेतना से भर उठा था। वयस्क लोगों के घर में दासियाँ मालकिन के पास कभी बिना बुलाये नहीं आतीं, बुलाते ही खी-खी करती आ नहीं सकतीं। मालकिन भी बिना काम के पुकारती नहीं। बुलाने पर भी चेटी के आने पर हलकेपन से बात नहीं कर सकती। इनके बीच एक नन्हें से जीव के आ जाने से सारा जीवन ही बदल गया था। बिना किसी बात से चेटी बच्चे के पास आकर बैठ सकती थी, हँस सकती थी। उसको खिलाने के बहाने आप भी हँस-खेल सकती थी। इसी प्रकार मालकिन भी मालकिनपन का मुखौटा उतारकर एक स्त्री मात्र बनकर बच्चे से खेल सकती थी। एक माँ प्रसव वेदना सहकर जिस शिशु को जन्म देती है वह सौ जीवों के मन में मातृत्व जगा देता है। वह अपने खेल से चारों ओर चेतना भर देता है। बहुत दिनों से जो सुख मडकेरी का राजभवन भूल गया था देवम्माजी के इस बालक के आने के बाद उसने फिर से वह सौभाग्य पा लिया था।

एकमात्र राजा को ही इसमें कोई सुख नहीं मिला। रनिवास के भीतरी भाग में जब कोई इस बालक को खिलाता तब उसकी आवाज़ राजा की बैठक या कमरे में सुनाई नहीं पड़ती। कभी-कभी चेटी बालक को खिलाती हुई पिछवाड़े ले आती और बिना उद्देश्य उसके खिलाने की आवाज़ राजा के कानों में पड़ जाती तो वह बेहद चिढ़ जाता। चौबीस घण्टों में वह एक पल-भर को भी देवम्माजी और चेन्नबसवय्या को न भूलता। उसे कभी भी यह ध्यान न आता कि उसने भी उनकी कुछ बुराई की है, परन्तु उन्होंने जो गलतियाँ उसके प्रति की थीं वही उसे दिखाई पड़तीं। वह उन प्रत्येक पर विचार करता और सोच-सोचकर गुस्से में बौखला जाता—"हरामजादे ने यहाँ रहकर मुझे जो हानि पहुँचायी वह काफी नहीं थी? अब दुश्मनों को बढ़ावा देने गये हैं। अच्छी बात है। इन्हें ठीक करूँगा। हरामजादे हमेशा भगवान का नाम लेते हैं! तुम्हारे भगवान ने ही तुम्हारे बच्चे को मेरे हाथों में पहुँचा दिया है। तुम आ गये तो तुम्हारा सिर जायेगा, नहीं तो तुम्हारे बेटे का। तुम अगर बच गये तो तुम्हारा कर्ज़ा तुम्हारा बेटा चुकायेगा। मेरे कुत्तों की दावत होगी। हरामजादो! कुत्ते कहीं के! आस्तीन के साँप कहीं के! निपूतों की औलाद! तुम या तुम्हारा बच्चा मरकर ही तुम्हारा कर्ज़ा उतारेगा," वह सोचता। और

वह बच्चे की किलकारी को न सह पाकर कमरे में घुस जाता।

राजमहल, राजा और बच्चे के मंगल के लिए रानी ने दीक्षित से प्रतिदिन पूजा करायी। दीक्षित को बुलाकर पूछा कि और क्या किया जाना चाहिए? वह काफी समय तक चुप ही रहा। फिर बोला, "जो कुछ मुझे पता है वह तो मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूँ, माँ।" यमदंष्ट्र एक तरफ है और अमृतहस्त एक तरफ है। ओंकार की कृपा हो तो अमृतहस्त जीतता है तब बच्चे को कोई डर नहीं। आपका पुण्य क्या इतना भी नहीं कि अमृत की विजय हो जाये? आपकी आज्ञानुसार पूजा चल रही है और कुछ करने की आवश्यकता मुझे दिखाई नहीं देती। भगवान से प्रतिदिन प्रार्थना की जा रही है कि हमें सीधे ढंग से ले चले। आगे भी यही रास्ता है।" ...वह कुछ कहते-कहते रुक गया।

रानी बोली, "और क्या है, आज्ञा दीजिए।"

"और कोई बात नहीं।"

"ऐसे नहीं, जो मन में हो बता दीजिए। हो सके तो करेंगे।"

"मैं बता नहीं सकता। महाराज के पाँव पकड़कर, उनकी मिन्नत करके यदि बच्चे को उसके माँ-बाप के पास भेज दिया जाये तो कितना अच्छा हो। पर महाराज यह बात मानेंगे नहीं। यत्न किया जा सकता है, विफल हो जायेगा, इसलिए मैंने यह कहा नहीं।"

रानी ने कुछ उत्तर न दिया। दीक्षित की बात सच थी। इसलिए इस बात का कोई जवाब नहीं था। सो वह चुप ही रही।

127

दिन बीते, सप्ताह बीते, बेंगलूर से मंगलूर तथा दूसरे स्थानों से पत्र आये और वहाँ पत्र भी गये। इन पत्रों का विषय एक मात्र राजा, बसव तथा एक विश्वासनीय लिपिक को पता था। बाकी किसी को भी क्या चल रहा है यह पता न था।

"अपने पेट के पैदा हुए बच्चे को अकल्पनीय संकट में छोड़कर देवम्माजी दूर नहीं रह सकती थीं। किसी-न-किसी तरह से पति को समझाकर, हो सके तो उसे साथ लेकर या नहीं तो उसे छोड़कर वह अकेली लौट आयेगी।" रानी के मन में यह एक आशातन्तु अटका हुआ था। बाहर से आये हुए राज-प्रतिनिधियों को कैद कर लिया गया है और राजा ने उनके बच्चे को बन्धक के रूप में रख रखा है। रानी को जब पता चला तो उसने सोचा इस विवाद के इतना आगे बढ जाने देने के बाद वे लोग अब यहाँ नहीं आ सकते। वह बच्चे के प्रति बहुत दुखी हुई। उसने दीक्षित के बताने के अनुसार राजा से मिन्नत करने की बात सोची।

जव रानी को इस वात का पता चला कि राजा ने प्रतिनिधियों को क़ैद कर लिया और वच्चा वन्धक हो गया है तभी सारे शहर को भी पता चल गया और राज्य-भर में वात फैल गयी। सवको लगा कि जैसे संधिकाल आ पहुँचा।

सवके मन में एक ही वात थी कि राजा अपने हठ से यदि अंग्रेज़ों के मुक़ावले खड़ा हो जाये तो उनका सेना लेकर आना पक्का है। यदि उन्होंने ऐसा किया तो राजा उस वालक और राज-प्रतिनिधियों को ख़त्म भी कर सकता है। वाहर के लोगों के आने से देश में अव्यवस्था फैलेगी। वात यह नहीं कि अभी व्यवस्था अच्छी है वल्कि अभी मडकेरी में राजमहल और उसके चारों ओर जो कुछ घटित हुआ वह सव एक सीमा में ही है। अभी देश में एक व्यवस्था तो है। वाहर के लोगों के आने पर अव्यवस्था फैलेगी, उसमें कोई अपने घर में भी निश्चिन्त नहीं रह पायेगा।

यह तो ठीक है पर इसे रोकने के लिए कौन क्या कर सकता है? ऐसे अवसरों पर जीवन-विधाता का लिखा एक नाटक-सा वन जाता है। और नाटक भी कैसा जिसे मानो कवि ने लिखकर पूरा करके खेलने के लिए दे दिया हो, नट उसे मात्र खेल सकता है, वदल नहीं सकता। इसी को पूर्वजों ने विधि का विधान कहा है। जंगल के वीच राजमार्ग पर चलता हुआ रथ सामने शेर आ जाने से जंगल में घुस नहीं सकता, रास्ते पर ही चलता है। जीवन का प्रवाह भी इसी तरह है। रथ और जीवन में एक ही अन्तर है। शेर से डरकर रथ जहाँ-का-तहाँ रुक सकता है, जीवन के हाथ में पड़नेवाले को यह सौभाग्य भी प्राप्त नहीं। अनेक लोगों को यह महसूस हुआ कि जो वातें हुई हैं उनसे न केवल वच्चे को और राज-प्रतिनिधियों को ख़तरा है अपितु राजा को भी इससे ख़तरा है। इनमें उत्तय्या तक्क भी था। वह मडकेरी में गुण्डों की मार से वचकर एक दिन वोपण्णा के घर रहकर गाँव वापस चला आया था।

वाद में सव वातें एक-एक करके उसके कान में पहुँचीं। राज-प्रतिनिधियों को कैद किये जाने की वात सुनने पर उसे अपने मित्र लिंगराज की याद आ गयी। यह सोचकर कि यह लड़का माने या न माने मैं अपनी ओर से जो कुछ कहना है कह ही दूँगा। उसे थोड़ी नसीहत देने के इरादे से वह मडकेरी आया।

उस दिन रानी वेटी को पास वुलाकर वोली, "विटिया तुमसे एक वात कहती हूँ, तुम उसे पिताजी से कह देना।"

"क्या वात है, अम्माजी?"

"मुन्ने को माँ से अलग होकर वहुत दिन हो गये हैं। उसे उनके पास भेज दीजिए कहना।"

"अम्माजी, मुन्ने को हमारे पास ही रहने दीजिए।"

"ठीक है विटिया, पर उसकी माँ यहाँ होती तो वह रह सकता था। माँ के हाथ से छुड़ा हमें उसे यहाँ नहीं रखना चाहिए। मुझसे छुड़ाकर यदि तुम्हें कोई ले गया होता तो?"

राजकुमारी ने थोड़ा सोचा। रानी को छोड़ वह और उसे छोड़कर रानी रह सकती है क्या? यह बात उसे समझ में नहीं आयी। वह बोली, "पिताजी से कहूँगी, अम्माजी।"

वीरराज दोपहर के खाने का झंझट निबटाकर पलँग पर पाँव फैलाये लेटा था कि बेटी उसके पास आयी। पलँग के पास घुटनों के बल बैठकर पिता की छाती पर सिर रखकर बोली, "पिताजी।"

वीरराज को जीवन में एक ही सुख था। बेटी के पिताजी पुकारने पर उसकी छाती प्रसन्नता से फूल उठती थी। अपनी इसी बच्ची का वे लोग अनिष्ट करना चाहते हैं यही सोचकर वह अपने बहिन और बहनोई से द्वेष करने लगा था। उसे डर था कि ये लोग लड़की होने के कारण उसकी बेटी छोड़कर बहिन के लड़के को राजा न बना दें। इसी कारण उसे बहिन के बच्चे को देखकर बेहद ईर्ष्या होती थी। बहिन और बहनोई अप्पगोल से यदि न भी भागते तो भी जब ईर्ष्या अधिक हो उठती तो उस समय वीरराज भांजे का गला घोटने से बाज न आता।

बेटी के पास आकर छाती पर सिर रखकर पिताजी पुकारने पर उसे असीम आनन्द हुआ।

"पिताजी, मुन्ना कितना अच्छा खेलता है देखिये तो।"

"हूँ।"

"माँ को बिना देखे वह रोता है। उसे बुआजी के पास भेज दें।"

राजकुमारी ने अभी अपनी बात पूरी नहीं की थी, वीरराज गेंद की भाँति उछलकर खड़ा हो गया। बेटी को दूर धकेल दिया, "यह बात किसने सिखायी तुझे, उस हरामजादी ने सिखाया होगा? तेरी माँ ने। चल, चल बाहर।" कहकर गरजा और बेटी को मारने के लिए हाथ उठाया।

रानी दरवाजे के बाहर खड़ी थी। पति की गरज सुनकर तेजी से भीतर आयी और बेटी को खींचकर छाती से लगाकर बाहर आ गयी और उसे बैठक से होती हुई रनिवास ले गयी।

पिता के गरजने से राजकुमारी हक्की-बक्की रह गयी। इस प्रकार उसने कभी भी उसे नहीं डाँटा था। हमेशा स्नेह दिखानेवाले पिता को उसने दूसरों पर ही बरसते देखा था। आज वह उस पर 'चल' कहकर गरजा तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ। एक क्षण बाद, जब उसे बात समझ में आयी तो भय और आश्चर्य से उसके हाथ-पैर सुन्न हो गये। दूर धकेलकर हाथ उठाकर मारने आये पिता से बचने की जगह वह खम्भे के समान खड़ी रह गयी। पहले क्षण में उसके मुख पर आये भय और आश्चर्य भाव ऐसे लग रहे थे मानो किसी चित्र के मुख पर चिपके हुए हों। रानी आकर यदि उसे खींच न ले जाती तो हो सकता है राजा उस पर हाथ चला ही बैठता, यही खैरियत रही कि ऐसा नहीं हुआ। माँ के खींचकर ले आते समय

उसने पिता की क्रूरता अनुभव की, अपने पिता के हाथों इस प्रकार अपमानित होने से उसका दिल मसोस उठा। इससे पूर्व कभी भी ऐसा दुख न अनुभव करने के कारण वह सिसकियाँ भर-भरकर रोयी। मृत्यु का अर्थ न जाननेवाली इस लड़की ने भी सोचा कि अब जीना ही नहीं चाहिए।

वीरराज को पता न था कि उसके इस क्रोध से बेटी को इतनी यातना होगी। आदमी का स्वभाव भी जंगल में से जानेवाला राजमार्ग है। यह सोचना व्यर्थ है कि वीरराज इसके अतिरिक्त किसी और ढंग से चल सकता था। राजा के मन में इस समय एक ही बात थी, "मैं यह सब इस बच्ची के कारण ही तो कर रहा हूँ। यह आकर मुझे ही अक़्ल सिखा रही है! इसकी भलाई को भूलकर इसकी माँ इसके वारिस को फ़ायदा पहुँचाने की कोशिश कर रही है। मैं तो समझता हूँ, पर यह इस बेवकूफ बच्ची की समझ में आयेगी?"

128

उत्तय्या तक्क यह न जानते हुए कि महल में ऐसी घटना हुई है, राजा से मिलने आया। चलने से पूर्व उसने बोपण्णा को बताया कि वह किस कार्य से जा रहा है, तो वह बोला, "भूसा कूटने जा रहे हैं। कूटनेवाले हाथों को ही थकान होगी। हो आइये।"

तक्क राजा की बैठक तक आकर द्वार पर बैठे नौकर से बोला, "तक्क आये हैं यह राजा को ख़बर कर दो भैया।"

"आज नहीं तक्कजी यदि आप कल आयें तो अच्छा रहेगा।" नौकर ने कहा।

तक्क कुछ सोचकर बोला, "ऐसी क्या बात है?"

"महाराज का मन आज ठीक नहीं है।"

"बसवय्या नहीं है क्या?"

"हैं तक्कजी, थोड़ा देर बैठिये आते होंगे।"

तब तक बसव आ गया, तक्क को देखकर पूछा, "कैसे कष्ट किया तक्कजी?"

"महाराज से मिलने के लिए आया था। कुछ बात करनी थी।"

"क्या बात है? बतायें तो सूचित करूँगा। मिलने को तैयार हैं कि नहीं पूछ लेता हूँ।"

कोई और समय होता तो तक्क इसे बतानेवाला न था। अब बूढ़े को इसकी सहायता की आवश्यकता थी इसलिए वह अपने स्वभाव के विरुद्ध शान्ति से बोला, "राजा अपने भांजे को अपनी बहिन के पास भेज दें। मुझे ऐसा लगता है कि यह कहने के लिए लिंगराज की आत्मा मुझे प्रेरित कर रही है।"

की भी इच्छा थी कि तक्क यह बात राजा से कहे। इन दिनों बसव को इस
बहुत डर हो गया था कि राजा अंग्रेजों से सस्ता मोल लेकर नष्ट हो
। यह यह कहकर "ठहरिये तक्कजी, मैं पूछकर आता हूँ," भीतर राजा के
था।
सव भीतर गया। विनयपूर्वक पास आकर खड़े होने के ढंग को देखकर
ज ने पूछा, "क्या बात है रे ?"
"उत्तय्या तक्क आये हैं। आपका दर्शन चाहते हैं।"
"बसौका हो गया, विदाई हो गयी। अभी और भी कुछ चाहिए ?"
"बहिनजी के बच्चे के बारे में बात करना चाहते हैं।"
"बच्चे को क्या करने को कहता है ? मारने को कहता है कि पालने को ?
रने को कहता है तो उसी के हाथ पकड़ा दे। पालने की बात हमसे कहने की
रूरत नहीं।"
"अंग्रेजों के चढ़ाई करने पर हमें इन लोगों की सहायता चाहिए मालिक, हर
आदमी को विरोधी बना लेने में फायदा नहीं।"
"तो क्या करने को कहता है ?"
"आपका इतना कहना ही काफी है—'आप ठीक कहते हैं देखेंगे'।"
"ऐसे तू ही कह दे। यह सब ऐसी बातें कहते हैं तो मुझे चक्कर आता है।"
"यहाँ बुलाये लाता हूँ, मालिक। वह जो कहता है सुन लीजिए। 'अच्छी बात
है देखा जायेगा' कहकर आज्ञा दे दीजिए। हमारे होकर जायेंगे।"
"अच्छा बुला ला, जो बकता है बककर चला जाये।"
बसव बाहर से तक्क को लिवा लाया। राजा के कमरे में तख्तपोश पर बैठने
को संकेत कर बोला, "मालिक की तबियत ठीक नहीं। आपको जो कहना है कहिए,
सुनेंगे।"
तक्क बोला, "अच्छी बात। लिंगराज ने हमको अपना दोस्त माना, मालिक।
हम आपको और आपकी बहिन को जब गोद के बच्चे थे, तब से जानते हैं। जीवन
के अन्तिम क्षणों में आपके पिताजी ने मुझसे कहा था 'हमारे जाने के बाद तुम इस
घर से दूर मत हो जाना। समय कुसमय में बच्चों का ख्याल रखना।' हम वचन कर
सकते, आपसे दूर जा बसे। आपने भी हमें बुलाया नहीं। भगवान की पूजा रख
गयी थी तो छह महीने पूर्व भी हमने आपको कष्ट दिया था। आज की बात उठी
है, इसलिए फिर आना पड़ा। आपके पिता होते तो वे स्वयं ही बुलाते। अब व नहीं
हैं इसलिए हमें स्वयं ही कहना पड़ेगा।"
इतनी बात कहकर तक्क चुप हो गया। राजा उसकी बात सुन रहा है या नहीं
यह उसकी समझ में नहीं आया। वीरराज बसव से बोला, "बात खत्म करने इसे
कहो।" बसव ने तक्क से कहा, "कहते चलिये तक्कजी, मालिक सुन
रहे हैं।"

रहे हैं।"

तक्क : "पिता के लिए बेटे और बेटी में अन्तर नहीं होता। पोतों और दोहतों में भी फ़र्क़ नहीं होता। घर में हज़ार बातें होती रहती हैं। भाई-बहिनों में झगड़े होते हैं। पर जो भी हो, उसमें एक बड़प्पन रहना चाहिए। बच्चे भगवान का स्वरूप होते हैं। माँ पर ग़ुस्सा होने से बच्चे को दूर नहीं करना चाहिए।"

राजा कुछ भी न बोला। इसकी इतनी बातों को पी जाना देखकर बसव को आश्चर्य हुआ। उसने तक्क से कहा, "बच्चे को माँ के पास भेजने को कह रहे हैं ना?"

"हाँ भैया, मेरा यही कहना है।"

"अच्छी बात है। मालिक कहते हैं, देखेंगे।"

राजा ने कुछ भी नहीं कहा। जो बात कहनी थी कहकर तक्क उठा। बसव उसे साथ लेकर बाहर आया और बोला, "मैंने आपको बताया था कि मालिक की तबियत ठीक नहीं।" इतना कहकर उसे तसल्ली देते हुए विदा किया।

129

राजमहल में बच्चे की बात पर राजा अत्यधिक ग़ुस्से में आया, यह बात लक्ष्मी-नारायण के घर भी पहुँची। इससे पहले सावित्रम्मा महल आयी थी और रानी से बच्चे के बारे में बातचीत करके गयी थी। रानी की ही भाँति बुढ़िया की भी इच्छा बच्चे को माँ के पास भेज देने की थी। आज के काण्ड की बात सुनकर उसने यह निश्चय किया कि वह जाकर राजा से अपनी इच्छा व्यक्त करेगी।

सन्ध्या समय जब रानी गौरम्माजी बच्चे को खिला रही थी तब सावित्रम्मा आयी। उसने रानी को अपने आने का उद्देश्य बताया। रानी बोली, "अवश्य जाकर कहिये; भगवान आपकी ज़बान को यश दे। बेटी की बात तो पसन्द नहीं आयी, शायद आपकी ही बात असर कर जाये।"

बुढ़िया एक सेविका को साथ लेकर राजा के कमरे के पास पहुँची। राजा से मिलने की बात बसव से कही। वह बोला, "उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं। कल आइये, नानी।"

"कल की बात कौन जाने भैया। आ गयी हूँ मिलकर ही जाऊँगी। राजा मना नहीं करेगा। ज़रा जाकर कहो तो।"

"बात क्या है, नानी ! वह तो बताओ।"

"और दूसरी बात क्या होगी ? राजा के भांजे की ही बात है।"

"अय्यो ! वह बात ही मत उठाइये। इस समय वे आग हो रहे हैं, आग !"

"आग हो रहे हैं तो मेरा क्या जाता है? जला देंगे तो जलकर खत्म हो जाऊँगी। जा उनसे कह दे; बुला लें।"

इनकी बातें भीतर राजा को सुनाई दीं। उसने बसव से पूछा, "किससे बात कर रहा है? क्या बात है?"

बसव ने राजा के पास जाकर कहा, "सातम्मा नानी आयी हैं। बच्चे की बात करना चाहती हैं। मैंने मना कर दिया।"

"क्या कहती है? बच्चा चाहती है क्या?"

इस समय तक सावित्रम्मा कमरे में आ पहुँची थी। राजा की बात सुनकर बोली, "बच्चा चाहने की बात कहते हैं; क्या पालने की आयु रह गयी है, पुट्टप्पाजी? शरीर गठरी बन गया है। दूध सूख गया है। अब तो राजा की बेटी और बेटों के बच्चे देखने के दिन हैं। इसीमें हमारा सुख है। पैदा हुओं को अच्छी तरह पालो। बहिन के बच्चे को उसकी माँ के पास भेज दीजिये। बड़ों की बात बड़ों तक रहे। बच्चे त्रस्त क्यों हों।"

उत्तय्या तबक की बात किसी तरह सह जानेवाले वीरराज की सहनशक्ति का बाँध बुढ़िया की बात सुनकर टूट गया। वह तपाक से उठ बैठा और चिल्लाया, "धक्के देकर बाहर निकालो इस हरामखोर बूढ़ी को। एक दिन बोली मैंने इसके कान में पेशाब कर दिया था, आज इसके कान में सीसा भरवा देंगे। दफा होने को कहो इसे। मेरे पास न फटकने पाये।"

राजा ने सिर में चक्कर आने की बात कही थी। इसलिए बसव को डर लगा कि कहीं वह बेहोश न हो जायें। वह राजा के पाँव पकड़कर बोला, "मालिक, आप उठिये नहीं, लेटे रहिये। इस बात को मैं संभाल लूँगा।" इस प्रकार होशियारी से उसे समझाकर लिटा दिया और सावित्रम्मा के पास आकर हाथ जोड़कर इशारा किया कि आगे बात न करे और उसे बाहर ले आया। सावित्रम्मा को राजा के व्यवहार पर क्रोध की अपेक्षा आश्चर्य अधिक हुआ। बुढ़िया ने मन में कहा, इस राजा का मन बहुत खराब हो गया है। उसे भगवान ही ठीक करे और इसकी रक्षा करे। वह बिना कुछ कहे रनिवास आयी और सारी बात रानी को बताकर अपने घर चली गयी।

130

बुढ़िया को भेजकर बसव राजा के पास आया। राजा गुस्से में आप ही आप बातें कर रहा था। बसव के पास आकर खड़े होने पर वह बोला, "रंडी, हरामजादी कभी बड़ी थी तो क्या अब भी मेरी बड़ी है? हरजाई को दफा होने को कहो। अपने भाँजे

को हम जो चाहें करें, इसका उससे क्या मतलब ?"

वसव बोला, "नानी चली गयी, मालिक। अब जाने भी दीजिये।"

"गोरों को गुस्सा न दिलाओ—यह बात तुम हमें सिखाते हो ! वह वुड्ढा कहता है तेरा बाप चला गया उसकी जगह मैं तेरा बाप हूँ ! और यह हरामखोर कहती है कि वहिन के लड़के की रक्षा करे ! कोडग के राजा का यह बढ़िया हाल है !"

वसव समझा कि राजा गुस्से में अपने से बात किये जा रहा है। उसने कुछ भी जवाव न दिया।

"यह वच्चा किस चीज़ से बना है ? सबकी तरह हाड़-मांस से या इसे सोने से बनाया गया है ? उसके पेट में हीरे तथा जवाहरात भरे हैं ? फाड़कर दिखाना पड़ेगा कि यह भी सबकी ही तरह है।"

इसी प्रकार राजा एक-एक मिनट चुप रहकर फिर अपने-आप ही गुस्से में बड़-बड़ाये जा रहा था।

वसव थोड़ी देर तक वहीं खड़ा उसकी बातें सुनता रहा। बाद में वाहर जाकर नौकर से कहा, "ओय, महाराज की तवियत ठीक नहीं। बुला सकते हैं। पास ही रहना। किसी तरह की बात न करना। पूछें तो मुझे बुला लेना।" यह आज्ञा देकर अपने काम पर चला गया।

131

दोपहर में बेटी की बात पर चिढ़कर चिल्लाने के समय से ही वीरराज का मन अनजाने में ही विचलित हो गया था। ऐसी बातों का इलाज उसके पास एक ही था—शराव। उस दिन भी उसने कुछ ज्यादा ही शराव पी। उसके परिणामस्वरूप हमेशा से अधिक शान्ति से और निशक्ति के कारण उसने वसव की बात मानकर उत्तय्या तक्क को बिना कुछ कहे छोड़ दिया। इसके बाद फिर कुछ शराव पी। साविन्नम्मा के आने पर वह मुड़कर उठा और उसे खूब डांट-फटकार कर थक गया। इन सब बातों से उसके शरीर का ताप बढ़ गया। शरीर के ताप के साथ ही मन भी असन्तुलित हो गया।

"मेरा इस वर्ष का योग कंस का है ना ? भांजे कृष्ण ने मामा कंस को मार डाला। मैं भी भांजे के हाथ से मारा जाऊँगा यह बात दीक्षित ने कही थी।

"मैंने वहिन को कितने प्यार से रखा था। उसका पति दुष्ट है। इस वहिन ने भी उसके साथ मिलकर मुझे दुख दिया। लाचार होकर मैंने उसे जेल में रखा तो चोरी-चोरी गर्भवती हो गयी। इस बच्चे को जन्म दिया। वच्चे को रास्ते में फेंक-कर परायों की शरण में गयी। इस रांड को बिना सजा दिये छोड़ दूं तो आगे मालूम

नहीं, वे क्या करें! उन्हें दण्ड देना ही होगा। पर वे हैं ही कहाँ? वे तो नहीं हैं, उनके बदले दण्ड पाने के लिए यह बच्चा मेरे हाथ में आ गया।

"सम्बन्धियों को खत्म करके ही ताऊजी राजा बने रहे। सम्बन्धियों को बिना खत्म किये पिताजी भी राजा नहीं बन सके। राजा बनकर मैं भी कोई शान्त नहीं रह सका। ताऊजी की लड़की को खत्म करना पड़ा, विरोधी रिश्तेदारों को निर्मूल करना पड़ा।

"इस समय सैकड़ों लोगों की आँखें मुझ पर लगी हैं। मेरे बाद मेरी बेटी को ही गद्दी पर बैठना है। इसे नहीं मुझे गद्दी मिलनी चाहिए यह भगोड़ी बहिन का कहना है। बहिन का घरवाला यह हरामखोर कहता है: मेरा यह बच्चा गद्दी पर बैठेगा!

"बहिन का लड़का! मेरी बेटी के रहते इस बहिन के लड़के को गद्दी! यह बच्चा जिन्दा रहेगा तभी तो गद्दी पर बैठने की बात उठेगी···इस कीड़े को मसल डालूँगा। इसके बाप का कलेजा फूँकना है।···"

बीच-बीच में राजा उठकर एक-एक दो-दो घूँट शराब चढ़ा लेता था। शरीर का ताप और बढ़ गया। साथ ही, मन का भी। रात बढ़ने लगी। सारा राजमहल सो गया। बसव बाहर के कमरे में पहरे पर सोया। राजा को नींद नहीं आयी। झोंके आ रहे थे। उसने एक स्वप्न देखा:

उसके पास उसके पिता लिंगराज खड़े हैं। सामने भाँजा बैठा है। कोई आया। फौरन उसे पुकारा। उसके सिर से मुकुट उतारकर बच्चे के सिर पर रख दिया। ओर करके उसने देखा तो बच्चे के एक तरफ देवम्माजी और दूसरी ओर उसके पिता चेन्नबसवय्या और इनके सामने मैसूर का रेजिडेण्ट बड़ा साहब खड़ा था।

राजा को ऐसा नहीं लगा कि यह उसके मन में ही बना एक चित्र है। बल्कि उसने सोचा कि भविष्य की ही बात उसे दिखाई दे रही है। उसने निश्चय किया कि बच्चे को खत्म कर डालना है।

वह तत्काल फिर भीतर के कमरे में गया और एक अर्धचन्द्राकार छुरी निकाल लाया। फिर अपनी बैठक से रनिवास तक बिलकुल निशब्द रूप से चलता गया। दरवाजों पर नौकर ऊँघ रहे थे। उसका आना उन्हें पता नहीं चला। राजा दबे पाँव रानी के कमरे में पहुँचा। बाहर के कमरे में बेटी सोई थी। पलँग के नीचे पास ही एक दासी सोयी हुई थी। बीच के कमरे में बच्चे का पालना रखा था। इसमें बच्चा सो रहा था। पास ही दासी सोयी हुई थी। तीसरे कमरे में रानी सो रही थी।

राजा पालने के पास खड़ा हो गया। उसने बच्चे को घूरा। छुरी बाहर निकाल कर गर्दन पर रख कर दबा दी। बच्चा तनिक कसमसा कर निश्चल हो गया। छुरी को वहीं छोड़कर राजा दबे पाँव रनिवास से बाहर अपनी बैठक में लौट आया।

सब अपनी-अपनी जगह सो रहे थे या ऊँघ रहे थे। उसने सोचा, "ये लोग

ऐसे पहरा देते हैं! वह अपने कमरे में गया कुर्सी पर बैठकर पीठ लगा ली।

तब उसके मन में कुछ बेचैनी हुई। उसने आवाज़ दी, "ओय बसव है क्या रांड के ?"

132

बहिन तथा बहनोई पर द्वेष, बेटी और रानी पर आयी चिढ़ और सावित्रम्मा तथा उत्तय्या तक्क पर आये क्रोध, इन सबने मिलकर जैसे राजा के ज्वर को बढ़ाया वैसे ही उसकी आवाज़ को भी विकृत कर दिया। भांजे को मारने के लिए वह मन कड़ा करके गया था। वापस आते समय उसकी चेतना उस कृत्य के कारण धैर्यहीन होकर रह गयी। उसकी बसव को पुकारनेवाली आवाज़ बिलकुल क्षीण हो गयी थी, बसव को वह आवाज़ कुछ विकृत-सी सुनायी दी।

बात तो राजा की ही थी पर स्वर उसका-सा न था। बसव बिस्तर से खटाक से उठा। आवाज़ की विकृति से डरकर राजा के कमरे में आया।

राजा फिर बोला, "आ गया लंगड़े !"

बसव को पता था कि राजा के इस लंगड़े शब्द के प्रयोग में कोई विशेष अर्थ नहीं। बचपन से ही राजा इस मित्र को कभी गुस्से में कभी हँसी और कभी प्रेम से इसी नाम का प्रयोग करता था। उसके मुँह से इसके कानों के लिए यह शब्द अपने अर्थ खो चुका था। वह शब्द इसके लिए बसव नाम का ही प्रतिरूप था।

राजा का स्वर पहले की भाँति ही विकृत था। बसव ने पास ही धरती पर घुटने टेककर पूछा, "आ गया मालिक, आ गया। बुखार हो गया है क्या? गरमी लग रही है?"

वीरराज : "उस कीड़े को ख़त्म कर दिया रे।"

बसव इस बात का अर्थ न समझ सका। उसने सोचा कि बुखार बढ़ गया है। राजा असम्बद्ध प्रलाप कर रहा है। उसने बुखार देखने के लिए उसके माथे पर हाथ रखा। ज्वर साधारण ही था। जबान को विकृत करनेवाला ज्वर न था। उसने पूछा, "क्या कह रहे हैं मालिक, नींद आ रही है?"

"कितनी बार बुलवायेगा···भांजे को ख़त्म कर आया।"

अब तक राजा की आवाज़ सामान्य हो चुकी थी। बसव के समीप आकर बैठने से उसे कुछ धैर्य हुआ था। उसकी बात से बसव चौंक पड़ा और डरकर बोल उठा, "अय्यो मालिक!"

"क्या है रे डरपोक! इसमें 'अय्यो' की क्या बात है! जा पड़ रह।"

राजा की आवाज़ अब बिलकुल साफ़ हो गयी थी। बसव उठकर बाहर आया।

बिस्तर पर बैठ गया पर सोया नही।

वीरराज को अपनी बहिन और बहनोई पर बहुत क्रोध है। उसके लिए बच्चा बलि होगा। वह बच्चे को दुख देगा या मरवा डालेगा। बसव को यह शंका बच्चे के मिलने के दिन से ही थी। मरवाना ही चाहे तो वह यह काम उसे सौंपेगा। इस काम को कैसे निभायेगा—यह बात उसके मन में एक-दो बार उठी भी थी। अब राजा के गुस्से ने राजा को ही हत्यारा बना डाला था। बसव को पता था कि हद से बाहर के गुस्से को ही लोग चाण्डाल क्रोध कहते है। संभव है, यही इस शब्द का अर्थ होगा। क्या राजा को स्वयं इस बच्चे को मार डालना था? जो भी हो यह काम मुझे करना नही पड़ा। यह अच्छा ही हुआ।—बसव के मन के एक कोने में यह एक तरह की तसल्ली थी। यह बात नही है कि राजा यदि बच्चे को मरवा देने की आज्ञा देता तो बसव उसे पूरा करने में हिचकिचाता, पर न हिचकिचानेवाले सेवक को वह काम जब न करना पडा तो वह 'अच्छा ही हुआ' कहेगा।

पहले क्षण के इस विचार के बाद बसव के मन में यह बात उठी कि इस कुकृत्य का क्या परिणाम होगा। यह सच है कि सारे का सारा देश राजा पर थूकेगा। बच्चे को लौटा दिया जाता तो पता नही कैसा संकट आता, पर उसे मार डालने से उसमे भी अधिक संकट के आने की संभावना हो गयी। बहिन और बहनोई कभी भी सम्बन्धियों की तरह नही रहे, पर उनके कारण अब अंग्रेज मित्र नही रहे। अब यह निश्चित रूप से कह सकना कठिन है कि राजा राजा ही रह पायेगा।

मालिक ने यह काम कर डाला। अब उसे कैसे बचाया जाये? बसव को इस समय कोई रास्ता नही सूझ रहा था। उसका दिल अपने मालिक के लिए व्याकुल हो उठा। सम्भवत: उसके मन के किसी कोने में यह भी एक भाव रहा हो कि यदि राजा नष्ट हो जायेगा तो हम भी नष्ट हो जायेंगे। पर यह बात उसके मन में ही रही होगी। पर यह भावना न प्रमुख थी, न सबसे ऊपर, न सबसे पहले।

थोड़ी देर बाद बसव ने सोचा, यह बात रानी के द्वार पर जाकर उन्हे कहलवा देनी चाहिए। उसे लगा, हो सकता है बच्चा ठीक-ठाक हो, राजा ने यह बात भ्रान्तिवश कह दी हो। इतनी देर से जो बात नही सूझी थी वह समझ में आते ही उसे लगा, अगर राजा ने बच्चे को न मारा हो तो कितनी अच्छी बात होगी। यह सोचकर उसके मन को एक अकथनीय सान्त्वना-सी हुई।

133

उसी क्षण उसे रनिवास में 'अय्यो' शब्द की ध्वनि सुनायी दी।

प्रतिदिन इस समय तक बच्चा उठकर रोता था। आज रात पास सोनेवाली

दासी, जो उसकी आदत से परिचित थी, बच्चे के न उठने से सोचने लगी, 'आज कितना अच्छा सो रहा है' और सोये ही सोये पालना हिलाकर करवट बदल ली।

इसी समय रानी की भी नींद खुली। उसने दासी को आवाज़ दी, "बिस्तर गीला होगा, देखकर कपड़े बदल दे।"

दासी उठकर बैठ गयी, बच्चे को देखा, गर्दन पर छुरी की हत्थी और उसके आगे का चमकदार हिस्सा देखकर यह समझ न पायी कि क्या है! झट से उठ खड़ी हुई। क्या हुआ यह मन में कौंध गया और 'अय्यो' करके चिल्ला पड़ी।

बसव को दासी की वही आवाज़ सुनाई दी थी।

दासी की चीख़ से रानी का दिल दहल गया। वह बिस्तर से लपककर उठी। 'क्या हुआ री ?', पूछती हुई पालने के पास दौड़ी आयी।

दाई पीठ पीछे दीवाल-गीरी में रखे दिये की बत्ती को ऊँचा करके पालने के पास ले आयी। अर्धचन्द्राकार वह छुरी बच्चे की गर्दन को बींध गयी थी। पास का कपड़ा ख़ून से भीग गया था, बच्चा मर चुका था।

रानी के मन में कौंधा : यह छुरी राजा के भीतरी कमरेवाले आयुधों में से है। उन्हीं ने आकर बच्चे का ख़ून कर दिया। उसके मुँह से आवाज़ न निकली। उसे लगा मानो उसे घोर पाप ने थपेड़ा लगाया हो। इसका कौन-सा प्रायश्चित हो सकता है। पता नहीं आगे बेटी का क्या होगा ? बिजली से भी तेज़ी से यह सब विचार उसके मन में कौंध गये और उसकी बुद्धि भी जड़ित हो गयी। वह गिरने को ही थी पर अपने को संभाल कर बैठ गयी। उसने अपना माथा हाथों में थाम लिया और दुख में डूब गयी।

दासी के 'अय्यो' चिल्लाने से राजकुमारी की भी नींद टूट गयी। पास के कमरे से वह बोली, "क्या है क्यों चिल्ला रही हो ? सपना देखा है क्या ?" एक क्षण तक उत्तर न मिलने पर वह उठ बैठी। पास सोयी सेविका भी उठ बैठी। वह उसके साथ पालने के पास आयी।

दासी ने झुककर उसके कान में फुसफुसाया, "बच्चा मर गया, ख़ून हो गया।"

राजकुमारी को बात अच्छी तरह समझ में नहीं आयी। जितनी आयी उस पर विश्वास भी न हुआ। उसने जाकर पालने में झुककर देखा। छुरी की हत्थी माथे पर लगने से घबराकर पीछे हट गयी। मरे हुए मुरझाये बच्चे के मुख को देखकर उसके मुख से भी 'अय्यो' की चीख निकली और वह बेहोश होकर ज़मीन पर गिर गयी। कमरे के भीतर के, बाहर के, सभी नौकर जाग गये। एक-एक करके दरवाज़े पर इकट्ठे हो गये। 'क्या हुआ' यह एक से दूसरे ने सुना, दूसरे ने तीसरे को बताया और आपस में फुसफुसाने लगे। उनमें से किसी के मन में यह बात न थी कि रानी या राजकुमारी को कोई हानि हो सकती है, परन्तु सबने राजा को 'पापी, इसका

सत्यनाश हो' कहकर शाप दिया।

दुख के पहले ज्वार से निकलकर रानी उठ खड़ी हुई। वह दासी से बोली, "बच्चा मर गया, बस इतना कहो, बाकी सब बातों से तुम्हें कोई मतलब नहीं। और सब नौकरों को भी इससे मतलब नहीं। किसी के पूछने पर यही कहो कि बच्चा मर गया। समझी!"

दासी बोली, "समझ गयी अम्माजी।" फिर वह दूसरे नौकरों से बोली, "समझ गये न आप सब लोग?" सब लोग बोले, "जी हाँ।"

रानी ने दासी से कहा, "बसवय्या को बुला भेजो। नौकर-चाकर सब अपनी-अपनी जगह जायें।"

बसव रनिवास के द्वार पर ही खड़ा प्रतीक्षा कर रहा था। रानी के कहलवाते ही तुरन्त उसके सम्मुख जा खड़ा हुआ।

रानी ने पूछा, "तुम्हें यह पता है बसवय्या!"

"मालिक ने बतलाया था, माँ।"

"अच्छा! इसे ले जाओ।"

"अच्छी बात है, माँ।"

"पालना भी ले जाओ।"

बसव ने एक नौकर को पालना पकड़ने का इशारा किया। उसने स्वयं भी एक ओर से उसे पकड़कर बाहर निकाला। राजकुमारी 'मुन्ना मेरा मुन्ना' करती उस बच्चे पर गिरने को हुई। रानी ने उसे रोक लिया, उसे गले लगाकर अपने कमरे में ले गयी।

बसव पालने को बाहर ले आया। छुरी को निकाल इसे धोकर अपने पास रख लिया। बच्चे के शव को महल के कीमती वस्त्रों में लपेटकर पिछले राजाओं के समाधि-स्थल पर दफना दिया।

134

सूर्योदय तक यह बात सारे शहर में फैल गयी थी। रात के पहरेदारों ने अपने-अपने घर जाकर अपने इष्ट मित्रों को गुप्त रूप से यह बात कही। आगे उन लोगों ने स्वभावतः अपने इष्ट मित्रों को गुप्त रूप से ही यह बात बतायी। 'राजा ने अपने भाँजे का खून कर दिया।' ऐसे यह बात हज़ारों में फैल गयी और हज़ारों ही ज़बानों ने राजा को शाप दिये।

राजा ने ऐसा कर डाला। यह बात कान में पड़ते ही हर एक मुँह से, "पापी राँड के तेरे घर का सत्या···" कहते-कहते रानी और राजकुमारी का ध्यान आते

ही 'सत्यानाश' शब्द को बीच ही में रोक लेते ।

ऐसी घटना बहुत से मुँहों में पहुँचकर उसी रूप में आगे नहीं चलती। कहने-वाले उसको कल्पना से हाथ-पाँव देकर नया रंग चढ़ाकर नया ही रूप दे देते हैं।

बाज़ार के एक कोने में एक ने कहा, "आधी रात थी। राजा उठकर तलवार लेकर गया। रानी माँ बीच में आ गयी। उसे, 'चल री हरामजादी' कहकर दो जमाये और आगे बढ़कर मुन्ने के दो टुकड़े कर दिये।"

एक दूसरा : "अच्छा, तो रानी माँ को चोट भी आयी !"

तीसरा : "चोट लगे बिना रह सकती है क्या ? भूत जैसा आदमी है। तलवार से मारने पर बचेगा कोई क्या ? वह तो मरने को पड़ी है।"

दूसरी ओर तीन स्त्रियाँ आपस में बातें करती जा रही थीं। एक बोली, "यह राजा है या राक्षस ! उसका हाथ कैसे उठा·उस नन्हीं कली पर ? इसके घर का सत्या···"

दूसरी : "ऐसा न कहो। कहा वापस लो।" रानीमाँ और राजकुमारी का इसमें क्या दोष है ? इसको शाप देते हुए उन्हें क्यों शाप देती हो ?

तीसरी : "तुम्हारी बात ठीक है। हम क्यों किसी को शाप दें। पत्नी और बेटी को तो सहना ही है। हमें इसका क्या टण्टा ?"

और एक स्थान पर चार आदमी इकट्ठे होकर बातें कर रहे थे। एक बोला, "जीवन ही कठिन हो गया है। बहिन का ग़ुस्सा भांजे का ख़ून करके उतारा। इस राजा ने मानो कंस क्या खाकर मेरा मुकाबला करेगा वाली बात की ना ?"

एक स्त्री बोली, "पेट में नौ महीने रखकर दर्द सहकर पैदा किया होता तो ऐसा न करता। आदमियों को क्या पता बच्चा पैदा करने की तकलीफ का।"

दूसरा : "यह क्या ? तुम सारे आदमियों को ताने दे रही हो। अगर किसी ने ऐसा कर डाला तो सभी ऐसा करेंगे क्या !"

पहला : "इन्हें कहने दो। हम आदमी हैं और यह सच है कि आदमी में दया कम होती है।"

एक और गली में चार आदमी बातें कर रहे थे। एक बोला, "ऐसा काम करने के बाद इनका 'राजा' बनकर शासन करना संभव नहीं।"

दूसरा : "ज़रा धीरे बोलो, कहीं हमारा भी सिर न चला जाये।"

तीसरा पहले से बोला, "राजा तक यह कौन पहुँचायेगा। क्या यह बात उनके लिए नयी है ?"

पहला : "नयी नहीं, पुरानी ही सही। त्योहार पर नाटक देखा था ना ? उसे खिलानेवाले गोरे छोटे-मोटे आदमी नहीं। इनसे इस करतूत का हिसाब मांगेंगे।"

लोग जब इस प्रकार बातें कर रहे थे तभी शहर में एक और ख़बर आयी। राजा के दुर्व्यवहार के कारण गोरे सेना लेकर आ रहे हैं। वे लोग चार दिन का मार्ग तय करके कोडग की ओर आ चुके हैं।

कोडग हमारा है। इस पर दूसरों की सेना का आना हमारा अपमान है। यह भावना शहर के अधिकतर लोगों में न थी। लोगों के मन में यह बात थी कि कोडग राजा का है गोरे उसे दण्ड देंगे। यह ज्यादा अच्छा होगा।

केवल कुछ ही लोगों को पराई सेना का आना अच्छा न लगा। यह कुछ ही लोग थे—शहर के धनी-मानी लोग। बाहर की सेना न केवल राजा को दण्ड देगी बल्कि शहर के धनी मानी लोगो के घर में भी घुसेगी। हमारे घर में घुस आयें तो क्या होगा? यह इनकी चिन्ता का कारण था। कुछ और लोगो को यह चिन्ता थी कि घर मे जवान बेटियाँ हैं। सेना घुस आये तो कैसे इज्जत बचेगी?

राजा ने भी नोच-खसोट की थी। जवान बहू-बेटियों को ख़राब किया था। पर अब उसका अविवेक समाप्त होता जा रहा था। बलि से सन्तुष्ट भूत के स्थान पर नया भूखा भूत तो और भी खतरनाक है।

धनी-मानी लोग अपनी सम्पत्ति को लुकाने-छिपाने मे लग गये। बहू-बेटियों वाले उन्हें देश के भीतरी सुरक्षित स्थानों में भेजने के काम में लग गये।

चिक्कणा शेट्टी ने भी दोनों समाचार सुने। उसने सोचा कि अब इस राजा का समय समाप्त हो गया है। उसने अपने साथी साहूकारों को एकत्रित करके कहा, "हमें सभी बातो मे बोपण्णा की आज्ञा का पालन करना चाहिए। राजा की ओर से सीधे आनेवाली किसी भी आज्ञा को हमें स्वीकार नही करना चाहिए। आप सबकी की क्या राय है?" सब लोगों ने उसकी सलाह मान ली। यह निर्णय हुआ कि बोपण्णा के घर जाकर उसे यह बात बतायें।

पार्यण्णा जब बोपण्णा के घर पहुँचा तो वह लक्ष्मीनारायण के घर गया हुआ था। पार्यण्णा ने सोचा—दोनों से मुलाकात हो जायेगी वही चला जाये।

लक्ष्मीनारायण के घर के भीतरी कमरे मे दोनो बैठे थे। सावित्रम्मा उनसे कुछ कह रही थी। पार्यण्णा के आने का समाचार पाकर दोनो मन्त्रियों ने उसे भीतर बुला लिया।

सावित्रम्मा पार्यण्णा से बोली, "शेट्टियो ने बात कर ली इतनी जल्दी पार्यण्णा?"

शेट्टी ने कहा, "हमें बात करने को कितनी देर चाहिए, माँ। हमने तय कर लिया। मन्त्रियों को बताने मुझे भेजा गया है।"

सावित्रम्मा बोली, "मैं लड़के को और वोपण्णा को कह रही थी। अनहोनी हो गयी। उसने अपराध किया, पर उस पर बेहद गुस्सा करने की जरूरत नहीं। उँगली मल पर पड़ जाने से उसे काटकर फेंकनी नहीं चाहिए। आप लोग भी यही बात समझ लीजिये। जो ठीक जँचे वह करो। लेकिन ध्यान रखना, रानी और राजकुमारी को कष्ट न पहुँचे।" इतना कह बाहर चली गयी।

बुढ़िया के बाहर जाने के बाद लक्ष्मीनारायणय्या वोपण्णा से बोले, "हमारे चिक्कण्णा शेट्टी को कहला भेजने से पहले उन्होंने पार्वण्णा को भेज दिया है। हम भी अपनी बात उन्हें बता दें?"

वोपण्णा: "बता दीजिये, पण्डितजी।" लक्ष्मीनारायणय्या ने पार्वण्णा से कहा, "महाराज ने जघन्य पाप किया है। अब हम उन्हें राजा बनाये रखें तो जनता मानेगी नहीं। इसके अतिरिक्त इस पर क्रोधित होकर अंग्रेज लोग सेना लिये आ रहे हैं। परायी सेना का देश में घुसना अच्छी बात नहीं है। इसलिए राजा से ही प्रार्थना करनी होगी: आप गद्दी छोड़ दें और उस पर किसी दूसरे को बिठा दें। अंग्रेजों को बाहर ही रोकने के लिए सेना भेजनी पड़ेगी। वोपण्णा और हमने यही सोचा है। साहूकार लोग इसी के अनुसार चलें।"

"अच्छी बात है, पण्डितजी। शेट्टीजी ने निवेदन करने को कहा था, आगे से हम सदा वोपण्णा की ही आज्ञा का पालन करेंगे। राजा सीधे कोई भी बात कहला भेजे, वह आपकी अनुमति के बिना मानी नहीं जायेगी। आप इस बात से सहमत हो जाइये।"

"यह बात सही है; क्यों वोपण्णा?"

वोपण्णा: "ओह! यह बात है!"

इसके बाद दोनों मन्त्रियों ने पार्वण्णा को यह कहते हुए भेज दिया, "इस बात का ध्यान रहे कि बाजार के लोगों में डर न फैले।"

जो बात चल रही थी उसे फिर लक्ष्मीनारायण ने आगे बढ़ाया, "राजा को ये सभी बातें बसवय्या द्वारा सूचित करनी होंगी कि नहीं?"

"यही ठीक है। मैं उससे मिलनेवाला नहीं। यह बात कहने के लिए आपका जाना भी ठीक नहीं जंचता, यह सारी बात उनका व्यक्तिगत मन्त्री ही कहे तो ठीक है।"

"यदि यह मान जाये तो राजा किसे बनाया जाये? यदि न माने तो क्या किया जायेगा?"

"यह सच है वे मानेंगे नहीं।"

"तो क्या किया जायेगा?"

"यदि बलपूर्वक उतारना चाहें तो दोनों ओर से झड़प होगी। इससे देश के लिए हानि होगी। इसीलिए हमारा कहना है कि बाहरी सेना देश में क्यों आये? उस

लड़ाई से बचने को यदि यह लड़ाई कर लो तो देश का क्या लाभ होगा?"

"हाँ बोपण्णा, हमारा रास्ता क्या होगा यह हमें पहले से ही निश्चित कर लेना चाहिए। यदि बात अनिश्चित रहे तो काफी उलझनें हो सकती हैं। हम एक साथ नहीं रह सकते हैं। एक-दूसरे के विचार को जाने बगैर यदि कोई काम हो जाये तो लाभ नहीं।"

"पहले अपनी बात बसव को बतानेंगे। वह राजा को बतानेगा। वे क्या कहते हैं पता लगे। बाद में ये बातें सोचेंगे।"

"ठीक है, बोपण्णा। मैं आपकी भाँति शीघ्र निश्चय पर पहुँचनेवाला आदमी नहीं हूँ इस बात का ध्यान रहे। मुझे क्या करना चाहिए, यह आपको पहले ही बताना होगा।"

"बात केवल शीघ्रता की ही नहीं। आपका मन भी करुणा से नरम है। दया का नाम आने पर आप पिघल जाते हैं। मैं पत्थर हूँ।"

"पत्थर नहीं, बोपण्णा! आप न्यायपूर्वक चलते हैं। मेरी आदत बात [illegible] करने की है इसीलिए कभी-कभी न्याय को भूल जाता हूँ। राज्य चलाने के लिए, नायक आप जैसा होना चाहिए, मेरे जैसा नहीं।"

"आप बुजुर्ग हैं, आप मेरी पीठ ठोकते रहिये। मैं अपनी शक्ति के अनुसार ठीक ही रास्ते पर चलूँगा।"

"मुझे इस पर विश्वास है, पर मैं केवल इतना ही कहता हूँ—आप क्या करेंगे यह ज़रा पहले बता दीजिये।"

"परिस्थिति को देख और समझकर जो उस समय ठीक लगे वही करूँगा। यदि उस समय आप पास हों तो अवश्य बता दूँगा। न हुए तो क्या कर सकूँगा। पर जो सही लगेगा वही करूँगा।"

"ठीक है, बोपण्णा। आप नासमझ नहीं और अन्यायी भी नहीं। आपको पता है कि मन्त्री के प्रत्येक कार्य का प्रभाव हजारों पर पड़ता है। इस समय आप देश के लिए स्तम्भ के समान हैं। भगवान आपको सही रास्ता दिखायें।"

"यह भी ठीक है, पण्डितजी। आप आशीर्वाद दीजिए और लोगों को भी आशीर्वाद देने को कहिए। मैं आपकी तरह बैठे-बैठे भगवान का नाम नहीं जपता। पर मैं भी सही रास्ते पर चलना चाहता हूँ। सही रास्ता चलने में आपका स्नेह सहायक बने।"

बोपण्णा ने घर जाकर बसव को बुला भेजा। बसव तुरन्त चला आया। बोपण्णा ने उसे अपना अभिप्राय समझाया और कहा, "यह बात आप महाराज से कहिये और वे क्या कहते हैं, उसे हमें सूचित कीजिये।"

बोपण्णा को आशा न थी कि बसव इतनी सरलता से बिना कुछ कहे सुने उसकी बात मान लेगा। उसको इस बात से बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह इसकी सारी बात सुन केवल एक ही बात में उत्तर देकर उठ गया। यह बात भी ठीक नहीं कि यदि कुछ वह कहता तो वह सुन लेता। बोपण्णा केवल उसे राजा तक उसकी प्रार्थना पहुँचानेवाला सेवक मात्र मानने को तैयार था। वह यह मानने को तैयार न था कि बसव ऐसे विषयों में उसके साथ चर्चा करने का अधिकारी है। बोपण्णा ने सोचा था कि वह कुछ प्रत्युत्तर देगा तो उसे यह कहना ही पड़ेगा कि, 'तुम यह बात महाराज को पहुँचा दो। तुम्हारा काम बात पहुँचाना है। ज्यादा बात करने की जरूरत नहीं।' इसकी आवश्यकता नहीं पड़ी। उसके लिए आश्चर्य की बातथी।

बसव का बोपण्णा की बात सुनने का ढंग तथा उसके उत्तर देने का ढंग किसी को आश्चर्य में डाल सकता था।

पौ फटने से पहले बच्चे को दफनाकर बसव के राजा की बैठक में लौटने तक वीरराज 'लँगड़ा कहाँ गया!' कहकर पागलों की तरह पुकारे जा रहा था। नौकर-चाकर पास जाकर पूछने की हिम्मत न पड़ने के कारण आसपास खड़े थे। राजा कहे जा रहा था। "इसे यहाँ क्यों लाया ? बाहर फेंक।"

बसव जाकर राजा के पास खड़ा हुआ। वीरराज ने पूछा, "ओ लंगड़े के बच्चे, तू कहाँ चला गया था ? इसे यहाँ क्यों लाया ?"

"क्या चीज मालिक ?"

"उस दीवार के पास। उसे वहाँ किसने रखा ? वहाँ क्यों रखा ?"

बसव ने राजा की बतायी हुई जगह को देखा। दीवार के पास कुछ न था। राजा या तो नींद में हैं या उन्हें मतिभ्रम हो गया है। ऐसी बातों में बसव बहुत सूक्ष्म बुद्धिवाला था। उसकी अक्ल बहुत तेज चलती थी। उसने राजा को, "उसे उठा दिया है महाराज" कहकर उत्तर दिया, और यह सोचकर कि राजा की यह दशा नौकरों को पता न चले, उसने नौकरों से महाराज गुस्से में है, कहकर सबको बैठक की बाहरी ड्योढ़ी के दरवाजे पर रहने को कहा। स्वयं वापस आकर राजा के पास खड़ा हो गया।

राजा ने पूछा, "बहिन आ गयी है। तुम्हारे पास कौन खड़ी है ?"

यह भी मतिभ्रम की बात थी। बसव ने राजा से कहा, "आयी नहीं, बुलवा भेजूं ?"

"क्यों बुलाना है ? यहीं खड़ी है, मुँह पर पल्ला डाल रो रही है।"

बसव जैसे किसी को सान्त्वना देते हुए, "रो मत, माँ। महाराज को दुख होता

है। इधर आइये।" वह जैसे किसी को छोड़ने दरवाजे तक गया। फिर एक सेवक को बुलाकर आज्ञा दी, "अम्माजी को जाकर बताओ, मालिक को बुखार बढ़ गया है। थोड़ी देर को इधर आ जायें।"

जब वह फिर पलँग के पास आया तो वीरराज ने दीवार की ओर देखने कहा, "तूने तो कहा था ले गया, रांड के। यह तो यहीं पड़ा है।"

रानी तेज़ कदमों से भीतर आयी। आते ही कातर स्वर में पूछा, "क्या हुआ बसवय्या ?"

बसव बोला, "ज़रा देखिये तो माँ।"

रानी आकर पलँग के पास खड़ी होकर राजा को देखने लगी। तभी वीरराज चिल्लाया, "ओये, इसे यहाँ क्यों छोड़ा ? इस घर में यह क्यों आयी ?"

रानी को बात का सिर-पैर समझ में न आया। बसव ने उसे इशारे से 'ज़रा सुनिये' कहा और फिर राजा से बोला, "अनजाने में आ गयी मालिक, अभी भिजवा देता हूँ।"

"इसके बाप का रखा पैसा इसका नहीं, राजभवन का है। जो मिलना है खाकर चुपचाप पड़े रहने को कहो। क़ैद से बाहर आयी तो गोली से उड़ा दूँगा, गोली से। कह दो।"

"अच्छी बात मालिक।"

"उसे उठाकर बाहर फेंक, और इसे रोने से मना करो। मुँह छिपा रखा है हरामजादी ने, जिससे किसी को पता न चले।"

137

अब तक रानी समझ गयी कि महाराज को क्या हुआ है। उसका मुख मुरझा गया। अब क्या होगा सोचकर व्याकुल हो उठी।

दो क्षण विस्तर के पास खड़ी रहने के बाद द्वार के पास आकर इशारे से बसव को बाहर बुलाया। वह बाहर बैठक के द्वार पर जाकर इस प्रकार खड़ी हुई कि राजा के बुलाते ही तुरन्त भाग के आ सके। और राजा को उसकी बात भी सुनाई न दे।

"नित्य की भाँति वैद्यजी के आने में देर हो जायेगी, बसवय्या। उनको अभी आने को कहला भेजो। शमन की कुछ औषधि दे दें। प्रलाप रुक जाये तो ठीक रहे।"

बसव : "अच्छा माँ" मैं आ रहा हूँ। पर यहाँ आप ज़रा देख लें।"

रानी : "ठीक है। हम या तुम एक के बाद एक यहाँ रहेंगे। वैद्यजी को आने

दो।"

"नौकर-चाकरों को यह बात पता न चले इसलिए उन्हें जरा दूर रखा है, माँ।"

"अच्छा किया, बुखार में ज्यादा गुस्सा करते हैं। सब दूर रहें।"

"पुटम्माजी का भी यहाँ आना ठीक नहीं, डर जायेंगी।"

"ठीक है। कह देना, वैद्यजी ज़रा शीघ्र आ जायें देखो।"

बसव के कहलवाते ही वैद्य दस-पन्द्रह मिनट के भीतर ही आ पहुँचा। रानी के कहे अनुसार एक शमनकारी गोली को पानी में घोलकर राजा को पिला दी और बाहर के कमरे में बैठ गया। रानी अपने कमरे में चली गयी।

बसव ने वैद्य से कहा, "यह बात बाहर पहुँची तो सिर उतरवा दिया जायेगा।" वैद्य बोला, "हम राजमहल के पुराने सेवक हैं, बसवय्या। राजमहल के सेवक को तो सदा सिर उतरवाने को तैयार ही रहना पड़ता है। यह बात हमें पता है।"

बसव हँस पड़ा। वैद्य द्वार पर बैठा था। इस बीच दो-तीन मिनट में जो काम किये जा सकते हैं उन्हें पूरा करने के लिए वह आँगन में निकल गया।

वैद्य की दवाई से राजा को एक झोंका-सा आया। चार मिनट बाद वह थोड़ा जागा। वैद्य समीप ही खड़ा था। उसके पूरी तरह आँखें खोलने के बाद एक गोली घोलकर पीने को दी, राजा फिर सो गया।

जब यहाँ यह स्थिति थी तभी बसवय्या को बोपण्णा का बुलावा आया। तब तक राजमहल के सभी लोगों को यह पता चल गया था कि बच्चे की मृत्यु का समाचार सारे शहर में फैल गया है और उस पर लोग तरह-तरह से टीका-टिप्पणियाँ कर रहे हैं। बोपण्णा ने इससे पहले कभी बसवय्या को नहीं बुलाया था इसलिए बसवय्या को यह बात स्पष्ट थी कि इस बुलावे के पीछे कोई बड़ा कारण अवश्य होगा।

यदि राजा ठीक-ठाक होता तो बसव उसकी आज्ञा ले लेता। इस समय इसके लिए अवसर न था। उसने रानी से पुछवाया, "मैं जाकर थोड़ी देर को मिल आऊँ।" रानी राजा की बैठक में आ गयी और बोली, "हाँ कोई-न-कोई बड़ी बात ही होगी। जाकर मिल आओ।"

"मैं उनकी बात सुनकर और उत्तर में हामी भरकर आ जाऊँगा, माँ। मालिक के मतिभ्रम की बात किसी को पता न चल पाये।"

"ठीक है बसवय्या, जो भी करना है महाराज से पूछकर ही तो करना है। इसलिए वे जो कहते हैं उसे सुनकर चुपचाप आ जाओ।"

राजमहल की ऐसी स्थिति होने के कारण ही बसवय्या बोपण्णा की सारी बात सुनकर बिना कोई उत्तर दिये वापस लौट आया था।

बसव ने जब बोपण्णा की बात गौरम्माजी को बतायी तो वह राजमहल पर आयी इन विपत्तियों के कारण अत्यन्त दुखी हुई—

एक मन्त्री द्वारा अपने राजा को ऐसी बात कहला भेजनेवाली स्थिति आ गयी! यह बात ठीक है कि दस मास पूर्व मन्त्रियों ने इसी प्रकार की बात उठायी थी। परन्तु उस समय उन्होंने इस बात को मर्यादापूर्ण ढंग से कहा था और इसके सम्मुख उसका विवरण दिया था। एक निर्णय लेने के बाद महाराज को सूचित करने का विचार किया था। इस समय किसी बात का लिहाज नहीं किया। यही नहीं, राजा के मन को आघात पहुँचाने की कटु भावना भी है। यह तो सीधे गद्दी से उतर जाओ कहना ही हुआ। यह बात भी राजा के नौकर द्वारा कहलवायी जा रही है!

बोपण्णा क्रोधी स्वभाव का होने पर भी मर्यादा छोड़नेवाला नहीं और फिर लक्ष्मीनारायण उसे शान्त भी तो कर देता था। आज इसका व्यवहार ऐसा हो गया, उसने रोका नहीं! इन मन्त्रियों ने यह नहीं सोचा कि मुझ पर क्या बीतेगी! गौरम्माजी को लगा कि राजा पर आयी इस आपत्ति में उसका भी एक हिस्सा है।

यह विषय बसव से चर्चा करने का न था। राजा यदि स्वस्थ हैं तो इसमें हाथ डालने की जरूरत न थी। परन्तु जब तक महाराज इस बात को सुन उत्तर देने की स्थिति में न होंगे तब तक मुझे ही संभालना है। इस बारे में क्या करना चाहिए? थोड़ा भी विचार करने से बसव के सिवाय और कोई नहीं दिखता। राजा ने अपने व्यवहार से अपने को कितना एकाकी बना लिया था। इस कारण आज उसकी पत्नी और लड़की कितनी असहाय है। इसलिए वह अपने पति के लिए, उससे भी अधिक अपने लिए और अपने से अधिक पुत्री के लिए दुखी हुई।

कुछ देर तक सोचने के बाद उसने पूछा, "क्या उन्होंने इसे जनता की इच्छा कहा?"

"हाँ माँ; उन्होंने कहा कि बालक की हत्या से लोगों में रोष फैल गया है। गोरे लोग सेना लेकर आ रहे हैं। उसे रोकने के लिए जनता की सहायता चाहिए। यदि महाराज गद्दी पर बने रहे तो जनता की सहायता नहीं मिलेगी इसलिए राजा को तत्काल अलग हो जाना चाहिए।"

रानी ने फिर सोचा। राजा यदि गद्दी छोड़ दें तो कौन बैठेगा? पिछली बार इन्होंने रानी को शासन अपने हाथ में लेने को कहा था। तब भी रानी को इसकी इच्छा न थी। अब भी न थी। उसके अस्वीकार करने पर उसकी बेटी को गद्दी मिलनी चाहिए। उसके लिए क्या उनकी सहमति होगी?

यह कैसे जाना जाये? इसके अतिरिक्त राजा को मतिभ्रम हो गया है। यह

आज या कल में ठीक हो सकता है। इससे पहले यह वात उठानी ठीक नहीं। राजा की स्थिति को जाहिर नहीं करना चाहिए। लेकिन तब तक गद्दी से उतरने की वात ज्यादा जोर पकड़ जायेगी। दो मिनट तक पुनः सोचने के वाद रानी ने वसव से कहा, "वसवय्या, आपने अपने मालिक को भगवान की तरह माना है। अव उनकी बुद्धि स्थिर नहीं। वे इस वात को समझ नहीं पायेंगे। इनका इस प्रकार होना वाहर जाहिर नहीं होना चाहिए। उन लोगों से हमें एक या दो दिन ठहरने को कहना चाहिए। क्या करोगे, सोचकर वताओ ?"

"महाराज की यह स्थिति है यह कहने की आवश्यकता नहीं। केवल इतना कहना ही होगा कि स्वास्थ्य ठीक नहीं। कल वतायेंगे।"

"ज़रा ध्यान रखना, इनकी स्थिति उन्हें पता न चलने पाये।"

"यों मुझे एक वात सूझी है। इस घटना से महाराज का दिमाग़ हिल गया है। दीवार की ओर इशारा करते हैं। रोती हुई स्त्री की वात कहते हैं। इसलिए कुछ दिन को यह जगह ही वदल दें तो कैसा रहे ?"

"कहाँ जाने की वात कहते हो ?"

"वचपन में जहाँ पले वह स्थान नाल्कुनाड उन्हें वहुत पसन्द है। वहीं ले जायें तो कैसा रहेगा ?"

रानी को यह सलाह ठीक जँची, "महाराज का स्वास्थ्य ठीक नहीं, इसलिए जगह वदलने नाल्कुनाड के महल में जा रहे हैं। दो-तीन दिन के वाद आप लोगों की वात का उत्तर देंगे, तव तक वोपण्णा को ज़रा प्रतीक्षा करनी होगी। राजा भी जगह दूसरी हो जाने से यह अप्रिय घटना भूल जायेगा, मन जल्द ही ठीक हो जायेगा।" उसने यह सोचकर वसव से कहा, "यह विचार अच्छा है, वसवय्या। साथ हम भी जायेंगे। विश्वसनीय आदमियों को साथ कर दो। यह काम जल्दी ही होना चाहिए। इधर हम चले जायेंगे तो उधर तुम जाकर मन्त्रियों को यह कह सकते हो।"

"माँ, अगर आप मुझसे पूछें तो आपका वहाँ जाना ठीक नहीं।"

"तो तुम जाओगे ?"

"इनकी वातों का जवाव देने को मुझे यहीं रहना होगा, माँ।"

"तो वहाँ ?"

"अगर आपकी अनुमति हो तो दोड्डव्वा को साथ भेज देता हूँ। वह अकेली ही दस के वरावर है।"

अगर दस साल पहले यही वात कही जाती तो रानी को पसन्द न आती। असहनीय कष्ट पहुँचाने और राजा में विलासी जीवन की जड़ें जमानेवाला प्रतीक दोड्डव्वा ही थी। पर इस प्रकार वुरा मानने की आदत गौरम्माजी कुछ वर्ष पूर्व ही पीछे छोड़ आयी थीं। अपने वड़प्पन से उसे जो गौरव मिलेगा, वही गौरव उसकी

सम्पत्ति थी। राजा की नित नयी प्रेम-लीलाओं से उसे कोई प्रतिष्ठा मिलनेवाली न थी। एक क्षण सोचकर वह बोली, "अच्छा बसवय्या दोड्डव्वा जाये, वैद्य भी साथ जाये, सुबह-शाम समाचार भेजते रहें। आवश्यकता पड़े तो हम भी जायेंगे।"

राजा इस समय किसी बात को समझने की स्थिति में न था। बसव ने सारा प्रबन्ध कर दिया। इस बातचीत के दो घण्टे के भीतर-भीतर राजा को एक पालकी में बिठाकर पीछे दोड्डव्वा और वैद्य के जाने का प्रबन्ध हो गया। उन्होंने बहुत ही विश्वसनीय चार व्यक्तियों के साथ राजा को नाल्कुनाड के महल में भेज दिया। इसके थोड़ी देर बाद बसव बोपण्णा के यहाँ गया, "आपकी बात बताने पर माँजी ने, 'राजा का स्वास्थ्य ठीक नहीं। थोड़ा ठहरो' कहकर रोक दिया। वैद्यजी ने स्थान बदलने को कहा है सो महाराज नाल्कुनाड के महल जा रहे हैं। एक या दो दिन बाद में जाकर उनकी आज्ञा आप तक पहुँचा दूँगा, भाई साहब।"

राजमहल से एक पालकी, दो टोलियों और चार नौकर तथा दसेक घुड़सवार पहरेदारों के जाने की बात तब बोपण्णा तक पहुँच चुकी थी। पर वह दल राजा का था उसे पता नहीं लग पाया था, यह अब बसव की बातचीत से पता चला।

149

रानी के लिए राजा के बुद्धि-विकार की परिचर्या करना ही पहला काम था। उसके बाद उसे बोपण्णा के भेजे सन्देश पर ध्यान देना पड़ा। इसीलिए जब तक राजा को नाल्कुनाड भेजने का प्रबन्ध नहीं हो गया तब तक रानी और किसी बात की ओर ध्यान दे पाने की स्थिति में न थी। राजा को भेजने के पश्चात् ही वह अपनी बेटी की ओर ध्यान दे सकी।

रात को पालने में मरे बच्चे को देख मूर्च्छित हुई राजकुमारी थोड़ी देर बाद होश में आकर 'अय्यो, मुन्ना चला गया' कहती हुई रोती रही। बच्चे के शव को दफनाने के लिए भेजने के समय उसे मनाना बड़ा मुश्किल हुआ। शव के चले जाने के बाद उसे कमरे में रहना दूभर हो गया। वह बाहर चली आयी। रानी उसे कमरे से बाहर बैठक में पास बिठाकर सान्त्वना देते हुए बोली, "क्या किया जाये! ऐसा कभी-कभी हो जाता है। यह सब सहना पड़ता है, मेरी बच्ची!"

राजकुमारी माँ की छाती पर सिर रखकर रोने लगी। जी भरकर रोने के बाद चुप हो गयी। कुछ देर के बाद बोली, 'देखो माँ, मुन्ने को भेज देने को कहने से गुस्से में आकर पिताजी ने ऐसा किया। हम चुप रहती तो मुन्ना बच जाता।"

बेटी को सान्त्वना देने की अपेक्षा रानी को इस बात की घबराहट अधिक थी कि कत्ल के दोष को वह स्वयं या राजकुमारी राजा पर न लगाये। जो होना था वह हो गया। लोग इस बारे में अपने ढंग से बात करते रहेंगे। हम किसी को रोक

नहीं सकते। परन्तु बच्चे के प्राण राजा के हाथ गये यह बात उसके या राजकुमारी के मुँह से नहीं निकलनी चाहिए। उसने अपनी बेटी से कहा, "पुट्टम्माजी, मुन्ना तो गया। किसके हाथों से गया यह बात तेरे या मेरे मुँह से नहीं निकलनी चाहिए।"

तभी चेटी ने आकर कहा, "बसवय्या आपसे मिलना चाहते हैं, अम्माजी।" रानी ने उत्तर दिया, "आने को कहो।" बसव वहाँ आकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया और बोला, "दोड्डव्वा जाते हुए कह गयी है कि राजा को देखने के लिए भगवती को क्यों न भेज दिया जाये। क्या भगवती को बुलवा लें माँ?"

"मन्त्र-तन्त्र करेंगी क्या?"

"मन्त्र-तन्त्र तो है ही, साथ वैद्यजी को भी पता न लगनेवाली बहुत-सी बातें उसे पता हैं। अमावस्या के अँधेरे और पूर्णिमा की चाँदनी में वह भूत की तरह घूमती है। जड़ी-बूटियाँ इकट्ठी करती रहती है। घर में बैठे-बैठे काम करनेवाले वैद्य को इन सबका क्या पता?"

"सच है बसवय्या, बुलवा भेजो। उनसे महाराज को देखने की प्रार्थना करेंगे।"

"मैं ही जाकर बुला लाऊँ तो कैसा रहे, माँ?"

"अच्छी बात है, ऐसा ही करो।"

बसव और देर न करके तुरन्त एक घोड़े पर सवार होकर भगवती के आश्रम में गया। बसव ने भगवती से कहा, "रानीमाँ ने कहलवाया है कि महाराज की तबियत ठीक नहीं है। वे जगह बदलने के लिए नाल्कुनाड गये हैं। आप वहाँ जाकर जरा उन्हें देख लीजिए। मन्त्र या औषधि जो भी उचित समझें कीजिये।"

भगवती ने पूछा, "राजा को क्या हुआ है?" बसव ने केवल इतना कहा कि वे अस्वस्थ हैं, परन्तु उसने यह नहीं बताया कि राजा ने बच्चे का खून कर दिया है या उसे मतिभ्रम हो गया है। वह बोला, "आपको नाल्कुनाड के महल पहुँचने पर सब पता चल जायेगा।"

"तुम कुछ छिपा रहे हो। राजा को देखने की बात कहने को नौकर न भेजकर तुम स्वयं आये हो। कुछ बात जरूर है। क्या बात है कहो!"

"देखने से ही पता चल जायेगा। मैं क्या अलग से बताऊँ?"

"तुम किसकी रक्षा कर रहे हो पता है? वीरराज तुम्हारा मालिक नहीं, शत्रु है। उसके लिए इतना व्याकुल क्यों होते हो?"

"ऐसा न कहो माँ, ऐसा न कहो। आपने उस दिन भी ऐसा ही कहा था। मैंने तब भी आपको मना किया था। अपने अन्न से पालनेवाला मालिक मेरा शत्रु कैसे हो सकता है? आपकी बातों का विरोध नहीं कर सकता। कृपा करके नाल्कुनाड जाकर उनकी रक्षा कीजिये।"

भगवती बोली, "अच्छी बात है, देखेंगे।"

बसव ने पूछा, "घोड़ा प्रस्तुत करूँ ?"

"नहीं हम पैदल ही जायेंगे।" भगवती ने कहा।

बसव मडकेरी लौट आया। घोड़े पर सवार मडकेरी की हद पर पहुँचा ही था कि भगवती उसे ब्राह्मणों के मोहल्ले की ढलान पर दिखाई दी। उस समय उसे लगा : यह क्या मन्त्र शक्ति से यहाँ आ पहुँची ? फिर उसने सोचा, मैं जब पहाड़ी तलहटीवाले लम्बे रास्ते से आया तब तक यह शायद चढ़ाई उतराई के सीधे रास्ते से आ गयी होगी। फिर भी यह काफी स्फूर्तिवाली स्त्री है। इस आयु में भी उसके शरीर की फुर्ती देखकर उसे आश्चर्य हुआ। महल में पहुँचकर उसने रानी को बताया "भगवती को आपकी आज्ञा पहुँचा दी है। उन्होंने कहा कि मैं आऊँगी। अभी यहाँ मन्दिर के पास दिखी है।"

140

बसव के वहाँ से चलते ही भगवती भी मडकेरी ही को चल पड़ी। जब बसव ने महल पहुँचकर रानी को सब सूचना दी। उसी समय भगवती भी पगडण्डी से होकर ओंकारेश्वर के मन्दिर में अपने ताऊ से मिली, "बसव आया था, रानी ने कहलवाया कि राजा का स्वास्थ्य ठीक नहीं, जाकर देख लें। राजा को क्या हुआ आपको तो पता होगा ?"

"पापा, जब आ ही गयी तो महल जाकर रानीमाँ से मिल लो।"

"इसके बुलाते ही मुझे पहुँच जाना चाहिए क्या? जा सकती हूँ, रानी से मिल सकती हूँ पर मुझे क्या पड़ी है ?"

"तेरी बात ठीक नहीं, पापा ! तुम लीक छोड़कर चल रही हो। तुम दवा दे सकती हो, प्राण नहीं। बचाने और मारनेवाला सिर्फ़ भगवान है हमें यह नहीं भूलना चाहिए। हम केवल मनुष्य हैं।"

"आपको मुझ पर तिल भर भी दया नहीं, अण्णय्याजी। मेरा दोष चाहे राई भर ही आपको पर्वत के बराबर दीखता है। मुझे खराब करनेवाले का दोष आपको दिखता ही नहीं।"

"मुझसे जो चाहे तू कह ले, पापा। पर ठीक रास्ते पर चल।"

"अच्छा अण्णय्याजी, जाती हूँ। जो भी मुझसे बन पड़ेगा करूँगी।"

"यह हुई न बात, मेरे बेटे।"

"जब आपकी बात मान लेती हूँ आप कितने नरम पड़ जाते हैं, अण्णय्याजी। अच्छा अब बताइये राजा को क्या हुआ है ?"

"उनको क्या हुआ है, चाहे जिससे पूछ लेना बता देगा। जाकर पूछ लो। मन्त्र या माया जो तुझे जँचे, करना। मेरी भी पूजा का समय हो गया, समझी।"

141

आश्रम से चलते समय भगवती का उद्देश्य नाल्कुनाड जाकर राजा को दवा देना न था। उसे अंग्रेजों और राजा के बीच वैमनस्य उत्पन्न होने की बात पता चली तो उसने सोचा, "यह बहुत अच्छा हुआ। इसका काम तो अभी तमाम हो जायेगा और मेरी इच्छा पूरी हो जायेगी।" राजा के बीमार होने से उसकी इच्छा और भी आसानी से पूरी हो सकेगी। रोगी की ओर से किसी के सहायता माँगने पर वैद्यक जाननेवालों का क्या कर्त्तव्य है इसमें उसे कोई सन्देह न था। उसे वैद्यक सिखाने वाले गुरु ने हर जड़ी-बूटी का गुण बताते समय हरेक के साथ चेतावनी दी थी: जड़ी को पहचान लेना और मन्त्र सीखना कोई बड़ी बात नहीं। जो सीख जाता है उसका निष्ठापूर्वक प्रयोग करना चाहिए। जान लेने आये व्यक्ति को भी यदि साँप काट ले तो उसको मन्त्र से विष उतारकर बचाना चाहिए और उसके बच जाने पर उसके हाथ से अपनी जान बचाकर भागना चाहिए। उसे शत्रु मानकर यदि मन्त्रोपचार न करें तो तुम्हारी सीखी विद्या मिट्टी के बराबर हो जायेगी। तुम्हें ही नहीं, तुम्हारे सिखानेवाले गुरु को भी नरक की प्राप्ति होगी। यह चेतावनी प्रत्येक वैद्य गुरु अपने बननेवाले शिष्य को देता है। पर उस सीख को गुरु भी सदा पालन नहीं कर पाता है, शिष्य की तो बात ही क्या है। भगवती के जीवन में घटित हुए प्रसंग पर साधारणतः वह सब शिक्षाएँ याद नहीं रहतीं। याद होने पर भी जँचती नहीं। भगवती भी ऐसी ही मानसिक स्थिति में थी। फिर भी वह अपने ताऊ को बिना बताये न रह सकी और निष्पक्ष रहने का विश्वास भी उसमें न था। इसलिए उसको दीक्षित ने उसका सही कर्त्तव्य बताया। इसी कारण पहले जैसा उसने सोचा था वैसे उस पर स्थिर रहना सम्भव न हो पाया। मन्दिर से बाहर आते हुए वह एक क्षण-भर यह सोचती रही थी कि, महल जाकर रानी से मिले या नाल्कुनाड ही चली जाये।

उसी समय नारायण वहाँ आ गया। उसे देखकर बोला, "नमस्कार माँ, कब आयीं?"

"थोड़ी देर हुई।"

"पिताजी से मिलीं?"

"मिली।"

"क्या बात है? कुछ सोचती-सी दिख रही हैं? यहाँ के समाचार का पता चल

गया?"

"नहीं तो, क्या बात है?"

"राजा ने भांजे का खून कर दिया। सुबह से ही दिमाग खराब हो गया था। लंगड़े ने उसे नाल्कुनाड भिजवा दिया है।"

"राजा अस्वस्थ है, यह पता चला, पर यह सब पता नहीं था। खून कर डाला है!"

"उस मरे बच्चे को दफनाये तीस घण्टे हो गये। मारनेवाले के हाथों में कीड़े पड़ेंगे। कब पड़ेंगे, यह तो भगवान ही जाने।"

भगवती को यह बात सुनकर बहुत क्रोध आया। "नन्हें से बच्चे को मारनेवाले इस पापी को बचाना चाहिए?" वह सोचने लगी: भीतर जाकर ताऊजी से फिर बात करूँ। नन्न, ताऊजी को यह बात शायद पता होगी। उन्होंने मुझे एक बात भी नहीं बतायी। "वैद्यक जानती हो, चिकित्सा करो—" सिर्फ इतना ही कहा। थोड़ी देर सोचने के बाद वह समझ गयी। फिर पूछने पर भी वे वही बात कहेंगे। उनकी बात है, सो करूँ। वे बड़े हैं। उनके कहे अनुसार करना ही मेरे लिए अच्छा है। महल जाने पर रानी से यह सारी बातें करना कठिन होगा। रानी बड़ी ऊँची स्त्री है। राजा के प्रति घृणा और रानी के आदर इन सब पर विचार करने से मुझे कुछ होता है। मैं इस झमेले में क्यों पड़ूँ? यह सब सोच-विचारकर उसने नाल्कुनाड जाने का निश्चय किया।

वह चार कदम आगे बढ़ी ही थी कि रानी का भेजा आदमी उसके पास आ पहुँचा और बोला, "अम्माजी डोली भेज रही हैं। यहाँ से वहाँ तक चलने की आवश्यकता नहीं।"

इतने में पास की गली से चार कहार एक डोली लेकर आ गये। भगवती उसमें बैठकर नाल्कुनाड के महल चल दी।

142

कहार डोली लेकर पूरी तेज़ी से चले फिर भी नाल्कुनाड पहुँचते-पहुँचते दीया जले दो घण्टे बीत गये थे। रास्ते में दो स्थानों में देवारिन जंगलों में वह डोली से उतरीं। देव-स्तोत्र का पाठ करती हुई जंगल में घूमकर कुछ जड़ी-बूटियाँ उखाड़-कर, मसलकर अपनी साड़ी के पल्ले में बाँध लायीं। महल में पहुँचते ही वैद्य से बातचीत की और राजा के कमरे में जाकर उसे देखा। दाँड़व्वा से उसने राजा की नींद और खानपान आदि के बारे में पूछताछ की।

नारायण दीक्षित की बतायी बातों से उसने अन्दाज़ कर ली थी कि राजा को

क्या तकलीफ़ होगी। इसीलिए रास्ते में आते हुए वह बूटियाँ लेती आयी थी। अपने साथ लायी दो जड़ियाँ पीसकर उसने राजा के पाँवों के तलवों पर लेप किया। और दो जड़ियों को उबालकर काढ़ा बनाकर दो घूंट राजा को पिला दिया। फिर वह वैद्य से बोली, "कल आप वापस मडकेरी जा सकते हैं।"

वैद्य बोला, "यह कैसे हो सकता है बहिन ? राजा की परिचर्या करने को तो यहाँ भेजा गया हूँ। उन्हें फायदा होने से पहले ही मैं कैसे लौट जाऊँ ?"

"आपने जो चिकित्सा करनी थी कर दी है। मैं भी उसी काम से आयी हूँ। यहाँ दो के लिए काम नहीं।"

"मैं भले ही कुछ भी न करूँ, आप जो चिकित्सा करेंगी उसे परखकर अपनी राय तो दे सकता हूँ।"

"हमारी चिकित्सा का बड़ा भाग मन्त्रों में है। उसे देखने भर से किसी को कुछ पता नहीं चलता। हम जिन बूटियों को प्रयोग में लाते हैं उनको भी मन्त्र के बिना उपयोग में लायें तो हानि ही होती है। क्या यह सब आपको पता नहीं ?"

वैद्य का मुंह उतर गया। "अच्छा बहिन, सुबह चला जाऊँगा। राजा के आरोग्य का दायित्व अब आपका है। यह बात रानी से निवेदन कर दूंगा।" और सुबह होते ही उठकर चल दिया।

सारी रात भगवती राजा के सिरहाने बैठकर किसी मन्त्र का जाप करती रही। प्रातः उसके उठने से पूर्व ही पास के जंगल से चिकित्सा के लिए आवश्यक जड़ी-बूटियाँ ले आयी और पहले की तरह तलवों पर लेप किया और पीने को काढ़ा देकर चिकित्सा की।

उस दिन, अगले दिन और तीसरे दिन भी चिकित्सा इसी प्रकार चलती रही। राजा ने सदा से कुछ ज्यादा ही खाना खाया और अच्छी तरह सोया। नींद में जो प्रलाप पहले था दूसरे दिन कम हुआ और तीसरे दिन पूरा बन्द हो गया। भगवती ने दोड्डव्वा से कहा, "अब ये ठीक हो गये। कल मैं चली जाऊँगी।"

अगले दिन आकर बसव ने राजा का हाल देखा और फिर चौथे दिन आने को कहकर चला गया।

143

भगवती को प्रातः जाना था। वह और दोड्डव्वा राजा के सामने के कमरे में सोई हुई थीं। दोड्डव्वा बोली, "महाराज को नींद अच्छी आती है, अब कोई डर नहीं है ना ?"

"तिल-भर भी डर नहीं।"

"सौत के बेटे को देखकर उससे ईर्ष्या न करके उसे ठीक कर दिया ना।"

"ठीक करना या न करना मनुष्य के हाथ में नहीं। जो भगवान कराता है वही मनुष्य करता है।"

"लड़के के राजा बनने की बात क्या बनी ?"

"छोटे भाई के रहते क्या बड़ा भाई राजा नहीं हो सकता है ?"

"तो वह आस अभी तक है ?"

"केवल आस रहने से क्या मिलता है, दोड्डव्वा ?"

"पूरी होगी वह आस तो ही है ना ?"

"तीस वर्ष की पूजा का भगवान को फल देना ही होगा !"

"इसी घर मे, इसी कमरे मे सुकुमार कुमारी के रूप में क्या सुख पाया ! उसी घर में उसी कमरे में आज यह क्या काम ? दोनों दशाएँ देखनेवाली मुझे अचरज होता है।"

"यह बात तुम आज कह रही हो, मन तो चार दिन से वही याद किये जा रहा है। इसी अगले बरामदे मे बच्चे का पाँव मरोडा था ना ? यहीं से मुँह छिपाकर जाना पडा था। सारी यादें सुखदायक नहीं होतीं। उनमे दुख भी तो है।"

"ऐसा होता ही है, मेरी माँ।"

"अब इसे जाननेवाले केवल दो ही हैं, तुम और तवक।"

"जाननेवाले मुँह नहीं खोल सकते हैं। हम दोनो को कसम दिलायी थी और कसम भी कैसी ?"···

भगवती सुबह चली जायेगी। इसलिए दोड्डव्वा ने आत्मीयता वश यह बातें उठायी थीं। उसने बातें बडे धीमे स्वर में शुरू की थीं। राजा सो रहा है उसे इस बात का ध्यान था। बातों-बातों मे ही आवाज थोड़ी ऊँची हो गयी। राजा ने तीन दिन खूब नींद ली थी। इसलिए वह नींद मे न था। रात आधी बीत चुकी थी, राजमहल निस्तब्ध था, इसलिए उसे इनकी सारी बातें स्पष्ट सुनायी दे रही थीं।

144

भगवती की चिकित्सा से वीरराज स्वस्थ हो गया था। इतना ही नहीं वह अपना शरीर पहले से अधिक हल्का महसूस कर रहा था। मन भी प्रसन्न था।

इन दोनों की यह बातें सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ। बातों का सिर-पैर उसे समझ में न आया। पर इतना स्पष्ट था कि दोड्डव्वा भगवती को बचपन से जानती है। तब वह भी इस घर में थी, यहाँ कुछ बात हो जाने के कारण दुखी होकर चली गयी थी।

मडकेरी से आते समय वह नींद में ऊँघ रहा था। नाल्कुनाड पहुँचने पर उसकी ऊँघ चली गयी थी। उसे जब इस कमरे में लाकर लिटाया गया तो वह स्थान को पहचान गया। पास आये सेवक से पूछा—"दूसरे राजमहल में हैं क्या?" उसके "जी हाँ मालिक" कहने पर, "यहाँ क्यों आये?" पूछा। तब सेवक बोला, "रानी माँ की इच्छा जगह बदल देने की थी।" राजा ने बात वहीं ख़त्म कर दी।

सारा दिन उसका मन शान्त न था। परन्तु स्थान बदल जाने के कारण दीवार के पास गठरी-सा पड़ा बच्चे का शव, तथा किसी स्त्री का सामने आकर मुँह ढाँपकर रोना यह भ्रम हट गया। भगवती द्वारा आकर दवा का लेप लगाने और दवा पिलाने से उसके शरीर को फूंकनेवाले ताप का शमन हुआ। मन की अशान्ति मिट गयी।

दूसरे दिन रात को जब वह नींद से जागा तब उसे एक सुन्दर तथा गम्भीर स्त्रीमुख उसके मुख पर झुकाकर उसी को देखता दिखायी दिया। पहले क्षण तो उसे अपनी माँ के मुख का-सा भ्रम हुआ। परन्तु दूसरे ही क्षण उसे समझ में आ गया कि वह उसकी माँ का मुख नहीं। डर से वह चिल्लाने को ही था कि उसे एक और स्त्री का मुख दिखाई पड़ा, वह दोड्डव्वा का मुख था। मन को तसल्ली हुई और वह बोला, "दोड्डी!"

दोड्डव्वा: "कैसे हैं मालिक? बेचैनी तो नहीं?"

"नहीं, यह कौन है?"

"भगवती दवा देने आयी हैं।"

राजा को फिर नींद आ गयी। तब तक उसकी बीमारी आधी ठीक हो गयी थी। तब से अब तक दो दिन बीत गये। इस भगवती ने उसके रोग को पूर्ण रूप से ठीक कर दिया है। ऐसा लगता है पहले यह यहाँ रही है। यह कौन हो सकती है? इसके बारे में कल पता लगायेंगे, पूछेंगे।

राजा ने अपने पलँग पर करवट ली। थोड़ी आवाज़ हुई। उसे जागा हुआ जान कर दोड्डव्वा पास आयी और चादर आदि ठीक करके लौट गयी।

पौ फटते ही भगवती वहाँ से चल दी। सुबह होते ही राजा ने दोड्डव्वा से पूछा, "भगवती कौन है, दोड्डी?"

उसने उत्तर दिया, "आप जानते हैं ना मालिक, नदी के किनारे गुफा में जिन्होंने मन्दिर बना रखा है, वही।"

उस समय उसे शंका हुई कि यह भगवती के बारे में पूछ रहा है। कहीं इसे फिर से मतिभ्रम तो नहीं हो गया?

"ऐ दोड्डी, वह क्या हमें पता नहीं? तू रात कह रही थी ना कि वह पहले यहाँ थी। वह बात बता।"

"अच्छा हमारी रात की बातों के बारे में पूछ रहे हैं! आपको सुनाई दी थीं

क्या ?"

"हाँ।"

"अधनींद में सुनी बात। हमने कुछ कहा, आपने कुछ और सुना।"

"तुमने क्या कहा था ?"

"वह दूसरों की बात थी। इसकी नहीं। इसने उन्हें देखा था। उनकी बात कर रहे थे।"

दोड्डव्वा सच नहीं बोल रही, कहीं कुछ छिपा रही है यह बात राजा के समझ में आ गयी। उसकी इच्छा के बिना इस बात के निकलवाने का समय यह नहीं था। अतः अन्तिम प्रयास करते हुए भगवती को यहाँ बुला लाने को कहा।

दोड्डव्वा ने कहा, "भगवती पौ फटते ही पूजा करने मन्दिर गयी है।"

145

यह पहले ही स्पष्ट हो चुका है कि राजा के मतिभ्रम की बात को दबाकर रखने के रानी के सब प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए। बसव के भगवती से सहायता माँगने पर उसके मडकेरी पहुँचकर दीक्षित से मिलने तक, दीक्षित तथा नारायण के लिए यह विषय पुराना हो चुका था। शहर में इस बात से कोई अनजाना न था।

बसव ने जब यह कहा कि बोपण्णा की बात राजा तक न पहुँचाई जा सकी तो बोपण्णा समझा कि राजा उत्तर देने में समर्थ नहीं है। यह बहाना बना रहा है। थोड़ी देर में राजा की स्थिति का समाचार पाने पर उसने समझा कि बसव सच कह रहा है। वास्तव में बोपण्णा के लिए यह बात बहुत महत्त्व न रखती थी कि राजा उत्तर भिजवाने में असमर्थ था या उसकी बात राजा तक पहुँची ही नहीं। अंग्रेज अपनी सेना लेकर कोडग पर चढ़ाई करने आ रहे हैं—यह समाचार पहुँचने तक वह अपना रास्ता निश्चित नहीं कर पाया था। बाहरी सेना देश की ओर चली आ रही है, यह बात कान में पड़ते ही उसके मन में अपना रास्ता स्पष्ट हो उठा।

जैसा पहले ही निश्चय हुआ था उसी प्रकार उसने उसी दिन कोडग के पैंतीस इलाकों के मुखियों के पास आदमी दौड़ाये और यह कहलवाया कि "बाहर की सेना चढ़ाई कर रही है। मैं यह नहीं कहता कि उनसे लड़कर हम राजा की रक्षा करें। इसके बारे में आप अपनी सम्मति भेजें या तुरन्त मडकेरी आकर मुझ से मिलें। जो भी हो आप अपने इलाके से बीस-तीस सशस्त्र व्यक्तियों को भी भेजें। उनके लिए आवश्यक प्रबन्ध मैं कर दूँगा।"

इन भेजे गये आदमियों में अधिकतर अगले ही दिन लौट आये। बाकी तीसरे दिन पहुँच गये। सभी तक्कों ने लगभग एक-सा ही उत्तर भेजा था, "जो बात बोपण्णा

ठीक समझेंगे वह हमें स्वीकार है। वोपण्णा की आज्ञानुसार हम वीस-वीस आदमी भेज रहे हैं।"

वोपण्णा को अपने पर अपने साथी तक्कों का विश्वास देखकर वहुत अभिमान हुआ। देश वच जायेगा समझकर उसे धीरज वँधा। तक्कों ने जो कहला भेजा था उसे उसने लक्ष्मीनारायण को वताया।

जिस दिन तक्कों के पास उसने आदमी भेजे उसी दिन सीमावर्ती गुल्म नायकों ने भी सन्देश भेजे कि फौरन मडकेरी जाकर आगे की कार्रवाई के लिए आज्ञा प्राप्त करें। वे पाँचों अगले दिन आ पहुँचे। वोपण्णा ने उनसे कहा, "अव तक नाम मात्र के लिए सीमा की रक्षा होती थी। वेतन आदि हम ही देते थे। काम हम या महाराज वताया करते थे। अव वाहर से सेना चढ़ाई करने आ रही है। अतः आगे से आप लोगों को अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए। हमें ऐसा नहीं लगता कि हम राजा की आज्ञानुसार काम कर सकेंगे। परन्तु मेरा कहना यह नहीं कि आप मेरी आज्ञानुसार करें। यदि आप चाहें तो आगे के कार्यक्रम के वारे में महल जाकर महाराज से आज्ञा ले सकते हैं और उनकी आज्ञानुसार कार्य कर सकते हैं। मेरी ओर से कोई वाधा न होगी।

उत्तय्या गुल्म नायकों में एक था। ये पाँचों गुल्म नायक एक साथ वाहर निकले और आपस में वातचीत की। दो क्षण वाद भीतर आकर वोले, "अव तक आप ही हमारे अगुआ थे। आगे भी आप ही रहेंगे। हमें महाराज के पास जाकर सीधे उनकी आज्ञा लेने की आवश्यकता नहीं। आप जैसे आज्ञा देंगे वैसा ही होगा।"

"इसके लिए भी मैं इन्कार नहीं करूँगा। यदि यह वात है तो आपका काम यह होगा, परायी सेना के सीमा पर पहुँचते ही आप में से एक उनके नायक से मिले और कहे कि हमारे नेता आप लोगों के नेता से वात करनेवाले हैं, जव तक वह वातचीत पूरी न हो तव तक आप हमसे लड़ेंगे नहीं। आप सीमा के वाहर ही रहें। हम आपसे उलझेंगे नहीं। अगर वे यह वात मान लें तो आप इधर और वे उधर खड़े रहें। लड़ें नहीं। मैं उनके कर्नल से वात करके आज्ञा दूँगा। आपकी वात यदि वे न मानकर भीतर घुसें तो उन्हें रोका जाये और युद्ध किया जाये।"

गुल्म नायकों ने उनकी आज्ञा को समझ लिया और अपने-अपने स्थानों की ओर चले गये। वोपण्णा ने सव वातें लक्ष्मीनारायण को वतायीं। सभी इलाकों से सशस्त्र व्यक्ति तीसरे दिन शाम को मडकेरी पहुँच गये। वे वोपण्णा से मिले। वोपण्णा ने उनमें से तीन सौ आदमियों को मडकेरी के पहरे पर लगा दिया और शेष चार सौ को कुशालनगर जाकर प्रतीक्षा करने का आदेश दिया।

इसके तीन दिन वाद पता चला कि वैंगलूर की सेना का पाँचवाँ भाग सीमा के पाँचों रास्तों पर पहुँच गया है। वसव रानी से आज्ञा लेकर वोपण्णा के पास आया। "मालिक सव ठीक है। आपकी वात उनसे निवेदन करके उनकी आज्ञा कल आप

तक पहुँचा दूँगा। कृपया अब तक के प्रबन्ध के विषय मे बताइये?" बोपण्णा ने उत्तर दिया, "यदि तीन दिन पूर्व महाराज कुछ आशा देते तो विचार किया जा सकता था। अब इन सब बातो का समय नही। हमलावरो की गतिविधि देखकर बात करनी होगी। उस समय जो ठीक दिखायी देगा वह किया जायेगा। यह महाराज को बता दीजिये।"

बसव की आशा पूर्णरूप से टूट गयी। उसने आकर यह बात रानी को बतायी। वह अपने मे इस बात पर दुखी हुई कि राजा तीन दिन पूर्व ही अपना अधिकार खो बैठे हैं। अब वे उससे अधिक और क्या खोयेंगे।

"राजा का राज्याधिकार समाप्त हो गया। साथ ही उसकी पत्नी के नाते मेरा रानीपन भी समाप्त हो गया।" रानी को इस बात का दुख हुआ, "इस भाग्य के लिए ही मेरी बेटी ने राजमहल में जन्म लिया था क्या। यदि बोपण्णा मान ले तो इसे गद्दी मिल सकती है, राज-सुख मिल सकता है। बोपण्णा मान ले तो यह उसके भांजे से शादी भी कर सकती है। पिता से अच्छा नाम कमाकर माँ से भी अधिक सुखी हो सकती है। क्या भगवान ऐसा कर देगा?"

परन्तु वह इस बारे में किसी से बात नही कर सकती थी। किसी पर भी अपना मन खोल नहीं सकती थी। उसने पूछा, "अब महाराज को आराम है न, बसवय्या?"

"हाँ माँ, बिस्तर छोड़ दिया है। घूम फिर सकते हैं। बातचीत भी अब ठीक करते हैं।"

"जाकर यहाँ की सब बातें बताकर वे क्या कहते है, यह जानकर आओगे क्या?"

"अच्छी बात है माँ।"

146

बसव तुरन्त नाल्कुनाड के राजमहल के लिए चल पड़ा। उसने राजा को बोपण्णा की सारी बातें बतायी और कहा, "अम्माजी ने कहा है कि महाराज क्या कहते हैं पता लगाकर आओ।"

राजा को यह पता न था कि उसकी क्या दशा हो गयी है। यह सुनते ही उसने पहले, 'कौन है वह जो मुझे गद्दी से उतारने को कहता है। हाथ में बन्दूक लेकर फूँक देंगे खबरदार! कोडग का राजा इतना आसान कैसे हो गया? यह बोपण्णा-बिद्दण्णा मेरे लिए किस लेखे है। बाहर से सेना आ गयी क्या? आ भी गयी तो क्या हुआ! कोडग इतना कमजोर नही। जो गत तुर्कों की हुई थी इन्हे पता नही?" वह

इन सव वातों को ऐसे कहता चला जा रहा था, जैसे आठ वर्ष पूर्व उसके ताऊ ने कोडग की जनता को एकत्रित करके आक्रमणकारियों को भगा दिया था उसी तरह वह भी जनता को एकत्रित करके आक्रमणकारियों को भगा देगा। वसव को समझ में न आया कि इस समय क्या कहा जाये?

थोड़ी देर वाद वह राजा से वोला, "आप मडकेरी चलेंगे मालिक?"

"मडकेरी क्या नाल्कुनाड क्या? जाकर वोपण्णा से कहो, हमारे कहने के अनुसार चलना होगा। तव भी वह यदि न सुने तो हम मडकेरी भी जायेंगे और सीमा पर भी।"

वसव "अच्छा मालिक!" कहकर मडकेरी लौट पड़ा।

147

वसव के मडकेरी पहुँचने से पूर्व ही वोपण्णा अपने गुल्म के पीछे कुशालनगर की ओर चल चुका था। वसव को समझ में नहीं आया कि वह वोपण्णा से मिलने उसके पीछे जाये या कुछ और करे। उसने रानी से पूछा। रानी ने कहा, "वसवय्या, मन्त्री लक्ष्मीनारायणजी से मिलो।"

वसव के लक्ष्मीनारायण से मिलने पर वे वोले, "चलो अम्माजी से ही बात करें।" दोनों रानी के पास आये। लक्ष्मीनारायण ने रानी से कहा, "अव सव मामले इतने उलझ चुके हैं कि अव मेरे हाथ में कोई वात नहीं, माँ। वैसे आप जो भी आज्ञा दें मैं करने को तैयार हूँ। परन्तु किसी भी वात के लिए वोपण्णा की सहमति आवश्यक है।"

"वे राजा के प्रतिद्वन्द्वी के रूप में खड़े हैं न, उनकी सहमति कैसे प्राप्त हो?"

"वैसे आपको भी राजा का प्रतिद्वन्द्वी होना पड़ेगा, माँ। अव तक की वात कुछ और ही थी। अव से आगे की वात कुछ और।"

"वह तो सव हो चुका। अव कौन-सा रास्ता है?"

"एक साल पहले जैसा कि हमने कहा था उसके लिए आप तैयार हों तो···?"

"पति को वनवास देते समय पत्नी को अलग से कहने की आवश्यकता नहीं है। यह वात सीता ने भी कही थी, पण्डितजी। जो महाराज का होगा वही हमारा भी। हमें अलग से कुछ नहीं है।"

"रामचन्द्रजी की वात संसार में आज किस पर लागू हो सकती है, माँ?"

"उसे भी वहीं कहीं है, पण्डितजी। अम्माजी ने भी तो कहा था, 'मेरा पति ख़राव था तो मैंने उसे छोड़ा नहीं।' वड़ों की वातों को मानकर ही तो हमें चलना चाहिए।"

"आपकी बात में कोई दोष नही, माँ। देश पर विपत्ति आयी है, इसीलिए कुछ कह गया; क्षमा कीजियेगा। और क्या किया जाये, आज्ञा दीजिये।"

"आप जाइये। महाराज से मिलकर उन्हें बेटी को गद्दी पर बैठने के लिए राजी कर लीजिये। कुशालनगर जाकर बोपण्णा को सूचित करके इस झगड़े को यहीं रोकिये। बोपण्णा को बताइये कि हमारी यह प्रार्थना है कि उदार होकर हम सबके हितचिन्तक हों।"

लक्ष्मीनारायणय्या "जो आज्ञा माँ, देखता हूँ।" कहकर वहाँ से चला गया। घर आकर सारी बातें अपनी माँ से कहीं और बसव के साथ नाल्कुनाड को चल पड़ा।

148

यदि केवल यही बात होती कि उसे गद्दी छोड़नी होगी और बेटी को गद्दी पर बिठाना होगा तो संभवत: राजा मान जाता। पर बोपण्णा के कहने पर यह करने के लिए वह राजी न हुआ। उसने बसव को गालियाँ दीं। रानी की निन्दा की, लक्ष्मीनारायण को धमकाया, बोपण्णा को शाप दिया। बैठकर बात करने की सहनशक्ति न रही। उठा और हाथ-पाँव पटकते हुए कमरे में एक तरफ से दूसरी तरफ चीखता-चिल्लाता चक्कर लगाने लगा।

लक्ष्मीनारायणय्या यह सब बातें सुनता चुपचाप बैठा रहा। आखिर बसव ने वीरराज के पाँव पकड़कर, "मालिक बुरे दिन आये है, युद्ध के दिन हैं। समय के अनुसार चलना होगा। यह बात मान लीजिए, आगे देखी जायेगी" कहकर गिड़गिडाया। राजा पाँव छुड़ाकर फिर बार-बार चक्कर काटते हुए बोला, "अच्छी बात है, पण्डितजी। हम अपनी बेटी के लिए गद्दी छोड़ते हैं। आप वापस जाइये। 'आपका हर्जाना देंगे' कहकर गोरों को वापस कर दीजिये।"

"जो आज्ञा मालिक।"

राजा ने कहा, "यह बात आप अंग्रेज़ों से हमारी तरफ से कहेंगे।"

लक्ष्मीनारायण ने बात मानकर हाथ जोड़े और बसव के साथ बाहर आया।

राजा मान गये यह जानकर रानी को अँधेरे में कुछ प्रकाश नजर आया। सारी बातें माँ को बताकर लक्ष्मीनारायण बोपण्णा से मिलने कुशालनगर की ओर चल पड़ा।

149

फ्रेसर की योजना के अनुसार उसके मातहत पाँचों दल एक ही दिन लगभग दोपहर

के समय तक रास्ता तय करके कोडग की सीमा तक आ पहुँचे। फ्रेसर कुशालनगर की सीमा पर पहुँचा। पाँचों सीमाओं में सीमा के गुल्म नायकों ने दूसरी ओर के दल नायकों को बोपण्णा का आदेश अपने-अपने करणिक के द्वारा कहलवा भेजा।

कुशालनगर पहुँचे गुल्म में फ्रेसर ने स्वयं यह बातें सुनीं। "कोई एतराज नहीं" कहकर उत्तर भिजवाया। बाक़ी चारों ओर के नायकों ने भी यही उत्तर दिया। केवल अरकलगूड की सीमा पर कुछ बात बढ़ गयी।

बेंगलूर से चलते समय अप्पाजी कर्नल साहब के साथ चले। कुछ दूर चलने के बाद अरकलगूड की ओर गये दल को उस जगह से परिचित किसी व्यक्ति की आवश्यकता है जानकर उस दल से आ मिला। सीमा पर पहुँचकर सामने के गुल्म की बात सुनकर बोले, "यह क्या है, हम गुल्म नायक के पास जाकर बात समझकर आयेंगे तो बात स्पष्ट हो जायेगी।"

इसने तथा दल नायक ने आपस में सलाह की और यह निश्चय किया कि यह काम अप्पाजी ही करेंगे। अप्पाजी एक और आदमी को साथ लेकर आगे गये।

सीमा पर स्थित पहरेदारों को गुल्मनायक ने कड़ा हुक्म दिया था। हमारे आदेश के बिना अगर कोई यहाँ कदम रखे तो बस गोली मार दो।"

"सीमा के सैनिक ने आवाज़ दी, ठहरो। कदम आगे मत बढ़ाओ।"

अप्पाजी को यह बात सुनाई न पड़ी या सुनने पर समझ में न आयी। वह "मैं अकेला आ रहा हूँ एक बात करनी है" कहते हुए आगे बढ़ते ही गये। उन्होंने मुश्किल से चार कदम रखे होंगेकि तभी सीमा सैनिक ने बन्दूक उठाकर उनकी छाती का निशाना बाँधकर गोली दाग दी। अप्पाजी वहीं ढेर हो गये।

अप्पाजी के साथ आया व्यक्ति ज़मीन पर लेट गया। एक क्षण बाद उठकर अप्पाजी के शव को लेकर दस कदम पीछे चला गया। फिर गोली की आवाज़ सुनाई देने पर चाल धीमी करके शव को थामकर अपने दल की ओर चला गया।

साथ के लोग आगे आये, अप्पाजी के शव को शिविर में ले गये और पास के एक मैदान में गड्ढा खोदकर उनको दफना दिया। इस घटना को बताने के लिए दल के नायक ने कुशालनगर एक आदमी दौड़ा दिया।

150

इधर कुशालनगर में कर्नल साहिब ने बोपण्णा को कहला भेजा, "आप यहाँ आयेंगे या हम वहाँ आयें। अपनी इच्छा बताइये ? हम कोई ऐसा काम करना नहीं चाहते जिससे आपकी प्रतिष्ठा में कोई बट्टा लगे।" बोपण्णा ने कहलाया, "हम ही वहाँ

आयेंगे।" फिर आध घन्टे बाद उसके शिविर में गया। केसर ने बोपण्णा का आनन्द आदर से स्वागत किया। उसने डेरे में भीतर ले जाकर उसे पहले एक कुर्सी पर बैठाकर बाद में स्वयं बैठते हुए बोला, "आप कोडग के मन्त्री हैं। आपका स्थान ऊँचा है। आपका यहाँ आना आपका सौजन्य प्रकट करता है। जनता का आपको 'निर्गर्व शिरोमणि' कहना गलत नहीं।"

"छोड़िए भी, जनता हमारे बारे में नहीं जानती, पर आपकी बातें हमें अच्छी लगीं।"

"बड़ी प्रसन्नता की बात है। कम्पनी सरकार और कोडग के बीच की यह समस्या कैसे सुलझे ? इस बारे में आपका क्या विचार है ?"

"राजा ने अपनी बहिन और बहनोई के साथ अन्याय किया है। वे लोग आपके पास पहुँचे हैं। इस बारे में बात करने के लिए आपने अपने प्रतिनिधि भेजे थे। राजा ने उन्हें बन्दी बना लिया। बहिन और बहनोई के मान व प्राण रक्षा करने तथा प्रतिनिधियों को छुड़ाने के लिए ही आप कोडग पर सेना लेकर आये हैं।"

"राजा ने अपने भांजे का खून किया है। उन्हें दण्ड देना हमारा काम है। कम्पनी सरकार का मत है कि कोडग के भविष्य के लिए और उसकी भलाई के लिए एक उचित व्यवस्था करना हमारा कर्तव्य है।"

"बहिन और बहनोई की मान रक्षा में ही उनके बच्चे के खून की बात भी जुड़ जाती है। कोडग के भविष्य की व्यवस्था करना तो कोडग के प्रमुख लोगों का काम है, बाहर के लोगों का नहीं।"

"जो बात कोडग के प्रमुख लोग पसन्द नहीं करते वह उन पर लादने की हमारी किंचित् भी इच्छा नहीं। आप अपने देश की देखभाल कर सकेंगे यह बात कम्पनी सरकार जानती है। फिर भी ऐसे अवसरों पर देश के अपने प्रमुखों को ही कदम उठाना हो तो दोष सुधारने में देर लग सकती है। बाहर के मित्र ऐसे समय में विवाद समाप्त करने में सहायक ही होते हैं। इसी सहायता का ही उल्लेख हम आपसे अभी तक कर रहे थे।"

"प्रसन्नता की बात है। आप अपना उद्देश्य बताइये ?"

"राजा ने कम्पनी सरकार का अपमान किया है। कम्पनी सरकार द्वारा उनकी बहिन को आश्रय देने के कारण गुस्से में उन्होंने अपने भांजे का खून कर दिया। इस अपमान के दण्ड-स्वरूप हमें उन्हें गद्दी से उतारना है। खून के दण्ड-स्वरूप उन्हें मृत्यु-दण्ड दिया जाये या कुछ और इस बात पर विचार करना है।"

"राजा को हमारे प्रमुखों ने पहले से ही गद्दी से उतार दिया है। इस बारे में अब आपके आने की आवश्यकता नहीं।"

"ठीक है।"

"बहिन के बच्चे के खून के बारे में दण्ड देने का आप लोगों को अधिकार नहीं।

वे कम्पनी सरकार की प्रजा नहीं।"

"ठीक वात है। हमें पता चल गया था कि उनको दण्ड देने के वारे में आप स्वयं ही निश्चय कर चुके हैं। यदि आप मना करते हैं तो हम इसमें पड़ेंगे ही नहीं।"

"ठीक है। आगे की वात कहिये।"

"हमारे प्रतिनिधियों को तुरन्त छोड़ देना पड़ेगा। राजा की वहिन और वहनोई की उचित व्यवस्था करनी होगी। हमारे सेना के आने का ख़र्चा देना होगा। भविष्य में कोडग में अव्यवस्था न हो इस वारे में हमारे मन के मुताविक व्यवस्था करनी होगी।"

"अव्यवस्था नहीं होनी चाहिए। आपकी यह वात ठीक है लेकिन हमारी व्यवस्था आपके मन मुताविक क्यों हो?"

"इसलिए कि कोडग हमारे शासित प्रदेशों के वीच में है। यहाँ जो भी गड़वड़ होती है उसकी उन प्रदेशों में किसी-न-किसी रूप में प्रतिक्रिया होती है। हमारे यहाँ गड़वड़ी न हो इसलिए आपको अपने यहाँ व्यवस्था रखनी होगी।"

"अच्छी वात है, साहव। इसे आप किस रूप में करना चाहेंगे?"

"हमने किसी ढंग विशेष का निश्चय नहीं किया। आप और हम मिलकर विचार करेंगे। जिस ढंग को आप पसन्द करेंगे हम वही अपनायेंगे। आपकी इच्छा के विरुद्ध हम एक कदम भी नहीं उठायेंगे।"

"वहुत प्रसन्नता हुई साहेव। आगे वताइये?"

"हम लोग इतनी दूर कोडग के लोगों की भलाई के कारण ही आये हैं। आपके आह्वान पर ही हम आगे वढ़ेंगे। राजगद्दी के उत्तराधिकारी के निर्णय के वारे में हम आपकी सहायता करके आपकी सेवा करेंगे। नये राजा के गद्दी पर वैठने के वाद और यह झगड़ा सन्तोपजनक रूप से निपट जाने के वाद आपसे आज्ञा लेकर आपके मित्र के रूप में हम अपने स्थान पर लौट जायेंगे।"

"तो आपका कहना है कि इसके लिए आप मडकेरी आना ही चाहते हैं।"

"आपकी इच्छा न हो तो हम नहीं आयेंगे। आप उचित प्रवन्ध करके हमें सूचित कीजिये। हम यहीं से ही लौट जायेंगे।"

"अच्छी वात है। जरा सोचकर एक घण्टे वाद आपको अपना निश्चय सूचित करेंगे।"

"उत्तराधिकारी के विपय पर विचार करते समय आप जिन व्यक्तियों का सोचते हैं उनके नाम नहीं तो कम-से-कम दो और व्यक्तियों के वारे में भी अवश्य विचार करना पड़ेगा।"

"कौन-कौन?"

"शायद राजा की रानी और उसकी वेटी तो आपके हिसाव में होंगी ही।

तीसरी है राजा की बहिन। इसे आप मानें या न मानें। इसीलिए हमने शायद शब्द का प्रयोग किया है। अभी तक जो व्यक्ति आपके ध्यान में नहीं आये हैं वे दो और हैं। राजा के ताऊ का लडका एक और दूसरा राजा का बड़ा भाई।"

"राजा के ताऊ का पुत्र और सगा भाई?"

"राजा के ताऊ अप्पाजी नाम से कोई हैं यह बात आपको पता होगी।"

"लोगों का कहना है कि राजा के ताऊ अप्पाजी को मरे तीस वर्ष हो गये।"

"हो सकता है। पर अपने को अप्पाजी बताकर हमारे साथ एक सज्जन आये हैं।"

"कहाँ हैं?"

"यहाँ नहीं है। अरकलगूड के दल के साथ गये हैं। आप चाहें तो हम उन्हें मडकेरी बुला लेंगे।"

"आप उनके बेटे की भी बात कह रहे हैं?"

"जी हाँ।"

"उनके बेटे कहाँ हैं?"

"यहाँ नहीं हैं। मडकेरी में आपसे मिलेंगे।"

"और, दूसरे राजा के सगे भाई?"

"जी हाँ।"

"यह तो हमारे लिए एकदम नयी बात है। राजा की एक सगी बहिन के अतिरिक्त किसी और बात का हमें पता नहीं।"

"एक भाई और है इस बारे में हमें चिट्ठियाँ मिली हैं। इससे सम्बन्धित सब कागज हम लाये हैं। आवश्यकता पड़ने पर जब आपको अवकाश हो तब दिखायेंगे।"

"अच्छी बात है साहब। इसका मतलब यह हुआ कि इन सब पर विचार करने के लिए आपका मडकेरी मे रहना अच्छा है।"

"यह आपकी इच्छा है। आपके बुलाने पर आने में हमें कोई आपत्ति नहीं है।"

"आप यही समझिये हमने बुलाया है, आप आये हैं। काम हो जाने पर हमारी जनता जब कहेगी तब आपको जाना होगा। यह विश्वास बनाये रखिये।"

"आपके स्नेह से बढ़कर हमारे लिए और कोई चीज नहीं। हम कोडग की जनता के मित्र होकर आ रहे हैं। सेवक बनकर आ रहे हैं। जिस समय यह निश्चय हो जायेगा कि वे सुखी हैं उसी क्षण उनकी आज्ञा लेकर हम लौट जायेंगे।"

"ठीक, अब और कोई बात तो नहीं न?"

"और तो कोई बात नहीं। आपकी हमारी स्वीकृतियों के साराश को अंग्रेजी और कन्नड़ मे दस-दस वाक्यों में लिखकर आपके पास भेजता हूँ। अंग्रेजी का मसौदा सही होने के बारे में दुभाषिया सही करेगा। ये सारी बातें सही ढंग से आ गयी इसे मैं देखूँगा। आप कन्नड़ का साराश देख लेंगे तभी हम दोनों हस्ताक्षर

करेंगे। उसकी एक प्रतिलिपि आपके पास रहेगी और एक मेरे पास।"

"आप चाहते हों तो कर लीजिये।"

"यह राजनय में एक प्रथा है। कोई भी कहीं भी बात करके मुकर न जाये इसलिए हमारे यहाँ लिखकर रखने की यह एक प्रथा है।"

"कही हुई बात से कोई मुकर जाये तो किसी बात से भी मुकर सकता है। खैर, इसमें हमारी ओर से कोई बाधा नहीं।"

151

कर्नल फ्रेसर बहुत बुद्धिमान व्यक्ति था। वह केवल सेना के मामलों में ही चतुर न था, अपितु लोक सम्पर्क स्थापित करने तथा प्रशासन में भी वह अनुभवी और निपुण था। अपने और बोपण्णा के बीच हुए करार को उसने तुरन्त दस वाक्यों में अंग्रेजी में लिखा और दुभाषिये को बुलाकर उसका अनुवाद कन्नड़ में करने को कहा। उसके कन्नड़ अनुवाद को बोपण्णा के पास भिजवाकर कहलवाया, "हम दोनों की बातचीत के सारांश इसमें आ गये हैं या नहीं, बताने की कृपा करें।"

बातें ठीक ही थीं। बोपण्णा ने अपनी सहमति जताकर पत्र वापस भिजवा दिया।

फ्रेसर ने दुभाषिये को इसकी दो प्रतियाँ तैयार करने को कहा और बोपण्णा से कहला भेजा, "मैं दोपहर को आपके शिविर में आऊँगा। साथ में करार-पत्र लेता आऊँगा। दोनों एक-साथ हस्ताक्षर कर सकते हैं।"

संध्या के समय वह बोपण्णा के पास आया। बोपण्णा ने उसका मर्यादापूर्वक स्वागत किया। पहले उसे बिठाकर बाद में स्वयं बैठा। और ऐसा व्यवहार किया कि कोडगी शालीनता में अंग्रेजों से कम नहीं। करार-पत्रों को करणिक से पढ़वाकर उस पर दोनों ने हस्ताक्षर किये। फ्रेसर ने एक प्रति बोपण्णा को दी और उसके हाथ से दूसरी प्रति स्वयं ले ली। इस प्रकार इन दोनों के बीच में करार ने एक रूप लिया।

मुख्य काम समाप्त होने के बाद फ्रेसर बोपण्णा से दोस्ती की दो बातें करने बैठ गया। वह बोला, "मैसूर बहुत सुन्दर प्रदेश है। हम जिस रास्ते से आये हैं वह बहुत सुन्दर है। कावेरी आँखों को लुभा लेती है। कोडग सुन्दर देश है। कोडगी वीर हैं, स्वतन्त्रता-प्रिय हैं और सुना है कि वे शालीन भी हैं। उसने इसी प्रकार की कुछ बातें कीं। बोपण्णा ज्यादा बात करनेवाला आदमी न था। परन्तु उसे पता था कि यह अंग्रेजों का एक रिवाज है। इसलिए वह उसकी बातें शिष्टता-पूर्वक सुनता रहा। उसकी दो-चार बातों का बीच-बीच में जवाब भी देता रहा।

152

जब यह लोग इस प्रकार बातचीत कर रहे थे कि तभी बाहर लक्ष्मीनारायण की आवाज सुनायी दी। बोपण्णा ने सिर उठाकर उधर कान लगाये। वह लक्ष्मीनारायण ही है। यह निश्चय हो जाने पर वह फ्रेसर से, "थोड़ी देर के लिए क्षमा करें, लगता है हमारे साथी मन्त्री आये हैं, उनका स्वागत करना है," कहता हुआ उठकर द्वार के पास गया।

लक्ष्मीनारायण कुशालनगर पहुँचते ही बोपण्णा के शिविर पर आ गया। बोपण्णा से मिलना है कहने पर करणिक ने कहा, "अंग्रेज कर्नल साहब आये हैं। मन्त्री महोदय उनसे बातचीत कर रहे हैं।"

लक्ष्मीनारायण ने यह नहीं सोचा था कि अंग्रेज कर्नल बोपण्णा के यहाँ पहुँचने तक नौबत आ गयी है। यह बात सुनते ही उसका हृदय धक् से रह गया। उसे लगा कि राजा के द्वारा भेजा गया प्रस्ताव व्यर्थ हो गया।

लक्ष्मीनारायण को देखते ही बोपण्णा ने कहा, "नमस्कार पण्डितजी, पधारिये।" उसके पास आने पर, "कर्नल साहब आये हैं, आप भी उनसे मिल सकते हैं।"

"उससे पहले हम दोनों को दो बातें करनी हैं न बोपण्णा?"

"तो मैं उनको भेज दूँ।"

"भेज दीजिये। हमारी बातें हो जाने के बाद यदि आवश्यकता पड़ी तो हम ही आकर उनसे मिल लेंगे।"

"अच्छी बात है। उन्हें सूचित करता हूँ।"

यह कहकर बोपण्णा फ्रेसर के पास गया और बोला, "कृपा करके आप हमें थोड़ा अवकाश दीजिये। हम ही आकर आपके शिविर पर आपसे मिलेंगे।"

फ्रेसर अपने शिविर को चला गया। बोपण्णा लक्ष्मीनारायण के पास आया।

153

बोपण्णा बोला, "आप यहाँ आयेंगे यह बात मैंने सोची नहीं थी।" लक्ष्मीनारायण ने सारी बातें कह सुनायीं। सब बातें सुनने के बाद बोपण्णा बोला, "आप मुझे पत्थर दिल न समझिये, पण्डितजी। मुझे रानी साहिबा पर दया आती है। पर मैं राजा की बात सुनना नहीं चाहता।"

"राजा के मामले में आपको जितनी चिढ़ है उतनी मुझे भी है, बोपण्णा। लेकिन अब यह बात खत्म हो गयी है। राजा ने स्वयं गद्दी छोड़ने को कह दिया

बाद लक्ष्मीनारायण को ऐसा लगा कि विवाद आगे बढ़ाने में लाभ नहीं, वह चुप रह गया।

154

यहाँ अपनी बातचीत खत्म करके ये दोनों कर्नल साहब के शिविर को गये। रास्ते में बोपण्णा ने लक्ष्मीनारायण से कहा, "अप्पाजी और उसका बेटा कर्नल साहब से मिले थे। अप्पाजी अरकलगूड से आनेवाले दल के साथ हैं।" लक्ष्मीनारायण बोला, "प्रसन्नता की बात है, पर जनता को उन्हें मानना मुश्किल है। बीस वर्ष से अधिक बाहर ही रहने के कारण इनको पहचानने वाले ही कम हैं और उन्हें स्वीकार करनेवाले कितने होंगे कह नहीं सकता।"

बोपण्णा : "हमारे राजा का एक बड़ा भाई है, ऐसा इन्हें किसी ने पत्र में लिखा है और ये उन्हें दिखाने को भी तैयार हैं।"

लक्ष्मीनारायण : "हमारी जानकारी में तो कोई नहीं हैं। अगर कोई पैदा करके ले आता है तो ले आये, देखेंगे।"

बोपण्णा : "मैंने भी साहब से यही कहा है।"

फ्रेसर साहब के शिविर पर पहुँचकर बोपण्णा ने उससे लक्ष्मीनारायण का परिचय कराया। कर्नल ने उठकर लक्ष्मीनारायण को हाथ जोड़े और बैठने को कहा।

सभी बैठ गये। कुशल-क्षेम पूछा गया। बोपण्णा ने, "हमारे पण्डितजी करार-पत्र देखना चाहेंगे" कहकर उसने अपनी प्रति लक्ष्मीनारायण को थमा दी। लक्ष्मीनारायण ने करार-पत्र को पढ़ा और पूछा, "अब इस पर कुछ और नहीं हो सकता?"

"करार आपको पसन्द नहीं आया, पण्डितजी?" बोपण्णा ने पूछा।

"एक बात मेरी समझ में नहीं आ रही, बोपण्णा।"

"कौन-सी बात का ज़िक्र कर रहे हैं?"

"अब राजा का क्या करना है?"

"करना कुछ नहीं। चुपचाप आना और जैसे हम कहते हैं वैसा करना है।"

"आ जायेंगे क्या, बोपण्णा?"

"न आयें तो पकड़कर मँगाया जायेगा।"

"हमारे आदमी जायेंगे क्या?"

"हमारे आदमी ही गये तो इज्जत रह जायेगी, नहीं तो बाहर के लोगों को भेजेंगे, पण्डितजी।"

"इतना पत्थर दिल हो जायें तो कैसे चलेगा?"

"मैंने पहले ही कह दिया है पण्डितजी, कि हमारे और आपके विचार एक ही हैं पर सोचने के ढंग अलग-अगल हैं। मेरा कहना अगर गलत दिखे तो कहिये। फिर से सोचूंगा। ठीक लगे तो सुधार लूंगा। ठीक न लगे तो मुझे जो ठीक लगेगा वही करूँगा। आपको चुप रहना होगा। मेरी वात का बुरा मत मानिये।"

लक्ष्मीनारायण असहाय होकर वैठ गया और वोला, "कोडग आपका है, वोपण्णा उसे परायों को दे सकते हैं।"

155

लक्ष्मीनारायण को लगा कि उसका प्रतिनिधित्व निष्फल हुआ। अतः अव उसके पास राजा को कहने के लिए कुछ नहीं था। वह वोपण्णा की अनुमति लेकर वापस मडकेरी लौट आया। उसने आते ही तुरन्त रानी और राजा को कहला भेजा कि अव कोई काम उसके वश में नहीं रहा। उसके स्वयं न आने पर रानी ने यह सोचा कि मिलना नहीं चाहते हैं। इसलिए वात को वहीं छोड़ दिया। इसकी कहलवायी हुई वात वसव के द्वारा जव राजा तक पहुँची तो वह ग़ुस्से से चिल्ला उठा, "क्या हुआ यह ! स्वयं आकर वताने की जगह कहलवा भेजा है उस वामन ने ?"

लक्ष्मीनारायण के लौटने के दूसरे दिन कर्नल फ्रेसर एक दल के साथ कुशालनगर आया। दोपहर को उसका दल वोपण्णा के दल के साथ मिलकर मडकेरी की ओर चला। उस शाम तक आधा रास्ता तय करके दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर शेप आधा रास्ता भी दोपहर तक तय करके वे मडकेरी पहुँचे।

वोपण्णा ने पहले ही सूचना भेजकर इस यात्रा के लिए आवश्यक सभी सुविधाओं का प्रवन्ध किया था। रास्ते में पड़नेवाले गांवों के लोगों ने उन सव का स्वागत करके उचित आदर दिया। इस जनता की वेशभूपा, इनका आदर-विनय, इनके तुरही, नगाड़े, ढोल, ताशे, इनकी प्रसन्नता और कोलाहल आदि से चकित होकर कर्नल प्रसन्न हुआ और सोचने लगा—इन पर राज्य करने में कोई कठिनाई न होगी।

मडकेरी में भी कोडग के तक्क लोगों ने उत्तय्या तक्क के नेतृत्व में और वाज़ार के व्यापारियों ने चिक्कण्णा को अगुआ वनाकर शहर के अन्य प्रमुखों के साथ मिलकर उनका स्वागत किया। कर्नल फ्रेसर ने वोपण्णा की अनुमति लेकर [illegible] उन लोगों से ही [illegible] "हम आपके मित्र वनकर आये हैं। [illegible] से हमें केवल ऋणी [illegible] प्रार्थना

सहायक बनें यही हमारी इच्छा है। हमारी यह प्रार्थना आपके नेता श्रीमान् बोपण्णा स्वीकार कर चुके हैं। वे हमें बुलाकर लाये हैं और आपने स्वागत के द्वारा अपनी सहमति व्यक्त कर दी है। इस स्वागत तथा इस आदर के लिए हम आपके आभारी है।"

एकत्रित जनता ने 'वाह-वाह' कहकर अपना सन्तोष व्यक्त किया। फ्रेसर बोपण्णा के साथ उसके तैयार किये गये शिविर में गया।

दोपहर को वह बोपण्णा के घर आया। बोपण्णा को साथ लेकर अपने शिविर लौटा। दोनों ने वहाँ बैठकर आगे के कार्यक्रम के बारे में विचार-विनिमय किया।

बातचीत शुरू होने से पूर्व ही बोपण्णा ने लक्ष्मीनारायण को आकर बातचीत में भाग लेने को कहलवा भेजा था। लक्ष्मीनारायण ने कहलवा भजा, "थोड़ी देर के बाद आऊँगा, आप लोग बातचीत जारी रखें। बोपण्णा का निर्णय ही मेरा निर्णय है।" दो घण्टे बाद वह भी वहीं पहुँच गया।

उस समय तक ये लोग कार्यक्रम निश्चित कर चुके थे। यह निश्चय हुआ कि फ्रेसर कम्पनी सरकार के प्रतिनिधि के रूप में घोषणा करेगा, "कोडग के राजा वीर राजेन्द्र ने देश का शासन भलीभाँति नहीं चलाया और उन्होंने दुष्टतापूर्ण व्यवहार किया, प्रजा को कष्ट दिये, कई ख़ून किये, अंग्रेज़ों के प्रतिनिधियों को क़ैद में रखकर कम्पनी सरकार का अपमान किया। अतः उनको दण्ड देने के लिए हमें सेना सहित आना पड़ा। राजा के हाथों कष्ट पाये व्यक्ति हमारे पास उनकी शिकायतें लेकर आये। यही जाँच करना हमारा उद्देश्य है। यहाँ आने पर हमें पता चला कि यहाँ के प्रमुखों ने वीर राजेन्द्र को गद्दी से उतार दिया है। अब इस विषय में हमें करने को और कुछ नहीं। कोडग की जनता को एक नया राजा चुनना है। जब हम यहाँ आ ही गये हैं तो इस कार्य में हम आपको सहायता देंगे। इस गद्दी के कुछ दावेदारों के पत्र कम्पनी सरकार के पास पहुँचे हैं। इनको आप के प्रमुखों की सभा के सम्मुख व्यक्त करेंगे। कोडग की जनता सुख से रहे यही कम्पनी सरकार का उद्देश्य है। इसका निर्णय कोडग की जनता को ही लेना है। यही कम्पनी सरकार की इच्छा है।" यह उस घोषणा का सारांश था।

वीरराज अंग्रेज़ी सेना के आने की खबर से डर के मारे नाल्कुनाड राजमहल भाग गया है। कोडग के तक्कों ने आपको गद्दी से उतार दिया है, आपको तुरन्त वापस आकर हमारे सुपुर्द होना चाहिए। यह सूचना करणिक द्वारा भेज देनी चाहिए। साथ में पचास आदमी कोडग की सेना से और पचास कम्पनी सरकार की ओर से उसे लाने जायें। यदि वह मान जाये तो चुपचाप ले आया जाये। यदि हठ करे तो लड़ाई करके पकड़ लाया जाये।

रानी तथा राजकुमारी के साथ भद्रता का व्यवहार किया जायेगा। उन्हें किसी प्रकार कष्ट नहीं दिया जायेगा। यह आश्वासन दिया जाये।

अगले दिन सवेरे प्रमुखों की सभा हो। उसमें नये राजा के चुनाव का विचार किया जाये।

फिलहाल इन्हीं बातों पर विचार होना था।

जब इन्होंने इतनी बातें तय कर लीं और करणिक ने इन सबको लिपिबद्ध कर लिया, तभी लक्ष्मीनारायणय्या आ पहुँचा। उन्होंने इस कार्यक्रम की स्वीकृति दे दी।

इन सब बातों के एक घण्टे बाद पचास कोडग के सैनिक और पचास कम्पनी के सैनिक लेफ्टिनेंट कर्नल ऑक्सन के नेतृत्व में नाल्कुनाड राजमहल की ओर चल पड़े। घोड़े और आदमियों को थकावट न हो इस विचार से धीरे-धीरे चलते हुए रात को रास्ते में पड़ाव लेकर प्रातः पुनः प्रयाण कर दूसरे दिन सुबह पूरी तरह सूरज निकलने तक राजमहल के पास पहुँचे।

156

फ्रेसर साहब की घोषणा मडकेरी की जनता के मन बहुत भायी। बहुत से लोग एक-दूसरे से अपने मन की बात कह रहे थे, "ये कम्पनी के लोग कितने ऊँचे हैं! सेना लाये हैं। अगर वे हमें धमकाना चाहें तो उन्हें कौन रोक सकता है? फिर भी कितनी इज्जत से व्यवहार कर रहे हैं!" उनकी बातों का यही सारांश था।

रात इसी तरह बीत गयी। प्रातः काल कोडग के तक्क, बाज़ार शेट्टियों के मुखिया तथा शहर के प्रमुख जन राजमहल के सामने के मैदान में इकट्ठे हुए। सभा दस बजे शुरू होनी थी। कर्नल साहब उसके लिए तैयार हो रहे थे।

एक नौकर ने आकर सूचना दी कि कोई स्त्री आप से मिलना चाहती है। "उनसे बैठने को कहो, अभी आया।" कह साहब दो क्षण बाद बाहर आया।

उससे मिलने आयी स्त्री और कोई नहीं, भगवती थी। उसने खड़ी होकर नमस्कार किया। इतने में दुभाषिया एक कमरे से बाहर आया और साहब के एक ओर खड़ा हो गया। उसने भगवती से कहा, "आपको जो कहना है कहिये!"

भगवती बोली, "मुझे यहाँ के लोग भगवती कहते हैं। मुझे कर्नल साहब को कुछ सूचित करना है। वही बताने आयी हूँ।"

"बड़ी खुशी की बात है, कहिये!" फ्रेसर बोला।

"मैं कौन हूँ यह बात आपको मुझे विस्तार से बतानी है। बेंगलूर के साहब को इससे पहले कुछ पत्र मिले ही हैं। लिंगराज का एक और बड़ा बेटा है। कोडग के राजा बनने के लिए इस राजा से उसे अधिक अधिकार हैं यह बात उन पत्रों में बतायी गयी है।"

"जी हां।"

"वह पत्र मैंने ही लिखे थे।"

"यह बात है, खुशी हुई। इन सब बातो पर अब सभा में विचार किया जायेगा। आप ये बातें वहीं बताइये।"

"कहूंगी, लेकिन यहाँ मैंने यह बातें इसलिए कहीं ताकि आपको मेरा परिचय मिल जाये।"

"अच्छा।"

"सुना है आपने राजा को पकड़ मँगाने के लिए सेना भेजी है। वहाँ जो काम होना चाहिए उस बारे मे एक सूचना देने की इच्छा हुई।"

"जरूर दीजिये।"

"यदि महाराज मानकर चुपचाप आपकी सेना के साथ आ जायें तो अच्छा है। शायद मानेंगे नहीं। आपकी सेना को शायद राजमहल पर घेराव करना पड़ेगा। इसके लिए आपके भेजे आदमी पूरे न होंगे।"

"आप बहुत ही बुद्धिमती दीख पड़ती है। इस समय आपके विचार से कितने आदमी गये होंगे?"

"लगभग सौ आदमी। कम-से-कम सौ आदमी और भेजना आवश्यक है। वैसे भी महाराज आसानी से हाथ नहीं पड़ेंगे। वे स्वभाव से हठी हैं। वे महल मे बचकर जंगल में घुस सकते हैं। आपको परेशानी में डालेंगे। प्रबन्ध ऐसा होना चाहिए कि बचकर न जा पायें।"

"क्या करना चाहिए? सूचित कीजिये अवश्य करेंगे।"

"नाल्कुनाड के राजमहल के कमरे मे से पास के जंगल मे निकलनेवाली एक सुरंग है। घेराव से मुकाबला करना व्यर्थ लगने पर महाराज उसी सुरंग से बचकर भाग सकते हैं। आपको सुरंग के बाहरी दरवाज़े पर सिपाही खडे करने चाहिए ताकि वे उस ओर आयें तो उन्हें पकड़ा जा सके।"

"सुरंग का बाहरी दरवाजा कहाँ है? आप समझा सकेंगी?"

"जी हाँ, ज़मीन पर निशान लगाकर बता दूंगी, आपके आदमी उसे समझ लें।"

"आपका धन्यवाद, भगवतीजी। हम आपके जितने भी कृतज्ञ हों उतना ही कम होगा। हम जिस काम से आये हैं वह पूर्ण होते ही हम आपके इस उपकार का बदला, आप जिस रूप मे चाहेंगी उस रूप मे चुका देने का प्रयास करेंगे, भगवतीजी।"

"इसमें उपकार की कोई बात नहीं है। इस राजा का बडा भाई राजा बने यही हमारी एकमात्र इच्छा है।"

साहब को यही प्रश्न पूछने की इच्छा हुई कि आपका उससे कोई सम्बन्ध है। यह प्रश्न उसके मन में बिजली की भाँति कौंध गया। पर उसने पूछा नहीं,

मात्र 'अच्छी बात है' ही कहा ।

"राजा के साथ उसका मन्त्री बसवय्या भी है। आपके आदमियों को चाहिए कि उसे भी पकड़ लायें। दोनों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होना चाहिए। वे कुशलतापूर्वक यहाँ पहुँचें आप ऐसा प्रबन्ध कीजिये ।"

इस बात में व्यक्त हुआ उसका मनोभाव साहब को कुछ विचित्र-सा लगा। वह राजा इसे नहीं चाहिए तो फिर उन्हें कष्ट हो या न हो—इन सारी बातों से इसे क्या मतलब ?

संभवतः यह सतर्कता मन्त्री के कारण होगी। उसे ही यह चाहती होगी। वह इसका प्रिय होगा। स्त्री रूपवती है। इसका कोई अपना प्रिय हो तो कोई आश्चर्य नहीं। पर यह ऐसी बात मुंह से निकालनेवाली स्त्री नहीं है। काग़ज़ पैंसिल मँगवाकर भगवती के हाथ में देकर साहब ने कहा, "राजमहल का द्वार किधर है और सुरंग द्वार के किस तरफ है ?"

भगवती ने निशान बनाकर दे दिये।

साहब बोला, "आपसे हमारा बड़ा लाभ हुआ। आपके पास कुछ और भी बताने को है ?"

"और कुछ नहीं, हम देवी की उपासिका हैं। इस अवसर पर राजा आपके हाथ लग जायेंगे। परन्तु उनको इस झगड़े में कोई हानि नहीं पहुँचनी चाहिए, चोट नहीं लगनी चाहिए, नहीं तो हमने जो व्रत रखा है उसमें बाधा पहुंचेगी, इसलिए इस बात का ध्यान रहे कि उन्हें या उनके मन्त्री को किसी प्रकार की हानि न पहुँचे। उन दोनों को यहाँ सुरक्षित पहुँचाने का प्रबन्ध कीजिये। यही हमारी आपसे विशेष प्रार्थना है।"

"बहुत अच्छी बात है, भगवतीजी। उसका हम ध्यान रखेंगे।"

भगवती आज्ञा लेकर चली गयी। साहब ने एक सेवक को बुलाकर बोपण्णा के नाम एक छोटा-सा पत्र भेजा : "हमें सूचना मिली है कि नाल्कुनाड राजमहल को कुछ और आदमी भेजने में ही भलाई है। हमारी एक टुकड़ी जायगी। आप भी एक टुकड़ी दें तो अच्छा होगा। रास्ता ठीक से जानेवाले आदमी हों।"

बोपण्णा ने तुरन्त उत्तर भेज दिया। एक गुल्म नायक और साथ में पचास कोडगी थोड़ी ही देर में साहब के बंगले पर आ पहुँचे।

इस थोड़ी देर के बाद यह अतिरिक्त दल कप्तान कारपेंटर के नेतृत्व में नाल्कुनाड चल पड़ा।

157

लक्ष्मीनारायणय्या के स्वयं न आकर केवल किसी के द्वारा कहलवा भेजने से वीर-

"करता हूँ मालिक । दो-एक घण्टे के अन्दर अगर वे लोग चढ़ आये तो आपका यहाँ रहना ठीक नहीं ।"

"यहाँ रहना ठीक नहीं तो कहाँ मरने को कहता है ?"

"एक या दो घण्टे में इन्हें रोक सकता हूँ । इतने में आपका इधर-उधर घूम कर उन्हें अपनी शक्ल दिखाकर सुरंग के रास्ते से निकल जाना अच्छा है। यदि इनके हाथ चढ़ना नहीं चाहते हैं तो कुछेक दिन जंगल में सिर छिपाकर रह सकते हैं। अंग्रेजों की सेना लौट जाने के वाद वाहर आया जा सकता है और मडकेरी भी जा सकते हैं ।"

"यह ठीक है । चल ऐसा ही कर। चार वन्दूकें दगवा । मेरी वन्दूक़ भी ला ।"

"जो आज्ञा मालिक ।"

वसव ने करणिक को आज्ञा दी, "जाकर उनसे कहो। महाराज इस वात के लिए तैयार नहीं । अगर आप ज़वर्दस्ती करेंगे तो लड़ाई होगी औरलोग मरेंगे ।"

चार-दीवारी के भीतर खड़े किये अपने आदमियों को, "तैयार हो जाओ, आज्ञा मिलते ही गोली चलाओ । गोलियाँ वेकार न जायें । एक गोली में कम-से कम एक आदमी तो मरना ही चाहिए । मुस्तैद रहो ।" आज्ञा देकर राजा के हाथ में एक वन्दूक़ थमाते हुए वसव वोला, "आपको अन्दर से ही गोली चलानी है, मालिक । वाहर क़दम न रखियेगा ।" उसने पाँच घुड़सवारों को वुलाया। मादप्पा नामक व्यक्ति को उनका नायक वनाया और आज्ञा दी, "पिछवाड़े की सुरंगवाली झोंपड़ी पर प्रतीक्षा करो। दो-एक घण्टे में महाराज पहुँच जायेंगे। पहुँचते ही उन्हें घोड़े पर सवार कराकर पडुकडे के जंगल की ओर ले जाना ।"

मादप्पा ने कहा "जो आज्ञा" और सैनिकों को लेकर सुरंग के द्वार की ओर पिछवाड़े से निकल गया ।

158

करणिक ने राजमहल से जाकर आंग्ल दलपति को वसव का सन्देश दिया । इस पर आंग्ल दलपति वोला, "हमें आज्ञा मिली है कि महाराज और मन्त्री महोदय को तनिक भी कष्ट न पहुँचे । हमें उन्हें किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचानी है। लड़ाई ही करनी है तो लड़ाई समाप्त होने तक वे ओट में ही रहें । हमें उन्हें गिरफ़्तार करके ले जाना है ।" फिर यह सोचकर कि लड़ाई कैसे की जाये अपने साथियों की व्यूह-रचना में लग गया ।

करणिक के महल लौटकर आंग्ल दलपति की वात वताने भर की देर थी कि महल की ओर से वन्दूक़ की आवाज़ सुनायी दी। इधर से भी गोलियाँ चलने

लगी। लड़ाई शुरू हो गयी।

अंग्रेज दलपति का उद्देश्य था कि जमीन की ऊँचाई-निचाई का फ़ायदा उठाते हुए छिपते-छिपाते उसके दल के सौ व्यक्ति दो हिस्सों में अलग-अलग आगे बढ़ें। इसमें कइयों को चोट लगेगी ही। शेष में अधिकांश लोगों को चार दीवारी के द्वार में घुसने की कोशिश करनी चाहिए। सामनेवालों पर गोली चलाते हुए महल मे घुस जाना चाहिए।

उसे पता था कि यह काम आसान नही। महल की ओर के प्रबन्ध को और दृढ़ता को देखकर उसने सोचा, यदि कुछ और लोग साथ होते तो अच्छा था।

लड़ाई कुछ देर चली। ये लोग कोई पचास गज आगे बढ़े ही थे कि इतने में मडकेरी से दूसरे दल के अधिकाश लोग इनसे आ मिले।

राजा महल के ऊपरी हिस्से से कभी इस खम्भे की ओट से और कभी उस खम्भे की ओट से अपने और दूसरे दल की लड़ाई देखता रहा। अपनी तरफ़ की गोलियों से दूसरो के चार लोगों के गिरने से उसे कुछ धैर्य हुआ।

तब तक बाहरवाले एक-दो को घायल ही कर पाये थे। बसव महल के आँगन मे एक ऊँची जगह पर खड़ा होकर, "इधर से मारो, उधर से गोली मारो" बताता भाग-दौड़ कर रहा था। पहले घण्टे मे कुल मिलाकर महल का ही पलड़ा भारी पड़ा।

कुमुक का दस्ता पहुँचते ही अंग्रेज दलपति ने सोचा कि अब और साहस से आगे बढ़ा जा सकता है। उसके सैनिक तेजी से आगे बढ़े। काफ़ी आदमियों को चोटें भी आयी। पर फिर भी वे उसी वेग से आगे बढ़ते चले गये, तो दूसरे ही घण्टे में वे चारदीवारी के पास पहुँच जायेंगे। बाद मे महल के लोगों को वह सुविधा न रहेगी जो अब तक है। पर आमने-सामने की लड़ाई में अपने लोगों को भी ज्यादा खतरा रहता है।

इस समय तक बसव के भेजे पाँच घुड़सवार सुरंग के द्वार पर जा पहुँचे। मादप्पा ने इनमे से एक को सुरंग के एक ओर, दूसरे को दूसरी ओर खड़ा कर दिया कि राजा के आते ही उनको घोड़े पर सवार कराके एक ख़ाली घोड़ा साथ लेकर चल दें। उनके सौ गज चले जाने के बाद बाकी दो भी भाग लें। इतना समझाकर वह स्वयं भी प्रतीक्षा में खड़ा हो गया। आधे घण्टे मे पाँच और घुड़सवार वहाँ आ पहुँचे। उनका नायक मुद्दप्पा था। वह मादप्पा से ऊँचा अधिकारी था। मादप्पा उसे जानता था। परन्तु उसे यह पता न था कि वह बोपण्णा या अंग्रेजों के साथ है। आते ही मुद्दप्पा ने पूछा, "महाराज अभी नहीं पहुँचे।" मादप्पा ने 'नहीं' कहकर तुरन्त सोचा, इसे तो मडकेरी में होना चाहिए था। यहाँ कैसे पहुँचा! फिर पूछा, "आप कब पहुँचे?" मुद्दप्पा ने कहा, "अभी तो इन सब बातों की जरूरत नहीं, जो काम मिला पहले उसे पूरा करो।"

यह कहते हुए मुद्दप्पा ने साथ के चारों आदमियों को आगे बुलाया और सुरंग के द्वार पर और पास खड़ा कर दिया। इन नये आदमियों के आने की दिशा से ही और दो आदमी आ पहुँचे। लगाम और जीन से कसे दो घोड़े भी उनके साथ थे।

मादप्पा के मन में एक ही विचार था कि मुद्दप्पा को वसव ने ही भेजा होगा। वह यह सोचकर चुप रह गया, कि अच्छा हुआ काम में और पाँच सहायक आ गये।

159

राजमहल के सामने लड़ाई और तेज़ हो गयी। वाहर के लोग चार दीवारी के समीप पहुँच गये। वसव आँगन में से अपने आदमियों को धैर्य वँधाता भीतर की ओर भागकर गया और राजा से प्रार्थना की, "अव महाराज का यहाँ रहना ठीक नहीं। सुरंग से वाहर निकल जाइये।"

राजा ने पूछा, "तुम क्या करोगे ?"

"मैं भी आ जाऊँगा, आप चलिये। वाहर निकलते ही आगे चले जाइये, मैं पीछे से आ जाऊँगा, मेरी प्रतीक्षा न करें।"

राजा को सुरंग में उतारकर पीछे एक आदमी को भेजकर वसव फिर आँगन में आकर खड़ा हो गया।

सुरंग से वाहर निकलते ही राजा को अपनी प्रतीक्षा में खड़े मुद्दप्पा तथा मादप्पा दिखाई दिये। मुद्दप्पा ने आगे वढ़ अपने साथ लाये घोड़े को आगे लाने का इशारा किया और घोड़ा पास आते ही उस पर चढ़ने में राजा की सहायता की। फिर स्वयं अपने घोड़े पर चढ़कर पास खड़ा करके, "चलो" उसने अपने लोगों को ज़ोर से आवाज़ दी। उनमें से एक ने एक विशेष प्रकार की आवाज़ की। वह संकेत-ध्वनि थी। एक-दो मिनट में ही जिधर से ये लोग आये थे उधर से ही और दस घुड़सवार आ गये। उनका नेतृत्व एक अंग्रेज़ कर रहा था। वह घोड़े को दौड़ाता हुआ आया और मुद्दप्पा से हिन्दुस्तानी में पूछा, "आप महाराज ही हैं न ? मुद्दप्पा ने 'हाँ' कहा। अंग्रेज ने वीरराज को सलाम करके हिन्दुस्तानी में कहा, "आप हमारे वन्दी हुए। हम आपको मर्यादापूर्वक ले जायेंगे। कृपा करके कोई वाधा न देकर हमारे साथ चलिये। हम आपके वड़े कृतज्ञ होंगे।"

वीरराज को कुछ भी समझ में नहीं आया। "क्या यह वसव की योजना है?" यह शब्द उसके मुख से विना किसी सम्वोधन के निकले और अनजान में ही उसका हाथ उसकी कमर के पिस्तौल पर जा पहुँचा।

मादप्पा ने राजा की इस वात का उत्तर दिया, "हो सकता है, मालिक।" उसी समय आंग्ल दलपति वोला, "महाराज पिस्तौल तक न जाइये। नहीं तो मुझे उसे आपसे ले लेना पड़ेगा। आपका अपमान करने की मेरी इच्छा नहीं।"

राजा ने हाथ पिस्तौल से हटा लिया। एक क्षण भर में बसव के बारे में सैकड़ों विचार उसके मस्तिष्क में बिजली से भी अधिक तेजी से कौंध गये। इस बसव, भगवती, दोड्डव्वा इनमें कोई रहस्य है। मेरे अनजाने में कोई चक्कर चला है। किसी मतलब से बसव ने मुझे अंग्रेजों के हाथ पकड़वा दिया है—वह इस निश्चय पर पहुँचा।

अंग्रेज दलपति ने राजा के घेरनेवाली टुकड़ी का नेतृत्व अपने हाथ में ले लिया। "महाराज, कृपा करके मेरे साथ चलें," कहकर मुद्दप्पा को आज्ञा दी, "हमारे आदमी तीनों ओर से घेरकर चलें।" इस ढंग से वे पहाड़ी का चक्कर काटकर महल के सामने आ गये।

160

महल के आँगन में खड़े होकर बसव अपने आदमियों को उत्साहित करता हुआ लड़ाई कर रहा था। उसकी आँखों को राजा और उनको घेरे हुए बीस घुड़सवार आते दीख पड़े। "यह मेरी आँखें क्या देख रही हैं?" उसका दिमाग चक्कर खा गया। उसने सोचा, वह राजा नहीं हो सकता। दूसरे ही क्षण उसने यह सोचकर कि ये लोग सुरंगवाले मार्ग से आ रहे हैं। दल के बीच के व्यक्ति को ध्यान से देखा। तब तक वह दल काफी पास आ गया था। ध्यान से देखने पर बसव को कोई सन्देह न रहा। कहीं से कोई सहायता मिल जाने से कहीं राजा पिछली तरफ़ से लड़ने को तो नहीं चले आ रहे हैं। क्षण भर को बसव के मन में यह विचार आया। क्षण बीतने के पूर्व ही धुएँ की तरह यह विचार उड़ गया। राजा के बगल में अंग्रेज अधिकारी है। बसव का कलेजा फट गया। इस अंग्रेज ने सुरंग के द्वार पर दाव लगाकर राजा को पकड़ लिया होगा। हमारी तरकीब व्यर्थ रही। राजा क़ैद हो गया। अब क्या होगा? यह सोचकर बसव निर्णय कर उठा। आँगन से नीचे उतरकर दौड़कर फाटक खुलवाकर बाहर आया। धड़धड़ाता हुआ नीचे उतरा। "अय्यो, मालिक इनके हाथ पड़ गये!" चिल्लाता हुआ हाथ उठाकर राजा के सामने जा पहुँचा।

लँगड़ाते-लँगड़ाते दौड़कर आती उस मूर्ति को देख अंग्रेज दलपति ने इशारे से अपने आदमियों को रोका। राजा का घोड़ा और अपना घोड़ा रोककर जहाँ का तहाँ खड़ा रहा।

'हाथ पड़ गये' चिल्लाकर आते हुए बसव को देखकर राजा का क्रोध उबल पड़ा। उसे बसव की पुकार सुनायी दी, परन्तु बात समझ में न आयी। उसके मन में अब तक यह निश्चय जड़ पकड़ गया था कि इसी ने पकड़वा दिया होगा। यह सुरंग की बात, मेरे छिपकर जाने की बात, सिवा इसके और किसी को भी पता

निर्णय किया जाये। हमारा भी यही कहना है।" फिर एक क्षण सोचकर कहा, "पता लगाया जा सकता है। पर उनसे वात करके आने में देर लगेगी। तव तक लोगों को यहाँ प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं। सायंकाल चार वजे के वाद फिर इकट्ठे हो सकते हैं। तव सव वातें निश्चित की जा सकती हैं।"

"यह अच्छी सलाह है। ऐसा ही करेंगे।" यह कह जनता को संवोधित करते हुए फ्रेसर वोला, "हमें और मन्त्रियों को रानी साहिवा से भेंट करके चर्चा करनी होगी। शाम को यह वात आगे वढ़ायी जा सकती है। आप लोग इस समय अपने-अपने घर जाइये। शाम को चार वजे पुनः पधारें।"

लोग उठकर अपने-अपने घर चले गये। इन लोगों ने रानी साहिवा से भेंट करने का समय पुछवाया। रानी ने उत्तर भिजवाया, "तुरन्त आ सकते हैं। महाराज की वैठक में मिलेंगे।" इन लोगों के पहुँचने तक रानी इनकी वहाँ प्रतीक्षा कर रही थी।

162

इन लोगों ने राजा को गद्दी से उतार दिया है यह ख़वर रानी को मिल चुकी थी। उसे इस वात का वड़ा दुख हुआ कि राजा को पदच्युत करना इन लोगों के लिए इतना आसान हो गया। इन्होंने जव मिलने के लिए कहला भेजा तो पहले उसने सोचा कि वह कहलवा भेजे कि आप लोगों की जो इच्छा हो वही करें। हमसे इसमें पूछने की कोई वात नहीं। आप लोग अपनी इच्छानुसार करने में स्वतन्त्र हैं। फिर उसने सोचा, 'आज नहीं तो कल मेरी वेटी को रानी वनना होगा। मेरी जल्दवाजी से उसके भविष्य को हानि नहीं होनी चाहिए। यही मन में विचार कर वह उनसे मिलने को तैयार हो गयी। उसे ज्यादा वात नहीं करनी है और यह भी प्रकट नहीं होने देना है कि उसका साहस डिग गया है। यही सव सोच-समझकर वह गम्भीरता और दृढ़ता से भीतर आयी। घर की मालकिन की हैसियत, वड़प्पन से उन लोगों को वैठने को कहकर स्वयं वैठी। थोड़ी देर वाद राजकुमारी भी वहाँ आ गयी और माँ के पास उसकी कमर पर हाथ रखकर उससे सटकर वैठ गयी।

फ्रेसर ने कहा, "मैं कर्नल फ्रेसर हूँ। मैं सोचता हूँ, यदि किसी अच्छे समय आपके दर्शन करता तो अच्छा था। हमारी वात शायद आपको पसन्द न आये। लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि व्यक्तिगत रूप से कोई अपमान की वात नहीं होगी।" ये वातें उसने वहुत विनयपूर्वक कहीं।

रानी वोली, "मैंने सुना है, कि आप लोग वहुत न्यायप्रिय हैं। आप गलत काम नहीं कर सकते हैं। वाक़ी सव भगवान की इच्छा है। कहिये।"

फ्रेसर : "महाराज के वारे में जनता का निर्णय आपको पता लग गया

होगा।"

"जी हाँ, पता लग गया।"

"जनता की इच्छा है कि आप गद्दी पर बैठें।"

"यह सभव नही है। इस प्रकार का व्यवहार हमारे धर्म के विरुद्ध होगा। यह बात हमने अपने प्रमुखो से पहले ही स्पष्ट कर दी थी। अतः मेरी प्रार्थना है कि यह बात यही समाप्त कर दी जाये।"

फ्रेसर ने मन्त्रियों के मुँह की ओर ताका।

लक्ष्मीनारायणय्या बोला, "हमने पहले ही यह बात कही थी। अतः अब यह यही समाप्त कर दी जाये।"

फ्रेसर रानी को सम्बोधित करके बोला, "अगर यह बात है तो राजकुमारी को गद्दा पर बैठाना होगा। उनके बालिग होने तक आपको उनकी संरक्षिका बनना होगा।"

"महाराज का क्या होगा ?"

"हम उन्हें वे जो जगह पसन्द करेंगे वहाँ भेज देंगे। वहाँ उन्हें सब सुविधाएँ देंगे।"

"जहाँ महाराज रहेगे हम वही रहेंगे। हमारी बेटी राज्याधिकारी होकर यहाँ रह सकती है। उसकी सहायता के लिए कोई और प्रबन्ध कीजिए।"

"अम्माजी, यह सब मुझे नहीं चाहिए, मैं तो आपके साथ ही रहूँगी।" कहकर राजकुमारी माँ के गाल से गाल लगा उससे चिपक गयी।

यह देखकर सबका मन पिघल गया। फ्रेसर को भी व्यथा हुई, पर क्या किया जाये ? और कोई रास्ता न था। वह बोला, "यदि आप ऐसा कहेंगी तो हमे तीन-चार वर्ष के लिए कोई और प्रबन्ध करना होगा।

रानी कुछ नही बोली।

फ्रेसर : "इस बारे मे आप कुछ कहना चाहेंगी ?"

"हमारी इच्छा केवल यही है कि कुछ वर्ष बाद हमारी बेटी गद्दी की अधिकारिणी बने। शेष बातें जैसे आप ठीक समझें।" यह कहकर रानी ने उठने का उपक्रम करते हुए पूछा, "अब हम जा सकते हैं ?"

रानी के यह कहते ही फ्रेसर उठ खड़ा हुआ और बड़े आदर-भाव से उसे हाथ जोड़ते हुए बोला, "हम तो आज्ञा लेनेवाले हैं। आप आज्ञा देनेवाली है।"

रानी उठकर नमस्कार करके अपनी बेटी के साथ रनिवास मे चली गयी।

163

आँगन के बाहर आते हुए लक्ष्मीनारायण ने बोपण्णा को एक ओर बुलाकर कहा,

"मुझे आपसे एक बात कहनी है, बोपण्णा। वह आपको पूरी करनी होगी।"

"पता तो लगे, पण्डितजी !"

"राजा को हटा दिया गया। दूसरा प्रबन्ध हो नहीं पा रहा है। इसका एक ही उपाय है। उसके लिए आपकी स्वीकृति चाहिए।"

"यदि मेरे करने योग्य होगी तो मैं पीछे नहीं हटूंगा, पण्डितजी।"

लक्ष्मीनारायण एक क्षण बाद बोला, "अब राजा नहीं, अम्माजी नहीं, राजकुमारी नहीं तो कम-से-कम आपको ही उदार मन होकर गद्दी पर बैठना चाहिए।"

बोपण्णा ने अचकचाकर लक्ष्मीनारायण की ओर देखा। उसने कभी ऐसी आशा न की थी। एक क्षण भर को उसके मन में शंका उठी कि कहीं यह ब्राह्मण व्यंग तो नहीं कर रहा। लक्ष्मीनारायण की दृष्टि में कुटिलता न थी। उसे लगा कि उसने यह बात शुद्ध मन से कही है। बोपण्णा को सान्त्वना हुई। उसका मुख प्रसन्न हो गया। वह हँस पड़ा, "बड़ी अच्छी बात कही आपने पण्डितजी ! कोडगी ऐसा काम कर सकेगा ? बात भले ही और कुछ न हो, राजा को गद्दी से हटाने वाले गद्दी पर किसी और को बिठायें तो मन में यह तसल्ली रहेगी कि यह भले के लिए ही किया गया। राजा को हटाकर गद्दी पर हम बैठें तो कौन यह बता सकेगा कि यह काम भले के लिए किया गया या दुराशा से ? आप विश्वासघात शब्द का प्रयोग करते हैं। देखनेवाले यदि वही हमारे लिए प्रयोग करें तो हम उन्हें झूठा नहीं कह सकते।"

"आपके कुछ कहने की जरूरत नहीं। मैं कहता हूँ यह विश्वासघात नहीं है। मैं ही प्रार्थना कर रहा हूँ। लोगों को पता है कि आपका मन्त्री होना देश के लिए सौभाग्य की बात है। वे आप जैसों का राजा बनना इससे भी अधिक सौभाग्य की बात मानेंगे। आप स्वीकार कीजिये। मैं आपके साथ रहूँगा। मन्त्रित्व संभाल लूंगा।"

"आप संभाल लेंगे पण्डितजी, इसमें कोई सन्देह नहीं। ऊपर बैठने से कोई बड़ा नहीं हो जाता। यह विश्वासघात की बात भी मैं नहीं उठाता हूँ, पर मैं कोडगी होकर राजा बनूं ?"

"पर कोई और रास्ता न होने पर बनना ही पड़ेगा।"

"मुझे यह नहीं चाहिए, महाराज। कोडगी भूपुत्र हैं, भूपति होना स्वीकार नहीं करते। किसे चाहिए यह मुसीबत ? कोडगी राजा ही बनना चाहते तो इस राजा के दादे-परदादे को ही राजा क्यों बनाते ? बड़े महाराजा के निधन के बाद देश के मुखिया मिलकर इस मिट्टी के माधो को ही यह राजपद क्यों सौंपते ? राजा के काम के लिए यही मांगने खानेवाले ही ठीक हैं, कोडगी नहीं। यह बात तो बड़ों ने कही थी। आज भी वही बात है। चाहे कोई भी आयें, गद्दी

पर बैठें। राजा मानकर चलेंगे। सही ढंग से चले तो उनके कन्धे-से-कन्धा मिला-कर राज्य चलायेंगे। यही कोडगी का काम है। ब्राह्मण का काम है। गद्दी पर बैठना कोई बड़ी चीज नहीं है।"

बोपण्णा के बात करने के ढंग से और आगे बात बढ़ाने की जगह न थी। लक्ष्मीनारायण चुप हो गया। दोनों आँगन में आ गये।

164

आँगन से और सब दूसरे लोग चले गये थे, केवल दीक्षित और उत्तय्या तक इनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। फ्रेसर उनसे शिष्टतावश एकाध बात कर रहा था।

इनके आने के बाद फ्रेसर ने इनसे बातचीत करके आगे का कार्यक्रम निश्चित किया। लक्ष्मीनारायण ने सबको बताया कि बोपण्णा कम-से-कम तात्कालिक रूप से देश का संरक्षक बने।

"स्वयं बड़ा बनने के लिए बोपू बाहर से आदमी चढ़ाकर लाया और इतना सब किया। ऐसी बदनामी से मरना भला।" बोपण्णा ने यह बात स्वीकार नहीं की।

उत्तय्या ने यह बात 'ठीक है' कहकर उसका समर्थन किया।

फ्रेसर बोला, "बोपण्णा जैसे महान् व्यक्ति के लिए ऐसा सोचना स्वाभाविक है। मैं भी मानता हूँ कि यदि वे संरक्षक बनते तो बहुत ही अच्छा होता परन्तु स्नेह की दृष्टि से देखा जाये तो उनका निर्णय ही ठीक है।"

यह बात उठायी नहीं गयी कि पोन्नप्पा या लक्ष्मीनारायण कुछ समय के लिए देश के संरक्षक बनें। राजा की बहिन तथा बहनोई के भी संरक्षक बनने की बात बोपण्णा को पसन्द नहीं आयी। लिंगराज की बेटी होने के कारण उत्तय्या का थोड़ा-सा झुकाव उसकी ओर था। फ्रेसर का यह कहना था कि राजकुमारी के इन विरोधियों को थोड़े समय के लिए भी अधिकार देना ठीक नहीं है।

अब दो बातें सामने रह गयी थीं। एक तो राजा का ताऊ अप्पाजी का बेटा राजा बने। अप्पाजी का नाम यह सब जानते थे, पर अप्पाजी के बेटे को इनमें से किसी ने भी नहीं देखा था। फ्रेसर ने सूचित किया, "अप्पाजी हमारे साथ बैंगलूर से चले थे और हेब्बाल के दल के साथ सीमा पर पहुँचे थे। वहाँ सीमा के रक्षकों से गोली खाकर मर गये। कुशालनगर से चलते हुए हमें यह सूचना मिल गयी थी।"

अब इनका बेटा कौन है इस बात पर इन लोगों को विचार करना था।

तब दीक्षित ने कहा, "अप्पाजी का पुत्र अपरम्पर स्वामी के नाम से सन्यासी के वेष में यहाँ आया-जाया करता था। उसका नाम वीरण्णा है।"

"मुझे आपसे एक बात कहनी है, बोपण्णा। वह आपको पूरी करनी होगी।"

"पता तो लगे, पण्डितजी !"

"राजा को हटा दिया गया। दूसरा प्रवन्ध हो नहीं पा रहा है। इसका एक ही उपाय है। उसके लिए आपकी स्वीकृति चाहिए।"

"यदि मेरे करने योग्य होगी तो मैं पीछे नहीं हटूंगा, पण्डितजी।"

लक्ष्मीनारायण एक क्षण बाद बोला, "अब राजा नहीं, अम्माजी नहीं, राजकुमारी नहीं तो कम-से-कम आपको ही उदार मन होकर गद्दी पर बैठना चाहिए।"

बोपण्णा ने अचकचाकर लक्ष्मीनारायण की ओर देखा। उसने कभी ऐसी आशा न की थी। एक क्षण भर को उसके मन में शंका उठी कि कहीं यह ब्राह्मण व्यंग तो नहीं कर रहा। लक्ष्मीनारायण की दृष्टि में कुटिलता न थी। उसे लगा कि उसने यह बात शुद्ध मन से कही है। बोपण्णा को सान्त्वना हुई। उसका मुख प्रसन्न हो गया। वह हँस पड़ा, "बड़ी अच्छी बात कही आपने पण्डितजी ! कोडगी ऐसा काम कर सकेगा? बात भले ही और कुछ न हो, राजा को गद्दी से हटाने वाले गद्दी पर किसी और को बिठायें तो मन में यह तसल्ली रहेगी कि यह भले के लिए ही किया गया। राजा को हटाकर गद्दी पर हम बैठें तो कौन यह बता सकेगा कि यह काम भले के लिए किया गया या दुराशा से? आप विश्वासघात शब्द का प्रयोग करते हैं। देखनेवाले यदि वही हमारे लिए प्रयोग करें तो हम उन्हें झूठा नहीं कह सकते।"

"आपके कुछ कहने की जरूरत नहीं। मैं कहता हूँ यह विश्वासघात नहीं है। मैं ही प्रार्थना कर रहा हूँ। लोगों को पता है कि आपका मन्त्री होना देश के लिए सौभाग्य की बात है। वे आप जैसों का राजा बनना इससे भी अधिक सौभाग्य की बात मानेंगे। आप स्वीकार कीजिये। मैं आपके साथ रहूँगा। मन्त्रित्व संभाल लूंगा।"

"आप संभाल लेंगे पण्डितजी, इसमें कोई सन्देह नहीं। ऊपर बैठने से कोई बड़ा नहीं हो जाता। यह विश्वासघात की बात भी मैं नहीं उठाता हूँ, पर मैं कोडगी होकर राजा बनूं?"

"पर कोई और रास्ता न होने पर बनना ही पड़ेगा।"

"मुझे यह नहीं चाहिए, महाराज। कोडगी भूपुत्र हैं, भूपति होना स्वीकार नहीं करते। किसे चाहिए यह मुसीबत? कोडगी राजा ही बनना चाहते तो इस राजा के दादे-परदादे को ही राजा क्यों बनाते? बड़े महाराजा के निधन के बाद देश के मुखिया मिलकर इस मिट्टी के माधो को ही यह राजपद क्यों सौंपते? राजा के काम के लिए यही माँगने खानेवाले ही ठीक हैं, कोडगी नहीं। यह बात तो बड़ों ने कही थी। आज भी वही बात है। चाहे कोई भी आयें, गद्दी

पर बैठें। राजा मानकर चलेंगे। सही ढंग से चले तो उनके कन्धे-से-कन्धा मिलाकर राज्य चलायेंगे। यही कोडगी का काम है। ब्राह्मण का काम है। गद्दी पर बैठना कोई बड़ी चीज नहीं है।"

बोपण्णा के बात करने के ढंग से और आगे बात बढ़ाने की जगह न थी। लक्ष्मीनारायण चुप हो गया। दोनों आँगन में आ गये।

164

आँगन से और सब दूसरे लोग चले गये थे, केवल दीक्षित और उत्तय्या तक्क इनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। फ़ेसर उनसे शिष्टतावश एकाध बात कर रहा था।

इनके आने के बाद फ़ेसर ने इनसे बातचीत करके आगे का कार्यक्रम निश्चित किया। लक्ष्मीनारायण ने सबको बताया कि बोपण्णा कम-से-कम तात्कालिक रूप से देश का संरक्षक बने।

"स्वयं बड़ा बनने के लिए बोपू बाहर से आदमी चढ़ाकर लाया और इतना सब किया। ऐसी बदनामी से मरना भला।" बोपण्णा ने यह बात स्वीकार नहीं की।

उत्तय्या ने यह बात 'ठीक है' कहकर उसका समर्थन किया।

फ़ेसर बोला, "बोपण्णा जैसे महान् व्यक्ति के लिए ऐसा सोचना स्वाभाविक है। मैं भी मानता हूँ कि यदि वे संरक्षक बनते तो बहुत ही अच्छा होता परन्तु स्नेह की दृष्टि से देखा जाये तो उनका निर्णय ही ठीक है।"

यह बात उठायी नहीं गयी कि पोन्नप्पा या लक्ष्मीनारायण कुछ समय के लिए देश के संरक्षक बनें। राजा की बहिन तथा बहनोई के भी संरक्षक बनने की बात बोपण्णा को पसन्द नहीं आयी। लिंगराज की बेटी होने के कारण उत्तय्या का थोड़ा-सा झुकाव उसकी ओर था। फ़ेसर का यह कहना था कि राजकुमारी के इन विरोधियों को थोड़े समय के लिए भी अधिकार देना ठीक नहीं है।

अब दो बातें सामने रह गयी थीं। एक तो राजा का ताऊ अप्पाजी का बेटा राजा बने। अप्पाजी का नाम यह सब जानते थे, पर अप्पाजी के बेटे को इनमें से किसी ने भी नहीं देखा था। फ़ेसर ने सूचित किया, "अप्पाजी हमारे साथ बैंगलूर से चले थे और हेब्बाल के दल के साथ सीमा पर पहुँचे थे। वहाँ सीमा के रक्षकों से गोली खाकर मर गये। कुशालनगर से चलते हुए हमें यह सूचना मिल गयी थी।"

अब इनका बेटा कौन है इस बात पर इन लोगों को विचार करना था।

तब दीक्षित ने कहा, "अप्पाजी का पुत्र अपरम्पर स्वामी के नाम से सन्यासी के वेष में यहाँ आया-जाया करता था। उसका नाम वीरण्णा है।"

दूसरे लोगों को यह वात पता न थी। निश्चित रूप से वता सकनेवाला अप्पाजी अव न रहा। अपरम्पर स्वामी स्वयं यह कहे कि मैं राजा वनना चाहता हूँ तो इस वात की जांच-पड़ताल की जा सकती है—यह वात फ्रेसर ने सुझायी, मन्त्रियों ने इसका समर्थन किया।

फ्रेसर : "आख़िरी वात। राजा का एक सगा भाई भी है। उसे राजा वनना चाहिए। यह भाई कौन है ? कहाँ है ? यह हमें पता नहीं। कल आपके यहाँ भी भगवती नाम की स्त्री ने यह सूचना दी कि वह इस वात को जानती है और सभा में यह वताने को तैयार है। यदि आप सवकी अनुमति हो तो शाम की सभा में उससे पूछा जा सकता है।"

उत्तय्या तक्क वोला, "यह वात हमें भी पता है, पर हमने कसम खायी है कि हम अपने मुंह से इसके वारे में कुछ नहीं कहेंगे। भगवती के कह लेने के वाद ही हम कहेंगे। उसके वाद यह निर्णय करके कि सन्ध्या को फिर मिला जाये, वे सव अपने-अपने घर चले गये।

165

सुवह के निर्णय के अनुसार, तक्कों के प्रमुख, शेट्टियों के प्रमुख तथा शहर के लोग सन्ध्या के समय सभा में एकत्रित हुए। सव अपनी-अपनी जगह वैठ गये। मन्त्री-गण तथा फ्रेसर समय पर आये और उन्होंने भी अपना-अपना स्थान ग्रहण किया।

फ्रेसर ने सुवह के सभी निर्णयों का सार अंग्रेज़ी में तैयार करके दुभाषिये से कन्नड़ अनुवाद तैयार करा लिया था। सभा में आकर वह एक क्षण वैठा, वाद में उठकर उसने पहले अंग्रेज़ी में फिर हिन्दुस्तानी में अपने विचार प्रकट किये। वाद में दुभाषिये से उनका कन्नड़ अनुवाद पढ़वाया।

राजा के विषय में निर्णय, रानी तथा राजकुमारी का उसके साथ जाने का निश्चय, वोपण्णा द्वारा संरक्षण पद स्वीकार न करने की वात, राजा की वहिन या वहनोई या उन दोनों का यह पद ग्रहण करने में अनौचित्य—इतना सव वताने के वाद उसने पूछा, "यह सव आप लोगों को स्वीकार है ?"

तक्कों के प्रमुख ने पूछा, "इसमें मन्त्रियों की स्वीकृति है ?"

फ्रेसर : "स्वीकृति है।"

तक्कों के प्रमुख ने, 'हमारी भी स्वीकृति है' कहते हुए साथी तक्क और शेट्टी प्रमुख तथा जनता की ओर देखा। सव लोगों ने 'जी हाँ, जी हाँ' कहकर स्वीकृति दी।

फ्रेसर : "अव और दो वातें शेष हैं। पहली वात यह है कि राजा के ताऊ के पुत्र वीरण्णा अपरम्पर स्वामी नाम से यहाँ कोई है क्या ?" नारायण दीक्षित प्रमुखों

के बीच से उठकर बोला, "स्वामीजी प्रातः यहाँ पधारे थे। दोपहर में खबर आयी कि हेब्बाल में उनके किसी सम्बन्धी का स्वर्गवास हो गया। वे वहाँ चले गये है।"

फ्रेसर : "ठीक है उनके आने के बाद उनके बारे मे बात की जा सकती है। अब एक और बात का निर्णय करना है। राजा के एक सगे भाई हैं। आपके यहाँ की एक महिला ने हमे यह बात सूचित की है। उन्हे यहाँ आकर उस भाई के बारे में बताना चाहिए। वे यहाँ उपस्थित है ?"

इससे पूर्व भगवती शहर के प्रमुखो से ज़रा हटकर बैठी थी। फ्रेसर के पूछते ही वहाँ से उठकर वह आगे आयी और सभा के प्रमुखों को नमस्कार करके बोली, "आयी हूँ।"

भगवती के उठकर वहाँ आने से सभा मे थोड़ी हलचल-सी हुई।

एक : "अरे यह तो भगवती है !"

दूसरा : "इनका उससे क्या सम्बन्ध है ?"

तीसरा : "राजा के सगे भाई को यह कहाँ देख आयी ?" कहकर आपस में बातें करने लगे।

फ्रेसर ने भगवती से कहा, "आप अपनी बात सब लोगो को बताइये।"

भगवती बडी गम्भीर ध्वनि मे बोली, "लिंगराज का एक पुत्र है जो वीरराज से बडा है। लिंगराज के बाद उसी को राजा बनाना चाहिए था। अन्याय से वह न हो पाया। अब वीरराज को किसी कारणवश गद्दी से हटा दिया है। यह स्थान अब उसके बड़े भाई को देकर पहले जो अन्याय हुआ था उसका परिहार करना चाहिए।"

मन्त्री पोन्नप्पा ने पूछा, "कौन है वह बड़ा भाई ? हम मे से किसी को भी पता नही ?"

भगवती बोली, "लिंगराज ने आप लोगो से सत्य को छिपा रखा था। मन्त्री बसवय्या ही उनका बडा लड़का है।"

इस बात को सुनकर उत्तय्या तक्क के सिवाय सब आश्चर्यचकित रह गये। उसकी भतीजी का एक बेटा है यह जाननेवाले दीक्षित के लिए भी वह बेटा बसव है यह बात एकदम नयी ही थी। बोपण्णा, पोनप्पा, तथा लक्ष्मीनारायणय्या आदि ने, "लंगडा ? नाई ? बसवय्या ?" कहकर आश्चर्य से उसकी ओर देखा। सभा के शेष लोगों ने भी अपना आश्चर्य इसी प्रकार प्रकट किया। इन सब लोगो की बात सुनकर फ्रेसर ने पूछा, "ऐसा लगता है इस विषय मे यहाँ किसी को भी कुछ पता नही। इस बात का प्रमाण क्या है ?"

भगवती : "बसवय्या मेरा बेटा है। इस बात को जाननेवाले यहाँ हैं। लिंगराज ने मुझसे विवाह किया था इन बुजुर्गो को इस बात का पता है। सभा मे उपस्थित दीक्षित मेरे ताऊ हैं।"

फ्रेसर तथा सभी मन्त्रियों ने दीक्षित की ओर देखा। दीक्षित उठकर खड़े होकर बोला, "यह मेरे छोटे भाई की बेटी है। यह लिंगराज के पास रहती थी। मुझे यह पता था कि इसके एक लड़का था। पर यह लड़का बसव है यह बात मुझे अभी पता चली।"

फ्रेसर ने भगवती से पूछा, "बसवय्या आपका बेटा है यह बात आपके ताऊ को पता नहीं फिर ऐसी बात को जनता कैसे स्वीकार करेगी ?"

"मेरे ताऊजी ऐसी बातों पर ध्यान देनेवाले व्यक्ति नहीं हैं। मैंने उनसे कहा था कि मैं उन्हें इस विषय को सही समय पर बता दूंगी। यह सही समय अभी तो आया है। इस बात को उत्तय्या तक्क भी जानते हैं।"

उत्तय्या तक्क उठ खड़ा हुआ। वह भगवती को सम्बोधित करके बोला, "हां बहिन, आप लिंगराज को उनकी रानी से अधिक प्रिय थीं। इस बच्चे को जन्म दिया। पर इससे क्या हुआ ? उन्होंने विवाह का झूठा वादा किया था। फिर आपको भगा दिया। बच्चे का पांव भी तो मरोड़ दिया। कुत्तों के साथ पला। इस बात को मैं और तुम्हारी बड़ी मौसी जानते थे। उन्होंने हमें कड़ी शपथ दिला दी कि यह बात कहीं बाहर न निकले। अब चालीस वर्ष बीत गये। क्या अब वह लड़का राजा बन पायेगा ?"

भगवती : "आदमी यदि धोखा दे दे तो स्त्री का पत्नी बनना झूठ हो जायेगा ? बाप ने बेटे से अन्याय किया। बुजुर्ग उसका परिहार करें।"

बोपण्णा : "परिहार करके क्या किया जाये ? राजा को ही गद्दी से उतार देने वाला, राजा के स्वामीभक्त कुत्ते के समान जो सेवक है उसे राजा बनायेंगे ?"

भगवती : "कुत्ते के समान कहां रहा ? मन्त्रियों के साथ मन्त्री के समान नहीं रहा ?"

बोपण्णा : "हमने पहले ही कह दिया था कि वह बहुत बड़ी गलती थी। अब भी हम कहते हैं इसकी आवश्यकता नहीं है। लंगड़ा राजा का निजी मन्त्री था, जहां राजा जायेगा वहीं यह भी।"

भगवती : "उसको लंगड़ा कहकर क्यों अपनी ज़बान ख़राब करते हैं। वह भी आपकी तरह पैदा हुआ था। अन्यायियों ने उसका पांव मरोड़ दिया।"

बोपण्णा : "यह बात ख़त्म हो गयी।" कहकर फ्रेसर की ओर घूमकर बोला, "बसव चाहे जो भी हो, राजा का भाई ही क्या, बाप भी रहा हो—हममें कोई भी उसे राजा मानने को तैयार नहीं। फिर सभा के सामने घूमकर उसने पूछा, "क्यों तक्को, शेट्टियो ! आप लोगों की क्या राय है ?"

सभी ने "जी हां," कहकर समर्थन किया।

पता नहीं भगवती क्या कहने जा रही थी, आगे बात क्या रूप लेती और फ्रेसर जब यह सारी बातें दुभाषिये से समझ रहा था तभी उसका अधीनस्थ दलपति कारपेंटर घोड़े पर मंच की सीढ़ी तक आ पहुँचा। घोड़े से उतरकर उसने सैनिक ढग से अभिवादन किया और रिपोर्ट दी। "नाल्कुनाड गयी सेना वापस आ रही है। राजा और बसव को साथ ला रही है।"

फ्रेसर ने, "ओह यह बात है! बहुत अच्छा हुआ।" कहकर दुभाषिये से यह सबको बता देने की आज्ञा दी।

दुभाषिये के यह बात बताते ही एकत्रित जनता ने 'बहुत खूब' कहकर नारा लगाया। राजा, बसव तथा उनके साथ आनेवाली सेना को देखने के लिए राज-महल की ओर सबके मुँह घूम गये।

कुछ ही देर मे वह दिखायी पड़ा। आगे-आगे अंग्रेज दलपति, पीछे दो घुड़सवार, एक डोली, उसके पीछे चार घुड़सवार, एक डोली और शेष सेना थी। वे लोग काफी तेजी से आगे आये। अंग्रेज दलपति ने घोड़े से उतर कर्नल फ्रेसर को सैनिक अभिवादन किया और बोला, "हमारा काम सफल हुआ। राजा को ले आये हैं किन्तु यह बताते हुए दुख हो रहा है कि बसवय्या गोली के शिकार हो गये। पिछली डोली में उनका शव ले आये हैं।" दुभाषिये ने बोपण्णा को इस बात का अर्थ समझाया। बोपण्णा के मुँह से एकदम निकला, "क्या कहा लंगड़ा मर गया!"

यह बात भगवती के कान में भी पड़ी, उसका हृदय फट गया। वह चिल्लायी, "क्या कहा!..."

दुभाषिया जोर से बोला, "बसवय्या गोली से मारे गये।"

तब तक सेना से जनता को यह बात पता चल गयी थी।

जैसे ही भगवती को पता चला कि उसका बेटा मर गया, उसका शव पीछे की डोली में है, वह "अय्यो बेटा, तुझे खो बैठी" कहती छाती पीटती "अय्यो अय्यो" कहती डोली की ओर भागी। दूसरी डोली के पास खड़े लोगों को तभी पता चला कि बसव भगवती का बेटा था। उन्होंने उसे रास्ता दे दिया। भगवती वहाँ घुटनों के बल बैठ गयी, डोली मे सिर घुसाकर मरे हुए पुत्र की ठुड्डी पर हाथ रखकर विलाप करने लगी, "बेटे तुझे राजा बनाने को मैंने इतना सब किया। मेरा किया कराया सब बेकार गया।..."

आँसू सदा पवित्र होते हैं; पर माँ के आँसू दूसरे आँसुओं से विशेष पवित्र होते हैं। पशुओं में भी यह बात पायी जाती है। मनुष्य के जीवन मे तो यह सर्वत्र है। मरनेवाला बसव था फिर भी उसकी माँ का दुख देखकर जनता का मन पिघल

गया। वेचारी जन्म देनेवाली···उसे दुख न होगा?

राजा डोली से उतरा। वह काँप रहा था। खड़ा नहीं हो पा रहा था। एक ओर दस दिन से बीमार शरीर और आज की सारी अनहोनी घटनाएँ। तिस पर यह शंका कि अब आगे क्या हो? उसके चेहरे से पसीना छूट रहा था। उसने क्षीण स्वर में कहा, "नमस्कार साहब।"

फ्रेसर: "नमस्कार महाराज। मुझे सौंपा गया कर्तव्य कोई सुखदायक नहीं, पर उसे मुझे करना ही होगा। उसे सम्पन्न करते हुए मैं आपके साथ कोई कठोर व्यवहार नहीं करूंगा। आपके पद के अनुरूप सब सम्मान दिखाऊँगा। अब आप कृपया अपनी वैठक में जाइये, मैं आपसे फिर मिलूंगा।"

राजा के मुख से कोई शब्द न निकला। फ्रेसर उसको साथ लेकर महल के आंगन में आया। वहाँ खड़े लोगों में से कुछ ने राजा को हाथ जोड़े, बाक़ी चुप ही रहे। फ्रेसर राजा के साथ उसकी वैठक के द्वार तक गया और उसे अन्दर भेजकर वाहर एक अंग्रेज दलपति को रहने की आज्ञा देकर वापस लौट आया। बोपण्णा तथा उनके साथी मन्त्रियों से दो-चार वातें करके एक घोषणा की: "आज की सभा का काम समाप्त हुआ। इसका व्यौरा हम कल घोषित करेंगे। इस समय सभी जा सकते हैं।" वाद में मन्त्रियों से वोला, "आपकी भगवती हमारी विजय का एक मुख्य कारण हैं। उनके दुख में हमें भी सहानुभूति दिखानी चाहिए। आप लोग यदि हमारे साथ चल सकते हैं तो चलिये।"

देश के प्रमुख मन्त्रीगण आदि सभी उसके साथ गये। चलते-चलते उसने दलपति जाक्सन से वसव की मृत्यु का विवरण सुन लिया।

167

सभा समाप्त होने पर सभी लोग नहीं गये, दुखी भगवती को देखते हुए बहुत से अभी भी वहाँ खड़े थे। उनमें अधिकतर स्त्रियां थीं। संसार का कुछ भी न समझनेवाली नन्हीं वालिका से लेकर संसार का सभी कुछ अनुभव पूरा कर लेनेवाली वृद्धा तक, चियड़े लपेटे सूखे मुख वाली भिखारिन से लेकर गहनों से अलंकृत धनी कुल की कन्याएं तक, सभी आयु और सभी स्तर की स्त्रियां वहीं खड़ी अपनी सहजाति के दुख से पिघल गयीं।

फ्रेसर ने डोली के समीप आकर, टोपी उतारकर शव की ओर झुककर सम्मान प्रदर्शित करते हुए भगवती से कहा, "मां, हम इसमें आपके सहभागी हैं। अब आपके वेटे के सभी उचित संस्कार होने हैं। ज्यादा देर न करके आपको ये सभी करने हैं।"

भगवती: "आप लोगों ने अबतक इसकी देखभाल जो की है वही काफी है।

और करने को क्या रह गया है। मिट्टी में ही तो डालना है। आप केवल इतनी ही आज्ञा दे दीजिये कि शव कुत्तों को न डालकर मिट्टी में डाला जाये। बाक़ी मैं देख लूँगी।"

"आप स्वर्गवासी की माँ हैं इसलिए आपकी बात हमें मान्य है। हमारी विजय का कारण होने से आप हमें और भी मान्य हो गयी हैं। आपका पुत्र गुज़र गया यह सच है परन्तु हमारे अधिकारी का कहना है कि यह हमारे हाथ से बाहर की बात थी। इस विषय में आप हमें दोष न दीजिये।"

"दोष देकर क्या कर लेंगे? आपका इससे क्या बिगड़ना है? आप अब जाइये। यह शव हमें दिला दीजिए।"

"यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो इनके संस्कार में हम भी आपके साथ सम्मलित होना चाहते है।"

"इनका संस्कार हम यहाँ नही, अपने मन्दिर के पास करेंगे। आपका वहाँ कोई काम नहीं है।"

"अच्छी बात है, माँ। आपके दुख के समय हम कोई ऐसा-वैसा नहीं करेंगे जो हमारे अधिकार की सीमा से बाहर है।"

यह कहकर फ्रेसर ने अपने अधीनस्थ अधिकारी कप्तान लेहार्ड को आज्ञा दी, "दस आदमी साथ लो और इनको जो भी सहायता चाहिए दो। फिर स्वय टोपी सिर से उतारकर झुककर पुनः सम्मान प्रदर्शित करते हुए अपने साथ के प्रमुखों से पूछा, "अब यहाँ से चला जाये ?"

सबने 'हाँ' की और उसके साथ हो लिये। केवल दीक्षित वहाँ रुका रहा।

168

भगवती दीक्षित के पाँवों पर गिर पड़ी, उसके घुटनो से लिपटकर कलपने लगी, "यह क्या हो गया, अण्णय्या। मैं तो सोच रही थी पदवी प्राप्त होगी। यह तो चल ही दिया।"

दीक्षित की आँखें भर आयी। "उठो बेटी, उठो। तू क्या अनजान औरत है! भगवती की उपासना करनेवाली बेटी को क्या मुझे समझाना होगा! उठो। आगे को देखो।" उसने झुककर बेटी को बाँह से पकड़कर उठाया।

भगवती उठ खड़ी हुई और पूछने लगी, "यह क्या हो गया ?"

"ईश्वर की इच्छा।"

"तो ज्योतिष-शास्त्र झूठा हो गया ?"

"यह बात फिर करेंगे। अब इसके संस्कार का काम करें।"

"अय्यो, यह संस्कार ! मैं यह कैसे करूँगी? अगर कर पाऊँ तो जिन्दा न

रह पाऊँगी, आश्रम के पीछेवाले पहाड़ से कूदकर मर जाऊँगी।"

"ठीक है। यदि तू ऐसा करेगी तो मैं भी वहीं से कूदकर मर जाऊँगा! दोनों के पूजा-पाठ सार्थक हो जायेंगे!"

भगवती ने चौंककर दीक्षित के मुख की ओर देखा: "बेटा चला गया, अब पितृतुल्य चाचा की जरूरत नहीं तो जा कूदकर मर जा; और अगर जरूरत है तो चल संस्कार कर के आ!"

भगवती प्रेम के इस बन्धन के सम्मुख हार गयी। पता नहीं कैसे उसने अपने दुख को वश में कर लिया। वह बोली, "अच्छा अण्णय्या, अब ऐसी बात नहीं करूँगी।"

"अच्छा तो अब चलो। चाहे जितनी भी देर क्यों न हो जाये, मुझसे आकर मिलना, मैं मन्दिर के मण्डप में ही रहूँगा।"

भगवती पुत्र के शव को उठवाकर चली गयी। दीक्षित भी घर आ गया। घर के सभी लोगों को स्नान करने को कहा और स्वयं ने मन्दिर की पुष्करिणी में स्नान किया। और फिर मन्दिर की यथावत् पूजा करके भगवती की प्रतीक्षा में मण्डप में जा बैठा।

उस रात लगभग सारा शहर जागता ही रहा। कोडग के इतिहास में वह रात्रि एक सन्धिकाल थी। उस रात में जागते शहर के बीच ओंकारेश्वर के मन्दिर में संसार की दृष्टि में अकिंचन एक स्त्री के सांसों को बचाने का निश्चय किये वह दीक्षित हल्की-सी चाँदनी में प्रतीक्षा करता बैठा था।

रात के दो पहर बीत गये। दीक्षित के मन में शंका हुई कि वह अभी तक क्यों नहीं आयी। तभी कुछ ही देर बाद भगवती आयी और बोली, "मैं आ गयी, अण्णय्या।" दीक्षित ने बेटी को पास बुलाया और कहा, "जा पापा, ओंकार का स्मरण कर सो जा। उसके नाम के जाप से आदमी दुख भूल जाता है।"

भगवती मण्डप की एक दीवार के सहारे लेट गयी और बोली, "आप नहीं लेटेंगे, अण्णय्या?"

वह बोला, "सोता हूँ पापा, जाप थोड़ा-सा बाकी है, उसे पूरा कर लूँ!"

169

कुछ दूसरों के धोखे से और कुछ परिस्थिति-वश शत्रु के हाथ पड़ने के कारण राजा ने बनव को गोली मार दी थी। मादप्पा के लिए कोई काम बाकी न था। जीतनेवाली सेना को उसने उसके अधीन रहने का वचन दिया। महल के अन्य सेवकों सहित, हथियारों से सज्जित जीतनेवाले दल के साथ मडकेरी पहुँचा। राजमहल की चारदीवारी में पहुँचने के उपरान्त मादप्पा अनुमति लेकर सारी रिपोर्ट देने के

लिए रानी की बैठक में गया।

राजा के क़ैद होने का समाचार पाकर रानी ने गवाक्ष में विजयी सेना को आते हुए देखा। राजा के पालकी से उतरने से लेकर उसके महल में आने तक, सभी कुछ देखने के बाद उसे भीतर लिवा लाने के लिए वह नीचे उतर कर आयी।

भगवती की दुखभरी चीख भी रानी ने सुनी थी। एक सेवक को भेजकर उसके कारण का पता लगवाया। भगवती उसके ससुर की प्रेयसी थी तथा बसव राजवंश का था यह जानकर उसके आश्चर्य की सीमा न रही।

केसर राजा को बैठक तक छोड़कर वापस लौटा ही था कि रानी बेटी के साथ राजा के पास आयी। राजा अपने कमरे में दीवार से पीठ लगाकर बैठ गया। रानी बेटी को राजा के पास बैठाकर स्वयं उसके पाँव के पास बैठ गयी।

इतने में एक सेविका ने आकर निवेदन किया, "गुरिकार मादप्पा मिलना चाहते हैं?"

रानी बैठक में आयी।

मादप्पा ने नालकुनाड के महल में घटी सभी घटनाओं का विवरण दिया। उसकी बातों में रानी को पता चला कि राजा के हाथों ही से बसव मारा गया। "हाय री विधि की विडम्बना!" सोचकर उसकी अन्तरात्मा काँप उठी।

दोड्डव्वा के आने का समाचार पाकर रानी मादप्पा को राजा के पास रोक-कर अपनी बैठक में आयी। दोड्डव्वा को बुलवाकर उससे यह पता लगाया कि राजा का स्वास्थ्य पहले से सुधरा था नहीं। इसके बाद पूछा, "दोड्डव्वा, भगवती कौन थी और बसवय्या उनका बेटा था, यह बात तुम्हें पता थी न! इसका तुमने हमें कभी आभास भी होने न दिया; बिलकुल छिपाकर रखा?"

दोड्डव्वा: "मेरे सैकड़ों दोष हैं पर उन सबको अपने पेट में रखकर मेरी रक्षा कीजिये। मुझे सब कुछ पता था पर मैं मुँह नहीं खोल सकती थी। कसम रखवायी थी बड़े राजा साहब ने उस दिन। तब वे राजा भी न बने थे जब उन्होंने मेरी भाजी को देखा था। तब ये दोनों एक-दूसरे के लिए चींटी और गुड़ कीतरह थे। बाप भी बेटे को बहुत चाहता था। पर रानी ने इस बेटे को जब जन्म दिया तब मैं राजा साहब को बड़ा बेटा खटक गया। मेरी बहिन ने ज़ोर दिया। बच्चा छीन लिया। उसे और बच्चे की माँ को देश से निकाल दिया। इस शिशु को मेरी गोद में ला पटका। और बोले, 'ए दोड्डी, ले पकड़ अपनी बहिन के दोहते को। चाहे जैसे पाल, पर ख़बरदार किसी को भी पता न चलने पाये कि बच्चा किसका है। यदि यह बात अपने-आप खुल जाये और तुझसे पूछा जाय तभी मुँह खोलना, मैं मना न करूँगा। पर अपने-आप तू किसी से भी मत कहना।' उन्होंने एक नहीं तीन कसमें दिलायी थी। ऐसी कसमें जिन्हें बताने में शर्म आती

है। कहीं भी ऊँच-नीच हुई तो मैं और यह दोहता दोनों ख़त्म। वे तो यह कहकर चले गये। मेरे रहने, न रहने से क्या होता है पर इस अनाथ को क्यों मरवाऊँ—यह सोचकर मुँह पर ताला लगा लिया, माँ। अन्त में यह दुर्भाग्य मिला…"

दोड्डव्वा की आँखें भर आयी थीं। रानी का भी दिल भर आया—"तुम्हारी कसम तो रही एक तरफ, एक राजदुलारे को चालीस वर्ष तक नाई जैसा जीवन बिताना पड़ा।"

एक क्षण-भर चुप रहकर रानी बोली, "देखो दोड्डव्वा, उस एक व्यक्ति के चल बसने से महाराज मित्र, सेवक, मन्त्री सबसे वंचित हो गये। उनके तो हाथ-पैर कटने के समान हो गये। कल मालूम नहीं क्या हो, हमें ही अब उनकी देखभाल करनी होगी। आज मादप्पा उनके पास रहेगा। तुम भी दरवाज़े के पास ही रहना। एक परिचित मुँह तो सामने रहे।"

"जो आज्ञा, रानीमाँ।" दोड्डव्वा ने हाथ जोड़े और चलने को हुई तो रानी पुनः बोली, "यदि हो सके तो दोहते की स्नान क्रिया भी देख लेना।" दोड्डव्वा खड़ी होकर, "अच्छा रानीमाँ।" कहती हुई चली गयी।

170

अगले दिन प्रातः फ्रेसर मन्त्रियों से बातचीत करने के बाद अकेला महल में आया। वह राजा से मिला। उसने उसे उस समय तक किये गये सब निर्णयों से अवगत कराया।

वीरराज ने कहा कि उसीको राजा बने रहने देना चाहिए। वह सभी विषयों में अधीन होकर रहेगा तो फ्रेसर बोला, "यह संभव नहीं, अधिक-से-अधिक राजकुमारी आगे चलकर गद्दी पर बैठ सकती है। पर वह बात भी गवर्नर जनरल की इच्छा पर निर्भर है।" अब राजा को मंगलूर जाकर जहाँ पहले टीपू सुल्तान की सन्तान रहा करती थी उसी महल में रहना होगा। वहाँ उसकी रानी और बेटी और उसकी इच्छानुसार छोटा-सा परिजन उसके साथ मंगलूर जायेगा। उसे प्रति मास छह हज़ार रुपये वृत्ति मिलेगी। इसमें से किसी भी बात को वीरराज काट नहीं सकता था।

"आप यहाँ से जितनी जल्दी चल सकें उतना ही अच्छा है। सभी प्रकार की सुविधा होगी। आप कब चल सकेंगे?"

"हम जब राजा ही न रहे तो यहाँ एक क्षण भी रहकर क्या करना है; अभी जायेंगे, भिजवा दीजिये।"

"अच्छी बात है। यह बात रानी साहिबा को कहलवा भेजता हूँ : आपके साथ

जानेवाले राज-परिधान, गहने आदि जो भी आपकी निजी सम्पत्ति है, वह सब और बरतन-भाण्डे जो भी आप चाहें ले जा सकते हैं। साथ जितना ले जा सकते हैं ले जाइये, बाकी मैं पीछे से भिजवा दूँगा।"

"यह सब हमें कुछ पता नहीं है। बसव से ही···"

राजा की जबान पर सहज ही बसव का नाम आ गया। उसने वाक्य खत्म नहीं किया, "राड के को मार डाला न मैंने," फुसफुसाते हुए मन-ही-मन दु:खी होकर चुप हो गया। अब तक उसे पता चल गया था कि बसव ने उसे नहीं पकड़वाया। सुरंग की बात भगवती ने बतायी थी और इसे और बसव को किसी भी प्रकार की हानि न पहुँचे यह प्रार्थना भी उसीने साहब से की थी।

"सच है। यह सब बातें दूसरे लोग देख लेंगे। सब प्रबन्ध हो जाने के बाद मैं आपको सूचित करूँगा," फ्रेसर ने राजा से कहा और आज्ञा लेकर चला आया।

राजा, रानी तथा राजकुमारी के शहर से जाने का प्रबन्ध बोपण्णा की सलाह के अनुसार लक्ष्मीनारायण को सौंप दिया गया। "मैं किस मुँह से रानीमाँ के सामने जाऊँ और इसमें मेरे करने को है ही क्या? तीन हिस्से तो रनिवास की बात है।" कहकर लक्ष्मीनारायण घर आया और उसने सारी बातें अपनी माँ को बतायीं। प्रबन्ध की सारी बातें रानी को सूचित करने और यात्रा के लिए तैयार होने के लिए कहने को बुढ़िया को भेजा। सावित्रम्मा बोली, "अनिष्ट के लिए शनि का दर्शन ठीक है इस अशुभ काम के लिए मैं विधवा ही ठीक हूँ।" राजमहल आकर उसने सब बातें रोते हुए रानी को कही। रानी ने सब कुछ शान्ति और धैर्यपूर्वक सुना। फिर सेवक को बुलाकर अपने निजी तथा महल के भण्डार के गहने और आभूषणों को दस बक्सों में अपने सामने भरवाया। सोने की ईंटें और मोहरें चार अलग बक्सों मे भरवायी गयीं। गरीब-गुरबाओं को देने के लिए कपड़े अलग निकालकर रखवाये। भगवान को समर्पित करने के लिए पाँच हीरे तथा एक हजार अशर्फियाँ अलग रखी गयीं।

"हमारा क्या हम तो चले जायेंगे पर हमारे महल के नौकरों-चाकरों का क्या होगा?" यह बात उसने लक्ष्मीनारायण से पुछवायी। वह फ्रेसर से मिलकर इस बारे मे चर्चा करके महल में पहुँचा और उसकी ओर से रानी से निवेदन किया, "स्थाई रूप से महल की सेवा में लगे किसी को हम असहाय नहीं छोड़ेंगे। वृद्ध-जनों को पेंशन मिलेगी। जवानों को हम काम देंगे अथवा जमीन देंगे। राजा की आश्रित स्त्रियों की जिम्मेदारी हम नहीं ले सकते।"

रानी ने नौकरों को बुलाकर यह बात बतायी। फिर दोड्डव्वा से बोली, "महाराज से पूछ आना कि रनिवास की स्त्रियों में से किसी को साथ ले जाना चाहेंगे?"

कम्पनी सरकार जनता की अभिवृद्धि के लिए सदा काम करती रहेगी।

मडकेरी
7-5-1834

जे. रास. फ्रेसर
लेफ्टिनेंट कर्नल तथा राज प्रतिनिधि

इस नोटिस के आशय की बात को लेकर कर्नल साहब व कोडग के मन्त्रियों में कुछ विवाद हुआ। मन्त्रियों का कथन था कि आगे चलकर राजकुमारी को राज्य दिया जा सकता है यह उल्लेख इस नोटिस में होना चाहिए। तब फ्रेसर ने कहा, "यदि आप सबकी यही इच्छा हो तो इसमें क्या रुकावट पड़ सकती है? उसके बालिग़ होने के बाद यदि आप सबकी इच्छा हो तो यह अपने-आप हो जायेगा।"

लक्ष्मीनारायण बोला, "यदि इस बात को लिखित रूप में रखा जाये तो अच्छा न होगा?" बोपण्णा ने उन्हें सांत्वना देते हुए कहा, "यदि हम सब चाहें तो ये लोग न करनेवाले कौन होते हैं? आप चिन्ता न कीजिए।"

फ्रेसर ने बताया कि नये शासन को मैसूर राज्य के चीफ़ कमिश्नर ही चलायेंगे। उनके नीचे कमिश्नर की नियुक्ति होगी और स्थानीय कारोबार देखने के लिए उनके नीचे सीधा एक सुपरिंटेंडेंट होगा।

लेहार्डो नाम का दलपति, जो इन लोगों के साथ आया था, वहाँ का पहला सुपरिटेंडेंट बना।

पादरी मेघलिंग ने गौरम्माजी को सलाह दी कि राजकुमारी को अंग्रेज़ी भाषा तथा अंग्रेज़ी सभ्यता सिखाने के लिए और अगर उसकी इच्छा हो तो ईसाई मत का भी अध्ययन कराने के लिए एक अध्यापिका साथ रखी जा सकती है। फिर वीरराज की सम्मति लेकर तथा मद्रास गवर्नर की अनुमति से मिस लूसी हॉकर की इस काम के लिए नियुक्ति की गयी।

वीरराज की बहिन देवम्माजी को उसके दहेज में मिली ज़मीन के अतिरिक्त दो सौ पचास रुपये मासिक वृत्ति देने का निश्चय किया गया। यह भी व्यवस्था की गयी कि राजा के चार महलों में से किसी एक में वे रह सकते हैं। चेन्नबसव ने कर्नल की आलोचना की कि उसकी सेवा का यह पुरस्कार बहुत कम है। उसने इच्छा प्रकट की वेतन और बढ़ाया जाये और राजमहल उसे दे दिया जाये। उसकी यह इच्छा पूर्ण न हुई। देवम्माजी के बच्चे के लिए बलि हुए चोमा की पत्नी को वर्ष में चार मोहरों की वृत्ति दी गयी।

कमिश्नर महोदय ने एक विशिष्ट आज्ञा के द्वारा ओंकारेश्वर के मन्दिर, बल-कावेरी भागमण्डल, लक्ष्मण तीर्थ नदी के स्रोत तथा अन्य मन्दिरों और संस्थाओं को अब तक मिलती आ रही सभी दान-पूजाएँ जारी रखने का आदेश दिया।

कमिश्नर ने कहा कि भगवती के द्वारा की गयी सहायता के पुरस्कार स्वरूप

उसे 'उम्बली' जागीर दी जायेगी। पर उसने कहलवा भेजा कि उसे ऐसा कुछ नहीं चाहिए।

कुछ माह बाद कमिश्नर ने यह आज्ञा निकाली कि भूमि जोतनेवाले खेतिहर लोग सरकार को लगान में अनाज देते हैं, यह बहुत अच्छा प्रबन्ध नहीं है अतः भविष्य में वे उसके स्थान पर पैसा दिया करेंगे।

यह जानकर कि कोडग में गोवध निषिद्ध है उसने इस बारे में भी आदेश जारी किया कि कोडग की सीमा में आहार के लिए, चाहे वे अंग्रेज हों या कोई और जाति के, गोवध नहीं कर सकेंगे।

उबल पड़ा और कहनी अनकहनी सब कह गया। उसका यह निश्चित विचार था कि उसके सम्पूर्ण दुर्भाग्य का कारण बोपण्णा ही है। इस जानवर के भांजे से उसकी बेटी की शादी! मिस लूसी ने कमिश्नर के निजी विचार से भी राजा को अवगत करा दिया और रानी को सब बता दिया था। जो भी हो, पुट्टम्मा एक राजवंश की लड़की है। उसे भारत के किसी भी बड़े राजघराने में पहुँचने का अधिकार है। यदि वह राजगद्दी पर बैठे और उसका पति एक राजकुमार हो तो उसकी प्रतिष्ठा और बढ़ेगी। कोडग में ही जन्म लेकर वहीं पले इस सामान्य तरुण का महत्त्व ही क्या है?

साथ ही, लूसी मेर्घालिग पादरी की प्रेरणा से एक और प्रयास में लगी हुई थी। यदि राजकुमारी ईसाई हो जाये तो सारा कोडग उस मत को स्वीकार कर सकता है। अब ये लोग जिस जंगली धर्म के अनुयायी हैं उसे छोड़ना ही इनके लिए श्रेयस्कर होगा। गद्दी आपको वापस मिल जायेगी, ईसाई बन जाओ—यह बात कहने में कोई बुराई नहीं है। इस बच्ची को और इनकी जनता को नरक की ज्वाला से निकलवाकर उनकी रक्षा करना भगवान का प्रिय सेवा कार्य होगा। यदि यह अभी विवाह करके कोडग लौट जाती है तो फिर इसके ईसाई होने की संभावना कम हो जाती है।

लूसी हॉकर के मन में एक और भी विचार था। कप्तान साहब के साथ यदि राजकुमारी का विवाह हो जाये तो कोडग के राजमहल की अमूल्य रत्नराशि उन्हें प्राप्त हो जायेगी। कप्तान की इन दिनों उत्तर भारत में बदली हो गयी थी। फिर भी उसने कोडग को याद करके एक-दो पत्र लिखे थे।

इन सब कारणों के मिल जाने से उत्तय्या तक्क का अब तक का प्रयत्न निष्फल हो गया। वीरराज ने इन लोगों से मिलने से भी इन्कार कर दिया। वह गरज पड़ा, "हमारी बेटी का रिश्ता माँगने की हिम्मत की इन भिखमंगों ने! यहाँ क़दम न रखने पायें, दफा हो जायें यहाँ से। राजकुमारी की उत्तय्या नायक से विवाह करने में सहमति थी, पर उसे पिता की इच्छा के विरुद्ध विवाह करना ठीक नहीं लगा। गौरम्माजी को इसमें एक समस्या दिखाई दी। बेटी यदि उत्तय्या युवक से विवाह कर ले तो आगे उसके रानी होने का विचार छोड़ना होगा। यदि राज-गद्दी फिर प्राप्त करनी है तो इन अंग्रेजों के कहने के मुताबिक चलना होगा। एक साधारण व्यक्ति की पत्नी बनना या कोडग की रानी बनने की प्रतीक्षा करना—बेटी के लिए इन दोनों में कौन-सा अधिक ठीक रहेगा, गौरम्माजी निर्णय न कर पायीं। सम्भवतः महाराज की बात ही ठीक हो, यह सोचकर चुप रह गयी। वैसे भी उनकी उपेक्षा करना आसान न था।

उत्तय्या तक्क निराश हो गया। उसे अपने प्रयास में रत्ती-भर भी लाभ नहीं हुआ। "चल भैया, वापस चलें" कह तरुण को लेकर वह मडकेरी लौट आया।

174

दलय्या तक्क और छोटे दलय्या के मंगलूर लौटने के बाद कोर्ग के कमिश्नर तथा मद्रास के गवर्नर को एक बात सोचनी पड़ी। राजा यदि मडकेरी में ही रहा तो इस नयी शासन व्यवस्था के विरोधी इस बात को लेकर कोई नया झमेला न खड़ा कर दें! इस शंका से राजा को मडकेरी से मंगलूर लाया गया था। अब इन बुड्ढे और युवक के यहाँ आने पर यह बात पक्की हो गयी कि मडकेरी से मंगलूर विशेष दूर नहीं।

मद्रास के गवर्नर ने राजा को कहला भेजा : "एक ही जगह रहने से मन ऊब गया होगा। कुछ दिन जाकर काशी में क्यों नहीं रह आते! इससे उत्तर भारत देखने का भी अवसर मिलेगा।" उसी समय लूसी द्वारा रानी को भी याद दिलाया: "आप लोगों के लिए काशी पुण्य क्षेत्र है। वहाँ जाने से मन कुछ शान्त हो जायेगा।"

वीरराज तथा गौरम्माजी दोनों को यह बात उचित लगी। मंगूर में एक वर्ष व्यतीत करने के बाद काशी चल दिये। जाने से पूर्व रानी ने, "कैसे भी हो, काशी तीर्थ करने जा ही रहे हैं तो भगवान विश्वनाथ की पूजा राजमहल की ओर से एक बार दाक्षिणात्य रीति से कराना अच्छा होगा। इसके लिए हमारे पुरोहितजी का साथ रहना ठीक होगा।" यह सोचकर दीक्षित को बुलवाया, वह भी इन लोगों के साथ काशी पहुँचा।

काशी पहुँचने के एक-दो महीनों में ही, मेर्गलिंग पादरी की सलाह के अनुसार, उत्तर भारत के ईसाई मत प्रचारक मण्डली के प्रमुखों ने राजकुमारी को वहाँ की उच्चवर्गीय रहन-सहन तथा ईसाई धर्म के विशेष तत्वों को समझाने के लिए कप्तान साहब की बहिन श्रीमती लोगन को नियुक्त किया।

एक ओर रानी दीक्षित के साथ निरन्तर भगवान विश्वेश्वर की पूजा में लगी थी, इधर ये सब लोग मिलकर राजकुमारी का मन ईसाई मत की ओर आकर्षित करने में लगे हुए थे। कुछ मास बाद इनमें से किसी ने राजा को सलाह दी, "अगर आपकी बेटी ईसाई हो जाये तो उसे राज्य प्राप्त करने में सुविधा होगी। कम्पनी सरकार इस बात का भरोसा चाहती है कि जो रानी बने वह जनता की भली-भाँति देखभाल कर सकेगी। यदि राजकुमारी ईसाई बन जाये तो यह भरोसा अलग से देने की आवश्यकता न होगी।" राजा ने कहा, "क्यों न ईसाई हो जाये? इस धर्म में रहकर ही क्या मिला? उस धर्म में जाने से क्या ख़राबी हो जायेगी? राज्य मिले तो ईसाई बन जायेगी।"

ये सारी बातें रानी को मालूम ही थीं। राजा को कभी भी हिन्दू धर्म में श्रद्धा न हो सकी थी। लेकिन बेटी का मन दूसरे रास्ते जा रहा है, यह देख भी रानी बहुत दुखी हुई। एक दिन दीक्षित से बोली, "पण्डितजी, मैं जीवन से थक गयी हूँ। अब जीने को जी नहीं चाहता। भगवान विश्वेश्वर अब मुझे अपने चरणों में ले लें तो कितना अच्छा हो।"

दीक्षित को उनके मन की स्थिति का पता था। वह बहुत दुखी हुआ और बोला, "रानीमाँ, मैं बहुत ज्ञानी तो नहीं हूँ परन्तु बड़ों से कुछ सुना अवश्य है। उनका कहना है कि सात सुख और तीन दुख के जन्मों के बाद जीव को मुक्ति मिल जाती है। भगवान का नाम लेकर कष्ट सहन करना चाहिए।"

"कष्ट देनेवाले भगवान से यही प्रार्थना करती हूँ कि अब मुझे मुक्त कर दे।"

दीक्षित इस बात का कोई उत्तर न दे पाया। इतनी महान् स्त्री इतने कष्ट में फँसी है, यह सोचकर वह अपनी मालकिन के प्रति द्रवित हो उठा।

175

पूरा एक साल बीत गया। काशी पहुँचने के बाद दूसरे श्रावण के शुरू होते ही रानी ने एक व्रत आरम्भ किया। प्रतिदिन तीन बार गंगा स्नान, तर्पण, अन्नदान, विश्वेश्वर का अभिषेक, इस प्रकार कठिन पूजा-व्रत में लग गयी। राजा और बेटी का मंगल हो यह प्रार्थना वह निरन्तर भगवान विश्वेश्वर से करने लगी। गंगा पुण्यसलिला है फिर भी श्रावण मास में नहानेवालों को कभी-कभी उसका जल कष्टकारी होता है। इस स्नान से रानी के शरीर में एक प्रकार की टूटन-सी होने लगी। तीन दिन में उसने ज्वर का रूप ले लिया।

दीक्षित ने रानी से प्रार्थना की कि, "ज्वर में व्रत जारी रखने की आवश्यकता नहीं। ज्वर उतरने पर फिर से व्रत शुरू कर लीजियेगा।" रानी ने यह स्वीकार नहीं किया। वह बोली, "भगवान ने शरीर दिया है तो जुकाम, सिर दर्द और बुखार तो होता ही रहता है। इसके लिए व्रत क्यों रोका जाये? अब व्रत ज्यादा भी नहीं हैं, इन्हें पूरा कर लेना ही ठीक होगा।"

क्या गौरम्माजी ने देह त्याग देने का निश्चय कर लिया था? इसे वह ही जानती थीं, दूसरा कौन कह सकता था? बुखार बढ़ गया। व्रत-समाप्ति के दिन उसका प्रकोप भीषण हो उठा। रानी ने समझ लिया अब इस देह से छुटकारा मिलनेवाला है।

उस शाम को उसने बेटी को पास बुलाया और बोली, "ऐसा लगता है बेटी, अब मैं तुम्हें छोड़कर जा रही हूँ। तुम्हें हिम्मत से रहना होगा, समझी। तुमने मुझे सदा अच्छी तरह रखा। पिताजी को भी सन्तुष्ट रखा। आगे भी ऐसे ही रहना

और अच्छा नाम पाना, भगवान तुम्हें सुखी रखें।" फिर दीक्षित से बोली, "मेरे मन में किसी प्रकार का डर नहीं, पण्डितजी। भगवान का स्मरण कर रही हूँ। यहाँ काम समाप्त कर आप अपने देश चले जाइयेगा। ओंकार के मन्दिर के लिए एक थैली में सोना रख रखा है। अपने गले का हार भी दे रही हूँ, ये भी ले जाइयेगा। और वहाँ पूजा कीजियेगा। भगवान ने मेरे भाग्य से सदा आपको मेरे पास बनाये रखा।"

ऐसी बातें क्यों कर रही हो रानीमाँ ? आप जल्द ठीक हो जायेंगी। आप फिर भगवान की पूजा करायेंगी और फिर ओंकार का दर्शन करेंगी।" दीक्षित ने यह बात कही, पर अन्दर से विश्वास न था।

रानी ने इसका उत्तर नहीं दिया। एक क्षण बाद बोली, "यह हार और यह थैली—यह बात दूसरों को भी बता दूँ। मुनीमजी को बुलाइये।" दीक्षित ने मुनीम को बुलवाया। रानीमाँ अस्वस्थ हैं जानकर राजकुमारी की अध्यापिकाएँ भी आयीं। रानी ने हार और सोने की बात लूसी से कही। "जो आज्ञा रानी माँ" लूसी ने कहा। फिर उसके मन में एक बात आयी। उसने पूछा, "राजा साहब को यहाँ बुलाऊँ ?"

रानी बोली, "उन्हें क्यों कष्ट देती हो ?" फिर निशक्त होकर आँखें मूँद लीं। राजवैद्य आया, नाड़ी पकड़कर परीक्षा की और फिर धीरे से दीक्षित से कहा, "भगवान के सामने ज्योति जलाइये।"

एक घड़ी बीत गयी। रानी का श्वास धीमे-धीमे क्षीण हो चला। बहुत देर के बाद उन्होंने आँखें खोलीं। सिरहाने बैठी बेटी को देखकर धीमे स्वर में कहा, "विश्वेश्वर ओंकार मेरी रक्षा करो" और फिर मुँह से शब्द नहीं निकले।

आँखें खुली की खुली रह गयीं, प्राण निकल गये।

दीक्षित ने राजकुमारी के हाथ से पलकें बन्द करायीं। बुखार की तेज़ी के साथ मुख पर आयी झुर्रियाँ आखिरी साँस के साथ मिट गयीं। गौरम्माजी की अन्तिम मुख-मुद्रा उनके जीवन के अनुकूल ही शान्त और गम्भीर हो गयी। उनके मुख की कान्ति मृत्यु से कम न हो सकी। ऐसा लगा मानो असाधारण शान्ति में उनके मुख पर एक नयी कान्ति छा गयी हो।"

176

विश्वाराध्य गुरु पीठ के जगंभावाटी के प्रमुखों से सहायता लेकर दीक्षित ने शास्त्रोक्त विधि से गौरम्माजी के शरीर की अन्त्येष्टि क्रिया पूर्ण की। उसने स्थानीय अंग्रेज अधिकारी के पास जाकर प्रार्थना की कि उसे रानी की आत्मा की शान्ति के लिए दस तीर्थों में जाकर पूजा-पाठ करना है, उसके लिए सहायता दी

जाये। उनसे उसने एक 'सहायता पत्र' प्राप्त किया। रानी द्वारा ओंकारेश्वर के मन्दिर के लिए दिये गये गहने तथा मोहरों को मडकेरी के अधिकारी के पास भिजवाने का काम उन्हें सौंपा गया। पश्चात् अपने लौटने की बात वीरराज को सूचित की और राजकुमारी से आज्ञा लेकर काशी से प्रस्थान किया।

दीक्षित के मन में रानी गौरम्मा के प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न हो आयी थी। पुण्यात्मा ने किस योग में यह सिद्धि प्राप्त की ! अन्तिम समय में इतनी शान्ति ! भगवान का स्मरण करते हुए मानो उन्होंने अपनी इच्छा से श्वास छोड़ दिये। इसके लिए उन्होंने कितनी तपस्या की होगी ! भगवान को कितना प्रसन्न किया होगा ! ऐसी आत्मा के लिए मुक्ति कोई चीज़ नहीं। उसके लिए भगवान से प्रार्थना करना अनावश्यक है। फिर भी इस पुण्यात्मा का स्मरण करते हुए दस तीर्थों पर जाना मेरे लिए मंगलकारी होगा। गंगाजल को इन सभी स्थानों पर ले जाकर रानी के नाम दस लोगों को अन्नदान करना अपनी मालकिन की स्मृति में मेरा अन्तिम कर्तव्य होगा।

काशी से चलकर दीक्षित प्रयाग आया। वहाँ जावालि क्षेत्र से होता हुआ आग्नेय दिशा जगन्नाथपुरी पहुँचा। वहाँ कालहस्ती, सिंहाचल तिरुपति मार्ग से कांची गया। फिर वहाँ से श्रीरंग, मदुरै पहुँचा। बाद में रामेश्वर, कन्याकुमारी गया। आगे तिरुवन्तपुर से मलयाल होता हुआ वैयनाड पहुँचकर वहाँ का पहाड़ी इलाका पार करते हुए वीरराज पेटे के रास्ते मडकेरी पहुँच गया। इस यात्रा में उसे डेढ़ वर्ष का समय लग गया।

काशी में रानी के स्वर्गवास की बात मडकेरी में एक वर्ष बाद पहुँची। काशी के अधिकारी ने मडकेरी के अधिकारी को वह माला भेजते हुए लिखा था कि उस माला के साथ उतना सोना भी मन्दिर को दे दिया जाये जितना सोना रानी ने मन्दिर को देने के लिए समर्पित किया था। दीक्षित के शहर पहुँचते ही उसके पुत्र ने उसे यह बात बतायी।

तीन वर्ष के उपरान्त पुनः ओंकार के दर्शन होने पर दीक्षित को अपूर्व आनन्द हुआ। पर इस आनन्द में यदि कोई कमी थी तो एक बात की—इस पूजा को अकथनीय श्रद्धा से करनेवाली गौरम्माजी फिर सेवा नहीं करा सकेंगी। हो सकता है वह करा दें। हो सकता है देह के बन्धन से मुक्त होकर वह पवित्र आत्मा अब यहाँ भगवान की सेवा में लगी हो !

इस प्रकार अपनी मालकिन का स्मरण करते हुए दीक्षित पुनः पूजा में लग गया। रानी के नाम से पूजा करके तर्पण किया और गरीबों को भोजन कराया।

इसके बाद रानी द्वारा समर्पित निधि तथा हार को दिलवाने की प्रार्थना करने के लिए वह बोपण्णा के पास चला गया।

177

इन दो दिनों मे नारायण ने उसे कोडग में अब तक घटी सब बातों का ब्यौरा दे दिया था। राज्य मे कुल मिलाकर राजा के शासन की अपेक्षा अधिक शान्ति थी। यदि कोई असन्तोष की बात थी तो यह आज्ञा कि खेतिहर जन अपना लगान धान्य नही, धन के रूप मे दें। संपाजे प्रदेश के गौड लोगों को यह पसन्द न आने के कारण उन्होंने नयी सरकार का विरोध किया और आन्दोलन शुरू कर दिया। इसी बात से लाभ उठाकर लक्ष्मीनारायण के भाई सूरप्पा ने यह कहा कि कोडग मे अप्पाजी के पुत्र वीरण्णा को राजा बनना चाहिए। उसने अपने साथ और लोगों को मिलाकर शासन का विरोध करने की ठान ली।

नयी सरकार ने कोडगियों की सहायता से दगे को दबा दिया। यह वीरण्णा नाम का आदमी ही सन्यासी वेश में अपरम्पर स्वामी है—यह जानकर अंग्रेज कमिश्नर ने जाँच-पड़ताल का नाटक रचा और सूरप्पा को देश निकाला दे दिया तथा वीरण्णा को बंगलूर मे क़ैद कर दिया। कमिश्नर ने इस शका से कि लक्ष्मीनारायण भी अपने भाई का साथ दे रहा होगा, उसे बंगलूर बुलवाकर आज्ञा दी, "आप अब मडकेरी नहीं जायेंगे, यही हमारे पास रहेंगे।" बोपण्णा ने कमिश्नर साहब से कहा, "यह अन्याय है।" सम्भवतः कमिश्नर लक्ष्मीनारायणय्या को इस रोक से छूट देने को तैयार हो जाता परन्तु लक्ष्मीनारायण ने ही स्वयं इसे पसन्द नहीं किया। "रहने दीजिये बोपण्णा, अब मडकेरी क्या और बंगलूर क्या? अब मडकेरी मेरे मन को भाती भी नहीं। बंगलूर में ही समय काट लूंगा।"

उसका भतीजा मडकेरी मे ही रहा। शासन ने इसमें कोई ऐतराज न किया। सावित्रम्मा ने बेटे से यह कहा, "जन्म यही लिया, यही पली, अब चार दिन के जीने के लिए बाहर कहाँ जाऊँ?" और इस तरह वह पोते के साथ मडकेरी मे ही रहने लगी।

भगवती एक वर्ष तक अपने मन्दिर में ही रही आयी। बीच-बीच मे मडकेरी आकर दोड्डव्वा की पूजा मे सहायता करती और दीक्षित के बाल बच्चो से बातचीत करके लौट जाती। एक साल बाद वह फिर नही आयी। वह कहाँ चली गयी किसी को भी पता नही चला।

178

दीक्षित बोपण्णा के पास आया, कुशल क्षेम पूछा और बाद में उससे अपनी प्रार्थना की। बोपण्णा ने कहा "हो जायेगा पण्डितजी, इसमें क्या दिक्कत है।" उसने

काशी की सारी बातों के बारे में पूछताछ की। रानी के इतनी जल्दी गुज़र जाने से बोपण्णा बड़ा दुखी हुआ, परन्तु उसे यह विश्वास था कि कोडग को राजा के हाथ से छुड़ाकर उसने अपने जीवन में एक सार्थक कार्य किया। अब एकमात्र बात यही है कि पराये लोग राज्य कर रहे हैं। लेकिन इससे हानि ? राज्य करनेवाला भी एक सेवक ही तो होता है। जनता को उसके साथ ठीक से रहना चाहिए। मैं जितने दिन रहूँगा इस बात का ध्यान रखूँगा। आगे अगली पीढ़ी जाने। दीक्षित बोला, "कोई भी शासन क्यों न हो एक समान धर्म पर नहीं चलता। चार दिन ढंग से चलता, तो चार दिन बेढंगा। बाद के चार दिनों में जनता के विरोध से उसका पतन हो जाता है। सब भगवान की माया है। गीता में कहे गये 'यदा-यदा हि धर्मस्य' वाले श्लोक का सार भी यही है।"

बोपण्णा : "इन सब बातों में आपको बहुत विश्वास है ना, पण्डितजी ?"

"हाँ, मन्त्री महोदय।"

"अब मैं मन्त्री नहीं हूँ पण्डितजी, बाक़ी तक्कों की ही भाँति मैं भी एक तक्क हूँ। यह बात छोड़िये। ये नये लोग अन्याय करेंगे और मार खायेंगे यही आपका कहना है ना ?"

"जी हाँ।"

"अभी ये लोग कितने दिन और रहेंगे पण्डितजी, हिसाब लगाकर बतायेंगे ?"

"हिसाब तो पहले ही लगा चुका हूँ तक्कजी, पर उसमें आपको विश्वास नहीं होगा।"

"विश्वास नहीं होगा यह बात नहीं, पण्डितजी। जानकर भी क्या किया जा सकता है। देखिये ना, आप कहते रहे, राजा भाँजे को मार डालेगा। हमारा सबका भी यही कहना था कि यह मार डालेगा, मार डालेगा। हमारे कहते-कहलाते उसने मार ही डाला। हमें पता चल जाने से क्या लाभ हुआ, बताइये ?"

"सच है, तक्कजी। फिर भी हम लोगों के मन में एक भाव रहता है कि शायद भगवान हमारी मिन्नतों और प्रार्थनाओं से होनी को टाल दें। अगर होनी न टली तो उसे भुगतनी ही पड़ेगी।"

"बात ठीक है। हम घोड़े पर बैठते हैं; वह लगाम में कसा भागता रहता है। उसने यदि लगाम दाँतों में पकड़ ली तो उसका दौड़ना आपकी इच्छा पर नहीं; घोड़े की इच्छा पर रहता है। वह जहाँ जाता है वहीं आपको जाना पड़ेगा। तब उसे साधने की बुद्धि नहीं रहती। अपने को गिरने से बचाने के लिए उससे चिपके रहने का ही ध्यान रहता है।"

"बात सही है, तक्कजी। भाग्य यदि लगाम को दाँतों में दबा ले तो सबकी यही दशा होती है।"

"कोडग का आज का भाग्य और कितने दिन चलेगा, इसके बारे में आपका

क्या विचार है ?"

"सचमुच पूछ रहे हैं ? कहीं मजाक तो नही कर रहे हैं ?"

"कही ऐसा भी हो सकता है, पण्डितजी ? आपको जो पता है वही कहिये ।"

यह शासन दो साल के वर्षफल मे दिखता है । इस बीच ये लोग छोड़ सकते हैं या आप चाहें तो छुड़ा सकते हैं, यदि इनमें कुछ भी न हुआ तो पूरे सौ साल रहेगा ।"

"सौ साल तक क्यों जायेगा ?"

"सबके जाने के लिए एक ही कारण होता है । मुझे ही सब कुछ चाहिए । इस प्रकार स्वार्थ बढ़ता जाता है । सही गलत का विवेक खो जाता है । और तब अन्त मे काम बिगड जाता है ।

"ठीक है पण्डितजी । कुछ और बताइये !"

इधर-उधर की दो बातें करके दीक्षित घर चला आया ।

179

दस वर्ष से अधिक समय बीत गया । कोडग की जनता को खबर पहुँची कि उनका भूतपूर्व राजा वीरराज इंग्लैण्ड चला गया । वहाँ को राज्य दिलाने की आशा मे वीरराज ने महारानी विक्टोरिया के पास प्रार्थना-पत्र भेजकर निवेदन किया है कि इसे ईसाई धर्म में दीक्षित कर लिया जाये । उन्होंने इसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, राजकुमारी ईसाई धर्म मे प्रविष्ट हो गयी । यह खबर कोडग मे उस समय नही पहुँच पायी । मेर्चानिग ने उसे राज्य दिलाने के लिए दौड़-धूप की, पर उसकी बात नही चली । दो-एक साल में राजकुमारी का कप्तान साहब से विवाह हो गया । कुछ साल बाद उसने एक पुत्री को जन्म दिया । पुत्री के पैदा होने के तीन वर्ष बाद ही वीरराज चल बसा । उसके दो वर्ष बाद राजकुमारी भी चल बसी । कोडग के राजघराने के अंग्रेजी जीवन के चिह्न स्वरूप 'ऐडित् सात् विक्टोरिया गौरी कैम्बल' नाम की छोटी बालिका अपने पिता कप्तान के साथ इंग्लैण्ड भेज दी गयी ।

इस समय तक कोडग को अंग्रेजों के हाथ में गये तीस वर्ष बीत गये थे । कोडग की जनता को इनमे से किसी बात का पता न था ।

उपसंहार

180

और साठ वर्ष वीत गये। भारतवर्ष अपने को अंग्रेज़ों के चंगुल से मुक्त करने का प्रयास कर रहा था। उत्तय्या के निमन्त्रण को स्वीकार करके मैसूर से चार मित्र अपने पड़ोसी प्रान्त कोडग को देखने गये और उसके सौन्दर्य को देखकर चकित रह गये। वे इस वात पर हैरान थे कि हम मैसूरवालों की तो अक़्ल मारी ही गयी थी, पर इन कोडगियों ने अपने आपको क्यों अंग्रेज़ों के हाथों में सौंप दिया। उत्तय्या ने उन्हें चिक्कवीरराजेन्द्र की कहानी सुनायी: मेरे दादा उत्तय्या और राजा की वेटी से विवाह की वात चली थी। राज्य के पुनः प्राप्त करने की आशा में वीरराज ने वह वात टालकर वेटी को ईसाई मत में दीक्षित करा दिया था। इसी प्रसंग में इस राजा के वारे में कोडगियों में अनेक प्रचलित किंवदन्तियाँ सुनने को मिलीं। इन सवको लगा, चिक्क वीरराज की कहानी हमारी जनता की आँखें खोल देने के लिए पर्याप्त थी। कहानीकार ने इसे लिखने का विचार किया।

इसके वाद चार वर्ष वीत गये। भारतवर्ष के स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में एक और मंज़िल तय हो चुकी थी। इंग्लैण्ड में गोलमेज कांफ्रेंस हुई। इस सन्दर्भ में इनमें से दो मित्र इंग्लैण्ड गये।

मनुष्य जैसे कहानी की रचना करता है जीवन भी उसी प्रकार कहानी रचता चलता है। संभवतः जीवन के इस कहानी रचने से ही मानव में कहानी रचने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है, इंग्लैण्ड पहुँचने के कुछ दिन वाद मित्रों को इस वात का अनुभव हुआ। उन्हें मालूम था कि उनका मित्र कोडग की कहानी लिखना चाहता था। इसलिए राव साहव ने अपने अनुभवों के वारे में उसे पत्र लिखा:

"मित्र उत्तय्या से हमारी कोडग के इतिहास के वारे में चर्चा हुई थी और आपने कोडग के इतिहास के आधार पर एक कहानी लिखने की वात सोची थी। यहाँ तीन दिन में घटी घटनाओं में से मुझे यह वात फिर याद आ रही है। आप

सुनेंगे तो आपको बहुत आश्चर्य होगा । संभव है यह घटना आप ही के लिए घटी हो ।

तीन दिन पहले इस सभा में भाग लेने के लिए आये हम चार लोग सभा-भवन के पासवाले रेस्तरां में दोपहर का खाना खाना गये । खाना खाते हुए सभा में हुई बहस के बारे में हम अपने पक्ष का समर्थन ज़ोर-ज़ोर से कर रहे थे । पास की मेज़ पर बैठी एक अंग्रेज महिला हमारे भोजन की समाप्ति के बाद हमारे पास आयी । अपने ढंग से नमस्कार करने के बाद बोली, "क्षमा कीजियेगा, अनजाने में आपकी बातचीत से पता लगा कि आप मैसूर से आये हैं । आपसे बात करने की इच्छा हो रही है ।"

हम सबने उठकर उसे एक कुर्सी पर बैठने को कहा और पूछा, 'मैसूर में आपकी दिलचस्पी का कोई कारण तो होगा ! क्या हम जान सकते हैं?'

'मैसूर के प्रति मेरी उत्सुकता का कारण है कि वह कोडग के पड़ोस में है । मेरा सम्बन्ध कोडग से है ।'

'बड़ी प्रसन्नता हुई । वहां आपके कॉफी के बागान होंगे ?

'जी नहीं । पर भगवान की इच्छा होती तो कोडग ही हमारा होता ।'

'क्या मतलब ? कृपया विस्तार से बताइये ।'

'कोडग के अन्तिम राजा वीरराजेन्द्र यहां आकर बस बसे । आप तो यह जानते ही होंगे ? उनकी बेटी विक्टोरिया गौरम्मा भी यहीं गुज़र गयी । उन्होंने कप्तान से विवाह किया था । उनकी एकमात्र पुत्री मैं हूँ, मेरा नाम एडित सातु है ।'

हम सब लोगों के रोंगटे खड़े हो गये । हमने बड़ी प्रसन्नता से कहा, 'हम आपकी भावना को समझते हैं । आपके दर्शन हमारे लिए सौभाग्य की बात है ।'

हमें पुनः बैठक में जाना था, उसे भी और काम था इसलिए उसने अपने घर का पता देते हुए कहा, 'समय मिले तो कभी हमारे घर आकर चाय पीजिये । मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी ।'

समय मिलने में कुछ दिन और लग सकते हैं तब तक रुकना संभव नहीं, इसीलिए यह पत्र लिख रहा हूँ । उनसे मिलने के बाद आगे की कहानी लिखूंगा ।"

181

पन्द्रह दिन बाद के पत्र में कथा आगे बढ़ी । वह पत्र इस प्रकार था—

"आज मैं तथा राव साहब एडित सातु गौरम्मा के घर गये थे । उनके यहाँ एक घण्टे बैठे रहे । बातचीत की और चाय पीकर लौटे । उस बातचीत का विवरण

इस प्रकार है :

राव साहब : 'आपने अपने नाना को देखा तो नहीं होगा ?'

'यह सच है, अपनी माँ की याद भी मुझे धुँधली-सी ही है। मेरे पिता का गुम हो जाना भी आपने समाचार-पत्रों में पढ़ा होगा। उन दिनों मैं लगभग सात वर्ष की थी। मुझे बस उनकी शक्ल भर याद है।'

'वास्तव में उनका क्या हुआ यह तो बाद में ही पता चला। पुस्तकों में पढ़ा था कि आपकी माता राजकुमारी गौरम्मा ने जो गहने और रत्न रखे थे उन्हें लेकर आपके पिता एक दिन सुबह कहीं चले गये और फिर उनका कोई समाचार प्राप्त नहीं हुआ।'

'जी हाँ, मैंने सुना है कि मेरे पिता को किसी काम से फ्रांस जाना था। उन्होंने यह सोचा कि इन कीमती आभूषणों और रत्नों का घर में रखना ठीक नहीं, इन्हें बैंक में सुरक्षित रख देना चाहिए। फलतः वे सब सामान लेकर बैंक गये। वे बैंक पहुँच नहीं सके यह बात तो हमें उस दिन शाम को पता चली। इस पर हमने पुलिस में रिपोर्ट की। पुलिस ने बहुत दौड़-धूप की पर यह पता नहीं चला कि मेरे पिता का क्या हुआ। कइयों का कहना था कि मेरे पिता इन कीमती वस्तुओं को लेकर कहीं भाग गये। औरों ने भी यही सोचा, पर वास्तव में यह बात नहीं थी।'

'तो आपका कहना यह है कि आपके पिता ऐसे नहीं थे कि आपको धोखा देकर इस तरह चले जायें ?'

'जी हाँ। मेरी बुआ का विचार है कि इतने अमूल्य रत्नों को बैंक ले जाने की बात हमारे नौकरों में से किसी बदमाश को मालूम हो गयी होगी। उन लोगों ने मेरे पिता को किसी रहस्यमय ढंग से ख़त्म कर दिया होगा। तब मैं बहुत छोटी थी। ऐसी बातें सोचने और समझने की शक्ति मुझमें नहीं थी। पर अब सोचने से बार-बार बुआ की ही बात सही लगती है।'

'आपकी बुआ यानी श्रीमती लोघन।' राव साहब ने पूछा।

'जी हाँ।"

'इन बातों से तो यही लगता है कि आपका विचार सही है। चोरी लगाकर आपके पिता का नाम बदनाम करने का किसी को क्या अधिकार है ?'

'सही बात है। इसके लिए मैं आपको बहुत धन्यवाद देती हूँ।' उसने विनम्रता प्रदर्शित की।

'इतनी सम्पत्ति के खो जाने से आपको बहुत संकट का सामना करना पड़ा होगा !'

'ऐसा कुछ नहीं हुआ, छोड़िये। जो खो गई वह तो अपार सम्पत्ति थी, फिर भी माँ के नाम की सम्पत्ति मुझे मिली और पिता की बचत भी काफी थी। बुआ

लोपन ने बड़े आराम से मुझे पाला ।'

'अगर आपत्ति न हो तो हमें आपकी वर्तमान स्थिति जानने की बड़ी उत्सुकता है ।'

'इसमें आपत्ति की क्या बात है ? बताती हूँ, सुनिये । मेरा विवाह बीस वर्ष की आयु में हुआ था । चार वर्ष बाद एक बच्चा हुआ । 1910 में मेरे पति कप्तान यार्डली का स्वर्गवास हो गया । शुरू में ही लड़के ने सेना में प्रवेश ले लिया था । मेरा लड़का 1918 के युद्ध में आस्ट्रे लिया गया । वहाँ वह मारा गया । मैं अकेली दिन काट रही हूँ । प्रभु की जब तक इच्छा होगी तब तक ऐसे अकेली ही दिन काटती रहूँगी ।'

'आप दीर्घायु हों । आपके पास आपकी माता, आपकी नानी तथा नाना से सम्बन्धित कागज़-पत्र तो होंगे ?'

वह बोली : 'सुना था कुछ कागज़-पत्र थे । उसमें कुछ खो गये, बाकी सरकारी ग्रन्थालय को दे दिये गये । यह बात बुआजी कहा करती थीं । अब मेरे पास केवल दो चीजें रह गयी हैं । एक तो मेरी माता का मुझे गोद में लेकर मेरे नाना और मेरे पिता के साथ खिचवाया हुआ फोटो और दूसरा मेरी माता द्वारा रंगों से बनाया हुआ मेरी नानी का चित्र । उन्हें दिखाती हूँ ।'

यह कहकर वह अन्दर के कमरे में गयी और एक फ्रेम में जड़ा चित्र और एक चार जनों का फोटो ले आयी । फोटो देखी, वीरराज का मुख काफी तेजस्वी तथा गम्भीर दिखायी दिया । बेटी बीमार-सी लगती थी । दामाद न बहुत बढ़िया था और न बहुत घटिया । साधारण-सा व्यक्ति दिखता था ।

उसे दिखाने के बाद उसने हमारे हाथ में मढ़ा हुआ चित्र दिया और बोली, 'यह मेरी नानी हैं ।'

हमने उसे देखा । हमें बड़ा आश्चर्य हुआ । वह प्रख्यात नर्तकी एलन टेरी का चित्र था ।

हमारे कुछ कहने से पूर्व ही वह हमारे हाव-भाव से यह समझ गयी कि वह उसकी नानी का चित्र न था । 'क्या ? फिर गलती कर गयी क्या मैं ? ऐसे ही कई बार गलती से एलन टेरी का चित्र दे बैठती हूँ, फिर पता लगने पर नानी का चित्र दिखाती हूँ । एलन मेरी परिचिता और बहुत प्रसिद्ध महिला है । उन्होंने मुझे यह चित्र दिया था । और यह रहा मेरी नानी का चित्र ।' कहते हुए उसने दूसरा चित्र हमारे सामने रख दिया ।

'अहा कैसा भव्य मुख है ! हाँ, यही कोडग की रानी है ।'

हम दोनों ने तत्काल उठकर उस चित्र को प्रणाम किया, फिर बैठकर बहुत देर तक देखते रहे । इतना देखने पर भी जी नहीं भरा ।

'आपको यह चित्र इतना पसन्द आया इससे मुझे बड़ी खुशी हुई । इस चित्र से

पता लगता है कि मेरी नानी स्वभाव से ही रानी थी।'

'हाँ वहिन, इसमें सन्देह नहीं कि अपनी माँ का इतना सुन्दर चित्र बनानेवाली आपकी माँ कुशल चित्रकार रही होंगी।'

'जी हाँ। पर बुआ कहा करती थीं कि कुशलता से भी अधिक उनको अपनी माँ के प्रति श्रद्धा थी, इसीसे चित्र में यह कान्ति आ गयी।'

'इससे पता चलता है कि आपकी बुआ अपनी भाभी को बहुत प्यार करती थीं।'

'आपका कहना ठीक है, मेरी माँ के जीवन से मेरी बुआ का निश्छल प्रेम उनकी प्रसन्नता का सबसे बड़ा कारण रहा।'

'इसे ज़रा स्पष्ट कीजिये!'

'बताती हूँ, सुनिये। इसमें छिपाने की बात भी क्या है। अन्तिम दिनों में मेरे माता और पिता में कुछ अनबन हो गयी थी।'

'यह बात मैंने कहीं पढ़ी थी।'

'जी हाँ, मेरी माँ छुटपन में उत्तय्या नाम के एक कोडग तरुण के सम्पर्क में थी। उनसे विवाह की बात भी चली होगी। मेरे पिता तब भारत में थे। उन्होंने भी यह बात सुनी थी। मेरी माँ जब गर्भवती थी तब बहुत बीमार पड़ी। प्रसव के दिन पास आने पर उन्हें लगा कि वे बचेंगी नहीं। इसलिए उन्होंने, यदि शिशु बच जाये और वह लड़का हो तो उत्ता और लड़की हो तो सातु उसके नाम के साथ जोड़ने को प्रार्थना की। पत्नी अपने पूर्व प्रेमी को अब भी याद करती है यह सोचकर मेरे पिता को चिढ़ हुई। तब मेरी बुआ ने उन्हें डाँटा और कहा, 'तुम तो ओथेलो बन गये।'

'पुरुष जाति ही ओथेलो है।'

'इससे मेरी माँ को बहुत दुःख हुआ। मेरा लड़की होकर पैदा होना उनको अच्छा लगा। साथ ही उनको एक बात खटका करती थी।...'

हमने कुछ भी उत्तर न दिया, उसने एक क्षण रुककर कहा—

"पिता की इच्छा के कारण वे ईसाई बनीं। पर उनकी यह बड़ी इच्छा थी कि उनकी माता जिस ओंकारेश्वर की अनन्य भक्ति से आराधना किया करती थीं उसे एक हीरा अर्पित करें। उन्होंने वह हीरा अलग रख छोड़ा था जिसे भारत भेजा नहीं जा सका। मरने से पहले उन्होंने मेरे पिताजी से कहा था, 'मैंने तो भेजने में देर कर दी, अब कम-से-कम आप तो भिजवा दीजियेगा।'

'वह हीरा भगवान तक पहुँचाया नहीं?'

'नहीं। मेरे पिताजी ने भी देर कर दी। पिताजी के गुम होने के दिन दूसरे गहनों जवाहरातों के साथ-साथ वह हीरा भी गुम हो गया।'

'उसके बदले में क्या आप और कुछ भेजना चाहती हैं?'

'वह तो दस-पन्द्रह हजार पौंड की कीमत का हीरा था। उसके बदले में मैं क्या दे सकती हूँ?'

हम भी कुछ और इधर-उधर की बातें करके वापस आ गये।

बात अच्छी है न। वीरराज की बेटी के सामने दादा उत्तय्या गुल्म नायक के विवाह की बात थी। वीरराज के मंगलूर चले जाने से यह बात टल गयी। दादा उत्तय्या ने तब बड़े उत्तय्या की पोती के साथ विवाह किया। यह बात जो हमारे मित्र उत्तय्या ने बतायी थी अब प्रसंग से जुड़ गयी।

लगता है, अभी आपने कहानी लिखी नहीं। जल्दी-से-जल्दी लिखिये। मेरा दिया हुआ विवरण संभवतः आपके काम आ जाये। यदि उचित समझें तो आप इन तथ्यों का उपयोग कीजिये। कहानी आप जितनी जल्दी लिखेंगे उतनी जल्दी मैं उसे पढ़कर सन्तुष्ट होऊँगा।"

पत्र इस प्रकार समाप्त हुआ। बड़ों के पत्र से प्राप्त सारे विवरण इस कहानी में प्रयुक्त किये गये हैं। उस पत्र को कहानी में प्रयुक्त करने भर की बात नहीं है बल्कि उसमें आये वाक्य से कहानी समाप्त करना ही अच्छा है। राव साहब का पत्र इस कहानी के लिए भरत-वाक्य है।